# प्रस्तावना ।

प्रायः ऐसा अनुमानमें आता है कि समस्त कर्मोंका मूल केवल शरीर है जबतक यह नीरुज, निरुपाधि और पुष्ट रहताहै तभीतक सब कर्तव्य ठीक है ।

नीतिमें भी ऐसा लेख है कि धन, पुत्र, कलत्रादिकसे बढकर शरीरकी रक्षा करनी चाहिये इसके लिये भगवान् धन्वंतरिजीने पूर्वहीसे लोकहित विचार वैद्यक शास्त्र तथा अनेक औषधियां निर्मित कीं ।

यद्यपि वैद्यकविषयके अनेक अन्य भी बृहत् ग्रंथ हैं जिनमें प्रत्येक रोग निदान व रोगानुकूल उपयोगी औषधियां तथा और २ उपाय कथन किये गये हैं पर तब भी महात्मा सुश्रुतजीकी रचीहुई यह "सुश्रुतसंहिता" सब ग्रन्थोंसे बढ़कर विचित्र और उपयोगी है जिसने इस ग्रंथको दृष्टिगत नहीं किया उसका वैद्य बनना निरर्थक है क्योंकि "सुश्रुतो न श्रुतो येन वाग्भटो न च वाग्भटः ॥ चरको नालोकितो येन स वैद्यो यमकिंकरः॥१॥"

ऐसा कोई रोग नहीं जिसके दमनार्थ लाभकारी चिकित्सा इसमें न कहीगई हो तिसमेंभी विचित्रता यह कि धनी, कंगाल सबके योग्य सहजमें सिद्ध होनेवाली औषधियें कथित हैं ॥

इस ग्रंथके संस्कृतमें होनेसे संस्कृतभाषाऽनभिज्ञ संसारीजीवोंको विशेष लाभ इससे नहीं होता था ऐसा विचारकर सबके सुलभार्थ इस ग्रंथकी परमाद्वितीय श्रेष्ठ भाषाटीका श्रीपंडितवर मुरलीधरशर्मा राजवैद्य द्वारा कराकर भाषाटीका समेत यह ग्रन्थ मुद्रित किया गया है ॥ ४ ॥

ग्रंथकी बाहुल्यतासे इसके चार विभाग भिन्न २ मुद्रित हुए हैं जिनमेंसे यह दूसरा विभाग है । इसमें निदान और शारीरक दो स्थान हैं ॥

निदानस्थान में तो वात, पित्त, कफ तथा सन्निपातसे उत्पन्नहुए भीष्मरोगोंके निदान कहे गये हैं ॥

शरीरस्थानमें शरीरसंबधी सर्वांगोंके शुद्धाशुद्ध लक्षण सविस्तर वर्णितहैं

विशेष प्रशंसा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है अवलोकन करनेसे गुण, अवगुण आपही प्रकट हो जातेहैं तब भी इतना तो हम अवश्यही कह सकते हैं कि वैद्यकविद्याविशारद जन इस ग्रंथको देखकर एकवार तो अवश्यही फड़क उठैंगे और इसके द्वारा अनेकानेक लाभ उठाकर हमारे परिश्रमको सफल करेंगे ॥ इत्यलम् ॥

विद्वज्जनकृपाभिलाषी–

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालयाध्यक्ष–मुंबई.

॥ श्रीः ॥

# अथ सुश्रुतसंहितानिदानस्थान—

## विषयाऽनुक्रमणिका ।

इति सुश्रुतसंहितानिदानस्थानविषयाऽनुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

# अथ सुश्रुतसंहिताशारीरस्थान-

## विषयाऽनुक्रमणिका ।

इति सुश्रुतसंहिताशारीरस्थान-
विषयानुक्रमणिका समाप्ता।

इति

सुश्रुतसंहिता निदानस्थान–शारीरस्थान

विषयानुक्रमणिका

समाप्त ।

॥ श्रीः ॥

# अथ सुश्रुतसंहिता ।

## सान्वयभाषाटीकासहिता ।

# निदानस्थानम् २.

## प्रथमोऽध्यायः १.

अथातो वातव्याधिनिदानं * व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे ( सूत्रस्थानके ) अगाडी ( निदानस्थानमें ) ( प्रथम ) वातव्याधियोंके निदानका व्याख्यान करतेहैं ॥

**धन्वंतरिं धर्मभृतां वरिष्ठममृतोद्भवम् ॥ चरणावुपसंगृह्य सुश्रुतः परिपृच्छति १ ॥ वायोः प्रकृतिभूतस्य व्यापन्नस्य च कोपनैः ॥ स्थानं कर्म च रोगांश्च वद मे वदतांवर ॥ २ ॥**

धार्मिकोंमें श्रेष्ठ अमृतके साथ उत्पन्न हुए ऐसे धन्वंतरि भगवान्के दोनों चरण पकडकर महर्षि सुश्रुत पूँछते भये ॥ १ ॥ हे व्याख्याताओंमें श्रेष्ठ भगवन् ! प्रकृतिभूत ( स्वाभाविक ) वायुका तथा कोपन पदार्थों करके कोपको प्राप्त हुए वायुका स्थान, कर्म और गुण ( विस्तारपूर्वक ) मेरे प्रति वर्णन करो ॥ २ ॥

**तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्राब्रवीद्भिषजांवरः ॥ स्वयंभूरेष भगवान् वायुरित्यभिशब्दितः ॥ ३ ॥ स्वातंत्र्यान्नित्यभावाच्च सर्वगत्वात्त-**

---

* हेतुलिंगौषधज्ञानबीजभूतेन सूत्रस्थानेन संक्षिप्तोद्दिष्टस्य हेतुलिंगौषधस्य विवरणे सर्वाण्येव स्थानानि प्रस्तुतानि तेषु च प्रस्तुतेषु स्वाधिकाराणां शल्यतंत्रव्याधीना हेतुलक्षणप्रतिपादकतया निदानस्थानस्य प्रारंभः, तत्रापि दोषाणा वातस्य प्रधानत्वात्तद्व्याधिहेतुलक्षणाभ्या प्राक् प्रतिपादन युज्यते ॥ ( श्लो० १ ) अमृतोद्भवमिति अमृतेन सार्द्धम् उद्भवो यस्य तम् ॥ ( श्लो० २ ) वायोः "प्रकृतिभूतस्य" स्वभावस्थितस्य "व्यापन्नस्य" विकृतस्य " कोपनैः " द्रव्यगुणकर्मभिः ॥

थैव च ॥ सर्वेषामेव सर्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः ॥४॥ स्थित्युत्पत्तिविनाशेषु भूतानामेष कारणम् ॥ अव्यक्तो व्यक्तकर्मा च रूक्षः शीतो लघुः खरः॥ ५ ॥ तिर्यग्गो द्विगुणश्चैव रजोबहुल एव च ॥ अचिंत्यवीर्यो दोषाणां नेता रोगसमूहराट्॥६॥आशुकारी मुहुश्चारी पक्वाधानगुदालयः॥ देहे विचरतस्तस्य लक्षणानि निबोध मे ॥७॥

इस प्रकार सुश्रुतके वचन सुनकरके वैद्योंमें श्रेष्ठ श्रीधन्वंतरिजी बोलते भये कि यह वायु स्वयंभू है ( परमाणुरूप है ) और भगवान् ( ऐश्वर्यवान् ) है ऐसे कहा जाता है ॥ ३ ॥ यह वायु स्वतंत्रता होनेसे और नित्यभाव ( नित्यता ) होनेसे और सर्वत्र गमनशक्ति होनेसे सब जगत्के जीवोंका सर्वात्मा है और सब लोकोंकरके नमस्कार किया हुआ है ॥४॥ प्राणियोंकी उत्पत्ति और स्थिति तथा विनाशका यह वायुही कारण है स्वयं वायु अव्यक्त ( अप्रकट ) है और प्रकट कर्मोंका करनेवाला है, रूक्ष है, शीतल है, हलका है, खरखरा है ॥ ५ ॥ तिर्यग्गामी ( तिरछा चलनेवाला ) है, दो गुणवाला (शब्द और स्पर्श गुणवाला ) है और ( गुणत्रयात्मक होकर ) रजोगुणप्रधान है और अचिंत्य पराक्रमवाला है और सब दोषों ( कफ, पित्त, रक्तादि ) का प्रेरण करनेवाला है और रोगोंके समूहका राजा है ॥६॥ शीघ्र प्रभाव करनेवाला है और वारंवार विचरनेवाला है विशेष करके पक्वाशय और गुदामें वास करता है ( यह प्रकृतिस्थ वायुके गुण स्थानादि कहे हैं ) सम्पूर्ण देहमें विचरनेवाले इस वायुके लक्षण ( विस्तारपूर्वक ) मेरेसे श्रवण करो ॥ ७ ॥

### शुद्ध वायुके कर्म ।

दोषधात्वग्निसमतां संप्राप्तिं विषयेषु च ॥
क्रियाणामानुलोम्यं च करोत्यकुपितोऽनिलः ॥ ८ ॥

विना कुपित हुआ अर्थात् शुद्ध निर्विकार वायु सब दोष, धातु और जठराग्निकी समानता करता है ( अर्थात् क्षय, वृद्धि किसीको नहीं होने देता जिससे शरीर स्वस्थ और प्रसन्न रहता है )तथा सब विषयोंमें ठीक २ संप्राप्ति होती है और संपूर्ण क्रियाओमे संप्राप्ति ( करणशक्ति, उत्साह और प्रीति ) होती है तथा अनुलोमता ( मल, मूत्र स्वेदादिकोंकी ठीक २ प्रवृत्ति ) होती है ॥ ८ ॥

यथाग्निः पञ्चधा भिन्नो नामस्थानात्मकर्मभिः ॥ भिन्नोऽनिलस्तथा ह्येको नामस्थानक्रियामयैः ॥९॥ प्राणोदानौ समानश्च

( श्लो० ५ ) रूक्षलघुशीतदारुणखरविशदाः षडिमे वातगुणाः भवन्तीति ( चरकः ) ॥
( श्लो० ९ ) यथा पाचकरंजकालोचकभ्राजकसाधकभेदेन पंचधा पित्तं विभक्तं तथैव वायुरपि ॥

व्यानश्चापान एव च ॥ स्थानस्था मारुताः पंच यापयन्ति शरीरिणम् ॥ १० ॥

जैसे नाम और स्थान तथा कर्मोंकरके अग्नि ( पित्त ) पांच प्रकारसे विभक्त हुआ है उसी भांति एक वायु भी नाम, स्थान, क्रिया और रोगोंकरके पांच प्रकारसे विभक्त है ॥ ९ ॥ प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान ऐसे पांच प्रकारका पांच स्थानोंमें स्थित हुआ वायु जीवोंके शरीरोंको धारण करताहै ॥ १० ॥

### प्राणवायु ।

वायुर्यो वक्त्रसंचारी स प्राणो नाम देहधृक् ॥ सोऽन्नं प्रवेशयत्यंतः प्राणांश्चाप्यवलंबते ॥ प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान्गदान् ॥ ११

जो वायु मुखद्वारा बाहर और भीतर गमन करता है वह प्राणनामक वायु देहका धारण करनेवाला है और वही प्राणवायु अन्नको भीतर प्रवेश करता है और वही प्राणोंको अवलम्बन करता है यहां प्राण शब्दसे जीव, बल, ओज तथा अग्नि आदिका ग्रहण करना चाहिये । और यदि यह प्राणवायु दुष्ट हो ( बिगड जाय ) तो हिचकी, श्वास आदि रोग उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥

### उदानवायु ।

उदानो नाम यस्तूर्द्ध्वमुपैति पवनोत्तमः ॥ तेन भाषितगीतादिविशेषोऽभिप्रवर्त्तते ॥ ऊर्द्ध्वजत्रुगतान्रोगान्करोति च विशेषतः ॥ १२ ॥

जो पवनोंमें श्रेष्ठ ऊपरको गमन करता है वह उदाननामक वायु है उस करके मनुष्य संभाषण तथा गीतादिकके विषयमें प्रवृत्त होता है और यही दुष्ट हो तो ऊर्द्ध्वजत्रुगत रोग, नयन, घ्राण, कर्ण और शिरके रोग विशेष करके करता है "च" शब्दसे कास स्वरभेदादिभी करता है ॥ १२ ॥

---

( श्लो० ११ ) वायुर्यो वक्त्रसंचारी इत्यत्र वक्त्रं सचारस्योपलक्षणं तेन मूर्द्धोरःकण्ठनासिका अपि प्राणस्य स्थानमिति डल्हनः । वाग्भटस्तु इत्याह-प्राणो मूर्द्धन्यवस्थितः कंठोरश्चरो बुद्धीन्द्रियहृदयमनोधमनीधारणष्ठीवनक्षवथूद्गारश्वासोच्छ्वासान्नप्रवेशादिक्रिय इति । केचिदित्याहुः-प्राणस्य स्थानं हृदयमेवेति । केचित्प्राणस्य स्थानं नाभिरिति वदंति यथा नाभिस्थः प्राणपवन इति शार्ङ्गधरः । प्राणांश्चाप्यवलम्बते इति प्राणान् अग्न्यादीन् अवलम्बते स्वक्रियासु योजयति। गयदासार्यस्तु एवं मन्यते प्राणानामग्निसोमादीनामधिष्ठानमवलम्बनवचनेन चाधारभूतहृदयाध एवोच्यते । अतएव प्राणानवलंबनेन मरणमूलत्वमुच्यते यदुक्तं श्रुतौ यथा सैंधवोऽश्वः शंकुमुत्पाट्य धावति तद्वत् प्राणो रुद्धः सर्वान्वायूनुत्पाट्य प्रयाणकाले धावति ॥ ( श्लो० १२) ऊर्ध्वमुपैति ऊर्ध्वं गच्छति । उदानस्य स्थानं पुनरनुक्तमपि-"अनाम्युरःकंठानि" इति डल्हनः। वाग्भटस्त्वित्याह-उदान उरस्यवस्थितः कण्ठनासिकानाभिचरः वाक्प्रवृत्तिप्रयत्नोर्जाबलवर्णस्रोतःप्रीणनधीधृतिस्मृतिमनोविबोधनादिक्रिय इति । उदानस्य स्थानं कण्ठमेवेति केचित् । क्रुद्ध ऊर्द्ध्वजत्रुगतान् रोगान् करोति ।

## समानवायु ।

**आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसंगतः ॥ सोऽन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान्विविनक्ति हि ॥ गुल्माग्निसंगातीसारप्रभृतीन्कुरुते गदान् ॥ १३ ॥**

आमाशय और पक्काशयमें विचरनेवाला अथवा आमके पाकका जो आशय उसमें विचरनेवाला अर्थात् पक्काशयमें रहनेवाला समाननामक वायु जठराग्निका सहायक है वही अन्नको पचाता है और वही ( दुष्ट हो तो ) जठराग्निजन्य रोगोंको विशेष करके उत्पन्न करताहै तथा गुल्म और अग्निसंग ( मंदाग्नि ) अतिसार आदि रोगोंको करताहै । यहां " तज्जान् विविनक्ति " के कई यह अर्थ करतेहैं कि अन्नपरिपाकजन्य जो कार्यविशेष हैं उनका विवेचन करताहै अर्थात् रस, दोष, मूत्र, पुरीष आदिको पृथक् २ करताहै ॥ १३ ॥

## व्यानवायु ।

**कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवहनोद्यतः ॥ स्वेदासृक्स्रावणो वापि पंचधा चेष्टयत्यपि ॥ क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान् ॥ १४ ॥**

समस्त शरीरमें विचरनेवाला और रसादिकके प्रेरणका उद्यम करनेवाला ऐसा व्याननामक वायु है वही पसीना और रुधिरादिका निकालनेवाला है तथा वही पांच प्रकारके प्रसारण ( पसारना ) आकुंचन (सिकोडना ) विनमन (नीचाकरना) उन्नमन ( ऊंचा करना ) तिर्यग्गमन ( तिरछाकरना ) ये शरीरके कर्म कराताहै और वही क्रुद्ध होजावे तब प्रायः सर्व शरीरवर्ती रोगों ( ज्वर, वात, रक्त, कुष्ठादि ) को उत्पन्न करताहै ॥ १४ ॥

## अपानवायु ।

**पक्वाधानालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम् ॥ समीरणः सकृन्मूत्र-**

---

( श्लो० १३ ) आमपक्वाशयचर इति आमस्य पक्वम् आमपक्वं तस्याशयः पच्यमानाहाराशय इत्यर्थः ।तत्र चरतीति ( डल्लनः) । वह्निसंगतः अग्निसहायवानिति अग्निसंधुक्षण इत्यर्थः । तज्जान् अन्नपाकजान् रसदोषमूत्रपुरीषाणि विविनक्ति पृथक् करोति । तस्य स्थानम् । नाभीराति केचित् । वाग्भटस्तु इत्याह—समानोन्तरग्निसमीपस्थितस्तत्संधुक्षणः पक्वामाशयदोषमलशुक्रार्तवाम्बुवहस्रोतोविचारी तदवलंबनान्न धारणपाचनविवेचनकिट्टाधोनयनक्रियः ॥

( श्लो० १४ ) रससंवहनोद्यतः रसादिप्रेरणोद्यतः । कृत्स्नदेहचरः सर्वशरीरगः । पंचधा चेष्टयति प्रसारणाकुञ्चनविनिमनोन्नमनतिर्यग्गमनानि पच चेष्टाः । अन्ये तु गतिप्रसारणाकुंचनोत्क्षेपणापक्षेपणानि पच चेष्टाप्रकाराः । सर्वदेहगान् ज्वरकुष्ठादीन् । वाग्भटस्तु इत्याह—व्यानो हृद्यवस्थितः कृत्स्नदेहचरः शीघ्रतरगतिर्गतिप्रसारणाकुंचनोत्क्षेपापक्षेपनिमिषोन्मेषणजृंभणान्नस्वादनस्रोतोविशोधनस्वेदासृक्स्रावणादिक्रिय इति ।

**शुक्रगर्भार्त्तवान्यधः ॥ क्रुद्धस्तु कुरुते रोगान्घोरान्वस्तिगुदाश्रयान् ॥१५॥ शुक्रदोषप्रमेहास्तु व्यानापानप्रकोपजाः ॥ युगपत्कुपिताश्चापि देहं भिंद्युरसंशयम् ॥ १६ ॥**

अपाननामक वायु पक्काशयमें रहताहै और यही वायु समयके ऊपर विष्ठा, मूत्र, वीर्य और स्त्रियोंके गर्भ तथा आर्तवको नीचेको आकर्षण करताहै अर्थात् बाहर निकालताहै और यदि यह कुपित होजाय तो बस्तिस्थानके रोग पथरी आदि तथा गुदाके रोग भगंदर आदि घोर २ रोग उत्पन्न करताहै ॥ १५ ॥ वीर्यके विकार और प्रमेह ये व्यान और अपान दोनोंके कोपसे होतेहैं और यदि सब एक समय कुपित होजायँ तो निःसंदेह शरीरका नाश कर देते हैं ॥ १६ ॥

**अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि नानास्थानांतराश्रितः॥बहुशः कुपितो वायुर्विकारान्कुरुते हि यान् ॥ १७ ॥ वायुरामाशये क्रुद्धश्छर्द्यादीन्कुरुते गदान् ॥ मोहं मूर्च्छां पिपासां च हृद्ग्रहं पार्श्ववेदनाम् ॥ १८॥**

अब यहांसे अगाडी नाना स्थानोंमें आश्रित हुआ कुपित वायु बहुधा जिन जिन विकारोंको करता है मैं उनका वर्णन करता हूं॥ १७॥ आमाशयमें कुपित हुआ वायु छर्दि आदिक रोगोंको करताहै तथा मोह (चित्तकी अस्थिरता), मूर्च्छा, पिपासा ( तृषा ), हृदयका स्तंभित होना और पार्श्ववेदना ( पसलीका दरद ) इत्यादि व्याधियोंको उत्पन्न करता है ॥ १८ ॥

**पक्काशयस्थोन्त्रकूजं शूलं नाभौ करोति च ॥ कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ॥ १९ ॥ श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्य्यात्क्रुद्धः समीरणः ॥ वैवर्ण्यं स्फुरणं रौक्ष्यं सुप्तिं चुमुचुमायनम् ॥ २० ॥ त्वक्स्थो निस्तोदनं कुर्यात्त्वग्भेदं परिपोटनम् ॥ व्रणांश्च रक्तगो ग्रंथीन् सशूलान्मांससंश्रितः ॥ २१ ॥ तथा मेदःश्रितः कुर्य्याद्ग्रंथीन्मंदरुजो व्रणान् ॥ कुर्य्याच्छिरागतः शूलं शिराकुंचनपूरणम् ॥ २२ ॥**

---

( श्लो० १५ ) पक्काधानालयः पक्काशयस्थानम् । वाग्भटस्तु इत्याह–अपानोऽपानेवस्थितो बस्तिश्रोणिमेढ्रवृषणवंक्षणोरुचरः विण्मूत्रशुक्रार्तवगर्भनिष्क्रमणादिक्रियः ( इति वृद्धवाग्भटः ) । अपानस्थानं गुह्यं चेति केचित् ॥( श्लो० २० ) श्रोत्रादिषु क्रुद्धः सन् दर्शनरसनस्पर्शश्रवणगंधग्रहणेष्वशक्ति कुर्यात् । वैवर्ण्यादिक त्वक्स्थ कुर्यादिति वा मन्यते ॥

पक्काशयमें यदि वायु कुपित हुआ हो तो अंत्रकूजन ( आंतोंका गुलगुलाना अर्थात् पेटमें गुडगुड आदि शब्द होना ) और नाभिमें दरद तथा मल और मूत्रकी प्रवृत्तिमें कष्ट ( या अवरोध ) तथा अफारा और त्रिकस्थानमें पीडा करता है ॥ ॥ १९ ॥ कर्ण आदि इंद्रियोंमें क्रुद्ध हुआ वायु उस इन्द्रियको नष्ट करता है और वर्ण बिगाड़ देता है तथा फरकाव पैदा करता है तथा रूक्षता, सुप्ति ( शून्यता ) और चुमचुमाट उत्पन्न करता है ॥ २० ॥ त्वचामें कुपित हुआ वायु त्वचामें पीडा करता है तथा त्वचाका भेदन और परिपोटन ( त्वचाका परिपुटन ) करता है और रुधिरमें कुपित हुआ वायु व्रण ( फोडे फुंसी ) आदि करता है और मांसमें कुपित हुआ वायु शूलसहित गांठ पैदा करता है ॥ २१ ॥ मेदमें स्थित हुआ कुपित वायु मन्द वेदनावाली व्रणरहित गांठें पैदा करता है तथा शिरा ( नारीक रगों ) में प्राप्त हुआ वायु शूल और रगका सुकडजाना अथवा रगका फूलजाना ऐसी व्याधि उत्पन्न करदेता है ॥ २२ ॥

**स्नायुप्राप्तः स्तंभकंपौ शूलमाक्षेपणं तथा॥हंति संधिगतः संधीञ्शूलशोफौ करोति च ॥ २३ ॥ अस्थिशोषं च भेदं च कुर्याच्छूलं च तत्स्थितः ॥ तथा मज्जगते रुक् च न कदाचित्प्रशाम्यति ॥ २४ ॥ अप्रवृत्तिः प्रवृत्तिर्वा विकृतिः शुक्रगेऽनिले ॥ हस्तपादशिरोधातूंस्तथा सञ्चरति क्रमात् ॥ २५ ॥ व्याप्नुयाद्वाखिलं देहं वायुः सर्वगतो नृणाम् ॥ स्तंभनाक्षेपणस्वापशोफशूलानि सर्वगः ॥ २६ ॥**

स्नायु ( नसों ) में प्राप्त हुआ वायु स्तंभ ( नसका अकडजाना ) तथा कांपना और शूल और आक्षेप (चलायमान होना) इत्यादि रोग करता है और संधियोंमें प्राप्त हुआ वायु संधियोंको मार देता है तथा संधियोंमें शूल और सूजन पैदा करता है ॥ २३ ॥ अस्थियोंमें प्राप्त हुआ वायु हाडोंको सुखा देता है हडफूटनसी करता है तथा हाडोंमें शूल ( चीस ) पैदा करता है, मज्जामें स्थित यदि कुपित वायु हो तो उसमें ऐसी पीडा हो जो कभी शांत न हो ॥२४॥ वीर्यप्राप्त ( कुपित ) वायु हो तो वीर्यकी प्रवृत्ति नहीं हो अथवा अतिप्रवृत्ति हो अथवा वीर्यमें विकार हो और

( श्लो० २३ ) पूर्वार्द्धे पूर्वोक्तश्लोकपाठे न कुर्यादिति क्रियापदेनान्वयः ॥ ( श्लो० २४ ) तत्स्थितः अस्थिस्थित. ॥

( श्लो० २५ ) हस्तपादशिरोधातून् क्रमात् वायुस्तथा सञ्चरति यथा अखिलं देहं व्याप्नुयात् तथा अधिकृतात् क्रमात् संचरति यथा च सर्वगतो वा भवति सर्वधातुगश्च भवतीत्यर्थः ( इति डल्लनः ) ॥

सारे शरीरमें वायु कुपित हो तब हाथों, पावों, शिर तथा रक्तादि सब धातुओंमें क्रमसे विचरता है अथवा सारे शरीरमें व्याप्त होता है और यह सब शरीरमें कुपित हुआ वायु मनुष्योंको स्तंभन ( शरीर जकडजाना ) तथा आक्षेपण ( उठ उठकर गिरजाना ), शरीर सुन्न पडजाना या शरीर सूजजाना या शरीरमें दरद होना ये रोग पैदा करता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

स्थानेषूक्तेषु मिश्रश्च संमिश्राः कुरुते रुजः ॥
कुर्य्यादवयवप्राप्तो मारुतस्तैर्विभि तान्गदान् ॥ २७ ॥

उपर्युक्त स्थानोंमें यदि मिश्र ( कफ पित्तादिसे मिला ) वायु हो तो मिलीहुई व्याधियां उत्पन्न करता है तथा अवयवों ( अंग, प्रत्यंग ) में प्राप्त हुआ वायु वहां वहां उस उस प्रकारकी व्याधियोंको करता है ॥ २७ ॥

दाहसंतापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते ॥ शैत्यशोफगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफावृते ॥ २८ ॥ सूचीभिरिव निस्तोदः स्पर्शद्वेषः प्रसुप्तता ॥ शेषाः पित्तविकाराः स्युर्मारुते शोणितान्विते ॥ २९ ॥

यदि वायु पित्तसे मिला हो तो दाह, संताप और मूर्च्छा आदि रोग होतेहैं और जो वायु कफ करकेसंयुक्त हो तो शीतता, शोथ, तथा गुरुता ( भारीपन ) आदि रोग होते हैं ॥ २८ ॥ यदि वायु रक्तसे मिश्रित हो तो सुई चुभोनेकीसी पीडा होती है और स्पर्श बुरा लगता है ( अर्थात् हाथ नहीं लगाया जाता ) अथवा प्रसुप्तता ( शरीरका सुन्न पडजाना या सो जाना ) तथा और पित्तके विकार दाह आदिभी होते हैं ॥ २९ ॥

प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते ॥ दौर्बल्यं सदनं तंद्रा वैवर्ण्यं च कफावृते ॥३०॥ उदाने पित्तसंयुक्ते मूर्च्छादाहभ्रमक्लमाः॥ अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतस्तंभौ कफावृते ॥ ३१ ॥

प्राणवायु पित्तसे आच्छादित होजानेसे छर्दि तथा दाह आदि होते हैं और यदि प्राणवायु कफसे आच्छादित हो तो दुर्बलता तथा थकान तंद्रा और विवर्णता ( रूप बिगडजाना ) आदि होते हैं ॥ ३० ॥ उदानवायु पित्तसे युक्त हो तो मूर्च्छा, दाह, भ्रम तथा क्लम (घुमेरसा ) होता है और जो उदान वायु कफसे संयुक्त हो तो पसीना न आना और हर्ष न होना अथवा हर्ष ( रोमहर्ष ) तथा मंदाग्नि और शीत तथा स्तंभ ( अकडाव ) होता है ॥ ३१ ॥

---

( श्लो० २७ ) मिश्रः पित्तदाहादिकार्यलिंगदर्शनाच्च पित्ताद्यावरणं ज्ञेयं केवलस्य वायोः शीतस्वभावत्वाद्दाहः पित्तं विना नोपपद्यते इति ॥ ( श्लो० २८ ) वायोर्योगवाहित्वात् पित्तसमन्विते दाहसंतापादयो भवंति तथा च कफान्विते शैत्यगौरवादयश्च ॥

समाने पित्तसंयुक्ते स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छनम्॥कफाधिकं च विण्मूत्रं रोमहर्षः कफावृते॥३२॥अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौष्ण्यं स्यादसृग्दरम् ॥ अधःकाये गुरुत्वं च तस्मिन्नेव कफावृते ॥ ३३ ॥ व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः ॥ गुरूणि सर्वगात्राणि स्तम्भनं चास्थिपर्वणाम् ॥ लिङ्गं कफावृते व्याने चेष्टास्तम्भस्तथैव च ३४॥

जो समान वायु पित्तकरके संयुक्त हो तो पसीना अधिक आवे, दाह हो, गरमी हो और मूर्च्छन ( बेहोशी ) हो और यदि यही समान वायु कफयुक्त हो तो कफकी अधिकता और मलमूत्र ( तथा स्त्रियोंके आर्तव ) की प्रवृत्ति हो और रोमहर्ष हो ॥ ३२ ॥ अपान वायु पित्तसे संयुक्त हो तो दाह, गरमी और रक्तकी प्रवृत्ति हो ( अधोमार्गसे रक्तागम हो) और जो अपान कफयुक्त हो तो नीचेके अंगोंमें भारीपना हो ॥ ३३ ॥ व्यानवायु पित्तसे युक्त हो तो दाह और अंगोंका देदेमारना और क्लम ( बेचैनी ) हो और यदि व्यानवायु कफयुक्त हो तो सब गात्र भारी हों और अस्थि तथा जोडोंमें अकडाव हो तथा चेष्टाओंमें रुकाव होना ये लक्षण होते हैं ॥ ३४॥

वातरक्त ।

प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् ॥ शोकाच्च प्रमदामद्यव्यायामैश्चातिपीडनात् ॥ ३५॥ऋतुसात्म्यविपर्य्यासात्स्नेहादीनां च विभ्रमात् ॥ अव्यवाये तथा स्थूले वातरक्तं प्रकुप्यति ॥३६ ॥

प्रायः विपरीत आहार,विहार करनेवाले कोमल मनुष्योंके शोकसे, अति स्त्रीसंगसे, अति मदिरा पीनेसे, अतिपरिश्रमसे तथा ऋतुविरुद्ध आहार, विहारके सेवनसे तथा स्नेहपानादि ( स्नेहपान, वमन, विरेचन, वस्ति आदि ) में अनुचित व्यवहार होनेसे तथा ( गृहस्थी होकर ) स्त्रीसंग न करनेवाले और स्थूल शरीरवाले मनुष्योंके वायु और रुधिर ( मिलकर ) कुपित होजातेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतोऽन्यैश्च वायुः कोपं यातः कारणैः सेवितैः स्वैः ॥ तीक्ष्णोष्णाम्लैः क्षारशाकादिभोज्यैः संतापाद्यैर्भूयसा सेवितैश्च३७ क्षिप्रं रक्तं दुष्टिमायाति तच्च वायोर्मार्गं संरुणद्ध्याशु यातः ॥ क्रुद्धोऽत्यर्थं मार्गरोधात्स वायुरत्युद्रिक्तं दूषयेद्रक्तमाशु ॥३८॥ तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥ तद्वत्पित्तं दूषितेनासृजाक्तं श्लेष्मा दुष्टो दूषितेनासृजाक्तः ॥ ३९ ॥

हाथी, घोडे, ऊंट आदिकी सवारीपर अधिक चलनेसे अथवा अन्य वातकारक कारणोंके सेवन करनेसे वायु कोपको प्राप्त होता है और तीक्ष्ण, गरम, खट्टे, खारे, शाकादि तथा भोजनोंके खानेसे और वारंवार संताप आदिके सेवन करनेसे शीघ्रही रुधिर दुष्टताको प्राप्त होताहै और वह कुपित हुआ दुष्टरक्त शीघ्रचारी वायुके मार्गको रोक लेता है और फिर मार्ग रुक जानेसे अत्यंत कुपित हुआ वायु अति बढे दुष्ट रक्तको और भी दूपित कर देता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ दूषित वायु करके मिला हुआ दूषित जो रक्त उसमें यदि वायुकी प्रबलता है तो वह वाताधिक वातरक्त कहलाताहै और यदि दूषित रक्तमें पित्त कुपित होकर मिलगया है तो पैत्तिक वातरक्त कहलाता है और यदि उस दूपित रक्तके संग दुष्ट हुआ कफ मिला है तो वह श्लैष्मिक वातरक्त कहलाता है ॥ ३९ ॥

वातरक्तलक्षण ।

स्पर्शोद्विग्नौ तोदभेदप्रशोपस्वापोपेतौ वातरक्तेन पादौ ॥ पित्तासृग्भ्यामुग्रदाहौ भवेतामत्यर्थोष्णौ रक्तशोफौ मृदू च ॥ ४० ॥ कंडूमंतौ श्वेतशीतौ सशोफौ पीनस्तब्धौ श्लेष्मदुष्टे तु रक्ते ॥ सर्वदुष्टे शोणिले चापि दोषाः स्वं स्वं रूपं पादयोर्दर्शयन्ति ॥ ४१ ॥

वातिक वातरक्त हो तो दोनों पावोंमें स्पर्शसे उद्विग्न हो, दरद हो, भेद (भेदनकीसी पीडा अर्थात् कटेसे जायँ) और शुष्कता हो तथा स्वापयुक्त हों (पैर सोयेसे होजायँ) और यदि पैत्तिक तथा रक्ताधिक्य वातरक्त हो तो पैरोंमें उग्र दाह हो और अत्यंत गरम हों, रक्तता और सूजन हो ॥ ४० ॥ तथा कफदुष्ट (कफाधिक वातरक्त) हो तो दोनों पैरोंमें खाज हो, श्वेत रंग हो, शीतल और शोथयुक्त हों, पुष्ट और कठिन हों और यदि सब दोषोंसे दूपित रक्तवाला वातरक्त हो तो अर्थात् सन्निपातज वातरक्त हो तो पैरोंमें सबही वातादि दोष अपना अपना रूप दिखावें ॥ ४१ ॥

पूर्वरूप ।

प्राग्रूपं शिथिलौ स्विन्नौ शीतलौ सविपर्ययौ ॥
वैवर्ण्यतोदसुप्तत्वगुरुत्वोषसमन्वितौ ॥ ४२ ॥

यदि दोनों पांव शिथिल हों, पसीना बहुत आवे, शीतल हों अथवा इसके विपरीत गरम रहें, पसीना नहीं आवे और विवर्णता होजाय, दरद रहे, पैर सोवें पैरोंमें बहुत भारीपन हो तथा दाह हो तो वातरक्तका पूर्वरूप जानना (अर्थात् ये लक्षण हों तो जानिये कि वातरक्तका रोग होगा) ॥ ४२ ॥

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि ॥
आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनु सर्पति ॥ ४३ ॥

यह वातरक्त पैरोंसे और कभी हाथोंसे आरंभ होकर विपैले मूषिकके विपके समान क्रुद्ध होकर सारे शरीरमें फैल जाता है ॥ ४३ ॥

### साध्यासाध्यता ।

आजानुस्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्नुतञ्च यत् ॥ उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः ॥ शोणितं तदसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ ४४ ॥

जानुपर्यंत जो फूट निकला हो, फटगया हो, झिरने लगा हो, बल, मांसक्षयादि उपद्रवोंसे युक्त हो वह वातरक्त असाध्य हुआ जानो और एकवर्ष पहलेका याप्य होता है ॥ ४४ ॥

### आक्षेपकवायु ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः ॥ तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः ॥ मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपक इति स्मृतः ४५ ॥

जब कुपित हुआ वायु सब नाडियोंमें प्राप्त होता है तब शीघ्र वारंवार शरीरको गिराता है और वारंवार संचार करता है। वारंवार आक्षेपण करनेसेही इसे आक्षेपक कहते हैं ॥ ४५ ॥

### अपतानक और दंडापतानक वायु ।

सोपतानकसंज्ञो यः पातयत्यन्तरान्तरा ॥ ४६ ॥ कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेवं यदि तिष्ठति ॥ स दंडवत्स्तंभयति कृच्छ्रो दंडापतानकः ॥ ४७ ॥ हनुग्रहस्तदात्यर्थं सोऽन्नं कृच्छ्रान्निषेवते ॥ ४८ ॥

जो आक्षेपक नजीक २ गिरावे वह अपतानक वायु है ॥ ४ ॥ यदि नाडियोंमें कफयुक्त वायु हो तो मनुष्यको दंडकी तुल्य स्तंभित करके गिराता है इसे दंडापतानक कहते हैं यह कष्टसाध्य है ॥ ४७ ॥ अपतानकरोगमें ठोडी अत्यंत स्तंभित हो जाती है जिससे मनुष्य वड़े कष्टसे अन्न आदि खा सकता है ( और कभी तो

( श्लो० ४३ ) वातरक्तस्योपद्रवा-'अस्वप्नारोचकश्वासमासकोथशिरोग्रहाः । मूर्च्छायां मदरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः॥हिक्काथा गुल्मवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः । अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदा.॥'(भा.मि.) ( श्लो० ४६-४७ ) यः आक्षेपकोऽन्तरान्तरा पातयति सोपतानक इत्यर्थः। तास्वेव सर्वासु धमनीषु भृशं वायुस्तिष्ठतीति कृच्छ्रः कष्टसाध्यः स एवापतानक । अपतानकस्त्रिधा दण्डापतानकः, अंतरायामः, बहिरायामश्च (इति डल्लनः) (श्लो०४८) हनुग्रहस्तु दण्डापतानके अन्यत्रापि वायोः स्यादिति (नि०सं०)

मुख खुलाही रह जाता है और कभी मिचा रह जाताहै और कभी अधमिंचा ) कई इसका यह अर्थ करतेहैं कि जो बहुतही कष्टसे अन्नादि खा सके (अर्थात् मुख खुले मूँदे नही ऐसी ठोडीकी नसें अकड़ जायँ ) तो उसे हनुग्रह ( या हनुस्तंभ ) रोग कहतेहैं ( सारांश यहहै कि कई तो अपतानकके अन्तर्गत इसे मानते हैं और कई पृथक् अपतानकके तीन भेद इसप्रकार मानते हैं १ दंडापतानक, २ अंतरायाम, ३ बहिरायाम ॥ ४८ ) ॥

धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुस्तंभसंज्ञकः ॥ अंगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः ॥४९॥ स्नायुप्रतानमनिलो यदा क्षिपति वेगवान् ॥ विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् ॥५०॥ अभ्यंतरं धनुरिव यदा नमति मानवः ॥ तदा सोऽभ्यंतरायामं कुरुते मारुतो बली ॥५१॥

जब यह अपतानक वायु धनुषकी भाँति शरीरको नवा दे ( टेढा करदेवे ) तब इसे धनुस्तंभ ( धनुषवायु ) कहते हैं ( इस धनुस्तंभके दो भेद हैं १ अंतरायाम, २ बहिरायाम ) अंगुली, टकने, पेट, हृदय, छाती, गल इन सब स्थानोंमें आश्रित हुआ वायु ( भीतरकी ) नसोंके विस्तारमें प्राप्त होकर जब वेगपूर्वक शरीरको कंपावे या गिरावे तब नेत्र स्तंभित ( पथरायेसे ) हो जायँ, ठोंडी अकडजाय, ( अर्थात् मुह खुला या मिंचा रह जाय ) पसलियां टूटने लगें मुहसे झाग आवे या कफ गिरे ॥ फिर यदि मनुष्य भीतरको ( मुख नाभिकी ओर ) धनुषके आकार नवे ( टेढा हो) और बलवान् वायु भीतरको शरीर नवावे तो उसे अंतरायाम कहते हैं । यह अंतरायाम वायु शिरसे पैरतक भीतर ( मुख, छाती, नाभि, पांवके पंजेकी तरफ ) की नसोंमें व्याप्त होनेसे होता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

बाह्यस्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ॥
तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकटयूरुभंजनम् ॥ ५२ ॥

यदि वही वायु ( पिडली, टकने, पृष्ठ, वंश और ग्रीवा ) की बाहरकी ओर नसोंके विस्तारमें प्राप्त हो तो मनुष्यको बाहरकी तरफ ( पीठकी तरफ ) धनुषाकार नवा देता है इसे बाह्यायाम या बहिरायाम कहते हैं इसे वैद्य असाध्य कहते हैं क्योंकि इससे छाती, कमर, ऊरु आदि टूट जाते हैं ( यदि ये भग्न नहीं हुए हों तो कुछ यत्नके योग्य होता भी है ) और ऊपर लिखे नेत्र पथराना, हनुस्तंभ, पसली टूटना आदि अंतरायामके चिह्न तो प्रायः होतेही हैं ॥ ५२ ॥

( श्लो० ५२ ) स्नायुप्रतानं स्नायुविस्तारम् । बाह्यस्नायुप्रतानस्थ इति बाह्यस्नायवः पादमूलपिंडिकाकटीपृष्ठग्रीवापश्चिमभागाश्रयाः ॥

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ॥ कुर्य्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ ५३ ॥ अभिघातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः ॥ गर्भपातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानकः ॥ ५४ ॥

यह आक्षेपक वायु चार प्रकारका है-कफान्वित आक्षेपक, पित्तान्वित आक्षेपक, केवल वायुसे, चौथा अभिघात ( चोट आदिसे ) उत्पन्न ( ये भेद कई तो यों कहते हैं कि कफान्वित तो दंडापतानक और पित्तान्वित अन्तरायाम तथा केवल वातिक बाह्यायाम है ) ( और कई उन्हें पृथक् भेद बतलाते हैं और इन्हें पृथक ) ॥ ५३ ॥ अभिघातसे उपजा अपतानक वायु तथा अधिक रक्त निकलनेसे जो हों और स्त्रियोंके गर्भपातसे हो ये अपतानक सिद्ध नहीं होते ( वास्तवमें आक्षेपकहीका भेद अपतानक वायु है देखो श्लोक ४६ वां डाक्टरीमें इस अपतानक ( धनुषवायु ) भेदको " टिटनिस् " कहते हैं और यूनानीवाले " तमद्दुद " और कजाज कहते हैं ) ॥ ५४ ॥

अधोगमाः सतिर्यग्गा धमनीरूर्द्ध्वदेहगाः ॥ यदा प्रकुपितोऽत्यर्थं मातरिश्वा प्रपद्यते ॥ ५५ ॥ तदान्यतरपक्षस्य संधिबन्धान्विमोक्षयन् ॥ हन्ति पक्षं तमाहुर्हि पक्षाघातं भिषग्वराः ॥ ५६ ॥ यस्य कृत्स्नं शरीरार्द्धमकर्मण्यमचेतनम् ॥ ततः पतत्यसून् वापि जहात्यनिलपीडितः ॥ ५७ ॥ शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः ॥ साध्यमन्येन संसृष्टं न साध्यं क्षयहेतुकम् ॥ ५८ ॥

अधोगामिनी ( नीचेकी ) तिर्यक् ( तिरछी और ऊर्द्ध्वदेहग ) ऊपरकी ( आधे शरीरकी ) नसोंमें कुपितहुआ वायु प्राप्त होजावे तो दूसरे पक्ष ( आधे शरीर ) के संधिबंधोंको छोडकर एकपक्ष ( आधे शरीर ) को मार ( सुन्नकर ) देता है उसे वैद्य पक्षाघात कहते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ जिसका पूरा आधा, शरीर निकर्मा ( हलचल न सके ) और अचेतन ( स्पर्शज्ञानसे रहित ) होजाय वह मनुष्य गिर जाता है ( उठ बैठ नहीं सकता ) अथवा प्राण त्याग देता है ( अर्थात् निकर्मा शरीर होनेसे पडा रहता है ) और अचेतनभी हो तो मर जाता है ॥ ५७ ॥ केवल वायु करके मारा हुआ अर्द्धशरीर कष्टसाध्य होता है और जो उसमें पित्त आदि दूसरा दोष मिला हो तो साध्य है और क्षयीके कारण जो पक्षाघात हो तो असाध्य होता है ॥ ५८ ॥

( डाक्टरीमें इसे " हेमेप्लीजिया " और यूनानी हकीम "फालिज" कहते हैं )

**वायुरूर्द्ध्वं व्रजेत्स्थानात्कुपितो हृदयं शिरः ॥ शंखौ च पीडयत्यंगान्याक्षिपेन्नमयेच्च सः ॥ ५९ ॥ निमीलिताक्षो निश्चेष्टः स्तब्धाक्षो वापि कूजति ॥ निरुच्छ्वासोऽथवा कृच्छ्रादुच्छ्वस्यान्नष्टचेतनः ॥६०॥ स्वस्थः स्याद्धृदये मुक्ते आवृते च प्रमुह्यति॥ कफान्वितेन वातेन ज्ञेय एषोऽपतंत्रकः ॥ ६१ ॥**

अपने स्थानसे कुपित हुआ वायु ऊपरको गमन करे हृदय, शिर और कनपटी इन्हें पीडित कर अंगोंको कँपावे तथा नवादे, ( धनुषवत् कुछ मोडदे ) एक नेत्र मुँदासा रहे, चेष्टा नष्ट हो, नेत्र ठिठरा जायँ, कपोतकासा शब्द ( कूल्हे ) करे, निरुच्छ्वास हो ( श्वास न आवे ) या कष्टसे श्वास ले, चेतना जाती रहे ( इसे अपतंत्रकवायु कहते हैं ) ॥ ५९ ॥ ६० ॥ इसमें जब हृदय कफयुक्त वायुसे छुट जाता-है तब स्वस्थ ( होशमें ) होजाता है और जब कफ सहित वायु हृदयको आच्छादित करलेता है तब मोह ( बेहोशी ) को प्राप्त हो जाता है। यह अपतंत्रक वायु कहलाता है ( और कई इसे और अपतानकको एकही मानते हैं ) ( डाक्टरीमें इसका कोई खास नाम नहीं और यूनानीमें भी नहीं है कुछ टिटनिस ( तमद्दुद और कजाज ) से मिलता है ) ॥ ६१ ॥

**दिवास्वप्नासमस्थानविकृतोर्द्ध्वनिरीक्षणैः ॥**
**मन्यास्तंभं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणावृतः ॥ ६२ ॥**

दिनके सोने, असमस्थान ( ऊँचे नीचे स्थानपर बैठने सोने ) के विकारसे तथा ऊपरको बहुत देरतक देखने ( सोते समय पसीना आयेमें ग्रीवामें ठंढी वायु लगने) से कफ युक्त वायु मन्यास्तंभ रोग पैदा करता है ( ग्रीवाके पीछे जो दो जोते होते-हैं उन्हें मन्या कहते हैं और मन्यास्तम्भ उसे कहते हैं जिसमें वे दोनों जोते या उनमेंसे १ जोता अकड़ जाय ) यूनानी हकीम इसे 'इस्तरखा' कहते हैं ॥ ६२ ॥

**गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षये ॥ उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च ॥ ६३ ॥ हसतो जृंभतो भाराद्विषमाच्छयनादपि ॥ शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसंधिगः ॥ ६४ ॥ अर्दयित्वानिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः ॥ वक्रीभवति वक्त्रार्द्धं ग्रीवा चाप्यपवर्त्तते ॥ ६५ ॥ शिरश्चलति वाक्संगो नेत्रादीनां च**

---

( श्लो० ६२ ) मन्या ग्रीवायाः पश्चाद्देशस्था शिरा ( इति वाचस्पतिः ) दिवास्वप्नासमस्थानमित्यत्र दिवास्वप्नासनस्थानमिति वा पाठांतरम् । मन्यास्तंभ केचिदपतानकपूर्वरूपं मन्यते ( इति डल्लनः ) ॥

वैकृतम् ॥ ग्रीवाचिबुकदंतानां तस्मिन् पार्श्वे तु वेदना ॥ ६६ ॥ यस्याग्रजो रोमहर्षो वेपथुर्नेत्रमाविलम् ॥ वायुरूर्द्ध्वं त्वचि स्वापस्तोदो मन्या हनुग्रहः ॥ ६७ ॥ तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिव्याधिविशारदाः ॥ ६८ ॥ क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ॥ न सिध्यत्यर्दितं वाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ६९ ॥

गर्भवती स्त्री, प्रसूता, बालक, वृद्ध तथा क्षीण मनुष्योंको, रक्तक्षयमें उच्च स्वरसे बोलनेवालोंको, अति कडा पदार्थ खानेवालोंको ॥ ६३ ॥ हसने तथा जुमाही लेनेसे, बोझ उठानेसे, विषम शयन करनेसे, शिर, नाक, होठ, चिबुक ( ठोडी ), ललाट और नेत्रसंधि इनमें प्राप्त हुआ वायु मुख आदि स्थानोंको पीडितकर अर्दितनामक वायुरोग उत्पन्न करता है । इसमें ग्रीवा ( गरदन ) का आधाभाग टेढा होजाताहै ( अर्थात् दाहिनी या बाँयी किसी एक तरफका आधा चेहरा बाँका होजाताहै ) और ग्रीवा ( गरदन ) भी टेढी होजातीहै ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ शिर चलायमान होताहै, वाणी शिथिल होजाती है, नेत्र आदि विकृत होजातेहैं ( ओढापन होताहै ), ग्रीवा ( गरदन ), ठोडी, दांत येभी टेढे ( बेडौल ) होजातेहैं और जिस तरफ चेहरेमें टेढापन हो उसी तरफके पार्श्व ( पसवाडे, हाथ, कंधे, ग्रीवाके जोते ) आदिमें पीडा होतीहै ॥ ६६ ॥ इसका पूर्वरूप यह है कि, रोमहर्ष हो, कंप हो ( शरीर कांपने लगे ), नेत्रोंमें समल जल आवे, वायुका ऊर्द्ध्वगमन हो, त्वचा शून्यसी हो, कुछ २ पीडा हो, मन्यास्तंभ तथा हनुस्तंभ हो ॥ ६७ ॥ इसे व्याधियोंके जाननेवाले वैद्य अर्दितरोग कहते हैं ॥ ६८ ॥ क्षीण मनुष्यके तथा जिसकी पलक झिपें नही तथा जो कष्टसे बोले और स्पष्ट शब्द न बोलसके तथा तीनवर्ष रोगको बीतजायँ अथवा जिसके मुख, नासिका और नेत्र ये तीनों वहने लगें और जिसके शरीरमें कंप हो उसका अर्दित वायु अतिशय करके सिद्ध नहीं होता है डाक्टर लोग इसे " फेशियल पेरालेसिस " और यूनानीवाले "लकवा" कहतेहैं ॥ ६९ ॥

वक्तव्य-हम जो रोगोंके प्रति हरेक रोगका डाक्टरी और यूनानीसे यथासंभव नाम आदि लिखतेहैं यदि इनमेंसे किसीके कारणों अथवा लक्षणोंमें कुछ अंतरभी हों तो वह देशांतरके भेदसे या देशांतरीय विद्वानोंके विचारका फरक जानना चाहिये ॥

पार्ष्णीं प्रत्यंगुलीनां तु कंडरा यानिलार्दिता ॥
सक्थ्नोः क्षेपं निगृह्णीयात् गृध्रसीति हि सा स्मृता ॥ ७० ॥

---

( श्लो० ६९ ) त्रिवर्षं संवत्सरत्रयातीतम् । अन्ये च नासिकाक्षिमुखस्रावीणं त्रिवर्षमाहुः ( इति निबंधः )
( श्लो० ७० ) गृध्रसीविवेचनं तत्रांतरात्-"स्फिक्पूर्वोरुकटीपृष्ठजानुजंघापदं क्रमात् । गृध्रसी स्तंभ-

टाकणे ( टखने ) और अंगुलियोंकी कण्डरा ( मोटी नसें ) वायुसे व्याप्त हों और साथलोंके फरकनेको बंद कर दें तो उसे गृध्रसी वायु कहते हैं इसमें पाँव टेढे पडते हैं ठीक पदक्षेपणका अवरोध हो जाता है और साथलोंमें बाँकापन होनेसे देहमें भी बाँकापन हो जाता है ॥ ७० ॥

तलं प्रत्यंगुलीनां तु कंडरा बाहुपृष्ठतः ॥
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाचीति हि सा स्मृता ॥ ७१॥

अंगुलियोंके नीचे बाहुके पृष्ठकी तरफ जो मोटी नसें हैं उनमें प्राप्त हुवा वायु जो बाहुओंके कार्य ( वस्तु पकडना, उठना, मोडना आदि ) को नष्ट कर दे वह विश्वाची नाम वातव्याधि कहलाती है ॥ ७१ ॥

वातशोणितजः शोफो जानुमध्ये महारुजः ॥
शिरः क्रोष्टुकपूर्वं तु स्थूलं क्रोष्टुकमूर्द्धवत् ॥ ७२ ॥

वात और रुधिरसे उत्पन्न हुआ महाशूलवाला गोडेमें जो शोथ हे और क्रोष्टु ( शृगालके ) शिरके समान जिसमें स्थूलता हो उसे क्रोष्टुशिर ( क्रोष्टुशीर्ष ) रोग कहते हैं ॥ ७२ ॥

वायुः कट्यां स्थितः सक्थ्नः कंडरामाक्षिपेद्यदा ॥ खंजस्तदा भवेजन्तुः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ ७३ ॥ प्रक्रामन्वेपते यस्तु खंजन्निव च गच्छति ॥ कलायखंजं तं विद्यान्मुक्तसंधिप्रबंधनम् ७४

जब कटिमें स्थित हुआ वायु साथलकी नसोंको शिथिल करदेताहै (मारदे) तब उससे मनुष्य खंज ( विकलगति ) हो जाता है (इसको खंजरोग) कहतेहैं और यदि दोनों साथलों (कूलेके जोडों) की नसें शिथिल कर देवे तो मनुष्य पंगु ( पांगला ) होजाता है ( इसे पंगुरोग कहते हैं )( इसमें खड़ा होकर मनुष्य नहीं चल सकता बैठा २ पावोंको घीसता चलता है ) ॥ ७३ ॥ और जो पांव रखते हुए काँपे झोंके खाता हुआ चले उसे कलायखंज व्याधि कहतेहैं इसमें संधियोंके बंध ढील हो जाते हें ॥ ७४ ॥

न्यस्ते तु विषमे पादे रुजः कुर्य्यात्समीरणः ॥
वातकंटक इत्येष विज्ञेयः खुडकाश्रितः ॥ ७५ ॥

---

–रुक्तोदैर्गृह्णाति स्पदते मुहु ॥ १ ॥ वाताद्वातकफाभ्यां सा विज्ञेया द्विविधा पुनः। वातजायां भवेत्तोदो देहस्यातीववक्रता ॥ २ ॥ जानुजंघोरुसंधीनां स्फुरण स्तंभतश्च भृशम्। वातश्लेष्मोद्भवायां तु गौरवं वह्नि मार्दवम् ॥ तदा मुखप्रसेक च भक्तद्वेषस्तथैव च'' इति ॥

( श्लो० ७५ ) खुडकाश्रितः इति पादजघासंधिसंश्रय इत्यर्थः पार्ष्णीस्थितश्चेत्यन्ये ॥

(वक्तव्य) बाधिर्य और कर्णशूलके यूनानी, डाक्टरी नामादि कर्णरोगके प्रकरणमें कहेजावेंगे और मूकादिकको जिह्वारोगके प्रकरणमें देख लेना इसीप्रकार और व्याधियोंके भी नाम आदि उनके मुख्य प्रकरणमें लिखे जावेंगे ॥

**अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता ॥ भिन्दतीव गुदोपस्थं सा तूणीत्युपदिश्यते ॥ ८२ ॥ गुदोपस्थोत्थिता सैव प्रतिलोमविसर्पिणी ॥ वेगैः पक्वाशयं याति प्रतितूणी तु सा स्मृता ॥८३॥**

मलाशय और मूत्राशयसे उठी हुई वेदना (शूल) गुदा और लिंगको भेदन करती हुईसी जो नीचेको गमन करे वह तूणीनामक वातव्याधि कहलातीहै ॥८२॥ और गुदा तथा उपस्थ (लिंग) से उठी हुई पीडा प्रतिलोम (उलटी ऊपरको) गमन करनेवाली अपने वेगोंसे पक्वाशयमें पहुँचे तो उसे प्रतितूणी कहते हैं ॥८३॥

**आटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् ॥ आध्मानमिति जानीयाद्घोरं वातनिरोधजम् ॥ ८४ ॥ विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् ॥ प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलतानिलम् ॥८५॥**

आटोप करके सहित बहुत उग्र पीडा करनेवाला जिसमें उदर (पक्वाशय) मशककी भांति फूल जाय उसे आध्मान रोग जानना चाहिये । यह घोर व्याधि (प्रायः) (अधो) वायुके रोकनेसे होती है ॥ ८४ ॥ और इसी प्रकारकी व्याधि आमाशयमें (नाभिसे ऊपर) हो पेट फूले तथा पँसवाड़े और हृदय फटजाय तो उसे प्रत्याध्माननामक व्याधि कहतेहैं इसमें कफमें मिला हुआ वायु होताहै ॥ ८५ ॥

(वक्तव्य) आध्मानका अफारा पक्वाशय (नाभीके नीचे) के स्थानमें होता है जो केवल वायुकृत होता है और प्रत्याध्मानका आमाशयमें होताहै (नाभिसे ऊपर) और इसमें कफयुक्त वायुकृत होताहै इनको यूनानीमें नफख कहते हैं ॥

**अष्ठीलावद्घनं ग्रन्थिमूर्द्ध्वमायतमुन्नतम् ॥ वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गविरोधिनाम् ॥ ८६ ॥ एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम् ॥ प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम् ॥ ८७ ॥**

**इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥**

पाषाणके तुल्य कडी ग्रंथी ऊपरको फैली हुई ऊंची हो और बाहरके मार्गों (मलके मार्ग और मूत्रके मार्ग इन) को रोकनेवाली हो उसे (वाताष्ठीला) जानना चाहिये ॥८६॥ और यही जो पीडायुक्त हो और अधोवायु, विष्ठा व मूत्रको रोकनेवाली हो और पेटमें तिरछी और उठी हुई हो उसे प्रत्यष्ठीला कहतेहैं ॥ ८७ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा०टी० निदानस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २.

### अथातोऽर्शसां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी अर्श (बवासीर) के निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

षडर्शांसि भवंति वातपित्तकफशोणितसन्निपातैः सहजानि चेति ॥ १ ॥ तत्रानात्मवतां यथोक्तैः प्रकोपणैर्विरुद्धाध्यशनस्त्रीप्रसंगोत्कटकासनपृष्ठयानवेगविधारणादिभिर्विशेषैः प्रकुपिता दोषा एकशो द्विशः समस्ताः शोणितसहिता वा यथोक्तप्रसृताः प्रधानधमनीरनुप्रपद्याऽधो गत्वा गुदमागम्य प्रदूष्य वलीर्मांसप्ररोहाञ्जनयंति ॥ २ ॥

अर्श (बवासीर) छः (६) प्रकारका होताहै वातसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे, रक्तसे और सहज (जन्मसे) ॥ १ ॥ तहां जो मनुष्य जितेंद्रिय नहीं हैं उनके यथोक्त (हिताहितीय अध्यायोक्त) अपथ्य भोजन जो दोषोंको प्रकुपित करे उससे (अर्थात् दोषोंके कोप करनेवाले आहार, विहारसे), विरुद्ध भोजनसे, भोजनपर भोजन करनेसे और अति स्त्रीसेवनसे, उत्कटकासन (बहुत जोरसे खांसने)से अथवा उत्कटक आसन (बहुत कठोर आसनमें बैठे रहने)से, पृष्ठयान (अश्ववृषादि की पीठपर अयुक्त सवारी करने)से, वेगोंके रोकनेसे इत्यादि विशेष कुपथ्योंसे कुपित हुए दोष एक २ (अकेले) तथा दोदो मिलकर तथा तीनों दोष तथा रक्तसहित यथोक्त प्रसरित हुए प्रधान धमनी (पुरीषवाहिनी धमनी) में अनुसरण कर नीचे गमन करके गुदास्थानमें प्राप्त होकर और गुदाकी त्रिवलीको दूषित करके मांसप्ररोह अर्थात् मस्से उत्पन्न कर देते हैं ॥ २ ॥

विशेषतो मंदाग्नेस्तथा तृणकाष्ठोपललोष्टवस्त्रादिभिः शीतोदकसंस्पर्शनाद्वा कंदाः परिवृद्धिमासादयन्ति तान्यर्शांसीत्याचक्षते॥३॥

वे मस्से विशेषकर मंदाग्नि मनुष्योंके तथा तृण, काठ, पत्थर, लोहादि धातु और वस्त्र आदिके रगडाव आदिसे अथवा अति ठंढे (और अति गरम) जलके स्पर्शसे वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं उन गुदाके मस्सोंको अर्श अर्थात् बवासीर कहते हैं॥३॥

---

(गद्य १) षडर्शांसीत्यत्र तानि द्विविधानि शुष्काण्यार्द्राणि तत्र वातश्लेष्मोत्तराणि शुष्काणि रक्तपित्तोत्तराणि चार्द्राणि तथाचोक्तं चरके–"वातश्लेष्मोल्बणान्याहुः शुष्काण्यर्शांसि तद्विदु"॥ प्रस्रावीणि तथार्द्राणि रक्तपित्तोल्बणानि च ॥ १ ॥" (गद्य २) यथोक्तप्रसृताः पूर्वोक्तपञ्चदशधा प्रसृताः ॥

तत्र स्थूलान्त्रप्रतिबद्धमर्द्धपंचांगुलं गुदमाहुस्तस्मिन्वलयस्तिस्रोऽध्यर्द्धांगुलांतरभूता प्रवाहिणी विसर्जनी संवरणी चेति ॥४॥ चतुरंगुलायताः सर्वास्तिर्यगेकांगुलोच्छ्रिताः॥शंखावर्तनिभाश्चापि उपर्युपरि संस्थिताः ॥ ५ ॥ ॥ गजतालुनिभाश्चापि वर्णतः संप्रकीर्त्तिताः ॥ रोमांतेभ्यो यवाध्यर्द्धो गुदौष्ठः परिकीर्त्तितः ॥६॥

तहां मोटी अंतडी (जिसमेंसे विष्ठा आती है उस ) से प्रतिबद्ध ( मिला हुआ ) साढे पाँच अंगुल प्रमाणका गुदास्थान है उसमें डेढ डेढ अंगुलकी तीन वली(छल्ले) हैं (वे छल्ले डेढ डेढ अंगुलके अंतरसे एकके परे दूसरा इस प्रकारसे हैं उन तीनोंको त्रिवली कहते हैं) उनमेंसे पहिली वली प्रवाहिणी दूसरी विसर्जनी तीसरी संवरणी है॥४॥ये सब वली चार अंगुल चौडी (मोटी)और तिरछी हुई एक अंगुल उभरीं हुई शंखकी आवृत्ति ( आंटी ) की तरह एकके ऊपर एक (एकसे परे दूसरी) ऐसी हैं ॥ ५ ॥ और आकारमें हाथीके तालुके समान हैं तथा जौ ( आधे अंगुल ) प्रमाणका गुदाका ओष्ठ ( किनारा ) रोमांतसे (अर्थात् जहां रोमका अंत है वहांसे) है(सारांश यह है कि बाहर जहांतक रोम हैं वहांसे अगाडी भीतरको आध अंगुल तो गुदाका किनारा है फिर तीन वली भीतरकी हैं ) ॥६ ॥

प्रथमा तु गुदौष्ठादंगुलमात्रे ॥७॥ तेषां तु भविष्यतां पूर्वरूपाणि ॥८॥ अन्ने न श्रद्धा कृच्छ्रात्पक्तिरम्लीका सक्थिसदनमाटोपः कार्श्यमुद्गारबाहुल्यमक्ष्णोश्च श्वयथुरन्त्रकूजनं गुदपरिकर्तनमाशंका पांडुरोगग्रहणीदोषाणां कासश्वासौ भ्रमस्तंद्रानिद्रेन्द्रियदौर्बल्यं च जातेष्वेतानि रूपाणि प्रव्यक्तकराणि भवंति ॥ ९ ॥

प्रथम वली तो गुदाके किनारेसे अनुमान एक अंगुल मात्र अन्दर है ( इसमें विशेष करके अर्श होता है ) ॥७॥ अर्शके मस्सोंके पैदा होनेका पूर्वरूप यह है॥८॥ कि, अन्नमें श्रद्धा न होना, कष्टसे पचना, खट्टी डकारें आना, साथलोंका थकना, पेटमें अफरासा होना, कृशता होना, डकारें बहुत आना, नेत्रोंके किनारोंपर शोथ होना, पेटमें आंतोंका ( गुडगुड ) शब्द होना, गुदामें कतरनीसी रहना, पांडुरोग तथा ग्रहणी दोषकी शंका होना, खांसी और श्वास, भ्रम, तंद्रा, निद्रा अधिक और इंद्रियोंमें दुर्बलता होजाना ये लक्षण बवासीरके होनेसे प्रथम प्रगट होजाते हैं (ये सब लक्षण या इनमेंसे थोडेसे लक्षण होते हैं ) अथवा मस्से होजानेपर ये रूप सब प्रगट होजाते हैं ॥ ९ ॥

वातार्श ।

तत्र मारुतात्परिशुष्कारुणवर्णानि विषममध्यानि कदंबपुष्पतुंडिकेरीनाडीमुकुलसूचीमुखाकृतीनि च भवंति तैरुपहतः सशूलं संहतमुपवेश्यते कटीपृष्ठपार्श्वमेढ्रगुदनाभिप्रदेशेषु चास्य वेदना। गुल्माष्ठीलाप्लीहोदराणि चास्य तन्निमित्तान्येव भवन्ति । कृष्णत्वङ्नखनयनरदनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ॥ १० ॥

तिसमें वायुसे उपजे अर्शमें सूखे, लालवर्णके, बीचसे टेढे, कदंबके पुष्प और तुंडकेरी ( निरमावणके पुष्प ) के समान तथा नाडी ( नाली ) के पुष्पके समान तथा सूईके समान पैने मुखकी आकृतिवाले मस्से होतेहैं । इन करके पीडित मनुष्य शूल ( दरद मरोड़ ) सहित कडा ( और देरसे ) दस्त जाता है। इसके कमर, पीठ, पसली, लिंग, गुदा और नाभि इन प्रदेशोंमें पीडा रहती है और गुल्म, वाताष्ठीला, प्लीहावृद्धि, उदररोग ये सब वातार्शोनिमित्त उपद्रव होजातेहैं । इस वातार्शरोगी मनुष्यके त्वचा, नख, नेत्र, दांत, मुख तथा मूत्र और पुरीष ये सब काले पड़ जाते हैं ॥ १० ॥

पित्तान्नीलाग्राणि तनूनि विसर्पीणि पीतावभासानि यकृत्प्रकाशानि शुकजिह्वासंस्थानानि यवमध्यानि जलौकोवक्त्रसदृशानि प्रक्लिन्नानि च भवंति । तैरुपहतः सदाहं सरुधिरमतिसार्यते । ज्वरदाहपिपासामूर्च्छाश्चोपद्रवा भवंति । पीतत्वङ्नखनयनदशनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ॥ ११ ॥

पित्तसे उपजी ववासीरके मस्से अग्रभागमेसे नीले होते हैं यकृत्के तुल्य प्रकाशवाले ( चमकीले ) और पीलापन लिये होते हैं छोटे छोटे होते हैं शीघ्र फैलनेवाले होते हैं तोतेकी जिह्वाके आकार होते हैं और बीचसे जौकी तरह मोटे होते हैं तथा जलौका ( जोंख ) के मुखके समान होते हैं और गीले तथा झिरनेवाले होते है । इनसे पीडित मनुष्य दाहयुक्त और रुधिरसे मिला दस्त जाते हैं तथा ज्वर, दाह, तृषा और मूर्च्छा ये इसमें उपद्रव होते हैं । इस पित्तकी ववासीरके रोगीके त्वचा, नख, नेत्र, दांत, मुख एवं मूत्र और विष्ठा पीले ( पिलोहे ) होतेहैं ११॥

---

( गद्य १० ) उदावर्त्तकर्णशब्दशिरःशूलादयोऽन्ये चात्युपद्रवाः वातार्शसश्चरकादिभिर्लिखिताः ॥
( गद्य ११ ) तथा च पित्तार्शस उपद्रवा अरत्यादयो ज्ञेयाः ॥

श्लेष्मजानि श्वेतानि महामूलानि स्थिराणि वृत्तानि स्निग्धानि पांडूनि करीरपनसास्थिगोस्तनाकाराणि न भिद्यन्ते न स्रवन्ति कंडूबहुलानि च भवंति । तैरुपहतः सश्लेष्माणमनल्पं मांसधावनप्रकाशमतिसार्यते । शोफशीतज्वरारोचकाविपाकशिरोगौरवाणि चास्य तन्निमितान्येव भवंति । शुक्लत्वङ्नखनयनरदनवदनसूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ॥ १२ ॥

कफसे उपजी बवासीरके मस्से सुपेद, जडमें मोटे, स्थिर, गोल, चिकने, धूँधले होतेहैं तथा टेंट और बढलके बीज तथा द्राक्षाके आकारके होते हैं । न वे फटे होते हैं, न झिरते हैं, उनमें विशेषकर खाज होती है । इससे पीडित मनुष्य कफयुक्त बहुतसा तथा मांस धोवनसा दस्त जाते हैं और शोथ, शीतज्वर, अरुचि, पचाव न होना, शिर भारी रहना, ये इसके उपद्रव हैं तथा कफार्शवाले रोगीके त्वचा, नख, नेत्र, दांत, मुख एवं मूत्र और मल प्रायः सुपेद होते हैं ॥ १२ ॥

रक्तजानि न्यग्रोधप्ररोहविद्रुमकाकणंतिकाफलसदृशानि पित्तलक्षणानि च । यदावगाढपुरीषप्रपीडितानि भवंति तदात्यर्थं दुष्टमनल्पमसृक् सहसा विसृजंति । तस्यैवातिप्रवृत्तौ शोणितातियोगोपद्रवाणि भवंति ॥ १३ ॥

रक्तकी बवासीरके मस्से वडकी कोंपलके रंग या मूँगे तथा चिरभंटीके सदृश होते हैं उनमें प्रायः पित्तकेसे लक्षण होते हैं और जब गाढा मल हो उससे रगडखावे ( या और भांति जोर पडे या अति गरम भोजनादि हो ) तब प्रायः बहुतसा दुष्ट रक्त दस्तके राहसे आता है ( मस्सोंसे निकलता है ) और जब इसकी ( रुधिरकी ) अधिक प्रवृत्ति होती है ( अर्थात् अधिक खून निकलता है ) तब अति रक्त निकलनेसे ( बेहोशी, गिरपडना, आंखोंके आगे अंधेरा आना आदि ) उपद्रव होते हैं ॥ १३ ॥

सन्निपातजानि सर्वदोषलक्षणयुक्तानि भवंति ॥ १४ ॥ सहजानि दुष्टशोणितशुक्रनिमित्तानि तेषां दोषत एव प्रसाधनं कर्तव्यम् ॥ १५ ॥ विशेषतश्चात्र दुर्दर्शनानि परुषाणि पांडूनि दारुणान्यं-

( गद्य १२ ) कफार्शस उपद्रवा नाभिपरिकर्त्तिकाहृल्लासच्छर्दिप्रतिश्यायमूत्रकृच्छ्रशर्कराश्मरीगौरवादयो बोद्धव्याः ॥ ( गद्य १३ ) काकणंतिका गुंजा काकादनीत्यपरे । पित्तलक्षणानि च इत्यत्र पित्तलक्षणयुक्तानि चकारोनुबंधभूतवातकफरूपमुक्तमपि समुच्चिनोति ( इति डल्हनः ) ॥

तन्मुखानि तैरुपहतः कृशोऽल्पभुक् शिरासंततगात्रोऽल्पप्रजः क्षीणरेताः क्षामस्वरः क्रोधलोऽल्पाग्निर्घ्राणशिरोऽक्षिश्रवणरोगवान् सततमंत्रकूजनाटोपहृदयोपलेपारोचकप्रभृतिभिः पीड्यते ॥ १६ ॥

भवन्ति चात्र-

सन्निपातकी बवासीरके मस्सोंमें सब दोषों ( वायु, पित्त, कफ, रक्त ) के लक्षण मिले हुए (और सबके उपद्रव) होतेहैं ॥ १४ ॥ और जन्मसे हुई बवासीर माता पिताके रज और वीर्यकी दुष्टताके कारणसे होतीहै, उसका साधन दोषकी प्रधानताके अनुसारही करना चाहिये ॥ १५ ॥ विशेष करके इसमें मस्से दुर्दर्शन ( बुरे रूपवाले ), कठोर, धूँधले और दारुण, भीतरको मुखवाले होते हैं तिनसे पीडित मनुष्य कृश होता है, थोड़ा भोजन करता है उसका शरीर नसोंसे (स्फुट) व्याप्त रहता है संतानभी कम होते हैं क्षीणवीर्य होताहै फूटी कांसी जैसा स्वर होता है क्रोधयुक्त और अल्प अग्नि होती है तथा नासिका, शिर, नेत्र और कर्णके रोगोंसे व्याप्त होताहै सदा पेटमें आँतें गुडगुड शब्द करती हैं अफरासाभी रहा करता है हृदयमें लिपासा रहता है तथा अरुचि आदि रोगोंसे पीडित रहता है ॥ १६ ॥ यहां श्लोक है-

( वक्तव्य ) यूनानी हकीम इसे बवासीरही कहते हैं इसके दो भेद लिखतेहैं एक वह जिसमें मस्से स्पष्ट जाहिर हों दूसरा वह जिसमें मस्से जाहिर न हों इसीको "रियाह बवासीर" कहते हैं मस्सेवाली बवासीरमें दरद होना, खाज या खून आना आदि सब लक्षण होतेही हैं परंतु रियाह बवासीरमें कबजीयत, गुदा, वस्ति आदिमें दरद, मलका जलदी न उतरना, कभी मूत्रबंध होना, कभी बंधा पड़ना आदि उपद्रव होते हैं इसका कारण गलीजरिह बताते हैं जो गुरदेमें पैदा हो या औरजगहसे वहां आवे डाक्टरीमें इसे हिमोरइडस् ( Hemorrhaids ) कहते हैं जिसे यूनानीवाले रियाह बवासीर कहते हैं वैद्यकसे अंतर्वलीगत वातार्श है और शेष उसके उपद्रव है। साधारण लोगोंमें बवासीरके दो भेद मानेजाते है १वादी, २ खूनी जिसमें रुधिर गिरताहै उसे खूनी और जिसमें खून नहीं गिरता उसे वादी कहतेहैं॥

## साध्य असाध्य अर्श।

बाह्यमध्यवलिस्थानां प्रतिकुर्य्याद्भिषग्वरः ॥
अंतर्वलिसमुत्थानां प्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम् ॥ १७ ॥

( गद्य १६ ) अर्शसां विशेषोपद्रवः-"मुद्गकोद्रवजूर्णाह्वकरीरचणकादिभि. ॥ रूक्षैः संग्राहिभिर्वायुः स्वस्थाने कुपितो वली ॥ १ ॥ अधोवहानि स्रोतांसि संरुध्याधः प्रशोषयन् ॥ पुरीषं वातविण्मूत्रसंग कुर्वीत दारुणम् ॥ २ ॥ दुर्नाम्नामित्युदावर्तः परमायमुपद्रवः ।" ( इति वाग्भटः )॥( श्लो० १७ ) प्रत्याख्याय असाध्यान्येतान्यर्शांसीति निराकृत्य क्रियाम् आचरेदित्यर्थः ॥

बाहरकी त्रिवली तथा मध्यकी त्रिवलीमें होनेवाली बवासीरकी वैद्यको चिकित्सा करनी चाहिये और तीसरी भीतरकी त्रिवलीमें बवासीरके मस्से हों तो यह असाध्य हैं ऐसा कहकर यदि ( क्रिया ) चिकित्साका आचरण करे तो करे (नहीं तो चिकित्साही नहीं करे ) ॥ १७ ॥

मेढ्रगत अर्श ।

प्रकुपितास्तु दोषा मेढ्रमभिप्रपन्ना मांसशोणिते प्रदूष्य कंडूं जनयंति ततः कंडूयनात्क्षतं समुपजायते तस्मिंश्च क्षते दुष्टमांसजाः प्ररोहाः पिच्छिलरुधिरस्राविणो जायंते कूर्चकिनोभ्यंतरमुपरिष्टाद्वा ते तु शेफो विनाशयंत्युपघ्नंति च पुंस्त्वम् ॥ १८ ॥

जब कुपित हुए वातादि दोष मेढ्र ( लिंग इंद्रिय ) में प्राप्त हों तब मांस और रुधिरको दूषित करके वहां खाज पैदा कर देतेहैं तब खुजानेसे क्षत घाव पड़ जाता है उस घावमें दुष्ट मांसके अंकुर ( मस्से ) हो जातेहैं उनमेंसे गाढी पीपसी तथा रुधिर झिरने लगता है ये खरधरे अंकुर भीतर तथा बाहर होतेहैं वे लिंग इंद्रियको गिरा देते हैं तथा पुरुषत्वका नाश कर देते हैं ॥ १८ ॥

योनिमभिप्रपन्नाः सुकुमारान्दुर्गंधान्पिच्छलरुधिरस्राविणश्छत्राकारान्करीराञ्जनयति ॥ १९ ॥

स्त्रियोंकी योनिमें प्राप्त हुए वातादि दोष ( मांस और शोणितको दूषित करके ) कोमल दुर्गंधित छत्रके आकार करीर अर्थात् मस्से पैदा करते हैं उन मस्सोंमेंसे गाढा रुधिर झिरता रहताहै ॥ १९ ॥

कान, नेत्र, नाक और मुखका अर्श ।

त एवोर्द्ध्वमागताः श्रोत्राक्षिघ्राणवदनेष्वर्शांस्युपनिर्वर्तयन्ति॥२०॥ तत्र कर्णजेषु बाधिर्यं शूलं पूतिकर्णता च ॥२१॥ नेत्रजेषु वर्त्मावरोधो वेदनास्रावो दर्शननाशश्च ॥ २२ ॥ घ्राणजेषु प्रतिश्यायोतिमात्रं क्षवथुः कृच्छ्रोच्छ्वासता पूतिनस्यं सानुनासिकवाक्यत्वं शिरोदुःखं च ॥२३॥ वक्त्रजेषु कंठौष्ठतालूनामन्यतमस्मिंस्तैर्गद्गदवाक्यता रसाज्ञानं मुखरोगाश्च भवंति ॥ २४ ॥

---

( गद्य १८ ) कूर्चकिनः सूक्ष्मदीर्घांकुरसंतानवतः उपरिष्टात् बाह्यचर्माणि ( इति निबंधसं० ) ॥
( गद्य २४ ) वक्त्रजेषु कंठौष्ठादीनामन्यतमस्मिन् मांसांकुरा भवंतीत्यर्थः । तैर्गद्गदवाक्यतादयो भवंति ॥

वेही वात आदि दोष ऊपरके द्वारोंमें प्राप्त हों तो कर्ण, नेत्र, नासिका, मुख इन स्थानोंमें ( मांस और रुधिरको दूषित करके ) बवासीर अर्थात् मस्से पैदा करते हैं ॥ २० ॥ उनमेंसे कानमें मस्से हों तो बधिरता, शूल और दुर्गंध होजाती है ॥२१॥ नेत्रमें मस्सा हो जानेसे पलक झिरना बंद होजाताहै दरद होताहै पानीसा बहताहै और दृष्टिका नाश होजाताहै ॥२२॥ नासिकामें मस्सा हो तो बहुत जुखाम हो और छींकें आवें कष्टसे सांस लिया जाय नाकसे दुर्गंध आवे गुणगुणी आवाज होजाय और शिरमें दरद रहे ॥ २३ ॥ मुखमें मस्से हों तो कंठमें तालूमें या और जगह हों उनके होनेसे गद्गदवाणी हो या रसका ज्ञान नहीं रहे तथा मुखके अनेक रोग होजावें ॥ २४ ॥

**व्यानस्तु प्रकुपितः श्लेष्माणं परिगृह्य वहिः स्थिराणि कीलवदर्शांसि निर्वर्तयति तानि चर्मकीलान्यर्शांसीत्याचक्षते ॥ २५ ॥**

**भवंति चात्र–**

सारे शरीरमें व्याप्त व्यान वायु कुपित हो तो कफको ग्रहण करके बाहर शरीरकी त्वचामें स्थिररूप कीलके तुल्य मस्से उत्पन्न कर देता है उन चर्मकीलोंको भी अर्श ( त्वग्गतार्श ) ऐसा कहते हैं ॥ २५ ॥ इसमें श्लोक हैं–

**तेषु कीलेषु निस्तोदो मारुतेनोपजायते ॥ श्लेष्मणा तु सवर्णत्वं ग्रंथित्वं च विनिर्दिशेत् ॥ २६ ॥ पित्तशोणितजं रौक्ष्यं कृष्णत्वं रक्तता तथा ॥ समुदीर्णखरत्वं च चर्मकीलस्य लक्षणम् ॥ २७ ॥**

वायुके दोषसे उन चर्मकीलोंमें निस्तोद ( दरद ) होता है और कफसे शरीरके तुल्य वर्ण और गाठेंसी होती हैं ॥ २६ ॥ पित्त और रुधिरसे रूखापन, कालापन, तथा लाली होतीहै और कठिनता खरदरापन यदि इनमें हो तो सन्निपातज हैं(चकारसे सन्निपातका ग्रहण होता है)ये चर्मकीलके लक्षण हैं ॥ २७ ॥

### द्वंद्वजादि अर्श।

**अर्शसां लक्षणं व्यासादुक्तं सामान्यतस्तु यत् ॥ तत्सर्वं प्राग्विनिर्दिष्टात्साधयेद्भिषजांवरः ॥ २८॥ अर्शःसु दृश्यते रूपं यदा दोषद्वयस्य तु ॥ संसर्गं तं विजानीयात्संसर्गः स च षड्विधः ॥ २९ ॥**

( श्लो० २७ ) चकारादत्र सान्निपातिकस्य लक्षणं बोद्धव्यम् ॥ ( श्लो० २८ ) प्राग्विनिर्दिष्टात् पूर्वोक्तवातादेर्लक्षणनिर्देशात् ( इति गयदासाचार्यः)। अन्ये तु सामान्यतस्तु षोढा व्यासात्तु प्राग्विनिर्दिष्टा पंचदशधा प्रसरात् ( इति डल्लनः ) ॥

अर्श (ववासीरके) लक्षण सामान्यतासे विस्तारपूर्वक जैसे वर्णन किये उन सबको पूर्व निर्देशके अनुसार वैद्य साधना करे ॥ २८ ॥ और जो अर्शमें दो दोषोंका रूप दिखाई देवे तो उसे संसर्गज ( द्वंद्वज ) जानो । यह संसर्ग छः प्रकारका होता है जैसे १ वातपित्त, २ वातकफ, ३ कफपित्त, ४ वातशोणित, ५ पित्त-शोणित, ६ श्लेष्मशोणित ॥ २९ ॥

**त्रिदोषाण्यल्पलिंगानि याप्यानि तु विनिर्दिशेत् ॥ द्वंद्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च॥३०॥ कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ सन्निपातसमुत्थानि सहजानि तु वर्जयेत् ॥३१॥ सर्वाः स्युर्वलयो येषां दुर्नामभिरुपद्रुताः॥ तैस्तु प्रतिहतो वायुरपानैः सन्निवर्तते ॥ ततो व्यानेन संगम्य ज्योतिर्मृद्गाति देहिनाम् ॥ ३२ ॥**

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीन दोषोंके जिसमें थोडे लक्षण हों वह ववासीर याप्य है तथा द्वंद्वज (दो दोषोंकी ) और दूसरी वलीमें हो वहभी याप्यही जानो ॥ ३० ॥ और यदि येही एक वर्षसे ऊपरकी होजाय तो कष्टसाध्य होजातीहै और सन्निपात ( सब दोषों) की हो तथा जन्मसे पैदाहुई हो वह ( असाध्यहै) त्यागने योग्यहै ॥ ३१ ॥ जिस मनुष्यके सारी तीनों गुदाकी वली ववासीरके मस्सोंसे व्याप्त होजायँ तब उन मस्सों करके अवरोधित हुई अपानवायु ठीक नहीं सरती फिर वह रुकी हुई अपानवायु व्यानमें मिलजाती है और ज्योति ( शारीरिक अग्नि ) को नाश करदेतीहै ॥ ३२ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थाने द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

## तृतीयोऽध्यायः ३.

### अथातोऽश्मरीणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अश्मरी ( पथरी और शर्करा ) के निदानका व्याख्यान करतेहैं ।

**चतस्रोऽश्मर्यो भवंति श्लेष्माधिष्ठानास्तद्यथा । श्लेष्मणा वातेन पित्तेन शुक्रेण चेति ॥१॥ तथा संशोधनशीलस्यापथ्यकारिणः प्रकुपितः श्लेष्मा मूत्रसंपृक्तोऽनुप्रविश्य वस्तिमश्मरीं जनयति ॥ २ ॥**

कफके मुख्य कारणसे अश्मरी ( पथरी ) चार प्रकारकी होतीहै १ कफसे, २ वायुसे, ३ पित्तसे और ४ शुक्रसे ॥ १ ॥ अश्मरीकी संप्राप्तिमें शोधन नहीं करनेवालोंके ( जो वमन विरेचनादि करके कफका शोधन नहीं करते उनके ) तथा

( गद्य १ ) अत्राश्मरीतुल्यहेतुका शर्करापि बोद्धव्या । श्लेष्माधिष्ठाना श्लेष्मोपादानकारणा ।

कुपथ्य करनेवालेंके कुपित हुआ कफ मूत्रमें मिलकर वस्ति ( मूत्राशयमें ) अर्थात् मसानेमें प्रविष्ट होकर ( पथरी ) पैदा करताहै ॥ २ ॥

तासां पूर्वरूपाणि वस्तिपीडाऽरोचकौ मूत्रकृच्छ्रं वस्तिशिरोमुष्कशेफसां वेदना कृच्छ्राज्ज्वरावसादौ वस्तगंधित्वं मूत्रस्येति ॥ ३ ॥ यथास्वं वेदनावर्णं दुष्टं सांद्रमथाविलम् ॥ पूर्वरूपेऽश्मनः कृच्छ्रान्मूत्रं सृजति मानवः ॥ ४ ॥

अश्मरीके पूर्वरूप ये हैं कि वस्तिस्थानमें पीडा हो, अरुचि, हो मूत्र कष्टमें हो, वस्ति, मुख, लिंग, वृषण इनमें वेदना हो और कृच्छ्रके कारणसे ज्वर और ग्लानि हो, मूत्रमें छगलकेसी गंध हो ॥ ३ ॥ तथा जिस दोषोल्वणकी अश्मरी होनेवाली हो उसके अनुसार वेदना हो और वैसाही मूत्रका रंग हो तथा मूत्र दूषित गाढा, आविल ( तारछूटे मैला ) हो और मनुष्य कष्टसे मूत्रोत्सर्ग करे ॥ ४ ॥

अश्मरीके सामान्य लक्षण ।

अथ जातासु नाभिवस्तिसेवनीमेहनेष्वन्यतमस्मिन्मेहतो वेदना मूत्रधारासंगः सरुधिरमूत्रता मूत्रविकिरणं च गोमेदप्रकाशमनाविलं ससिकतं विसृजति धावनलंघनप्लवनपृष्ठयानाध्वगमनैश्चास्य वेदना भवति ॥ ५ ॥

जब अश्मरी ( पथरी ) पैदा हो जाय तब नाभि, वस्ति, सीवन, लिंग इनमें कहीं मूत्र करते समय पीडा हो, मूत्रकी धारा रुके ( कभी २ ) रुधिरयुक्त मूत्र हो, मूत्र टपक टपक आवे और गोमेदके रंगका ( शरबती ), तार छूटनेसे रहित बल्कि रेतसेकी फुटकसे मिला मूत्र (पेशाब) करे और भागने, उलांघने, कूदनेसे तथा पीठपर सवारी करनेसे, मार्ग चलनेसे मनुष्यको पीडा हो ॥ ५ ॥

कफाश्मरी ।

तत्र श्लेष्माश्मरी श्लेष्मलमन्नमभ्यवहरतोऽत्यर्थमुपलिप्याधः परिवृद्धिं प्राप्य वस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो विरुणद्धि तस्य मूत्रप्रतिघाताद्दाल्यते भिद्यते निस्तुद्यत इव च वस्तिर्गुरुः शीतश्च भवति। अश्मरी चात्र श्वेता स्निग्धा महती कुक्कुटांडप्रतीकाशा मधूकपुष्पवर्णा वा भवति तां श्लैष्मिकीमिति विद्यात् ॥ ६ ॥

---

( गद्य ३ ) वस्तगन्धित्वं बृहत्तमच्छागलगंधित्वम् ॥ ( श्लो० ४ ) यथास्वं दोषाननतिक्रमेण वेदनावर्णं च यस्मिन्मूत्रे तत्तथा दुष्टम् ॥

कफकी पथरी कफकारक भोजन अधिक करनेसे शरीर कफसे लिपायमान हो नीचे वस्ति स्थानमें पहुँच वृद्धिको प्राप्त होकर वस्तिके मुखको आच्छादन करके मूत्र-मार्गको रोक देती है तव मनुष्यके मूत्र रुकजानेसे उसका वस्तिस्थान फूटासा जाय, भेदनसा हो, सुईसी चुभे और वस्तिस्थान भारी हो और शीतल हो। इसमें पथरी सुपेद हो, चिकनी हो, वडी मुरगेके अंडेके वर्णकी अथवा महुवेके फूल जैसी हो तो इसे कफकी पथरी जाने ॥ ६ ॥

पित्ताश्मरी।

**पित्तयुक्तस्तु श्लेष्मा संघातमुपगम्य यथोक्तां परिवृद्धिं प्राप्य वस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि तस्य मूत्रप्रतिघाताद्दूष्यते चूष्यते दह्यते पच्यत इव वस्तिरुष्णवातश्च भवति अश्मरी चात्र सरक्ता पीतावभासा कृष्णा भल्लातकास्थिप्रतिमा मधुवर्णा वा भवति तां पैत्तिकीमिति विद्यात् ॥ ७ ॥**

पित्तसे युक्तहुआ कफ कठिनताको प्राप्त होकर यथोक्त वृद्धिको प्राप्त हो वस्तिक मुखको अच्छादन करके मूत्रके मार्गको रोक देता है तव उसके मूत्र रुक जानेसे वस्ति ( मूत्राशय ) तपायमानसा हो चूसासा जाता हो, आगसी लगे पकतासा हो, तथा उष्णवात ( जो उत्तरतंत्रमें मूत्ररोगोंमें कहा है ) हो, ( और वस्तिस्थान गरम हो ) इसमें पथरी रक्तता लिये हो, पीलापन भी हो, काली हो, भिलावेंकी गुठली जैसी हो अथवा शहतके रंगकी हो, उसे पित्तकी पथरी जाने ॥ ७ ॥

वाताश्मरी।

**वातयुक्तस्तु श्लेष्मा संघातमुपगम्य यथोक्तां परिवृद्धिं प्राप्य वस्ति-मुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि तस्य मूत्रप्रतीघातात्तीव्रा वेदना भवति तथात्यर्थं पीड्यमानो दंतान्खादति नाभिं पीडयति मेढ्रं मृद्नाति वायुं स्पृशति विशर्द्धते विदहति वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण वास्य मेहतो निःसरंति। अश्मरी चात्र श्यामा परुषा विषमा खरा कदंवपुष्पवत्कंटकाचिता भवति तां वातिकीमिति विद्यात्॥८॥**

वायुसे युक्तहुआ कफ कठिन होकर यथोक्त वृद्धिको प्राप्त हो वस्तिके मुखपर स्थित होके मूत्रके मार्गको रोक देता है, मनुष्यके मूत्र रुकनेसे इसमें तीक्ष्ण पीडा होती है और तीक्ष्ण पीडासे पीडित हुआ मनुष्य दांतोंको पीसता है, नाभिको दवाता है, लिंगको

( गद्य ८ ) विशर्द्धते अपान विसृजति ॥

मसलता है, वायु ( पवन ) का स्पर्श करता है अर्थात् पवन कराना है, या हवाको चाहताहै "विशर्द्धंत" अर्थात् गुदासे शब्द करता है तपायमान होता है कभी कभी बहुत किनछनेसे थोड़ा मूत्र या विष्ठा आता है। इसमें पथरी सांवली, कड़ी, टढा और खरदरी होतीहै तथा कदंबके पुष्पके तुल्य कांटवाली होतीहै, इसे वायुकी पथरी जाने ॥ ८ ॥

प्रायेणैतास्तिस्त्रोऽश्मर्य्यो दिवास्वप्नसमशनाध्यशनशीतस्निग्धगुरुमधुराहारप्रियत्वाद्विशेषेण बालानां भवंति तेषामेवाल्पवस्तिकायत्वादनुपचितमांसत्वाच्च वस्तेः सुखग्रहणाहरणा भवंति ॥ ९ ॥

प्रायः ये तीनों प्रकारकी पथरी दिनके सोनेसे, अधिक भोजन करनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, शीतल, स्निग्ध, गरिष्ठ और मधुर आहार प्यारा लगनेसे विशेष करके ये बालकोंके होतीहै क्योंकि बालकोंका वस्तिस्थान छोटा होता है और दृढ मांस नहीं होता है इससे बालकोंका वस्तिस्थान पथरीको ग्रहण भी सुखसे ( सहजहीमें ) कर लेता है और उसका आहरण ( निकल जाना क्षय हो जाना ) भी सहजहीमें सुखसे होसकता है ॥ ९ ॥

शुक्राश्मरी ।

महतां तु शुक्राश्मरी शुक्रनिमित्ता भवंति ॥ १० ॥ मैथुनाभिघातादतिमैथुनाद्वा शुक्रश्चलितमनिर्गच्छद्विमार्गगमनादनिलोऽभितः संगृह्य मेढ्रवृषणयोरन्तरे संहरति संहृत्य चोपशोषयति सा मूत्रमार्गमावृणोति मूत्रकृच्छ्रं वस्तिवेदनां वृषणयोश्च श्वयथुमापादयति पीडितमात्रे च तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रविलयमापद्यते तां शुक्राश्मरीमिति विद्यात् ॥ ११ ॥ भवति चात्र—

बडे मनुष्योंके प्रायः शुक्रजन्य शुक्राश्मरी होती है ॥ १० ॥ यह शुक्राश्मरी (वीर्यकी पथरी) जब मैथुनके रोकनेसे और अत्यंत मैथुनसे शुक्र अपने स्थानसे छुट जाय और बाहर नही निकले और विपरीत मार्ग ( उलटा ) में गमन करे तब उसे वायु इकट्ठा करके लिंग और वृषण( पोतरों ) के मध्य ( वस्तिके द्वारपर ) स्थित कर देती है और वहां स्थित करके सुखाकर कडा कर देती है ( जिससे अश्मरी बन जाती ) है, फिर वह पथरी बनकर मूत्रके मार्गको रोक देती है और मूत्रकृच्छ्र, वस्तिमें दरद, पोतरोंपर शोथ ये उपद्रव पैदा करती है और जब उस स्थानको दबावे या मले तब विलाय जाती है उसे शुक्रकी पथरी जाने ॥ ११ ॥ इसमें श्लोक है—

शर्करा सिकतामेहो भस्माख्योऽश्मरीवैकृतम् ॥
अश्मर्याः शर्करा ज्ञेया तुल्यव्यंजनवेदना ॥ १२ ॥

शर्करा ( रेता ) और सिकताप्रमेह तथा भस्माख्य रोग (मूत्र, शुक्ररोग उत्तरतंत्रोक्त) ये सब पथरीहीके विकार हैं और पथरीही घुलकर शर्करा होती है क्योंकि इनके लक्षण और वेदना समान हैं (यूनानी हकीम भी पथरी और शर्कराको एकही किस्मसे बताते हैं देखो तिब्बते अकबर ) ॥ १२ ॥

पवनेऽनुगुणे सा तु निरेत्यल्पा विशेषतः॥सा भिन्नमूर्तिर्वातेन शर्करेत्यभिधीयते ॥ १३ ॥ हृत्पीडा सक्थिसदनं कुक्षिशूलः सवेपथुः॥ तृष्णोर्ध्वगोऽनिलः कार्ष्ण्यं दौर्बल्यं पांडुगात्रता ॥१४॥ अरोचकाविपाकौ तु शर्करार्ते भवंति हि ॥ मूत्रमार्गप्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥ १५ ॥ दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमरोचकम् ॥ पांडुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ १६ ॥

और यदि पथरी छोटी हो और वायुके अनुकूल हो जाय तब तो प्रायः निकल पड़ती है । और जो वायु करके टुकडे २ से ( नन्हे २ दानेसे) हो जायँ तो उन्हें शर्करा कहते हैं ॥ १३ ॥ जिस मनुष्यको शर्करा हो उसके हृदयमें पीडा, साथलोंका थकना, कूखमें शूल और शोथ, तृषा और वायुका ऊर्द्धगमन, कृशता (कालापन ) और दुबलापन तथा देहका पीला पडना ॥१४ ॥ अरुचि, भोजन ठीक नहीं पचना, ये लक्षण होते हैं और जब मूत्रके मार्गमें प्रवृत्त हो और वहाँ स्थित होजाय तब ये उपद्रव होते हैं॥१५॥दुबलापन, थकान, कृशता, कोखमें शूल, अरुचि, शरीर, नेत्रादि पीले पडना तथा उष्णवात, तृषा, हृदयमें पीडा और वमन ( या जी मिचलाना ) ॥ १६ ॥

नाभिपृष्ठकटीमुष्कगुदवंक्षणशेफसाम् ॥ एकद्वारस्तनुत्वको मध्ये वस्तिरधोमुखः ॥ अलाब्वा इव रूपेण शिरास्नायुपरिग्रहः ॥ १७ ॥

नाभि, पीठ, कमर, पोतरे, गुद, नले और लिंग इनके बीचमें एक मुखवाला, कोमल झिल्लीवाला, नीचे, इंद्रियकी जडमें मुखवाला ऐसा वस्तिस्थान ( मूत्राशय अर्थात् प्रसारण ) है इसका आकार तूंबीके तुल्य है रगों और नसोंसे बँधा हुआ है और लिपटा हुआ है ॥ १७ ॥

वस्तिर्वस्तिशिरश्चैव पौरुषं वृषणौ गुदम्॥एकसंबंधिनो ह्येते गुदास्थिविवरस्थिताः ॥१८॥ मूत्राशयो मलाधारः प्राणायतनमुत्तमम् ॥

पक्वाशयगतास्तत्र नाड्यो मूत्रवहास्तु याः ॥ १९ ॥ तर्पयंति सदा मूत्रं सरितः सागरं यथा ॥ सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यंते मुखान्यासां सहस्रशः ॥ २० ॥ नाडीभिरुपनीतस्य मूत्रस्यामाशयांतरात् ॥ जाग्रतः स्वपतश्चैव स निष्पंदेन पूर्यते ॥ २१ ॥ आमुखात्सलिले न्यस्तः पार्श्वेभ्यः पूर्यते नवः ॥ घटो यथा तथा विद्धि वस्तिर्मूत्रेण पूर्यते ॥ २२ ॥

वस्ति और वस्तिका शिर, पौरुष ( मेढ्र ), पोतरे और गुदा ये सब परस्पर सम्बन्ध रखते हैं और गुदाका जो अस्थि है उसके विवर ( फटाव ) पर स्थित हैं ॥ १८ ॥ मूत्राशय ( मसाना ) मलका आधार है और प्राण ( अग्निसोम ) का उत्तम स्थान है पक्वाशयमें प्राप्त हुई जो मूत्रको वहनेवाली नाडी हैं वे सदा सब कालमें मूत्रकी तृप्ति और वृद्धि करती रहती हैं जैसे नदियां समुद्रमें सदा जल भरती रहती हैं और उन नाडियोंके हजारों मुख हैं ( जिनसे मूत्र टपकता है ) वे सूक्ष्म होके विदित नहीं हो सकते ॥ १९ ॥ २० ॥ नाडियों करके आमाशयादिकसे सब कालमें ( दिनरात ) जागते सोते टपक टपक करके मूत्र वस्तिस्थान ( मूत्राशय या मसाने ) में आकर इकट्ठा होता है ॥ २१ ॥ ( इसीको दृष्टांतसे सिद्ध करते हैं ) जैसे जलमें ( या कीचमें ) मुँहतलक नवीन घडेको गाड दे तो वह अपने पार्श्वस्थ जलसे भर जाता है इसी भांति वस्ति मूत्रसे भर जाती है ( ऐसा समझना चाहिये ) ॥ २२ ॥

एवमेव प्रवेशेन वातः पित्तं कफोपि वा ॥ मूत्रयुक्त उपस्नेहात्प्रविश्य कुरुतेऽश्मरीम् ॥ २३ ॥ अप्सु स्वच्छास्वपि यथा निषिक्तासु नवे घटे ॥ कालांतरेण पंकः स्यादश्मरीसंभवस्तथा ॥ २४ ॥

इसी प्रकार जिसमेंसे मूत्र टपकता है यदि वहां ( उस क्लेदित पदार्थमें ) वायु, पित्त, कफ हों तो वे भी मूत्रमें मिलकर मूत्राशयमें जाते हैं और पथरी पैदा कर देते हैं ॥ २३ ॥ जैसे गँदला पानी नये घडेमें रखदेनेसे थोडे कालमें नीचे कीच जमजाता है ऐसेही पथरीकी उत्पत्ति समझो ( कई ऐसा भी कहते हैं कि साफ पानी भी नये घडेमें रक्खो तो कालान्तरमें कुछ गँदलापन नीचे जमही जाता है ऐसे पथरी है यह " अप्सु स्वच्छासु " पाठ मानते हैं ) और पहला अर्थ करनेवाले " अप्स्वस्वच्छासु " ऐसाही पाठ मानते हैं और यही ठीक भी है ॥ २४ ॥

( श्लो० २३ ) उपस्नेहात् समीपोदकात् न तु द्रवरूपत्वात् । ( इति डल्हनः ) ॥

संहन्त्यपो यथा दिव्या मारुतोऽग्निश्च वैद्युतः ॥ तद्वद्बलासं वस्तिस्थमूष्मा संहन्ति सानिलः ॥ २५ ॥ मारुते प्रगुणे वस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्तते ॥ विकारा विविधाश्चापि प्रतिलोमे भवन्ति हि ॥ २६ ॥ मूत्राघाताः प्रमेहाश्च शुक्रदोषास्तथैव च ॥ मूत्रदोषाश्च ये केचिद्वस्तावेव भवंति हि ॥ २७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जैसे आकाशमें जलको वायु और विजलीकी अग्नि बाँधकर ओले बना देती है वैसेही वस्तिस्थानमें प्राप्त हुए कफको भी वायुसे मिली हुई उष्मा ( गरमी ) जमाकर पथरी बना देती है ॥ २५ ॥ यदि वस्तिस्थानमें वायु अनुलोम ( सीधा सानुकूल ) रहे तब ठीक २ मूत्रकी प्रवृत्ति होकर कोई विकार नहीं होता और जो वहां वायु प्रतिलोम ( उलटा सविकार ) हो तब अनेक प्रकारके विकार होते हैं ॥ ॥ २६ ॥ मूत्राघात (मूत्र बंद होना), प्रमेह, वीर्यदोषके रोग ( क्लैब्यादि ) तथा मूत्रदोषके जो रोग ( मूत्रकृच्छ्रादि ) है वे वस्तिस्थानमेंही होते हैं ( डाक्टरीमें पथरीको " स्टोन " ( Stone ) कहते है और यूनानी हकीम "हिसात" कहते हैं इनके मतसे पथरी, मूत्राशय ( मसाने ) के सिवाय गुरदे तथा जिगरमें भी हो सकती है परंतु वास्तवमें गुरदे और जिगरमें पथरीकी गुंजायश कहां है परन्तु शर्कराका इन स्थानोंमें भी होना संभव है ) ॥ २७ ॥

इति पं०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

## चतुर्थोऽध्यायः ४.

### अथातो भगंदराणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी भगंदरके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

### भगंदरके जातिभेद ।

वातपित्तश्लेष्मसन्निपातागंतुनिमित्ताः शतपोनकोष्ट्रग्रीवपारिस्राविशंबूकावर्त्तोन्मार्गिणो यथासंख्यं पंच भगंदरा भवंति ॥ १ ॥

वायु, पित्त, कफ, सन्निपात और आगंतुक इन हेतुओंसे शतपोनक, उष्ट्रग्रीव, परिस्रावी, शंबूकावर्त्त तथा उन्मार्गी ये पांच भगंदर यथासंख्यसे होते हैं अर्थात वायुसे शतपोनक ( जिसमें चालनीकी भांति सैकडों छिद्र हों ), पित्तसे उष्ट्रग्रीव और कफसे परिस्रावी, सन्निपातसे शंबूकावर्त तथा आगन्तु अर्थात् शस्त्रादिके लगनेके क्षतसे उन्मार्गी नामक भगंदर होता है ॥ १ ॥

### भगंदरकी निरुक्ति और पूर्वरूप।

ते तु भगगुदवस्तिप्रदेशदारणाच्च भगंदरा इत्युच्यंते ॥२॥ अपक्काः पिडिकाः पक्कास्तु भगंदरास्तेषां तु पूर्वरूपाणि कटीकपालवेदना गुदकंडूर्दाहः शोफश्च गुदस्य भवति ॥ ३ ॥

ये भग, गुदा और वस्ति प्रदेशके विदारण करनेसे भगंदर कहलातेहैं ॥ २ ॥ ये जवतक विनापके फूटे होते हैं तवतक पिडिका ( गुमडी ) कहलातेहैं और पके फूटे पीछे भगंदर कहेजाते हैं इनके पूर्वरूप ये हैं कि कमरके हाडमें दरद हो, गुदामें खाज हो और दाह तथा शोथभी गुदामें हो ॥ ३ ॥

### शतपोनक।

तत्रापथ्यसेविनां वायुः प्रकुपितः सन्निवृत्तः स्थिरीभूतो गुदमभितोऽगुले द्व्यंगुले वा मांसशोणिते प्रदूष्यारुणवर्णां पिडिकां जनयति ॥ ४ ॥ सास्य तोदादीन्वेदनाविशेषाञ्जनयत्यप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति ॥५॥ मूत्राशयाभ्यासगतत्वाच्च व्रणः प्रक्लिन्नः शतपोनकवदणुमुखैश्छिद्रैरापूर्यते तानि छिद्राण्यजस्रं फेनानुविद्धमधिकमास्रावं स्रवंति ॥ ६ ॥

( इनमेंसे ) अपथ्य सेवन करनेवालोंके वायु कुपित होकर रुककरके गुदाके आसपास प्राप्त होकर गुदासे एक अंगुल या दो अंगुलपर मांस और रुधिरको दूषित करके लाल वर्णकी फुन्सी उत्पन्न करताहै ॥ ४ ॥ वह फुन्सी शूल और विशेष वेदना उत्पन्न करतीहै और जो उसका प्रतीकार ठीक २ नहीं हो तो पकजातीहै ॥ ॥ ५ ॥ और मूत्राशयके समीप प्राप्त होनेसे (सदा) गीलाहुआ व्रण चलनीकी भांति छोटे २ मुखवाले छिद्रोंसे भरजाताहै उन छिद्रोंमेंसे सदैव झागोंसे मिलाहुआ पीव आदि अधिक निकलताहै ॥ ६ ॥

व्रणश्च ताड्यते भिद्यते छिद्यते सूचीभिरिव निस्तुद्यते गुदं च विदीर्यते वातमूत्रपुरीषरेतसामप्यागमश्च तैरेव छिद्रैर्भवति तं भगंदरं शतपोनकमित्याचक्षते ॥ ७ ॥

व्रणमें ताडनेकीसी, भेदन करनेकीसी, छेदन करनेकीसी पीडा हो सूईचुभोनेकीसी पीडा हो और गुदा विदीर्णसी होती हो तथा उन छिद्रोंमेंसे वायु, मूत्र, विष्ठा वीर्य निकलने लगे तो इस प्रकारके भगंदरको शतपोनक कहतेहैं ॥ ७ ॥

---

( गद्य ३ ) कटीकपालः कटीफलकः। ( गद्य ४ ) सन्निवृत्तः व्याधुटितः। ( गद्य ६ ) अभ्यासः समीपम् ( नि० स० )। (गद्य७) शतपोनकं चालनिकेति जेज्जटः। शतपोनकवत् शतपोनको भगंदरः ॥

उष्ट्रग्रीव ।

पित्तं तु प्रकुपितमनिलेनाधः प्रेरितं पूर्ववदवस्थितं रक्तां तन्वीमुच्छ्रितामुष्ट्रग्रीवाकारां पिडिकां जनयति ॥८॥ सास्य चोषादीन्वेदनाविशेषाञ्जनयत्यप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति ॥९॥ व्रणश्चाग्निक्षाराभ्यामिव दह्यते दुर्गंधमुष्णमास्रावं स्रवत्युपेक्षितश्च वातमूत्रपुरीषरेतांसि विसृजति तं भगंदरमुष्ट्रग्रीवमित्याचक्षते ॥१०॥

कुपित हुआ पित्त जब अपानवायु करके नीचेको प्रेरण किया हो तब पहलेकी तरह ( गुदाके आसपास ) स्थित होकर लाल वर्णकी छोटी ऊपरको उठी हुई ऊंटकी ग्रीवाके आकार फुन्सी पैदा करता है ॥८॥ वह फुन्सी मनुष्यके ( गुदास्थानमें ) चूसनेकीसी, जलानेकीसी अनेक वेदना उत्पन्न करती है और उसका उपाय ठीक नहीं किया जाय तो पक जातीहै ॥ ९ ॥ और उसका घाव सदा अग्निसे या क्षारसे जलतासा रहता है दुर्गंध युक्त गरम पीव निकलता है और उपेक्षित ( विना ठीक चिकित्सा किये ) उस घावमेंसे वायु, मूत्र, विष्ठा और शुक्रभी निकलने लगजातेहैं और इस भगंदरको उष्ट्रग्रीव कहतेहैं ॥ १० ॥

परिस्रावी ।

श्लेष्मा तु प्रकुपितः समीरणेनाधः प्रेरितः पूर्ववदवस्थितः शुक्लावभासां स्थिरां कंडूमतीं पिडिकां जनयति ॥११॥ सास्य कंड्वादीन्वेदनाविशेषाञ्जनयत्यप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति ॥ १२ ॥ व्रणश्च कठिनः संरम्भी कंडूप्रायः पिच्छलमजस्रमास्रावं स्रवत्युपेक्षितश्च वातमूत्रपुरीषरेतांसि विसृजति तं भगंदरं परिस्राविणमित्याचक्षते१३

कोपको प्राप्त हुआ कफ अपान वायु करके प्रेरण किया हुआ नीचे प्राप्त होकर गुदाके आसपास सुपेद वर्णकी स्थिर ( कडी ) खाजयुक्त फुन्सी पैदा करता है ॥ ११ ॥ वह फुन्सी मनुष्यके गुदास्थानमें खाज आदि अनेक पीडा उत्पन्न करती है और जो उसका ठीक उपाय नहीं किया जाय तो पाकको प्राप्त हो जातीहै ॥ १२ ॥ और इसका घाव कडा, ढीलसे बहनेवाला और अधिक खाजवाला होता है और घावमेंसे गाढी राध निरंतर निकलती रहती है । यदि ठीक चिकित्सा न हो तो उसमेंसे वायु, मूत्र, विष्ठा और वीर्य निकलने लगते हैं इस भगंदरको परिस्रावी कहते हैं ॥ १३ ॥

शंबूकावर्त ।

वायुः प्रकुपितः प्रकुपितौ पित्तश्लेष्माणौ परिगृह्याधोगत्वा पूर्वव-
द्वस्थितः पादांगुष्ठप्रमाणां सर्वलिंगां पिडिकां जनयति ॥ १४ ॥
सास्य तोददाहकंड्वादीन्वेदनाविशेषाञ्जनयत्यप्रतिक्रियमाणा पाक-
मुपैति ॥ १५ ॥ व्रणश्च नानाविधवर्णमास्रावं स्रवति पूर्णनदीश-
म्बूकावर्तवच्चात्र समुत्तिष्ठंति वेदनाविशेषास्तं भगंदरं शंबूकाव-
र्तमित्याचक्षते ॥ १६ ॥

कुपित हुआ ( अपान ) वायु कोप हुए पित्त और कफको ग्रहण करके नीचे ( गुदाके पास ) गमन करके पहलेकी भांति ( गुदाके एक या दो अंगुल दूर ) स्थित होकर पैरके अँगूठेके तुल्य सब दोषोंके लक्षणवाली फुन्सी उत्पन्न करता है ॥१४॥ वह फुन्सी चीस, दाह और खाज आदिक अनेक वेदना पैदा करती है और जो उसका ठीक प्रतीकार न हो तो पकजाती है ॥ १५ ॥ और इसका घाव अनेक प्रकारके पीव आदि झिराता है और भरीहुई नदी तथा शंखके आवर्त्त ( भँवर अथवा ओंटी ) के तुल्य जिसमें वेदना उठें उस भगंदरको " शंबूकावर्त्त " कहते हैं यह सान्निपातिक है ॥ १६ ॥

मूढेन मांसलुब्धेन यदस्थिशल्यमन्नेन सहाभ्यवहृतं यदावगाढ-
पुरीषोन्मिश्रमपानेनाधःप्रेरितमसम्यगागतं गुदं क्षिणोति तत्र
क्षतनिमित्तः कोथ उपजायते तस्मिंश्च क्षते पूयरुधिरावकीर्णमांस-
कोथे भूमाविव जलप्रक्लिन्नायां क्रिमयः संजायंते ॥ १७ ॥ ते
भक्षयंतो गुदमनेकधा पार्श्वतो दारयंति तस्य तैर्मार्गैः क्रिमिकृतै-
र्वातमूत्रपुरीषरेतांसि निःसरन्ति तं भगंदरमुन्मार्गिणमित्याच-
क्षते ॥ १८ ॥ भवन्ति चात्र–

मांस खानेवाले मूढ लोग जो हड्डीको भोजनके संग खाजाते हैं वह गाढे पुरीषमें मिलकर अपानवायुकरके नीचे ( दस्तमें ) प्रेरणकरी हुई ( आडी, टेढी या ) वडी होनेसे गुदामें घाव कर देती है फिर घावमें पकाव होजाता है और उस जखममें राध और रुधिरयुक्त मांसके होजानेसे जैसे जलसे गीली पृथ्वीमें क्रिमि पडजाते हैं वैसेही उसमें भी क्रिमि उत्पन्न होजाते हैं ॥ १७ ॥ वे क्रिमि गुदाके

( गद्य १८ ) पार्श्वतो दारयति अस्याग्रे अर्शो भगंदरामिति केचित् पठंति ( नि० स० ) ॥

-मांसको खाकर अनेक भांतिसे बराबरकी तरफ विदारण कर देते हैं तब मनुष्यके उन कृमिकृत मार्गोंसे वायु, मूत्र, विष्ठा तथा वीर्य निकलने लग जाता है उस भगंदरको उन्मार्गी कहते हैं (तथा बवासीरके मस्से काटनेके जखमसे अथवा और भांति चोट लगजानेसे, छिल जाने, कटजाने, रगड लगजाने आदिसे घाव होकर जो भगंदर हो वह भी उन्मार्गी ही समझो) ॥ १८ ॥ यहांपर श्लोक हैं-

उत्पद्यतेऽल्परुक्शोफा क्षिप्रं चाप्युपशाम्यति ॥
पाय्वंतदेशे पिडिका सा ज्ञेयान्या भगंदरात् ॥ १९ ॥

जो थोडे दरद और थोडे शोथवाली फुन्सी गुदाके पास हो और शीघ्र शांत होजाय वह भगंदरसे पृथक् (सादी फुन्सी) होती है ॥ १९ ॥

भगंदरी तु विज्ञेया पिडिकातो विपर्ययात् ॥ पायोः स्याद्व्यंगुले देशे गूढमूला सरुग्ज्वरा ॥२०॥ यानयानान्मलोत्सर्गात्कंडूरुग्दाहशोफवान् ॥ पायुर्भवेद्रुजः कट्यां पूर्वरूपं भगंदरे ॥ २१ ॥

तथा इसके विपरीत गुदासे दो अंगुल दूर गूढ मूलवाली और चीस और ज्वर-युक्त जो फुन्सी होती है वह भगंदरी कहलाती है ॥ २० ॥ सवारीपर चलनेसे मलोत्सर्ग करनेसे जो गुदामें खाज, दरद, जलन और शोथ हो तथा कमरमें पीडा हो तो भगंदरका पूर्वरूप जानना चाहिये ॥ २१ ॥

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगंदराः ॥
तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च भगंदरः ॥ २२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सबही भगंदर घोर और दुःखसे साधनयोग्य होते हैं तिनमें भी त्रिदोषका (शंबूकावर्त नामक) भगंदर तथा क्षतसे उपजा (उन्मार्गी) भगंदर ये दोनों असाध्य होते हैं (यूनानीमें इसे नासूरमिकअद कहते हैं और डाक्टरीमें इसी प्रकार गुदाके पासका जखम (Fistula) कहते हैं इनके यहां इसकी कुछ विशेषता नहीं) ॥ २२ ॥

इति पण्डितमुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ॥ २९ ॥

---

## पंचमोऽध्यायः ५.

### अथातः कुष्ठनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी कुष्ठके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

---

(श्लो० १९) पाय्वंतदेशे गुदस्यांते ॥

मिथ्याहाराचारस्य विशेषाद्गुरुविरुद्धासात्म्याजीर्णाहिताशिनः स्नेहपीतस्य वान्तस्य वा व्यायामग्राम्यधर्मसेविनो ग्राम्यानूपौदकमांसानि वा पयसाभीक्ष्णमश्नतो यो वा मज्जत्यप्सूष्माभितप्तः सहसा छर्दिं वा प्रतिहंति तस्य पित्तश्लेष्माणौ प्रकुपितौ परिगृह्यानिलः प्रवृद्धस्तिर्यग्गाः शिराः संप्रतिपद्य समुद्धूय बाह्यं मार्गं प्रति समन्ताद्विक्षिपति ॥ १ ॥

अनुचित आहार तथा अनुचित आचार ( अगम्यागमनादि ) करनेसे, विशेष कर गरिष्ठ भोजन करनेसे, विरुद्ध भोजन करनेसे अर्थात् रसविरुद्ध संयोगविरुद्धादि खाने पीनेसे तथा देश, काल, प्रकृति, आदिके प्रतिकूल भोजन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे और अहित वस्तु खानेसे, (अयुक्त ) स्नेहपान करने तथा वमन करनेके पीछे व्यायाम या मैथुन करनेसे और ग्राम्यपशु तथा जलके किनारेके जीव और जलजंतुवोंके मांसको दूधके साथ खानेसे अथवा जो मनुष्य गरमी ( धूप, अग्नि आदि ) से संतप्त हुआ तत्काल जलमें स्नान करे तथा जो आतेहुए वमनको रोके उसके कुपित हुए कफ और पित्तको बढाहुआ वायु ग्रहणकरके तिर्यग्गामिनी शिराओंमें गमन करके और बाह्यमार्गकी ओर प्राप्तहोकर समस्त शरीरमें फैला देता है ॥ १ ॥

यत्र यत्र च दोषो विक्षिप्तो निःसरति तत्र तत्र मंडलानि प्रादुर्भवन्त्येवमुत्पन्नस्त्वचि दोषस्तत्र च परिवृद्धिं प्राप्याप्रतिक्रियमाणोऽभ्यंतरं प्रतिपद्यते धातून्दूषयन् ॥ २ ॥

फिर जहां जहां प्राप्तहुआ दोष बाहरनिकल प्रगट होताहै वहांही वहां मंडल ( चकदे ) पैदा होजातेहैं और फिर त्वचामें उत्पन्न हुआ दोष ठीक२ प्रतिकार न होने पर वृद्धिको प्राप्तहोकर धातुओंको दूषित करता हुआ भीतरको प्रवेश करजाताहै॥ २॥

### कुष्ठका पूर्वरूप ।

तस्य पूर्वरूपाणि त्वक्पारुष्यमकस्माद्रोमहर्षः कंडूः स्वेदबाहुल्यमस्वेदनं वाङ्गप्रदेशानां स्वापः क्षतविसर्पणमसृजः कृष्णता चेति ३॥

( गद्य१ ) स्नेहपीतस्य वांतस्य इति स्नेहपानानंतरं वमनानन्तरं वा । व्यायामग्राम्यधर्मसेविनः समुद्धूय आक्षिप्य समंतात् सर्वत्र सर्वशरीरे । मिथ्याहाराचारस्य "मासानि वा पयसाऽभीक्ष्णमश्नतः" इत्याद्युपयुक्तस्य प्रवृद्धोऽनिलः प्रकुपितौ पित्तकफौ परिगृह्य एवमेवान्वयः ॥

इस कुष्ठरोगके पूर्वरूप ये हैं त्वचामें कठोरता हो, अकस्मात् रोम खडे होजायँ, खाज होने लगे, अधिक पसीना आवे अथवा बिलकुल पसीना नहीं आवे और अंग प्रत्यंग सोजाया करें (अर्थात् झनझनाट करनेलगें, स्पर्शज्ञान न रहे) और घाव यदि किसी कारणसे होजाय तो वह फैलने लगे ( शीघ्र अच्छा न हो ) और रुधिरमें कालापन होजाय ( तो जाने कि इस मनुष्यके कुष्ठरोग होगा ) ॥ ३ ॥

**तत्र सप्त महाकुष्ठान्येकादश क्षुद्रकुष्ठान्येवमष्टादश कुष्ठानि भवन्ति४**

जिनमेंसे सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ हैं ऐसे सब मिलकर अठारह प्रकारके कुष्ठ हैं ॥ ४ ॥

**तत्र महाकुष्ठान्यरुणौदुम्बरर्ष्यजिह्वकपालकाकणकपुंडरीकदद्रुकुष्ठानीति ॥५॥ क्षुद्रकुष्ठान्यपि स्थूलारुष्कं महाकुष्ठमेककुष्ठं चर्मदलं विसर्पः परिसर्पः सिध्म विचर्चिका किटिभं पामा रकसा चेति ॥६॥**

इनमेंसे महाकुष्ठ ये हैं १ अरुण, २ औदुंबर, ३ ऋष्यजिह्व, ४ कपाल, ५ काकणक, ६ पुंडरीक, ७ दद्रु ॥५॥ और क्षुद्रकुष्ठ ये हैं १ स्थूलारुष्क, २ महाकुष्ठ, ३ एककुष्ठ, ४ चर्मदल, ५ विसर्प ६, परिसर्प, ७ सिध्म, ८ विचर्चिका, ९ किटिभ, १० पामा, ११ रकसा । इसप्रकार सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ मिलकर १८ हुए ॥ ६ ॥

बहुतसे आचार्य दद्रुको क्षुद्रकुष्ठोंमें मानतेहैं और महाकुष्ठको महाकुष्ठोंमें और कई ग्रंथोंमें कुष्ठोंमें नामभेद और क्षुद्रत्व और महत्वमेंभी अंतर है जैसे देखो वाग्भट में और तरह लिखाहै और भावप्रकाशमें औरहीतरह देखो टिप्पणी ॥

**सर्वाणि कुष्ठानि सवातानि सपित्तानि सश्लेष्माणि सक्रिमीणि च भवंत्युत्सन्नतस्तु दोषग्रहणमभिभवात् ॥ ७ ॥**

सभी कुष्ठ वायुयुक्त होते हैं और सभी पित्तयुक्त तथा कफयुक्तभी होते हैं और सभी सूक्ष्म क्रिमियोंसे व्याप्त होते हैं परंतु जहां जिस दोषकी उत्कर्षता होती है वहां प्रधानतासे उसी दोषका ग्रहण किया जाता है ॥ ७ ॥

---

( गद्य ५–६ ) वाग्भटे महाकुष्ठानि यथा–"पूर्वत्रिकं दद्रु सकाकणम् ॥ पुडरीकर्ष्यजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु" इति पूर्वत्रिकं कपालौदुंबरमण्डलाख्यम् । शेषाणि क्षुद्रकुष्ठानि ॥ भावप्रकाशे महाकुष्ठानि यथा–"पूर्वत्रिकं तथा सिध्म ततः काकणकं तथा ॥ पुडरीकर्ष्यजिह्वे तु महाकुष्ठानि सप्त च" इति । तथैव क्षुद्रकुष्ठानि "एककुष्ठं स्मृतं पूर्वं गजचर्म ततः स्मृतम् । ततश्चर्मदलं प्रोक्तं तथा चापि विचर्चिका ॥ विपादिकाभिधा सैव पामा कच्छूस्ततः परम् । ततो दद्रुश्च विस्फोटः किटिभं च ततः परम् ॥ ततश्चालसकं प्रोक्तं शतारुश्च ततः परम् ॥" तथाच कुष्ठाना सप्तविधत्वमष्टादशविधत्वमपरिसंख्याविधत्वमेव । अष्टादश कुष्ठानि भवतीति दिङ्मात्रं दर्शितम् ( इति डल्हनः ) ॥

तत्र वातेनारुणं पित्तेनोदुम्बरर्ष्यजिह्वकपालकाकणकानि । श्लेष्मणा पौंडरीकं दद्रुकुष्ठं चेति ॥८॥ तेषां तु महत्त्वं क्रियागुरुत्वमुत्तरोत्तरं धात्वनुप्रवेशादसाध्यत्वं चेति ॥ ९ ॥

इनमेंसे वायुसे ( वायुकी प्रधानतासे ) अरुण कुष्ठ होता है और पित्तसे औदुंबर, ऋष्यजिह्व, कपाल और काकणक ये ४ कुष्ठ होते हैं और कफसे पौंडरीक तथा दद्रु होते हैं ॥ ८ ॥ इनमें महत्त्व ( महाकुष्ठपन) यही है कि इनकी क्रियामें भारीपन है और उत्तरोत्तर धातुओंमें प्रवेश होजानेसे असाध्यता है ॥ ९ ॥

महाकुष्ठके लक्षण ।

तत्र वातेनारुणभानि तनूनि विसर्पीणि तोदभेदस्वापयुक्तान्यरुणानि ॥१०॥ पित्तेन पक्वोदुंबरफलाकृतिवर्णान्यौदुम्बराणि ॥११॥ ऋष्यजिह्वाप्रकाशखरस्वानि ऋष्यजिह्वानि ॥ १२ ॥ कृष्णकपालिकाप्रकाशानि कपालकुष्ठानि ॥१३॥ काकणंतिकाफलसदृशान्यतीवरक्तकृष्णानि काकणकानि ॥ १४ ॥ तेषां चतुर्णामप्योपचोषपरिदाहधूमायमानानि क्षिप्रोत्थानप्रपाकभेदित्वानि कृमिजन्म च सामान्यानि लिंगानि ॥ १५ ॥

तयोर्द्वयोरप्युत्सन्नता परिमंडलता कंडूश्चिरोत्थानत्वं चेति सामान्यरूपाणि ॥ १८ ॥

जो कमलपत्रके समान हो वह पौंडरीक कुष्ठ है ॥ १६ ॥ अतसीके पुष्पके समान ( ऊदे ) या तांबेके वर्ण फैलनेवाले और छोटी फुन्सीवाले चकदे हों वे दद्रुकुष्ठ ( दाद ) कहलातेहैं इन ( कफज कुष्ठों ) में कुछ २ उभार ( ऊंचापन ) परिमंडलता ( चकदे होना ), खाज होना और बहुत समयतक होना ये सामान्य लक्षण होतेहैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

क्षुद्रकुष्ठान्यत ऊर्द्ध्वं वक्ष्यामः ॥ १९ ॥

इससे अगाडी क्षुद्रकुष्ठोंके ( लक्षणों ) को वर्णन करते हैं ॥ १९ ॥

स्थूलानि संधिष्वतिदारुणानि गुरूणि च स्युः कठिनान्यरूंषि ॥
त्वक्कोचभेदस्वपनांगसादाः कुष्ठे महत्पूर्वयुते भवंति ॥ २० ॥
कृष्णारुणं येन भवेच्छरीरं तदेककुष्ठं प्रवदंत्यसाध्यम् ॥ स्युर्येन
कंडूव्यथनौषचोषास्तलेषु तच्चर्मदलं वदंति ॥ २१ ॥

जिसमें संधियोंमें मोटापन युक्त, अतिदारुण वडे और कठोर व्रण हों उसे स्थूलारुष्क कुष्ठ कहते हैं । और जिसमें त्वचामें संकोच भेद और स्वाप ( स्पर्शाज्ञान ) हो तथा अंगमें ग्लानि हो तो वह महाकुष्ठ नामक (क्षुद्र) कुष्ठ है ॥ २० ॥ जिसमें काला और लाल शरीर पडजाय उसे एककुष्ठ कहतेहैं और यह एककुष्ठ असाध्य है । जिसमें हाथ पावोंके चर्ममें ( मोटापन हो ) और खाज, व्यथन ( दर्द ) और दाह तथा चोष हो वह चर्मदल कुष्ठ कहलाता है ॥ २१ ॥

विसर्पवत्सर्पति सर्वतो यस्त्वग्रक्तमांसान्यभिभूय शीघ्रम् ॥ मूर्च्छाविदाहारतितोदपाकान्कृत्वा विसर्पः स भवेद्विकारः ॥ २२ ॥

जो विसर्पकी भांति त्वचा रक्त और मांसमें प्राप्त होकर शीघ्र सारे शरीरमें फैल जाय और मूर्च्छा, दाह, अरति तथा तोद ( दर्द ) और पाक ( पक जाना ) इन उपद्रवोंको करके फैले तो उसे विसर्प नामक कुष्ठ कहते हैं ॥ २२ ॥

---

( श्लो० २० ) गुरूणि च इत्यत्र स्थूलारुंषि इति वा पाठः । अरूंषि व्रणाः स्थूलानि स्थूलमूलानि त्वक्शब्दोत्र कोचभेदस्वपनशब्दैः सह प्रत्येकं सबध्यते यथा त्वक्कोचः त्वग्भेदः त्वक्स्वापः इति। महत्पूर्वयुते महाकुष्ठाख्ये ॥ ( श्लो० २१ ) तलेषु हस्तपादतलेषु । ( श्लो० २२ ) विसर्पवदिति–अत्रोक्तविसर्पाख्यकुष्ठस्य वक्ष्यमाणविसर्परोगस्य चिरविसर्पणं शीघ्रविसर्पणं ततो भेदः ( इति डल्लनः ) ॥

शनैः शरीरे पिडकाः स्रवंत्यः सर्पंति यास्तं परिसर्पमाहुः ॥
कंड्वन्वितं श्वेतमपायि सिध्मं विद्यात्तनु प्रायश ऊर्द्ध्वकाये ॥ २३ ॥
राज्योतिकंड्वर्तिरुजः सुरूक्षा भवंति गात्रेषु विचर्चिकायाम् ॥
कंडुमती दाहरुजोपजन्मा विपादिका पादगतेयमेव ॥ २४ ॥

जो स्रावयुक्त फुन्सी धीरे धीरे शरीरमें फैलने लगे उसे परिसर्पनामक कुष्ठ कहते हैं । जिसमें खाजयुक्त सुपेद और कष्टरहित चकदे प्रायः ऊपरके शरीर ( छाती, ग्रीवा, मुखादि ) पर हों उसे सिध्मनामक कुष्ठ कहते हैं ॥ २३ ॥ जो गात्र ( हाथ, पांव आदि ) में खाज और दर्दयुक्त रूखी रेखासी ( तरेडेंसी ) हो जायँ उसे विचर्चिका नामक कुष्ठ कहते हैं और यदि ये रेखा दाह और पीडायुक्त केवल पैरोंहीमें हों तो उसेही विपादिका ( बिंवाई ) कहतेहैं ( वास्तवमें विचर्चिका और विपादिका एकही हैं ) ॥ २४ ॥

यत्स्रावि वृत्तं घनमुग्रकंडु तत्स्निग्धकृष्णं किटिभं वदंति ॥ स्रावा-
वकंडूपरिदाहवद्भिः पामाणुकाभिः पिडकाभिरूह्या ॥ २५ ॥ स्फोटैः
सदाहैरिति सैव कच्छूःस्फिक्पाणिपादप्रभवैर्निरूप्या ॥ कंडन्विता
या पिडका शरीरे संस्रावहीना रकसोच्यते सा ॥ २६ ॥

जो स्रावयुक्त चकदा गाढा हो और जिसमें उग्र खाज हो तथा चिकना और काला हो उसे किटिभ कुष्ठ कहते हैं । तथा जिसमें स्राव और खाज तथा दाह युक्त छोटी २ फुन्सियां उठें उसे पामा ( पांव खारिश या खुजली ) कहते हैं ॥ २५ ॥ और जिसमें अतिदाहयुक्त फालक ( फोडे ) फूले और हाथ पैरोंमें हों उसे कच्छू कहते हैं ( यहभी पामाका भेद है इसमें खाज कम होती है और दाह अधिक ) तथा जो शरीरपर नन्ही २ अलाईसी खाजयुक्त और स्रावरहित हों उसे रकसा ( सूखी खाज ) नामक कुष्ठ कहतेहैं ॥ २६ ॥

अरुः ससिध्मं रकसा महच्च यच्चैककुष्ठं कफजान्यमूनि ॥ वायोः
प्रकोपात्परिसर्पमेकं शेषाणि पित्तप्रभवाणि विद्यात् ॥ २७ ॥

स्थूलारुष्क, सिध्म, रकसा महत्कुष्ठ तथा एककुष्ठ ये कफकी उत्कृष्टतासे होतेहैं और वायुकी उत्कृष्टतासे एक परिसर्प होताहै और शेष सब पित्तकी उत्कृष्टतासे होतेहैं ॥ २७ ॥

---

( श्लो० २३ ) अपायि अकष्टकारि । सिध्मकुष्ठ द्विविध सिध्म पुष्पिका च सिध्मस्य सुखसाध्यत्वात् सुश्रुते क्षुद्रकुष्ठे पठितः पुष्पिकासिध्मस्य दुःसाध्यत्वाच्चरके महाकुष्ठे पठितः इत्यदोषः ( इति डल्लनः ) ॥ ( श्लो० २४ ) राज्यो रेखाः इयमेवं पादगता विपादिका ॥ ( श्लो० २६ ) स्फिक् नितवः कच्छूः पामाभेदः ॥ ( श्लो० २७ ) श्लोकोय कल्पितः इति गयदासाचार्यः यस्मादेककुष्ठं महाकुष्ठं च वातादि-भिर्भवति न कफात् इत्यादि ॥

**किलासमपि कुष्ठविकल्प एव तात्रविधं वातेन पित्तेन श्लेष्मणा चेति। कुष्ठकिलासयोरंतरं त्वग्गतमेव किलासमपरिस्त्रावि च॥२८॥ तद्वातेन मंडलमरुणं परुषं परिध्वंसि च पित्तेन पद्मपत्रप्रतीकाशं सपरिदाहं च श्लेष्मणापि श्वेतं स्निग्धं वहलं कंडूमच्च ॥ २९ ॥ तेषु संवद्धमंडलमंतर्जातं रक्तरोम चासाध्यमग्निदग्धं च ॥ ३० ॥**

किलासभी कुष्ठहीका एक भेद है वह किलास तीन प्रकारका होता है वायुसे, पित्तसे, कफसे । कुष्ठ और किलासमें अंतर यही है कि जो त्वचाहीमें प्राप्त हो और नहीं स्रवता हो वह किलास और जो अन्य धातुओंमें व्याप्त हो तथा स्रावयुक्त हो तो किलास कुष्ठही है ॥ २८ ॥ वायुसे हो तो चकदे लाल और खरदरे और दुष्ट होतेहैं, पित्तसे हो तो कमलपत्रके तुल्य और दाहयुक्त होतेहैं तथा कफसे हो तो श्वेत, चिकने, मोटे और खाजयुक्त चकदे होतेहैं ॥ २९ ॥ इनमेंसे जो बहुतसे चकदे आपसमें मिलेहुए हों और चकदोंके भीतर लाल रोम ( रूँगटे ) हों तो वह किलास ( चित्रकुष्ठ ) असाध्य होताहै तथा जो अग्निसे जलकर सुपेद चकदा स्थिर होजाय वहभी असाध्यही होजाताहै ॥ ३० ॥

**कुष्ठेषु रुक्त्वक्संकोचस्वापस्वेदशोफभेदकौण्यस्वरोपघाताः वातेन। पाकावदरणांगुलिपतनकर्णनासाभंगाक्षिरागसत्त्वोत्पत्तयः पित्तेन। कंडूवर्णभेदशोफास्रावगौरवाणि श्लेष्मणा ॥ ३१ ॥**

कुष्ठोंमें चीस, त्वचाका सुकड़ जाना, स्पर्शज्ञान न रहना, पसीना होना, शोथ, भेदन हो जाना, कौण्य ( नष्टकारिता ) तथा स्वर बिगडजाना ये उपद्रव वायुसे होतेहैं और पक जाना, फट जाना, अंगुली गलकर गिर जाना, कान और नाक गल जाना, नेत्र अति लाल होना ये पित्तसे होतेहैं । तथा खाज, वर्णमें भेद, सूजन और स्राव बंद होना और भारीपन ये कफसे होते हैं ॥ ३१ ॥

**तत्रादिवलप्रवृत्तं पौंडरीकं काकणं चासाध्यम् ॥३२॥ भवंति चात्र-**

---

( गद्य २८ ) किलासश्चित्रसंज्ञः कुष्ठविकल्पः विकल्पात् कुष्ठः ॥ ( गद्य २९ ) परिध्वंसि दुष्टं वहलं स्थूलम् ॥ ( गद्य ३० ) सवद्धमंडलमित्यत्र सभिन्नमंडलमिति वा पाठांतरम् । अंतर्जातं रक्तरोम चेति-अंतः मध्ये जातानि रक्तानि लोमानि यस्मिन् तदसाध्यमिति ॥ ( गद्य ३१ ) कौण्य नष्टकारित्व । वाते स्वेदस्तु अस्वेदनिषेधार्थः व्याधिस्वभावात् स्वेदः स्यादित्यपरे।सत्त्वोत्पत्तयः कृमीणां जन्मानि(इति डल्लनः)॥ ( गद्य ३२ ) आदिवलप्रवृत्तमिति पूर्वोक्तसूत्रस्थानस्य चतुर्विंशाध्याये वर्णितम्। यथा-तत्रादिवलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणितदोषान्वयाः कुष्ठार्शःप्रभृतयस्तेपि द्विधा मातृजाः पितृजाश्च ॥

इनमेंसे आदिबलप्रवृत्त कुष्ठ ( शुक्र शोणितदोषज अर्थात् जो माता पिताके शोणित,शुक्रके दोषसे हों)तथा पौंडरीक और काकण ये असाध्य हैं॥३२॥यहां श्लोकहैं-

**यथा वनस्पतिर्जातः प्राप्य कालप्रकर्षणम् ॥ अंतर्भूमिं विगाहेत मूलैर्वृष्टिविवर्द्धितैः ॥ ३३ ॥ एवं कुष्ठं समुत्पन्नं त्वचि कालप्रकर्षतः ॥ क्रमेण धातून् व्याप्नोति नरस्याप्रतिकारिणः ॥ ३४ ॥**

जैसे उत्पन्न हुआ वृक्ष समयकी अधिकता पाकर वर्षासे उसकी जड़ बढ २ कर भीतरही भीतर पृथ्वीमें फैल ( कर बलवान् हो ) जाता है ॥ ३३ ॥ इसी प्रकारसे त्वचामें उत्पन्न हुआ कुष्ठभी प्रतीकार न करनेवाले मनुष्योंके कालकी अधिकताके कारण क्रमसे धातुओंमें व्याप्त होजाता है ॥ ३४ ॥

### धातुगत कुष्ठलक्षण ।

**स्पर्शहानिः स्वेदनत्वमीषत्कंडूश्च जायते ॥ वैवर्ण्यं रूक्षभावश्च कुष्ठे त्वचि समाश्रिते ॥ ३५ ॥ त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्याऽभिप्रवर्तनम् ॥ कंडूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रिते ॥ ३६ ॥ बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडकोद्गमः ॥ तोदः स्फोटः स्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ ३७ ॥**

त्वचा ( चर्म ) में कुष्ठ प्राप्त हो तो स्पर्श न सुहावे, पसीना हो, कुछ २ खाज हो, त्वचाका वर्ण पलट जाय तथा रूखापन होजावे ॥ ३५ ॥ यदि रुधिरमें प्राप्त हुआ कुष्ठ हो तो त्वचामें स्वाप हो, रोम खडे होजायँ, पसीना बहुत आवे, खाज हो और दुर्गंधता होजाय ॥ ३६ ॥ कुष्ठ मांसमें प्राप्त हो तो मोटे २ चकदेसे होजायँ मुँह सूखासा रहे, ( त्वचामें ) कडापन होजाय, फुन्सी पैदा होने लगें, दरद हो, त्वचा फटने लगे और चकद्दे स्थिर ( कठोर ) पड जायँ ॥ ३७ ॥

**दौर्गंध्यमुपदेहश्च पूयोथ क्रिमयस्तथा ॥ गात्राणां भेदनं चापि कुष्ठे मेदःसमाश्रिते ॥ ३८ ॥ नासाभंगोऽक्षिरागश्च क्षतजे कृमिसंभवः ॥ भवेत्स्वरोपघातश्च ह्यस्थिमज्जसमाश्रिते ॥३९॥ कौण्यं गतिक्षयोंगानां संभेदः क्षतसर्पणम् ॥ शुक्रस्थानगते लिंगं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ ४० ॥**

---

(श्लो०३३) कालप्रकर्षणं कालविलम्बम् ॥ (श्लो०३६) विपूयको दुर्गंधता ॥ (श्लो०३७) बाहुल्यं स्थूलमंडलता । स्फोटः त्वचः स्फुटनम् । स्थिरत्वं कठिनमंडलता ॥ (श्लो०३८) उपदेहः उष्णगात्रता ॥

मेदमें प्राप्त हुआ कुष्ठ हो तब दुर्गंधता हो, देह गरम रहे, पीब निकलने लगे और कृमि होजायँ तथा अंगोंका भेदन हो ( शरीर फटने लगे ) ॥ ३८ ॥ अस्थि और मज्जामें प्राप्त हुआ कुष्ठ हो तब नासिका गलकर भंग होजाय, नेत्र अति लाल रहें, जहां छोटाभी घाव हो वहां कृमि पैदा हों और स्वर बिगड जाय ॥ ३९ ॥ वीर्यमें प्राप्त हुआ कुष्ठ हो तब कौण्य ( नष्टकारिता ) हो, चलने फिरनेका सामर्थ्य न रहे, अंग फटने लगें और जो घाव हो वही फैलने लगे तथा पहले जो त्वचासे लेकर मज्जापर्यंत धातुओंमें प्राप्त कुष्ठके लक्षण कहे वेभी हों ॥ ४० ॥

मातृज पितृज कुष्ठ।

**स्त्रीपुंसयोः कुष्ठदोषा दुष्टशोणितशुक्रयोः ॥**
**यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ४१ ॥**

जिन स्त्री तथा पुरुषोंके कुष्ठ होता है उनका शोणित और वीर्य कुष्ठदोषसे दूषित होता है इससे उनसे उत्पन्न हुए संतानकोभी कुष्ठयुक्तही समझना चाहिये ( प्रायः कुष्ठियोंकी संतानकोभी काल पाकर कुष्ठ होही जाता है ) ॥ ४१ ॥

कुष्ठकी साध्यासाध्यता।

**कुष्ठमात्मवतः साध्यं त्वग्रक्तपिशिताश्रितम् ॥**
**मेदोगतं भवेद्याप्यमसाध्यमत उत्तरम् ॥ ४२ ॥**

जितेंद्रिय और हित पथ्य करनेवाले मनुष्यका त्वचा, रक्त और मांसगत कुष्ठभी साध्य होता है और मेदोगत कुष्ठ याप्य होता है और इससे ऊपर अर्थात् अस्थि, मज्जा और शुक्रगत कुष्ठ सर्वथा असाध्यही होता है ॥ ४२ ॥

**ब्रह्मस्त्रीसज्जनवधपरस्वहरणादिभिः ॥ कर्मभिः पापरोगस्य प्राहुः कुष्ठस्य संभवम् ॥ ४३ ॥ म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातेऽपि गच्छति ॥ नातः कष्टतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्त्तितम् ॥ ४४॥**

ब्राह्मण, स्त्री, सज्जन ( महात्मा ) ऐसे मनुष्योंके मारने तथा पराया द्रव्य हरलेना इत्यादि पापोंसे तथा अन्य पापरोगोंके कर्मों करके शरीरमें कुष्ठरोग उत्पन्न होता है ऐसे ऋषि वर्णन करते हैं ॥ ४३ ॥ यदि कोई मनुष्य कुष्ठरोगसे मर जाता है तो दूसरे जन्म लेनेपरभी उसके संग जाता है और उसके शरीरमें होजाता है इस कारण जैसा कठिन ( दुःसाध्य अतिकष्टदायक बुरा ) कुष्ठका रोग है उससे अधिक कोई रोगभी कष्टतर ( अति कष्टदायक बुरा ) नहीं है ( अर्थात् कुष्ठ रोगके

( श्लो० ४४ ) कुष्ठिनः पापकर्मणोऽक्षीणत्वात् जन्मान्तरेपि गच्छतीति निश्चीयते अतोयं दीर्घरोगाणां प्रधानतमो रोगः ॥

परमाणु ऐसे स्थिर हो जाते हैं कि आत्मासे संबद्ध हो दूसरे जन्ममेंभी पापपुण्यकी भांति संग जाते हैं क्योंकि यह व्याधि प्रायः उग्र पापोंसे होतीहै इससे जन्मान्तर तक संग रहती है ) ॥ ४४ ॥

**आहाराचारयोः प्रोक्तामास्थाय महतीं क्रियाम् ॥ औषधीनां विशिष्टानां तपसश्च निषेवणात् ॥ यस्तेन मुच्यते जन्तुः स पुण्यां गतिमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥**

आहार, विहार और आचार तथा विशेष औषधोंकी यथोक्त महती क्रियाओंको धारण करके ( अर्थात् यथोक्त बडी २ चिकित्साकी क्रिया और पथ्यादि करके ) तथा तप ( दान पुण्य, ईश्वराराधन आदि ) के सेवन करनेसे जो इस कुष्ठरोगसे छूट जाय वह पुण्यगतिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥

### कुष्ठादिका संक्रामकत्व।

**प्रसंगाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् ॥ सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४६ ॥ कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ॥ औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामंति नरान्नरम् ॥ ४७ ॥**

**इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥**

प्रसंग करनेसे, शरीरका स्पर्श करनेसे, रोगीके श्वासकी वायु लग जानेसे, साथ भोजन करनेसे, एक खाट तथा बिछौनेपर सोनेसे, एक आसनपर बैठनेसे, रोगीके पहनेहुए वस्त्र, माला आदिके पहरनेसे तथा रोगीका उच्छिष्ट चंदनादि लगानेसे कुष्ठका रोग तथा एक प्रकारका ज्वर और शोष ( शरीर सूखनेका रोग ), नेत्रका अभिष्यंद रोग और औपसर्गिक रोग ( शीतलारोग, मसूरिका आदि ) ये एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें प्रवेश कर जातेहैं( अर्थात् दूसरों के भी होजातेहैं) ४६।४७॥

कुष्ठको सामान्यतासे डाक्टरीमें लेपरा (Leprosy) और यूनानीमें जुजाम कहते हैं उनके यहां और २ प्रकारसे उनके भेद हैं विसर्पको डाक्टरीमें एरीसिफल और यूनानीमें सुर्खवाद कहते हैं दादको डा० हरपीज और यूनानीमें कोवा तथा पामाको डा० में वेज और यू० हसफ कहतेहैं तथा किलास श्वित्र ( श्वेत ) कुष्ठको कहतेहैं और यू० बरस कहतेहैं इत्यादि ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

## षष्ठोऽध्यायः ६.

### अथातः प्रमेहनिदानं व्याख्यास्यामः।

अब यहांसे प्रमेहके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

दिवास्वप्नाव्यायामालस्यप्रसक्तं शीतस्निग्धमधुरमद्यद्रवान्नपान-सेविनं पुरुषं जानीयात्प्रमेही भविष्यतीति॥ १॥ तस्य चैवं प्रवृत्तस्यापरिपक्वा एव वातपित्तश्लेष्माणो यदा मेदसा सहैकत्वमुपेत्य मूत्रवाहिस्रोतांस्यनुसृत्याधो गत्वा वस्तेर्मुखमाश्रित्य निर्भिद्यंते तदा प्रमेहाञ्जनयंति ॥ २ ॥

दिनको सोनेवाले, परिश्रम ( शारीरक मेहनत ) न करनेवाले, अत्यंत आलस्यमें आसक्त होनेवाले तथा शीतल, चिकना, मधुर पदार्थ अत्यंत खानेवाले, अधिक मद्य ( तथा नशेकी वस्तु खाने ) पीने वाले और अधिक पतले पदार्थही विशेष भोजन करनेवाले तथा पतले शरबत दुग्ध तक्रादि अधिक नित्य पान करनेवाले पुरुषको जान लेना चाहिये कि यह प्रमेहरोगसे रोगी होगा॥ १॥ऊपर लिखे जैसे आहार विहारमें प्रवृत्त मनुष्यके विना परिपाके हुएही वायु, पित्त, कफ जब मेद धातुके संग मिल जातेहैं तब मूत्रवाही स्रोतों ( मूत्र उतारनेवाली शिराओं ) में अनुसरण करके नीचे जाकर वस्तिके मुखमें समाश्रित होकर बाहर निकलने लगतेहैं तब प्रमेह रोग उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

तेषां तु पूर्वरूपाणि हस्तपादतलदाहः स्निग्धपिच्छलगुरुता गात्राणां मधुरशुक्लमूत्रता तन्द्रा सादः पिपासा दुर्गन्धश्च श्वासस्तालुगलजिह्वादन्तेषु मलोत्पत्तिर्जटिलीभावः केशानां वृद्धिश्च नखानाम् ॥ ३ ॥ तत्राविलप्रभूतमूत्रलक्षणाः सर्वे एव प्रमेहाः। सर्वे एव सर्वदोषसमुत्थाः सह पिडकाभिः ॥ ४ ॥

प्रमेहोंके पूर्वरूप ये होतेहैं हथेली और तलवे गरम रहें और शरीरमें चिकनापन, गाढापन, भारीपन हो मूत्र मधुर और सुपेद हो, तंद्रा ( आंखें झपीसी रहें ) और साद ( थकानसी रहे ) तथा तृषा विशेष हो और श्वास दुर्गंधयुक्त हो तथा तालु, गला, जीभ, दांत इनमें मैल अधिक पैदा हो और बाल ( मैले और उलझेसे हों ) तथा नाखून बहुत बढें ॥ ३ ॥ और मलिन ( गँदला ) तथा अतिमूत्र होना सब प्रमेहोंका मुख्य लक्षण है और सारेही प्रमेह सब दोषोंसे उत्पन्न हुए तथा पिडिकाओंसे युक्त होतेहैं ( जैसे कुष्ठ सभी सर्वदोषज होकर जिसकी उत्कर्षता होतीहै वह उसीके नामसे प्रसिद्ध होता है वैसेही इसेभी समझो ) ॥ ४ ॥

---

( गद्य २ ) निर्भिद्यते निःसरतीत्यर्थः अपरे तु अतिद्रवत्वं यांतीत्याहुः ( इति डल्हनः ) ॥

तत्र कफादुदकेक्षुसुरासिकताशनैर्लवणपिष्टसांद्रशुक्रफेनमेहाः दश साध्या दोषदूष्याणां समक्रियत्वात् ॥५॥ पित्तान्नीलहारिद्राम्लक्षारमंजिष्ठाशोणितमेहाः षट् याप्या दोषदूष्याणां विषमक्रियत्वात् ॥ ६ ॥ वातात्सर्पिर्वसाक्षौद्रहस्तिमेहाश्चत्वारो साध्यतमा महात्ययिकत्वात् ॥ ७ ॥

तहां कफसे उत्पन्न हुए उदकप्रमेह, इक्षुप्रमेह, सुराप्रमेह, सिकताप्रमेह, शनैःप्रमेह, लवणप्रमेह पिष्टप्रमेह, सांद्रप्रमेह, शुक्रप्रमेह, और फेनप्रमेह, ये दश साध्य हैं क्योंकि इनमें दोष ( कफ ) और दूष्य ( वसादि ) की क्रिया ( चिकित्सा ) सम अर्थात् सीधी है ( कफप्रमेहमें कफनाशक रूक्षक्रिया ठीक वसा आदिकी नाशक होती है)॥५॥ पित्तसे उत्पन्न हुए नीलप्रमेह, हारिद्रप्रमेह, अम्लप्रमेह, क्षारप्रमेह, मंजिष्ठाप्रमेह और शोणितप्रमेह ये छः याप्य हैं क्योंकि दोष ( पित्त ) और दूष्य ( वसाआदि) की क्रियामें विषमता है अर्थात् जो क्रिया ( शीतक्रिया ) पित्तको शांत करनेवाली हो वह वसा आदिको बढानेवाली होतीहै ॥ ६ ॥ वायुसे उत्पन्न हुए सर्पिःप्रमेह, वसाप्रमेह, क्षौद्रप्रमेह और हस्तिप्रमेह ये चार अत्यंत असाध्य हैं क्योंकि इनकी क्रियामें अत्यंत कठिनता है अर्थात् प्रधान दोष ( वायु ) के नाशकी स्निग्धक्रिया प्रमेहवर्द्धिनी स्वभावहीसे होती है तथा प्रमेहनाशक रूक्षक्रिया वायुको बढानेवाली होतीहै इसीसे ये असाध्य हैं ॥ ७ ॥

तत्र वातपित्तमेदोभिरन्वितः श्लेष्मा श्लेष्मप्रमेहाञ्जनयति वातकफशोणितमेदोभिरन्वितं पित्तं पित्तप्रमेहान्कफपित्तवसामज्जमेदोभिरन्वितो वायुर्वातप्रमेहान् ॥ ८ ॥

इनमेंसे वायु, पित्त और मेदसे मिलाहुआ कफ ( प्रधान होकर ) कफके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है। और वायु, कफ, रुधिर और मेदसे मिला हुआ पित्त ( प्रधान होकर ) पित्तके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है तथा कफ, पित्त, वसा, मज्जा और मेदसे मिला हुआ वायु ( प्रधान होकर ) वायुके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है ॥ ८ ॥

---

( गद्य ५ । ६ । ७ ) प्रमेहेष्वपि कुष्ठवत् ग्रंथांतरे कुत्रचिन्नामांतरम् । तथाह चरकः—उदकमेहश्चेक्षुवालिकारसमेहश्च सान्द्रमेहश्च सांद्रप्रसादमेहश्च शुक्लमेहश्च शुक्रमेहश्च शीतमेहश्च सिकतामेहश्च शनैर्मेहश्च लालामेहश्चेति दश कफजाः । पित्तजास्तु क्षारमेहः कालमेहः नीलमेहः लोहितमेहः मंजिष्ठमेहः हारिद्रमेहश्चेति षट् । वातजास्तु वसामेहो मज्जमेहो हस्तिमेहो मधुमेहश्चेति चत्वारः ॥ दोषदूष्याणामिति प्रमेहे कफपित्तवायवो दोषाः रसमांसमेदोमज्जशुक्रौजःप्रभृतयो दूष्याः ॥

तत्र श्वेतमवेदनमुदकसदृशमुदकमेही मेहति । इक्षुरसतुल्यमिक्षुमेही सुरामेही सुरातुल्यम् । सरुजं सिकतानुविद्धं सिकतामेही । शनैः सकफं मूत्रं शनैर्मेही । विशदं लवणतुल्यं लवणमेही । हृष्टरोमा पिष्टरसतुल्यं पिष्टमेही । आविलं सांद्रं सांद्रमेही । शुक्रतुल्यं शुक्रमेही । स्तोकं स्तोकं सफेनं फेनमेही मेहति ॥ ९ ॥

( कफके जो १० प्रमेह हैं ) उनमेंसे सुपेद, विना पीडाके जलतुल्य मूत्र होनेसे १ उदकप्रमेह होता है । २ इक्षुप्रमेहवालेका मूत्र इक्षु ( ऊख ) के रसके तुल्य होता है । ३ सुराप्रमेहके रोगीका मूत्र सुरा ( मदिरा ) के समान होता है । ४ सिकताप्रमेहवालेका मूत्र पीडा सहित और छोटी २ सिकतासे मिला हुआ उतरता है।५शनैः प्रमेहवालेका मूत्र थोडा२कई वार और गँदला उतरता है।६लवण प्रमेहवालेका मूत्र लवणके जलके तुल्य और उज्ज्वल होता है । ७ पिष्टप्रमेहवालेके शरीरपर रोमांच होते हैं और उसका मूत्र पिट्ठीके जलके समान होता है । ८ सांद्रप्रमेहवालेका गँदला और गाढा मूत्र होता है । ९ शुक्र प्रमेहवालेके मूत्रमें शुक्रके तुल्य पदार्थ होता है । १० फेनप्रमेहवालेका मूत्र फेन ( झागयुक्त ) होता है और थोडा २ उतरता है ॥ ९ ॥

अत ऊर्द्ध्वं पित्तनिमित्तान्वक्ष्यामः ॥ १० ॥

यहांसे अगाडी पित्तजनित प्रमेहोंके लक्षण कहते हैं ॥ १० ॥

सफेनमच्छं नीलं नीलमेही मेहति । सदाहं हरिद्राभं हरिद्रामेही । अम्लरसगन्धमम्लमेही । स्रुतक्षारप्रतिमं क्षारमेही । मञ्जिष्ठोदकप्रकाशं माञ्जिष्ठमेही । शोणितप्रकाशं शोणितमेही मेहति ॥ ११ ॥

नीलप्रमेहवालेका मूत्र झागयुक्त, स्वच्छ, नील वर्ण होता है । और हरिद्राप्रमेह वालेका मूत्र हलदीके तुल्य ( पीला ) होता है और उसमें दाह भी होता है अर्थात् मूत्र जलनयुक्त होता है । अम्लप्रमेहवालेके मूत्रमें अम्लरस ( खट्टापन ) होता है और खटाईकेसी गंध होती है । क्षारप्रमेहवालेका मूत्र धुलेहुए क्षारके तुल्य होता है और मांजिष्ठप्रमेहवालेका मूत्र मँजीठके काथके तुल्य लाल होता है । और शोणित प्रमेहवालेका मूत्र रुधिरके तुल्य अति लाल होता है ( अथवा शोणितही मूत्रमें आता है ) ॥ ११ ॥

अत ऊर्द्ध्वं वातनिमित्तान्वक्ष्यामः ॥ १२ ॥

यहांसे अगाडी वातजनित प्रमेहोंके लक्षण कहते हैं ॥ १२ ॥

सर्पिःप्रकाशं सर्पिर्मेही मेहति। वसाप्रकाशं वसामेही । क्षौद्रसवर्णं क्षौद्रमेही। मत्तमातंगवदनुप्रबद्धं हस्तिमेही मेहति ॥१३॥

घृतके तुल्य सर्पिःप्रमेहवालेका मूत्र होता है। और वसाप्रमेहवालेका वसा (चरबीका स्नेह) जैसा मूत्र होता है। और क्षौद्रप्रमेहवालेका मूत्र शहतके वर्णका होता है और उसमें शहततुल्यही रस (माधुर्य) होता है। हस्तिप्रमेहवालेका मूत्र मदोन्मत्त हाथीके मदके समान होता है॥ १३॥

कफप्रमेहके उपद्रव।

मक्षिकोपसर्पणमालस्यं मांसोपचयः प्रतिश्यायः शैथिल्यारोचकाविपाकाः कफप्रसेकच्छर्दिनिद्राकासश्वासाश्चेति श्लेष्मजानामुपद्रवाः॥ १४॥

मूत्रपर मक्षिका (मक्खियाँ) आकर बैठना, आलस्य, मांसकी वृद्धि, प्रतिश्याय, शिथिलता, अरुचि, भोजनका परिपाक न होना, मुँहसे राल बहना, वमन होना, निद्रा अधिक आना, खाँसी होना, श्वास होना ये कफप्रमेहके उपद्रव हैं॥१४॥

पित्तप्रमेहके उपद्रव।

वृषणयोरवदरणं वस्तिभेदो मेढ्रतोदो हृदि शूलमम्लीकाज्वरातीसारारोचकाः वमथुः परिधूमायनं दाहो मूर्च्छा पिपासा निद्रानाशः पांडुरोगः पीतविण्मूत्रत्वं चेति पैत्तिकानाम्॥ १५॥

वृषणोंमें फूटन, वस्तिस्थानमें भेदनकीसी पीडा, मेढ्र इंद्रियमें दरद, हृदयमें शूल, खट्टी डकारें आना, तप, अतिसार, अरुचि, वमन, भीतर धूवाँसा उठना, दाह, मूर्च्छा, तृषा, निद्रा नहीं आना, पांडुरोग तथा मलमूत्रका पीला होना ये पित्तप्रमेहके उपद्रव हैं॥ १५॥

वातप्रमेहके उपद्रव।

हृद्ग्रहो लौल्यमनिद्रा स्तंभः कंपः शूलं बद्धपुरीषत्वं चेति वातजानाम्॥ १६॥

हृदय जकडासा रहना, चपलता, निद्रा न आना, शरीर अकड़जाना, शरीर कांपना, शूल होना और मलका बद्ध होजाना ये वातप्रमेहके उपद्रव हैं॥ १६॥

एवमेते विंशतिः प्रमेहाः सोपद्रवा व्याख्याताः॥ १७॥

इस प्रकार ये बीस प्रमेह उपद्रवोंसहित वर्णन किये गये हैं॥ १७॥

प्रमेहपिडका।

तत्र वसामेदोभ्यामभिपन्नशरीरस्य त्रिभिर्दोषैश्चानुगतधातोः प्रमेहिणो दश पिडकाः जायंते । तद्यथा शराविका सर्षपिका कच्छपिका जालिनी विनता पुत्रिणी मसूरिका अलजी विदारिका विद्रधिका चेति ॥ १८ ॥

इन प्रमेहवालोंमेंसे जिनका शरीर वसा और चरबीसे व्याप्त (व्यापन्न) है और जिनकी धातु तीनों दोषोंके अनुगत होरही हो उनके दश प्रकारकी प्रमेहपिडका उत्पन्न होजाती हैं जैसे १ शराविका, २ सर्षपिका, ३ कच्छपिका, ४ जालिनी, ५ विनता, ६ पुत्रिणी, ७ मसूरिका, ८ अलजी, ९ विदारिका, १० विद्रधिका ॥ १८॥

प्रमेहपिडकाके लक्षण।

शरावमात्रा तद्रूपा निम्नमध्या शराविका ॥ गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥ १९ ॥ सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता ॥ २० ॥ महती पिडका नीला पिडका विनता स्मृता ॥ महत्यल्पान्विता ज्ञेया पिडका सा तु पुत्रिणी ॥ २१ ॥ मसूरसमसंस्थाना ज्ञेया सा तु मसूरिका ॥ रक्ता सिता स्फोटवती दारुणा त्वलजी भवेत् ॥२२॥ विदारीकंदवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ॥ विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका बुधैः ॥ २३ ॥

शरावेके समान और शरावेके आकार बीचमेंसे नीची ऐसी पिडकाको शराविका कहते हैं, सुपेद सरसोंके आकार और उसीके प्रमाण सर्षपिका होती है ॥ ॥ १९ ॥ जो दाहयुक्त हो और कछवेके समान हो उसे कच्छपिका कहते हैं, और जिसमें तीक्ष्ण दाह हो और मांसके जालसे आच्छादित हो उसे जालिनी कहते हैं ॥ २० ॥ जो पिडका बडी हो, नीलवर्ण हो वह विनता नाम पिडका होती है । तथा जो एक बडी पिडका हो और उसके आस पास छोटी छोटी अनेक हों तो वह पुत्रिणी कहलाती है ॥ २१ ॥ जो मसूरके समान हो वह मसूरिका कहलाती है । तथा जो लाल सुपेद फालकेवाली दारुण पिडका हो उसे अलजी कहते हैं ॥ २२ ॥ जो विदारीकंदके समान फैली हुई गोल हो, कडी हो वह विदारिका है । तथा जिसमें विद्रधिके लक्षण हों वह वैद्योंने विद्रधिका नाम पिडका कही है २३॥

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ॥ २४ ॥

जिनको जिस २ प्रधान दोषका प्रमेह होता है उनको उसही दोषकी ये प्रमेह-पिडका होती हैं जैसे कफप्रमेहमें कफपिडका और पित्तप्रमेहमें पित्तपिडका ऐसेही वातप्रमेहमें वातपिडका होती हैं ॥ २४ ॥

पिडकाकी असाध्यता ।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मणि चोत्थिताः ॥
सोपद्रवा दुर्बलस्य पिडकाः परिवर्जयेत् ॥ २५ ॥

गुदा, हृदय, शिर, बाहुमूल, पीठ तथा अन्य मर्मस्थानोंमें उठी हुई प्रमेहपिडका और उपद्रवोंसहित दुर्बल मनुष्यकी पिडका त्यागने योग्य ( असाध्य ) हैं ॥ २५ ॥

वातप्रमेहकी असाध्यता ।

कृत्स्नं शरीरं निष्पीड्य मेदोमज्जवसायुतः ॥
अधः प्रक्रमते वायुस्तेनासाध्यास्तु वातजाः ॥ २६ ॥

समस्त शरीरको निचोडकर मेद, मज्जा और वसासहित वायु नीचे ( मूत्रमार्गकी ओर ) संक्रमण करता है इस कारण वातजनितप्रमेह असाध्य होते हैं ॥ २६ ॥

प्रमेहका परिज्ञान ।

प्रमेहपूर्वरूपाणामाकृतिर्यत्र दृश्यते ॥ किंचिच्चाप्याधिकं मूत्रं तं प्रमेहिणमादिशेत् ॥ २७ ॥ कृत्स्नान्यर्द्धानि वा यस्मिन् पूर्वरूपाणि मानवे ॥ प्रवृत्तमूत्रमत्यर्थं तं प्रमेहिणमादिशेत् ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यके प्रमेहके पूर्वरूपोंकी आकृति ( दंतादिपर मल, हथेली, तलवे जलना आदि ) दीखे और कुछभी अधिक मूत्र उतरने लगे तो उस मनुष्यको प्रमेहका रोगी जानलेना चाहिये ॥२७॥ जिस मनुष्यमें समस्त पूर्वरूपके लक्षण हों अथवा आधे ही लक्षण हों परन्तु अधिक मूत्र आवे तो उस मनुष्यको प्रमेहका रोगी जानना चाहिये ॥ २८ ॥

पिडकापीडितं गाढमुपसृष्टमुपद्रवैः ॥ मधुमेहिनमाचष्टे स चासाध्यः प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥ स चापि गमनात्स्थानं स्थानादासनमिच्छति ॥ आसनाद्वृणुते शय्यां शयनात्स्वप्नमिच्छति ॥ ३० ॥

---

(श्लो०२४) "विना प्रमेहमप्येता जायते दुष्टमेदसः।तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वस्तुपरिग्रहः"(इति माधव.) ॥
( श्लो० २५ ) सोपद्रवा इति–"विट्कासमांससंकोचमोहहिक्कामदादयः । विसर्पमर्मसंरोधाः पिडकानामुपद्रवाः ॥" ( इति डल्हनः ) ॥

जो पुरुष पिडकासे अतिपीडित हो और प्रमेहके उपद्रवोंसे व्याप्त हो उसे मधुप्रमेह होगा ऐसा जानना और यह मधुप्रमेह असाध्य होता है ॥ २९ ॥ प्रमेहका रोगी चलनेकी अपेक्षा ठहरनेकी इच्छा किया करता है और ठहरने ( खडे होने ) से बैठजानेकी वांछा किया करता है और बैठे रहनेसे लेटना चाहता है और लेटनेसे फिर सो जानेकी इच्छा रखता है ॥ ३० ॥

**यथा हि वर्णानां पंचानामुत्कर्षापकर्षकृतेन संयोगविशेषेण शबलवभ्रुकपिलकपोतमेचकादीनां वर्णानामनेकेषामुत्पत्तिर्भवति एवमेव दोषधातुमलाहारविशेषेणोत्कर्षापकर्षकृतेन संयोगविशेषेण प्रमेहाणां नानाकारणं भवति ॥ ३१ ॥ भवति चात्र–**

जैसे पांच मुख्य रंगों ( सुपेद, हरे, काले, पीले और लाल ) के बहुत और थोडे मिलानेसे शबल ( चितकबरा ), बभ्रु ( नकुलई ), कपिल (सुनहरा ), कपोत ( फाकतई ) और मेचक ( सुरमई ) इत्यादि अनेक प्रकारके रंगोंकी उत्पत्ति होजातीहै इसी भांति दोष ( वायु, पित्त, कफ ) धातु ( रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र ) और मल तथा आहारविशेषके अधिक न्यूनादिके संयोग होनेसे प्रमेहोंके भी अनेक प्रकारके कारण ( रूप और भेद आदि ) होजाते हैं ॥ ३१ ॥ इस विषयमें श्लोक है–

**सर्वे एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ॥**
**मधुमेहत्वमायांति तदासाध्या भवंति हि ॥ ३२ ॥**

**इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥**

सबही प्रमेह प्रतिक्रिया ( उपाय ) नहीं करनेवाले पुरुषोंके बहुत समयतक रहनेसे मधुप्रमेह होजाते हैं और उस अवस्थामें वे असाध्य होजाते हैं। ( यूनानी हकीम इसे "जिरयान" कहतेहैं और डाक्टर "इस्प्रमीटोरिया" कहते हैं ) ॥ ३२ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवैद्यवि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

## सप्तमोऽध्यायः ७.

**अथात उदराणां निदानं व्याख्यास्यामः ।**

अब यहांसे अगाडी उदररोगोंके निदानकी व्याख्या करतेहैं ।

**धन्वंतरिर्धर्मभृतां वरिष्ठो राजर्षिरिन्द्रप्रतिमो बभूव ॥**
**ब्रह्मर्षिपुत्रं विनयोपपन्नं [illegible] श्रुतमन्वशासत् ॥ १ ॥**

राजर्षि, धार्मिकोंमें श्रेष्ठ ऐसे श्रीभगवान धन्वंतरिजी जो इन्द्रके समान प्रतापी हुए वे विनयसे प्राप्त हुए ब्रह्मर्षि ( विश्वामित्रके ) पुत्र अपने शिष्य सुश्रुतको ( इस-प्रकारके उदररोगोंके विषयमें ) शिक्षा देते भये ॥ १ ॥

उदररोगोंकी संख्या और हेतु ।

पृथक्समस्तैरपि चेह दोषैः प्लीहोदरं बद्धगुदं तथैव ॥ आगंतुकं सप्तममष्टमं च दकोदरं चेति वदंति तानि ॥ २ ॥ सुदुर्बलाग्नेरहिताशनस्य संशुष्कपूत्यन्ननिषेवणाद्वा ॥ स्नेहादिमिथ्याचरणाद्धि जंतोर्वृद्धिं गताः कोष्ठमभिप्रपन्नाः ॥ गुल्माकृतिव्यंजितलक्षणानि कुर्वंति घोराण्युदराणि दोषाः ॥ ३ ॥

उदररोग ८ प्रकारका होता है जैसे पृथक् २ दोषोंसे ( यथा १ वातोदर, २ पित्तोदर, ३ कफोदर, तथा समस्त दोषो ( सन्निपात ) से ४ सन्निपातोदर, ५ प्लीहोदर, ६ बद्धगुदोदर, ७ आगंतुक ( क्षतोदर परिस्राव्युदर ) और ८ आठवां दकोदर ( जलोदर ) इसप्रकार इनको उदररोग (अथवा जठररोग ) कहतेहैं॥२॥ अत्यंत दुर्बल जठराग्निवाला मनुष्य जो अहित भोजन करे अथवा सूखा वासी, सड़ा अन्न भोजन करे अथवा अयोग्य रीतिसे स्नेहपान, वमन, रेचनादिका आचरण करे तो उससे मनुष्यके कोष्ठ ( उदर ) में वात आदि दोष बढकर गुल्मके आकार और प्रगट लक्षणवाले ऐसे घोर उदररोगों ( वातोदर, प्लीहोदर, जलोदरादि ) को उत्पन्न करतेहैं ॥ ३ ॥

कोष्ठादुपस्नेहवदन्नसारो निःसृत्य दुष्टोऽनिलवेगनुन्नः ॥
त्वचः समुन्नम्य शनैः समंताद्विवर्द्धमानो जठरं करोति ॥ ४ ॥

उपस्नेहकी भांति ( जैसे नये घडेमेंसे चिकनाई बाहरकी तरफ झिर आतीहै तैसे ) कोष्ठ ( आमाशय ) से निकला हुआ दुष्ट अन्नका सार वायुकरके प्रेरित हुआ बाहरकी त्वचाको नम्र करके धीरे धीरे सब ओरसे बढकर उदररोग उत्पन्न करताहै ॥ ४ ॥

उदररोगोंका पूर्वरूप ।

तत्पूर्वरूपं बलवर्णकांक्षा वलीविनाशो जठरे हि राज्यः ॥ जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यो वस्तौ रुजः पादगतश्च शोफः ॥ ५ ॥

---

( श्लो० ४ ) उपस्नेहवदिति नवघटाद्युपस्नेहस्य यथा नूतनस्रोतोभिर्बहिः स्रावो दृश्यते तद्वत् कोष्ठादन्नसारो दुष्टः सन् त्वचः समुन्नम्य आनम्रीकृत्य समंताद्विवर्द्धमानः शनैर्जठररोगं करोति ( इति डल्हनः ) ॥

उदररोगोंका पूर्वरूप यह है कि, बल और वर्णकी कांक्षा ( अर्थात् नाश ) हो और उदरपरसे त्रिवली ( सलवटें ) जाती रहें अर्थात् पेट तनजाय और रोमोंकी पंक्ति उभर आवे और भोजन पचा या नहीं पचा इसका ज्ञान जाता रहे और विदाह हो तथा वस्तिस्थानमें पीडा हो और पावोंपर शोथ होजाय ॥ ५ ॥

वातोदर ।

संगृह्य पार्श्वोदरपृष्ठनाभीर्विवर्द्धते कृष्णशिरावनद्धम् ॥
सशूलमानाहवदुग्रशब्दं सतोदभेदं पवनात्मकं तत् ॥ ६ ॥

जिसमें पँसवाडे, पेट, पीठ और नाभि जकडेसे रहें और पेट फूले हुएपर काली नसें चमकें और शूल, अफरा हो, पेटमें शब्द ( गुड २ ) बहुत हो और दरद तथा भेदनकीसी पीडाके साथ बढे उसे वातोदर कहतेहैं ॥ ६ ॥

पित्तोदर ।

यच्चोषतृष्णाज्वरदाहयुक्तं पीतं शिरा यत्र भवंति पीताः ॥
पीताक्षिविण्मूत्रनखाननस्य पित्तोदरं तत्त्वचिराभिवृद्धि ॥ ७ ॥

जो चोष, तृषा, ज्वर और दाहसे युक्त हो पेटकी फुलावटमें पीलापन हो और उसमें नसेंभी पीली पीलीही चमकें तथा नेत्र, विष्ठा, मूत्र, नाखून और मुख पीले हो और शीघ्रही बढ जाय उसे पित्तोदर कहतेहैं ॥ ७ ॥

कफोदर ।

यच्छीतलं शुक्लशिरावनद्धं स्थिरं सितं शुक्लनखाननस्य ॥
स्निग्धं महच्छोफयुतं ससादं कफोदरं तच्च चिराभिवृद्धि ॥ ८ ॥

जिसका उदर शीतल हो और उसके फुलावपर सुपेद नसें चमकें, कडा हो, सुपेद रंग हो, उसके नख तथा मुखभी सुपेदही हों तथा स्निग्ध हों और अति शोफयुक्त हो, अंगोंमें ग्लानि हो और जो बहुत दिनोंमें वृद्धिको प्राप्त हो उसे कफोदर कहतेहैं ॥ ८ ॥

सन्निपातोदर ।

स्त्रियोन्नपानं नखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ॥ यस्मै प्रयच्छंत्यरयो गरांश्च दुष्टांबुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ ९ ॥ तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्वंति घोरं जठरं त्रिलिंगम् ॥ तच्छीतवाताभ्रसमुद्भवेषु विशेषतः कुप्यति दह्यते च ॥ १० ॥ स चातुरो

( श्लो० ८ ) ससादम् अंगग्लानियुतम् ॥ ( श्लो० ९ । १० । ११ ) स्त्रीग्रहणमत्रोपलक्षणं तेनान्येपि-

मूर्च्छेति संप्रसक्तं पांडुः कृशः शुष्यति तृष्णया च ॥ प्रकीर्तितं दूष्युदरं तु घोरं प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ ११ ॥

मूर्ख स्त्री अथवा खोटे पुरुष या शत्रु किसीको भोजनादिमें मिलाकर नाखून या किसी जीवका रोम या मूत्र या विष्ठा या आर्तवरक्त आदि खिलादें उससे अथवा शत्रु गर( कृत्रिमविष ) खिलादें उससे अथवा निकम्मा जल पीनेसे तथा दूषीविष सेवन करनेसे ॥ ९ ॥ शीघ्रही रक्त तथा वातादि दोष कुपित हो जाते हैं ये तीनों दोषोंके लक्षणवाला घोर जठररोग उत्पन्न करते हैं । वह शीत, वायु और बादलोंके होने-पर विशेष कोप करता है और विदाहको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ यह रोगी निरंतर मूर्च्छाको प्राप्त होता है, शरीर पीला पडजाता है और दुबला होजाता है तथा तृषाके मारे ( कंठ ) सूखने लग जाता है । इसे घोर दूष्युदर तथा सन्निपातोदर कहते हैं । अब इसके अगाडी प्लीहोदरका कीर्तन किया जाता है उसे सुनो और समझो ॥ ११ ॥

## प्लीहोदर ।

विदाह्यभिष्यंदिरतस्य जंतोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक् कफश्च ॥ प्लीहा-भिवृद्धिं सततं करोति प्लीहोदरं तत्प्रवदंति तज्ज्ञाः ॥ १२ ॥ वामे च पार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोत्र ॥ मंदज्वराग्निः कफपित्तलिंगैरुपद्रुतः क्षीणबलोतिपांडुः ॥ १३ ॥ सव्येतरास्मिन् यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १४ ॥

जो मनुष्य विदाही ( दाहजनक ) तथा अभिष्यन्दी ( रसवहा शिराओंको रोक-कर गुरुता करनेवाले ) भोजन अधिक करते हैं उनका रुधिर तथा कफ अत्यन्त दूषित होकर प्लीहा ( तिल्ली ) को अत्यन्त बढा देते हैं इसे विद्वान् वैद्य प्लीहोदर कहते हैं ॥ १२ ॥ यह ( तिल्ली ) बांये पसवाडेमें बढती है और इस रोगमें रोगी विशेष कर कुम्हलायासा रहता है तथा मन्दज्वरभी रहता है और जठराग्नि भी मन्द पडजाता है । इसमें विशेषतासे कफपित्तके उपद्रव रहते हैं, बलक्षीण हो-जाता है और शरीर अत्यन्त पीला पडजाता है ॥ १३ ॥ जैसे बांई ओर प्लीहा बढजाती है उसी तरह दाहिनी तरफ यकृत्( जिगर ) दूषित होकर बढजाता है इसे यकृद्दाली उदर अर्थात् यकृतवृद्धि कहते हैं ॥ १४ ॥

---

—सन्निहिता अविवेकिनो ग्राह्याः । गरान् कृत्रिमविषाणि । दूष्युदरमिति—सान्निपातिकोदर तदेव दूष्युदरं एनेन सख्यातिरेकः ( इति निबन्धसंग्रह ) ॥ ( श्लो० १३ । १४ ) सव्येतरस्मिन् दक्षिणे ॥

### बद्धगुदोदर।

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा सहितैः पृथग्वा ॥
सञ्चीयते यत्र मलः सदोषः क्रमेण नाड्यामिव संकरो हि ॥१५॥
निरुध्यते चास्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् ॥
हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति यच्चोदरं विट्समगंधिकं च ॥
प्रच्छर्दयन् बद्धगुदी विभाव्यस्ततः परिस्राव्युदरं निबोध ॥ १६ ॥

जिस मनुष्यकी अंत्र ( आंत ) पिच्छल अन्नादिसे लिपायमान होजाय अथवा बाल, मिट्टी, राख आदिसे मिले अन्नका मल अथवा पृथक् दोष ( वातादि ) युक्त मलही संचय होकर नालीमें इकट्ठा हो ॥ १५ ॥ और वह गुदामें पुरीष ( मल ) को रोकदे तब बहुत कष्ट करनेसे भी थोडा थोडासा मल उतरे और हृदय, नाभिके बीचमें वृद्धिको प्राप्त हो और उदरमें मलकीसी दुर्गंध आवे तथा कभी वमन भी हो तो उसे बद्धगुदोदर रोग कहते हैं। अब इससे अगाडी परिस्राव्युदर अर्थात् आगंतुक क्षतोदरके लक्षण सुनो ॥ १६ ॥

### आगन्तुक क्षतोदर ( परिस्राव्युदर )।

शल्यं यदन्नोपहितं तदंत्रं भिनत्ति यस्यागतमन्यथा वा ॥ त-
स्मात्स्रुतान्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः
॥ १७ ॥ नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यतेऽतीव विदह्यते
च ॥ एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं दकोदरं कीर्तयतो निबोध ॥१८॥

अन्नम मिलाहुआ शल्य ( सूई आदि ) अथवा और तरहसे पेटमें घुसजाय और आंतको चीरदे या छेद करदे जिससे उस आंतमेंसे पानीके तुल्य स्राव होकर वार वार गुदाद्वारा निकले ॥ १७ ॥ और नाभिके नीचे पेट बढजाय ( फूलजाय ) और पीडा हो तथा दाह हो उसे परिस्रावी उदररोग अर्थात् आगंतुक क्षतोदर कहते हैं। इससे अगाडी जलोदरका वर्णन किया जाता है उसे सुनो ॥ १८ ॥

### जलोदर।

यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वांतो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः ॥
पिबज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दुष्यंति हि तद्वहानि
॥ १९ ॥ स्नेहोपलिप्तेष्वथवापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ॥

( श्लो० १५ ) उपलेपिभिः पिच्छलैः ॥ नाड्यां नालिकायाम् ॥

स्निग्धं महत्संपरिवृत्तनाभिभृशोन्नतं पूर्णमिवांबुना च ॥ यथा दृतिः क्षुभ्यति कंपते च शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥२०॥

जो मनुष्य स्नेहपान करनेके पीछे तथा अनुवासनवस्तिकर्मके पीछे, वमन करनेके पीछे, विरेचनके पीछे और निरूहणवस्तिके पीछे तत्कालही ठंढा जल पीले ( अथवा क्षुधित जल पीले ) तो उदकवाहिनी नाडियां दूषित होजातीहैं ॥ १९ ॥ अथवा वे उदकवाहिनी नाडी चिकनाईसे लिपायमान हों तब भी शीतल जल पीनेसे ( दूषित होजातीहैं ) और पहलेकी भांति जलोदर उत्पन्न होजाताहै। ( जलोदरके लक्षण ये हैं कि ) नाभिके चारोंतरफ पेट फूलजाय और चिकनापन मालूम हो और पेट पानीसे भरासा मालूम हो। जैसे पानीसे भरी मशक थलथलाती और हिलतीहै और पानीका शब्द होताहै ( वैसे जलोदरीके पेटमें होताहै ) इसे दकोदर अर्थात् जलोदर कहते हैं ॥ २० ॥

### सब उदररोगोंके सामान्य चिह्न।

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ॥ शोफः सदनमंगानां संगो वातपुरीषयोः॥ दाहस्तृष्णा च सर्वेषु जठरेषु भवंति हि॥२१॥

पेट फूलना, चलनेकी शक्ति न रहना, दुर्बलता तथा जठराग्नि मंद पडजाना, शोथ होना और अंग शिथिल होजाना, अधोवायु और दस्त खुलकर न होना, दाह होना, तृषा अधिक लगना ये लक्षण प्रायः सभी उदररोगोंमें हुआ करतेहैं ॥ २१ ॥

अंते सलिलभावं तु भजंते जठराणि च ॥
सर्वाण्येव परीपाकात्तदा तानि विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सब उदररोग अंत ( परिपाक ) दशामें जलभावको प्राप्त होजातेहैं और उस अवस्थामें त्यागने योग्य अर्थात् असाध्य होजातेहैं (चिकित्साके योग्य नहीं रहते) २२

इनमेंसे प्लीहोदरको डाक्टरीमें "इन्लारजिमेंट ऑफदी इस्पीलीन" कहतेहैं और यूनानीमें "तिहाल" कहतेहैं और यकृतको डा० "इन्लारजिमेंट ऑफदीलिवर" तथा "हैपटिकडिजीज" और यूनानीमें "अमरात जिगर" कहतेहैं इनके यहां इसके बहुत भेद है। जलोदरको डाक्टरीमें "एसाइटिस" कहतेहैं और किसी एक अँतडीमें पानी भराहो तो उसे "ड्रापसी" कहतेहैं तथा यूनानीमें "इसतिसका" कहतेहैं इत्यादि ॥

( वक्तव्य ) हमने वैद्यक और यूनानी तथा डाक्टरीके अनुसार रोगोंके नाम लक्षणादिमें एकता करनेका बहुत कुछ परिश्रम किया तोभी अनेक विद्वानोंकी रीति

( श्लो० २० ) स्नेहोपलिप्तेषु इति–स्नेहादिपानादिना लिप्तेषु शीतलं जलं पिबेत्तदापीत्यर्थः। पूर्ववदिति प्लीहोदरवत् सलिलस्याधोगामित्वादधो नाभेः उदरोत्पत्तिः। ( इति डल्हनः ) ॥

और क्रममें बडाही अन्तर है इससे हरेक रोगका निदान और उत्पत्तिका कारण प्रायः एक दूसरेसे नहीं मिलता, हां जोजो मोटी मोटी बातें और जिस रोगमें जितना उचित प्रतीत हुआ वह थोड़ा २ लिखा जाता है, विशेष देखना हो तो उन २ विद्याओंकी पुस्तकें देखो जैसे यूनानियोंने जिगरके बहुत रोग लिखेहैं, जैसे जिगरमें गरमी, सरदी आदि तथा जिगरकी निर्बलता, जिगरका सुद्दा, जिगरका शोथ, जिगरकी शर्करा इत्यादि ये वैद्यकमें इसभांति नहीं मिलते और वातोदर, पित्तोदर, क्षतोदरादि जैसे वैद्यकमें कहेहैं वैसे यूनानी आदिमें नहीं मिलते ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## अष्टमोऽध्यायः ८.

### अथातो मूढगर्भनिदानं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी मूढगर्भके निदानकी व्याख्या करते हैं ।

**ग्राम्यधर्मयानवाहनाध्वगमनप्रस्खलनप्रपतनप्रपीडनधावनाभिघातविषमशयनासनोपवासवेगाभिघातातिरूक्षकटुतिक्तभोजनशाकातिक्षारसेवनातिसारवमनविरेचनप्रेंखोलनाजीर्णगर्भशातनप्रभृतिभिर्विशेषैर्बंधनान्मुच्यते गर्भः फलमिव वृंतबंधनादभिघातविशेषैः ॥ १ ॥**

ग्राम्यधर्म ( मैथुन ) करनेसे, घोडे आदिपर चढने और गाडी आदिमें बैठकर चलनेसे, पैरोंसे सफर करने, प्रस्खलन ( औंधा होकर चलने, नीचा झुककर चलने ), ऊपरसे गिरने, मिचजाने, भागने, चोट लगने, विषम सोने तथा विषम आसन बैठने, ( या विषम भोजन करने ), लंघन करने, वेग ( दस्त, मूत्रादि ) को रोकने, अति रूखा भोजन करने, कटु ( चरपरा ), तिक्त ( कडवा ) भोजन करने, अति शाक खाने, खारी वस्तु अति खानेसे तथा दस्त लगजानेसे, वमन होनेसे, विरेचन लेनेसे, प्रेंखोलन ( हिंडोले आदि झूलने ) से, अजीर्णसे, गर्भशातन ( गर्भपातकी क्रिया करने ) इत्यादिसे गर्भ अपने बंधनसे छूट जाताहै जैसे चोट आदिके प्रहारसे वृन्त ( नाकू ) के बंधनसे फल छूट जाताहै ॥ १ ॥

**स विमुक्तबंधनो गर्भाशयमतिक्रम्य यकृत्प्लीहान्त्रविवरैरवस्रंसमानैः कोष्ठसंक्षोभमापादयति तस्या जठरसंक्षोभाद्वायुरपानो मूढः पार्श्व-**

( गद्य १ ) मूढगर्भ इति–मूढो निरुद्धगतिर्गर्भः मूढगर्भः तदुक्तम्–"सर्वावयवसपूर्णो मनोबुद्ध्यादिसयुतः । विगुणापानसमूढो मूढगर्भोऽभिधीयते" ( इति डल्हनः ) । प्रस्खलन रिंगणादि । प्रेंखोलनं हिंदोलनम् । गर्भशातन भेषजेन गर्भपातनं । बंधन गर्भाशयप्रतिबद्धशिराः ॥

वस्तिशीर्षोदरयोनिशूलानाहमूत्रसंगानामन्यतममापाद्य गर्भं व्यापादयति ॥ २ ॥

वह गर्भाशयके बंधसे छुटा हुआ गर्भ गर्भाशयसे निकलकर यकृत्, प्लीहा और आंतोंके द्वारोंसे झिरता हुआसा होजाता है और समान वायु उसके उदरको क्षुभित करदेता है फिर उसके उदरके संक्षोभसे अपानवायु विरुद्ध गति होकर पँसवाडे और वस्तिका शिर, उदर और योनिमें शूल तथा अफरा, मूत्रावरोध इत्यादि व्याधियोंमेंसे किसी एक या अधिकको उत्पन्न करके गर्भको व्यापादित अर्थात् पीडित करता है ॥ २॥

तरुणं शोणितस्रावेण तमेव कदाचिद्विवृद्धमसम्यगागतमपत्यपथमनुप्राप्तमनिरस्यमानमपानवैगुण्यसंमोहितं गर्भं मूढगर्भमित्याचक्षते ॥ ३ ॥

अति रक्तस्रावहीसे कभी अधिक वढकर अयोग्य रीतिसे आकर संतानके मार्ग ( भगद्वार ) पर प्राप्त हो और बाहर नहीं निकले अपानवायुकी विगुणतासे निरुद्ध गति हो जाय ऐसे गर्भको मूढगर्भ कहते हैं ॥ ३ ॥

ततः स कीलः प्रतिखुरो बीजकः परिघ इति । तत्र ऊर्द्ध्वबाहुशिरःपादो यो योनिमुखं निरुणद्धि कील इव स कीलः । निःसृतहस्तपादशिराः कायसंगी प्रतिखुरः । यस्तु निर्गच्छत्येकशिरोभुजः स बीजकः । परिघ इव योनिमुखमावृत्य तिष्ठेत्स परिघः । इति चतुर्विधो भवतीत्येके भाषंते ॥ ४ ॥

वह मूढगर्भ १ कील,२ प्रतिखुर,३ बीजक और ४ परिघ ऐसे (चार प्रकारका) होताहै । जिसमें हाथ, शिर और पैर ऊपरको होकर योनिके मार्गको कीलकी भांति रोक दें वह "कील" संज्ञक है । जिसमें हाथ या पांव या शिर निकलआवें और शरीर रुक जाय वह "प्रतिखुर" है । जिसका एक शिर और हाथही निकले वह "बीजक" है । जो वज्रके समान योनिके मुखको रोककर स्थित होजाय वह "परिघ" है । ऐसे चार प्रकारका मूढगर्भ होता है यह कई आचार्य कहते हैं॥४॥

तत्तु न सम्यक् कस्मात् स यदा विगुणानिलप्रपीडितोऽपत्यपथमनेकधा प्रतिपद्यते तदा संख्या हीयते ॥ ५ ॥

ऊपर कहा हुआ चारही प्रकारका मूढगर्भ होताहै ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि जब वह विगुण अपानवायु करके पीडित हुआ गर्भ अनेक प्रकारसे अपत्यमार्ग ( योनि ) को प्राप्त हो जाता है तब इसमें संख्याका नियम नहीं रह सकता ॥ ५ ॥

तत्र कश्चित् द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रतिपद्यते। कश्चिदाभुग्नैकसक्थिरेकेन। कश्चिदाभुग्नसक्थिशिरःस्फिग्देशेन तिर्यगागतः। कश्चिदुरःपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते। अंतःपार्श्वापवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना। कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन। कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभिः। कश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिमुखमभिप्रतिपद्यतेऽपरेण पायुमित्यष्टविधा मूढगर्भगतिरुद्दिष्टा समासेन॥ ६॥

१ तिनमें कोई मूढगर्भ तो दोनो साथलोंसे योनिके मुखमें प्राप्त होता है। २ कोई एक साथल संकुचितकर एकही साथलसे प्राप्त होताहै। ३ कोई साथल और शिरको सकुंचित करके कूलोंसे योनिद्वारमें प्राप्त होताहै और टेढा होताहै। ४ कोई पेट, पसँली, पीठ इनमेंसे किसीके बल योनिद्वारको रोक स्थित होताहै। ५ कोई शिरको पँसवाडेमें झुकाकर एक साथही निकाल देताहै। ६ कोई शिरको सकुंचित करके दोनों हाथ निकालताहै। ७ कोई मध्यभागको संकुचित करके हाथ, पांव तथा शिरसे योनिद्वारपर प्राप्त होताहै। ८ कोई एक साथलसे योनिद्वारपर प्राप्त होताहै और दूसरी साथल गुदाकी तरफ प्रवृत्त होतीहै। ऐसे संक्षेपसे मूढगर्भकी गति आठ प्रकारकी वर्णन कीगई॥ ६॥

तत्र द्वावंत्यावसाध्यौ मूढगर्भौ शेषानपि विपरीतेंद्रियार्थाक्षेपकयोनिभ्रंशसंवरणमक्कल्लश्वासकासभ्रमनिपीडितान्परिहरेत्॥ ७॥

भवंति चात्र—

इनमेंसे अंतके दो मूढगर्भ असाध्य होतेहैं और शेषभी जिनमें इंद्रियोंका ज्ञान विपरीत होजाय अथवा आक्षेपक वायुरोग हो अथवा योनि बाहर निकल आवे या योनि बहुतही सुकड़जाय तथा मक्कल्लक नाम प्रसूतशूल तीक्ष्ण हो, श्वास, खांसी और भ्रम इन करके निपीडित हो अर्थात् जिन्हें ये उपद्रव हों उन्हेंभी त्यागदे॥ ७॥ इस विषयमें श्लोक हैं—

कालस्य परिणामेन मुक्तं वृंताद्यथा फलम्॥ प्रपद्येत स्वभावेन नान्यथा पतितुं फलम्॥ ८॥ एवं कालप्रकर्षेण मुक्तो नाडीविबंधनात्॥ गर्भाशयस्थो यो गर्भो जननाय प्रपद्यते॥ ९॥

जैसे कालके परिणामसे वृन्त ( ) से छूटकर स्वभावसे फल गिरपडता

है अन्यथा नहीं गिर पडता ॥ ८ ॥ ऐसेही समय पूरा होनेपर गर्भाशयका गर्भभी नाडियोंके बंधसे छूटकर जन्म लेनेके लिये प्रवृत्त होताहै ॥ ९ ॥

क्रिमिवाताभिघातैस्तु तदेवोपद्रुतं फलम् ॥ पतत्यकालेपि यथा तथा स्याद्गर्भविच्युतिः ॥ १० ॥ आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविच्युतिः ॥ ततः स्थिरशरीरस्य पातः पंचमषष्ठयोः ॥ ११ ॥

जैसे कीडेके खाने, वायु लगने, चोट लगने आदि उपद्रवोंसे फल अकालमें ( बे समय ) भी गिरजाताहै वैसेही उपद्रवोंसे गर्भभी बे समय गिर पड़ताहै ॥ १० ॥ चार महीनेतक गर्भ गिरे तो उसे गर्भस्राव कहतेहैं, उससे पीछे शरीर स्थिर हो-जाताहै इससे पांचवें और छठे महीनेमें गिरे तो गर्भपात कहलाताहै ॥ ११ ॥

प्रविध्यति शिरो या तु शीतांगी निरपत्रपा ॥ नीलोद्धतशिरा हंति सा गर्भं स च तां तथा ॥१२॥ गर्भास्पंदनमावीनां प्रणाशः श्यावपांडुता ॥ भवत्युच्छ्वासपूतित्वं शूलं चांतर्मृते शिशौ ॥ १३ ॥ मानसागंतुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ॥ गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ १४ ॥ वस्तमारविपन्नायाः कुक्षिः प्रस्पंदते यदि ॥ तत्क्षणाज्जन्मकाले तं पाटयित्वोद्धरेद्भिषक् ॥ १५॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जो स्त्री शिरको धुने और देह ठंडी पडजाय, लज्जा जाती रहे, नीली नसें चमकें तो वह गर्भके बालकको मार देतीहै तथा मरा बालक उसे मार देताहै॥१२॥ जिसके गर्भमें बालक फिरे नहीं और आवी ( प्रसववेदना ) जाती रहें, शरीर, काला, पीला पडजाय और श्वासमें मुरदेके समान दुर्गंध आवे और शूल हो तो जानो कि बालक पेटमें मरगया ॥ १३ ॥ माताके मानसिक और आगन्तुक उपतापोंसे पीडित हुआ तथा व्याधियोंसे पीडित हुआ बालक कुक्षिमें मरजाताहै१४॥ गर्भगत बालकको शीघ्र मारनेवाली मृतास्त्रीकी कुक्षि यदि फरके ( तो बालक अभी जीताहै ऐसा जाने )और शीघ्रही मृत स्त्रीकी कूखको फाडकर जीते बालकको सुज्ञ वैद्य निकालले ॥ १५ ॥

इति पं०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थानेऽष्टमोऽध्याय. ॥ ८ ॥

## नवमोऽध्यायः ९.

अथातो विद्रधीणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

इसके अगाडी अब विद्रधि ( फोडों ) के निदानकी व्याख्या करते है ॥

सर्वामरगुरुः श्रीमान्निमित्तान्तरभूमिपः ॥ शिष्यायोवाच निखिलमिदं विद्रधिलक्षणम् ॥ १ ॥ त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ॥ दोषाः शोफं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ २ ॥ महाशूलं रुजावंतं वृत्तं चाप्यथवायतम् ॥ तमाहुर्विद्रधिं धीरा विज्ञेयः षड्विधः स च ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण देवताओंके गुरु निमित्तांतरसे काशीके भूपति ( राजा ) श्रीमान् धन्वन्तरि महाराज अपने शिष्य सुश्रुत महर्षिके प्रति विद्रधियोंके सम्पूर्ण लक्षण वर्णन करते भये ॥ १ ॥ त्वचा, रक्त, मांस, मेद इन्हें दूपितकर अस्थि ( हड्डी ) में प्राप्त हुए वात आदि दोप धीरे २ घोररूप ऊंचे ( विद्रधिके कारणभूत ) शोथको उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥ फिर अतिशूल और दरदवाला, गोल अथवा फैला हुआ ( फोडा ) हो उसे विद्रधि कहते हैं, वह छःप्रकारका होता है ॥ ३ ॥

## विद्रधिकी संप्राप्ति और भेद ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा ॥ षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं संप्रवक्ष्यते ॥ ४ ॥

पृथक् २ एक एक दोष अर्थात् वायुसे, पित्तसे, कफसे और चौथे समस्त दोष अर्थात् सन्निपातसे, पांचवें क्षत ( चोट लगने ) से, छठे रक्तसे इस भांति छः ६ प्रकारसे विद्रधि होताहै इन छहों प्रकारके विद्रधियोंके लक्षण वर्णन किये जातेहैं ॥४॥

## विद्रधियोंके लक्षण ।

कृष्णोरुणो वा परुषो भृशमत्यर्थवेदनः॥चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः॥५॥पक्वोदुंबरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान्॥ क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः॥ ६ ॥ शरावसदृशः पांडुः शीतः स्तब्धोल्पवेदनः ॥ चिरोत्थानप्रपाकश्च सकंडुश्च कफोत्थितः ॥७॥

जो काला तथा लाल हो, खरदरा हो, जिसमें चीस अधिक हो तथा जिसके उठने और पकनेमें चित्र विचित्रता हो वह वायुका विद्रधि है ॥ ५ ॥ जो पके गूलरफलके तुल्य हो, ऊदा हो, जिसमें कभी ज्वर और दाह भी हों तथा शीघ्रही उठे और शीघ्रही पकजाय वह पित्तका विद्रधि है ॥ ६ ॥ जो सराईके आकार हो, पीला

( श्लो० १ ) सर्वामरगुरुरिति—अमृतदानेन सर्वे देवा अमराः कृताः तेनासौ सर्वेषां देवानां गुरुरित्यर्थः। निमित्तांतरभूमिप इति—निमित्तांतरेण कारणांतरेण भूपालता गतः।अपुत्रस्य काशिराजस्य पुत्रत्वमापन्न इति कारणांतरं व्याख्यानयंति । ( इति डल्हनः ) ॥

हो, ठंढा हो, कडा हो, जिसमें पीडा भी स्वल्प हो तथा देरसे उठे और देरहीसे पके तथा खाजभी हो तो वह कफका विद्रधि है ॥ ७ ॥

तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृताः ॥ नानारूपरुजास्रावो घटालो विषमो महान् ॥ विषमं पच्यते वापि विद्रधिः सान्निपातिकः ॥८॥ तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते चापथ्यसेविनः ॥ क्षतोष्मा वायुनिर्सृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ॥ ९ ॥ ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः ॥ एष विद्रधिरागंतुः पित्तविद्रधिलक्षणः ॥ १० ॥ कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः ॥ पित्तविद्रधिलिंगस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ ११ ॥

वायुमें थोडा, पित्तमें पीला, कफमें सुपेद इसक्रमसे स्राव होता है तथा नाना प्रकारके रूप, पीडा और स्राव हों, जिसके ऊपर गांठसी पडजाय अति विषम हो और विषमताहीसे पके वह सन्निपातका विद्रधि होता है ॥ ८ ॥ और उनही भावों (पतन, प्रहारादि) करके अभिहत जो घाव हो उसमें अपथ्य आहार विहार करे तब वायु करके प्रेरित घावकी गरमी रक्तसहित पित्तको दूपित कर देती है ॥ ९ ॥ ज्वर, तृपा तथा दाह उत्पन्न होजाते हैं ऐसा फोडा आगंतुक कहलाता है और इसमें पित्तविद्रधिके लक्षण होते हैं ॥ १० ॥ जो ऊदे रंगका तीव्र दाह और पीडावाला विद्रधि हो और उसके आसपास काली फुन्सियां हों तथा ज्वर हो आवे और उसमें पित्तविद्रधिके लक्षण हों तो वह रक्तविद्रधि कहलाता है ॥ ११ ॥

उक्ता विद्रधयो ह्येते तेष्वसाध्यस्तु सर्वजः ॥
आभ्यंतरानतस्तूर्द्ध्वं विद्रधीन्परिचक्षते ॥ १२ ॥

ये ऊपर छः ६ प्रकारके विद्रधि ( फोडे ) वर्णन किये तिनमें सन्निपातका विद्रधि असाध्य होता है। इनके अगाडी अब अन्तर्विद्रधियोंको वर्णन करते हैं ॥ १२ ॥

अंतर्विद्रधि ।

गुर्वसात्म्यविरुद्धान्नशुष्कसंक्लिन्नभोजनात् ॥ अतिव्यवायव्यायामवेगाघातविदाहिभिः ॥ १३ ॥ पृथक् संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ॥ वल्मीकवत्समुन्नद्धमंतः कुर्वंति विद्रधिम् ॥१४॥

(श्लो० ८) घटाल इति–ऊर्ध्वभागो महान् यस्य स घटालः ॥ (श्लो० ९) तैस्तैर्भावैरिति–पतनगूढप्रहारादिभिः अभिहते। (इति नि० सं०) ॥

गरिष्ठ भोजनसे, प्रतिकूल तथा विरुद्ध भोजनसे, सूखे तथा क्लेदित भोजन करनेसे, अति मैथुन करनेसे, शारीरक श्रम न करनेसे, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, विदाही वस्तुके खानेसे ॥ १३ ॥ वातादि दोष पृथक् २ अथवा समस्त कुपित होकर गुल्मके रूपवाले तथा वंमईके समान ऊपरको उठे हुए अंतर्विद्रधि ( भीतरी फोडे ) पैदा करदेते हैं ॥ १४ ॥

अंतर्विद्रधिके स्थान ।

गुदे वस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा ॥ वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदये क्लोम्नि वा तथा ॥ १५ ॥ तेषां लिंगानि जानीयाद्बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ आमपक्वैषणीयेन पक्वापक्वं विनिर्दिशेत्॥१६॥

गुदा, वस्तिका मुख, नाभि, कूख, वंक्षण ( जंघाकी संधि ) तथा वृक्क (गुरदों), प्लीहा ( तिल्ली ), यकृत् ( जिगर ) तथा हृदय और क्लोम इन स्थानोंमें प्रायः अंतर्विद्रधि होते हैं ॥ १५ ॥ इनके चिह्न बाह्यविद्रधिके लक्षणोंसे जान लेने चाहिये तथा आमपक्वैषणीय नामक अध्यायमें कहेहुए लक्षणोंसे पका या बिन पका है ऐसा देख लेना चाहिये ॥ १६ ॥

अधिष्ठानविशेषेण लिंगं शृणु विशेषतः ॥ गुदे वातनिरोधस्तु वस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता ॥ १७ ॥ नाभ्यां हिक्का तथाटोपः कुक्षौ मारुतकोपनम् ॥ कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो वंक्षणोत्थे तु विद्रधौ ॥१८॥ वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीह्न्युच्छ्वासावरोधनम् ॥ सर्वांगप्रग्रहस्तीव्रो हृदि शूलश्च दारुणः ॥ १९ ॥ श्वासो यकृति तृष्णा च पिपासा क्लोमजेऽधिका ॥ २० ॥

अब स्थानविशेषकरके विद्रधियोंके विशेष लक्षण सुनो । गुदामें भीतर विद्रधि हो तो खुलकर वायु नहीं निकले और वस्तिमें हो तो कष्टसे थोडा २ मूत्र उतरे॥ १७॥ नाभिमें अंतर्विद्रधि हो तो हिचकी आवे और पेट फूल जाय तथा कूखके भीतर विद्रधि हो तो वायुका कोप हो और वंक्षण( नलों )में हो तो कमर और पीठ अत्यंत जकड जायँ ॥ १८ ॥ वृक्क ( गुरदों ) में फोडा हो तो पँसवाडा सुकड जाय और प्लीहामें हो तो रुककर श्वास आवे और हृदयमें हो तो सब शरीर जकड जाय और हृदयमें दारुण शूल हो ॥ १९ ॥ यकृत् ( जिगर ) पर फोडा हो तो श्वास और तृषा हो तथा क्लोमस्थानमें हो तो बहुत अधिक प्यास हो ॥ २० ॥

---

( श्लो० १५ ) वस्तिमुखे वस्तौ वंक्षणम् ऊरुमूलाश्रयः ( नले इति लोके ) । वृक्कौ मांसपिंडद्वयम् एकोवामपार्श्वे स्थितः द्वितीयो दक्षिणपार्श्वे स्थितः । ( इति डल्हनः ) लोके तु गुरद इति वदति ॥

आमो वा यदि वा पक्को महान्वा यदि चेतरः॥ सर्वो मर्मोत्थितश्चापि विद्रधिः कष्ट उच्यते ॥२१॥ नाभेरुपरिजाः पक्का यांत्यूर्द्ध्वमितरे त्वधः ॥ जीवत्यधो निस्रुतेषु स्रुतेपूर्ध्वं न जीवति ॥ २२ ॥ हृन्नाभिवस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु वाह्यतः ॥ जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ २३ ॥

कच्चा हो चाहे पका हो, वडा हो या छोटा सब विद्रधि मर्मस्थानमें हुआ कष्टसाध्य होता है ॥ २१ ॥ नाभिसे ऊपरके विद्रधि पककर ऊपरको गमन करते हैं और अन्य नीचेको गमन करते ( झिरते ) हैं । नीचेको झिरनेवाले नीचेहीको झिरें तो मनुष्य जीवे और जो ( नीचेको झिरनेवाले ) कदाचित् ऊपरको झिरने लगें तो मनुष्य जीवे नहीं ॥ २२ ॥ हृदय, नाभि और वस्तिके सिवायका अंतर्विद्रधि बाहरको फूट निकले तो शायद मनुष्य जीवभी परंतु इतर (हृदय, नाभि, वस्ति)का अंतर्विद्रधि वाहरको फूट निकले तो मनुष्य कदाचित् नहीं जीवे ॥ २३ ॥

स्त्रीणामपप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः ॥ ज्वरदाहकरो घोरो जायते रक्तविद्रधिः ॥२४॥ अपि सम्यक्प्रजातानामसृक्कायादनिःसृतम् ॥ रक्तजं विद्रधिं कुर्यात्कुक्षौ मक्कल्लसंज्ञितम् ॥सप्ताहान्नो प्रशांतश्चेत्ततो सौ संप्रपच्यते ॥ २५ ॥

जिनके गर्भपात होजाताहै उनके तथा जिनके पूरा बालक होताहै उन स्त्रियोंके कुपथ्य करनेसे ज्वर और दाह करनेवाला घोर रक्तका विद्रधि होजाताहै ॥ २४ ॥ तथा जिन स्त्रियोंके अच्छे प्रकार प्रसूत ( बालक ) हो लेताहै परंतु शरीरसे रुधिर ठीक २ नहीं निकलता तो उनकी कुक्षिमें मक्कल्ल संज्ञक रक्तका विद्रधि होजाताहै और जो वह मक्कल सात दिनमें शांत नहीं हो तो फिर पकजाताहै ॥ २५ ॥

विशेषमथ वक्ष्यामि स्पष्टं विद्रधिगुल्मयोः ॥ तुल्यदोषसमुत्थानाद्विद्रधेर्गुल्मकस्य च ॥ २६ ॥ कस्मान्न पच्यते गुल्मो विद्रधिः पाकमेति च ॥ गुल्माकाराः स्वयं दोषा विद्रधिर्मांसशोणिते ॥ २७ ॥ विवरानुचरो ग्रंथिरप्सु बुद्बुदको यथा ॥ एवं प्रकारो गुल्मस्तु तस्मात्पाकं न गच्छति॥२८॥ मांसशोणितबाहुल्यात्पाकं गच्छति विद्रधिः ॥ मांसशोणितहीनत्वाद्गुल्मः पाकं न गच्छति ॥ २९ ॥

**गुल्मस्तिष्ठति दोषे स्वे विद्रधिर्मांसशोणिते ॥ विद्रधिः पच्यते तस्माद्गुल्मश्चापि न पच्यते ॥ ३० ॥**

इसके अगाडी विद्रधि और गुल्मका विशेष स्पष्ट भेद कहतेहैं, कि समान दोषोंसे उत्पन्न हुए विद्रधि और गुल्ममेंसे गुल्म क्यों नहीं पकताहै और विद्रधि क्यों पकजाताहै ( इस प्रश्नका उत्तर ) यह है कि, गुल्ममें स्वयं वातादि दोषही गुल्मके आकार होजाते हैं और विद्रधि मांस और रुधिरमें होताहै ॥२६॥ २७ ॥ जैसे जलमें बुलबुला, ऐसे खाली स्थानमें विचरनेवाला गुल्म होताहै इसलिये नहीं पकता ॥२८॥ अथवा मांस और रुधिरकी अधिकतासे विद्रधि पकजाताहै और मांस, रक्त करके हीन होनेसे गुल्म नहीं पकता॥२९॥गुल्म अपने दोषों ( वायु, पित्त, कफादि ) में स्थित रहताहै और विद्रधि मांस और रुधिरमें रहताहै इसलिये विद्रधि पकजाताहै और गुल्म नहीं पकता है ॥ ३० ॥

**हृन्नाभिबस्तिजः पक्को वर्ज्यो यश्च त्रिदोषजः ॥ अथ मज्जपरीपाको घोरः समुपजायते॥३१ ॥सोस्थिमांसनिरोधेन द्वारं न लभते यदा ॥ ततः स व्याधिना तेन ज्वलनेनेव दह्यते ॥ ३२ ॥ अस्थिमज्जोष्मणा तेन शीर्यते दह्यमानवत्॥ विकारः शल्यभूतोयं क्लेशयेदातुरं चिरम् ॥३३॥अथास्य कर्मणा व्याधिर्द्वारं तु लभते यदा॥ ततो मेदःप्रभं स्निग्धं शुक्लं शीतमथो गुरु ॥ ३४ ॥ भिन्नेस्थ्नि निःस्रवेत्पूयमेतदस्थिगतं विदुः ॥ विद्रधिं शास्त्रकुशलाः सर्वदोषरुजावहम् ॥ ३५ ॥**

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने नवमोध्यायः ॥ ९ ॥

हृदय, नाभि और वस्ति इनका अंतर्विद्रधि जो पक जाय तो वह त्याज्य है तथा सन्निपातका विद्रधि भी वर्ज्य ( असाध्य ) होताहै । और यदि मज्जामें परिपाक हो तो घोर होताहै यदि वह अस्थि और मांसके अवरोधसे द्वार न पावे तो पीडासे अग्निके समान जला करताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ फिर वह अस्थि और मज्जाकी गरमीसे जले हुए ( अग्निदग्ध ) की तरह खिल जाताहै । मज्जागत शल्यभूत यह विकार रोगीको बहुत क्लेश देताहै ( बहुत दिन दुःख देताहै ) ॥ ३३ ॥ और जो कर्म ( शस्त्रकर्म ) करके व्याधिद्वारभी पावे तो उसमेंसे मेद ( चरबी ) के समान चिकना, सुपेद, शीतल और भारी ( राध ) निकलताहै ॥ ३४ ॥ अस्थिके भेदन होनेपर जिससे पूय निकले उसे अस्थिगत विद्रधि शास्त्रकुशल वैद्य जानें । यह सब

दोषों और सब प्रकारकी पीडाओंका करनेवाला होताहै । ( विद्रधि ( फोडा ) को डाक्टरीमें 'एनसस' या "वाइलस" कहतेहैं और यूनानीवाले 'दुर्बिले' कहते हैं)॥ ३५॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थाने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

# दशमोऽध्यायः १०.

**अथातो विसर्पनाडीस्तनरोगनिदानं व्याख्यास्यामः ।**

इससे अगाडी विसर्प, नाडी, स्तनरोग इनके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

### विसर्पकी संप्राप्ति ।

**त्वङ्मांसशोणितगताः कुपितास्तु दोषाः सर्वांगसारिणमिहास्थितमात्मलिंगम् ॥ कुर्वंति यं विसृतमुन्नतमाशु शोफं तं सर्वतो विसरणाच्च विसर्पमाहुः ॥ १ ॥**

त्वचा, मांस और रुधिरमें प्राप्त हुए कुपित वातादि दोष समस्त शरीरमें फैलनेवाला, एक जगह स्थित न होनेवाला, वातादिके लक्षणोंवाला, विस्तारयुक्त कुछ २ ऊपरको उठा हुआ ऐसा शोथ उत्पन्न करतेहैं जिसे सारे शरीरमें फैलनेसे विसर्प कहतेहैं॥ १॥

### विसर्पके लक्षण ।

**वातात्मकोऽसितमृदुः परुषोंगमर्दसंभेदतोदपवनज्वरलिंगयुक्तः ॥ गंडैर्यदा तु विषमैरतिदूषितत्वाद्युक्तः स एव कथितः खलु वर्जनीयः ॥ २ ॥ पित्तात्मको द्रुतगतिर्ज्वरदाहपाकस्फोटप्रभेदबहुलः क्षतजप्रकाशः॥ दोषप्रवृद्धिहतमांसशिरो यदा स्यात्स्रोतोजकर्दमनिभो न तदा स सिध्येत् ॥ ३ ॥**

वायुका विसर्प काला, पतला, खरदरा होता है, अँगडाई बहुत आती है, भेदनकेसी पीडा और दर्द होता है तथा वातज्वरकेसे चिह्न होते हैं और जिसमें दग्धकेसे गंडे विषम पडजायँ ऐसे दूषित होनेसे वह विसर्प ( वातविसर्प ) त्यागने योग्य ( असाध्य ) होता है ॥ २ ॥ पित्तका विसर्प शीघ्र फैलनेवाला होता है और उसमें ज्वर तथा दाह होता है और पक जाता है तथा फुंसियोंमें विदीर्णता अधिक होती है तथा क्षतज घावकासा रूप होता है और जिसमें दोषोंकी वृद्धिता और मांस तथा रगोंका नाश हो जाय तथा अंजनकी कीचडके समान जो हो जाय वह पित्तविसर्प सिद्ध नहीं होता ( असाध्य है ) ॥ ३ ॥

( श्लो० २ ) गंडैः अग्निदग्धैः स्फोटैः । अतिदूषितत्वात् द्वाभ्यां वातपित्ताभ्यां दूषितत्वात् अथवा अतिवातेनैव दूषितत्वात् ( नि० स० ) । ( श्लो० ३ ) स्रोतोजकर्दमनिभः अंजनद्रव्यकर्दमद्रवतुल्यः ( इति डल्हन. ) ॥

श्लेष्मात्मकः सरति मंदमशीघ्रपाकः स्निग्धः सितश्वयथुरल्पगुरूग्रकंडूः ॥ सर्वात्मकस्त्रिविधवर्णरुजोवगाढः पक्को न सिध्यति च मांसशिराप्रणाशात् ॥ ४ ॥ सद्यः क्षतव्रणमुपेत्य नरस्य पित्तं रक्तं च दोषबहुलस्य करोति शोफम् ॥ श्यावं सलोहितमतिज्वरदाहपाकं स्फोटैः कुलत्थसदृशैरसितैश्च कीर्णम् ॥ ५ ॥

कफका विसर्प मन्दगतिसे फैलता है, बहुत दिनमें पकता है, चिकना, सुपेद शोथ होताहै और थोडा मोटा होताहै तथा अधिक खाज होती है । और सन्निपातका विसर्प तीनों भांतिके रंग और स्वेदोंवाला होताहै और अवगाढ (जडवाला) होताहै । यह पके पिछे सिद्ध नहीं होता क्योंकि मांस और रगोंको नाश कर देताहै ॥ ४ ॥ पांचवां क्षतज ( चोट लगेमें ) विसर्प होजाताहै वह इस भांति कि सद्यः घावमें पित्त और रक्त अतिदोषयुक्त मनुष्यके कुपित होजाते हैं और चोटके घावमें ऊदा, लाल शोथ उत्पन्न करते हैं, अत्यन्त ज्वर और दाह पैदा होजाताहै, घाव पक जाताहै तथा घावके आसपास कुलथी जैसी काली २ फुंसियां बहुतसी होजाती हैं ॥ ५ ॥

सिध्यंति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति ॥ पैत्तानिलावपि च दर्शितपूर्वलिंगौ सर्वे च मर्मसु भवंति हि कृच्छ्रसाध्याः ॥ ६ ॥

वायु और कफ तथा अकेले पित्तके विसर्प सिद्ध होजाते हैं परंच सन्निपातका, क्षतज ( घाव ) का विसर्प सिद्ध नहीं होता तथा केवल पित्तका और वायुकाभी जो पहले असाध्य कह दिये वे सिद्ध नहीं होते ( जैसे वातविसर्प दग्धकेसे गंडोंवाला और पित्तका मांसशिरा नष्ट करनेवाला, कज्जलकी कीचसा ये पहलेही असाध्य कहदिये) तथा मर्मस्थानोंमें हुए सभी प्रकारके विसर्प कष्टसाध्य हैं विसर्पको डाक्टरीमें 'एरीसिफलिस' और यूनानीमें 'सुरखवादा' कहतेहैं ॥ ६ ॥

( वक्तव्य ) इस विसर्प रोग और कुष्ठांतर्गत विसर्पका भेद कुष्ठाध्यायगत विसर्पकी टिप्पणीमें देखो ॥

अथ नाडी ।

शोफं न पक्कमतिपक्कमुपेक्षते यो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः ॥ अभ्यंतरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः ॥ ७ ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरित्यतश्च नाडीव

यद्वहति तेन मता तु नाडी ॥ दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ ८ ॥

जो फोडेका शोथ बहुत दिनतक पकेही नहीं और कच्चा विदीर्ण करदे अथवा बहुत दिनतक पके पीछेभी नहीं फूटे (और उसे चीराभी लगाकर न निकाले) अथवा अत्यंत राधवाले कुटिल व्रणमें कुपथ्य करे तो वह पीवसहित घाव पूर्वोक्त (त्वचादि) स्थानोंको विदीर्ण करके भीतरको प्रविष्ट होजाताहै ॥ ७ ॥ वह व्रण अत्यंत बहनेसे इधर उधर गतिवाला होकर नाडी (नाली) की तरह बहता रहताहै इससे इसे नाडी (नाडीव्रण अर्थात् नासूर) कहतेहैं। यह नाडी ८ प्रकारकी होतीहै, तीनों पृथक् २ दोषोंसे जैसे १ वायुसे, २ पित्तसे, ३ कफसे और संमूर्च्छित अर्थात् दो दो दोषोंसे जैसे ४ वातपित्त, ५ पित्तकफ, ६ कफवातसे, ७ सन्निपातसे और ८ शल्यसे ॥ ८ ॥

नाडीव्रणके लक्षण।

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपायाम् ॥ तृड्तापतोदसदनज्वरभेदहेतु पीतं स्रवत्यधिकमुष्ण-महःसु पित्तात् ॥ ९ ॥ ज्ञेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छलास्रा रात्रि-स्रुतिः स्तिमितरुक्कठिना सकंडूः ॥ दोषद्वयाभिहितलक्षणदर्शनेन तिस्रो गतीर्व्यतिकरप्रभवास्तु विद्यात् ॥ १० ॥

उनमें वायुकी नाडी खरदरी, छोटे मुहवाली, शूलयुक्त होतीहै, झागसे मिला मल-विशेष रात्रिको स्रवताहै। पित्तकी नाडी तृषा, ताप (जलन), दर्द, सदन (ग्लानि), ज्वर और भेदन इनका हेतु होतीहै और पीला तथा गरम मल दिनको अधिक स्रवताहै॥९॥ कफकी नाडीसे बहुत गाढा सुपेद मलिन मल रात्रिमें अधिक स्रवताहै तथा धीमी २ पीडा होतीहै कठिनता और खाज होतीहै। और जिनमें दो दोषोंके लक्षण हों वे द्वंद्वजनाडी जाननी। ये गतिके व्यतिकर(भेद)से द्वंद्वजभी तीन प्रकारसे होतीहैं १ वातपित्त, २ वातकफ, ३ कफपित्त ॥ १० ॥

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवंत्यभिहितानि च लक्ष-णानि ॥ तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्धोरामसुक्षयकरीमिव

(श्लो० ८) संमूर्च्छितैः मिश्रीकृतैर्द्वंद्वैरित्यर्थः इति। डल्हनाचार्योऽष्टविधा नाडीं वदति। गयदासाचार्यस्तु पञ्चैव नाड्य इति व्याख्यानयति यथा-त्रिभिर्दोषैः पृथक् तिस्र एकशश्च संमूर्च्छितैः सांनिपातिकीति। अन्या शल्यनिमित्ता चेति। (श्लो० ११) घोरामसुक्षयकरीमित्यत्र घोरा दारुणाम्, असुक्षयकरीं प्राणघातिनीं अथवा असुखक्षयकरीम्, अरतिकारिणीम् ॥

कालरात्रिम् ॥ ११ ॥ नष्टं कथंचिदणुमात्रमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति ॥ सा फेनिलं मथितमच्छमसृग्विमिश्रमुष्णं करोति सहसा सरुजा च पित्तम् ॥ १२ ॥

सन्निपातकी नाडीमें दाह, ज्वर, श्वास और मूर्च्छा तथा मुँहमें शुष्कता ये लक्षण होतेहैं यह कालरात्रिकी भांति प्राण हरनेवाली और दारुण दुःख देनेवाली होती-है । इसे वायु, पित्त और कफ इन तीनोंके कोपसे जानों ॥११॥ उदीरित जो त्वचा आदि स्थान उनमें कदाचित् अणुमात्रभी शल्य(कांटा, लोहा, पत्थर, शिला आदि) हो तो शीघ्रही व्रणमें गति उत्पन्न करताहै और उसमेंसे फेनयुक्त, मथितसा, स्वच्छ, रुधिरसे मिला हुआ, गरम मल तथा पित्त कष्टके साथ निकलताहै ॥ १२ ॥

## स्तनरोग ।

यावत्यो गतयो यैश्च कारणैः संभवंति हि ॥ तावन्तः स्तनरोगाः स्युः स्त्रीणां तैरेव हेतुभिः ॥ १३ ॥ धमन्यः संवृतद्वाराः कन्यानां स्तनसंश्रिताः ॥ दोषावितरणात्तासां न भवंति स्तनामयाः ॥ १४ ॥ तासामेव प्रजातानां गर्भिणीनां तु ताः पुनः ॥ स्वभावादेव विवृता जायंते संभवंत्यतः ॥ १५ ॥

जितने हेतुओंसे जितनी गति होतीहैं ( अर्थात् १ वायु, २ पित्त, ३ कफ, ४ सन्निपात, ५ अभिघातसे ) उतनेही प्रकारके स्तनरोग स्त्रियोंको उन्हीं उन्हीं कारणोंसे होतेहैं ॥ १३ ॥ कन्याओं ( लडकियों ) के स्तनोंकी नाडियोंके द्वार बंद होतेहैं इससे उनमें दोषोंका वितरण न होनेसे उनके स्तनोंमें रोग नही होते ॥ १४ ॥ और जब स्त्री युवा होतीहैं तब गर्भवती होनेकी दशामें अथवा प्रसूता होनेकी दशामें वे स्तनकी नाडियोंके द्वार स्वभावहीसे खुले होतेहैं इस हेतु तब स्तनके रोगभी होतेहै ॥ १५ ॥

रसप्रसादो मधुरः पक्काहारनिमित्तजः ॥ कृत्स्नदेहात्स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ १६ ॥ विशस्तेष्वपि देहेषु यथा शुक्रं न दृश्यते ॥ सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते ॥ १७ ॥ तदेव चेष्टयुवतेर्दर्शनात्स्मरणादपि ॥ शब्दसंश्रवणात्स्पर्शात्संघर्षाच्च प्रव-

( श्लो० १२ ) स्रावीमित्यध्याहारः । ( श्लो० १३ ) यैरेव वातपित्तकफसन्निपाताभिघातैः कारणैस्तैरेव हेतुभिः स्तनरोगाः स्युः । ( श्लो० १७ ) विशस्तेषु मारितेषु । विशस्तः नाशिते मारिते ( इति शब्दस्तोम. ) । विशस्तेषु इत्यत्र केचित् विसृतेषु इति वा पाठं पठति । विसृतेषु विस्तीर्णेषु ॥

र्तते ॥ १८ ॥ सुप्रसन्नं मनस्तत्र हर्षणे हेतुरुच्यते ॥ आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रियाः ॥ १९ ॥ तदेवापत्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि ॥ ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत्संप्रवर्त्तते ॥ स्नेहो निरंतरस्तत्र प्रस्रवे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

आहारके परिपाकसे उत्पन्न हुआ जो शुद्ध और मधुर समस्त शरीरव्यापी रसका सार है वह जब सम्पूर्ण शरीरसे स्तनों ( चूचियों ) में प्राप्त होता है तब ( श्वेतभावको प्राप्त हुआ ) दुग्ध कहलाता है ॥ १६ ॥ विशस्तदेह अर्थात् मृतशरीरमें जैसे शुक्र नहीं दीखता है ( इसी प्रकार मृतशरीरके चीरनेसे दुग्धभी किसी एक जगह स्तन आदिमें नहीं पाया जाता ) इसीसे दुग्धभी समस्त शरीरके आश्रय होनेसे शुक्रके लक्षणवाला ( शुक्रकी भांति ) कहा जाता है अथवा कई 'विशस्त'की जगह 'विसृत' ऐसा पाठांतर मानते हैं कि, जैसे सर्वत्र फैले हुए शरीरमें शुक्र नहीं दीखता वैसेही दुग्धभी इत्यादि परन्तु पाहिला अर्थ ठीक है ॥ १७॥ वह सर्व शरीरवर्त्ती शुक्र प्यारी स्त्रीके दर्शनसे, ध्यानसे, शब्द सुननेसे, स्पर्शसे हर्षित होकर प्रवृत्त होता है ( शुक्रधरा कलामें आता है ) ॥ १८ ॥ हर्षित होनेमें प्रसन्नमनही कारण होता है ( जैसे अभीष्ट स्त्रीके दर्शन स्पर्शादिसे पुरुषके सब शरीरसे निचुडकर शुक्र शुक्रधरा कलामें प्राप्त होता है तब पुरुषको चैतन्यता, मेढ्रमें स्थूलता और कठोरता आजाती है (ऐसेही आहारके रससे उत्पन्न होनेके कारणसे स्त्रियोंका दुग्धभी सब शरीरसे निचुड २ कर स्तनोंमें आता है ( तब स्तन स्थूल और भारी होजाते हैं ) ॥ ॥ १९ ॥ वह ( स्त्रियोंका दुग्ध ) संतानके स्पर्शसे, दर्शनसे, स्मरणसे, शरीरके ग्रहणसे, शुक्रकी भांति ( जैसे शुक्र वीर्यधराकलामें आजाता है वैसे ) स्तनोमें दुग्ध आजाता है और निरंतर अधिक जो स्नेह है वही इसके झिरने, टपकने या निकलनेका कारण होता है ॥ २० ॥

दूषित स्तन्यके लक्षण।

तत्कषायं भवेद्वातात् क्षिप्तं च प्लवतेम्भसि ॥ पित्तादम्लं च कटुकं राज्योम्भसि च पीतिकाः ॥ २१ ॥ कफाद्धनं पिच्छलं च जले चाप्यवसीदति ॥ सर्वैर्दुष्टैः सर्वलिंगमभिघाताच्च दुष्यति ॥ २२ ॥

जो स्त्रीका दुग्ध कसैला हो और पानीमें बूँद डालनेसे ऊपरही तिरता फिरे उसे वायुसे दूषित जानों तथा जो स्वादमें अम्लता लिये हो या चरपराट युक्त हो और जलमें डालनेसे पीली लहरेंसी दीखें तो उस दुग्धको पित्तदूषित जानों ॥२१॥ कफसे दूषित दुग्ध भारी और गाढा होता है तथा जलमें बूँद डालनेसे डूब जाता-

है और जिसमें सब लक्षण हों वह तीनों दोषोंसे दूषित होता है और अभिघात ( चोट लगने ) या मर्दन करने आदिसे भी दुग्ध दूषित होजाता है ॥ २२ ॥

### शुद्ध स्तन्यके लक्षण ।

यत्क्षीरमुदके क्षिप्तमेकीभवति पांडुरम् ॥
मधुरं चाविवर्णं च प्रसन्नं तद्विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥

जो दुग्ध जलमें डालनेसे एक जगह होजावे और कुछ २ पीलापन लिये हो तथा स्वादसे मीठा हो और दूषित वर्णवाला ( नीला, पीला, गुलाबी आदि ) न हो उसे निर्दोष जानों ॥ २३ ॥

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा प्राप्य दोषः स्तनौ स्त्रियाः ॥ रक्तं मांसं च संदूष्य स्तनरोगाय कल्पते ॥ २४ ॥ पंचानामपि तेषां तु हित्वा शोणितविद्रधिम् ॥ लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ २५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दुग्धयुक्त या विना दुग्धके स्त्रीके स्तनोंमें जब वातादि कोई दोष प्राप्त हो तब रुधिर तथा मांसको दूषित करके स्तनरोगका कारण होजाता है ॥ २४ ॥ रक्तकी विद्रधिको छोडकर उन पांचोंके लक्षण बाह्यविद्रधिके लक्षणोंके तुल्य होते हैं ( नाडीव्रणको यूनानीमें 'कुरह' या 'नासूर' कहते हैं और डाक्टरीमें 'सेनसया क्रानिक अलसर' कहते हैं ) ॥ २५ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा०टी० निदानस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

## एकादशोऽध्यायः ११.

### अथातो ग्रन्थ्यपच्यर्बुदगलगंडानां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी ग्रंथि, अपची, अर्बुद और गलगंड इन रोगोंके निदानका व्याख्यान करते हैं ॥

### ग्रंथिनिदान ।

वातादयो मांसमसृक् प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्च कफानुविद्धम् ॥
वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोफं कुर्वंत्यतो ग्रंथिरिति प्रदिष्टः ॥ १ ॥

दुष्ट हुए वातादिक दोष मांसको तथा रुधिरको और कफसे मिश्रित मेदको दूषित करके फैला हुआ तथा ऊँचा और गांठके तुल्य शोथ ( ऊँचाई ) पैदा करदेते हैं इससे इसे ग्रंथिरोग ( गांठ ) कहते हैं ॥ १ ॥

---

( श्लो० १ ) कफानुविद्धं कफसंसृष्टम् । चकारादत्र शिराग्रंथिर्ग्राह्यः ( इति डल्हनमतम् ) ॥

आयम्यते व्यथ्यत एति तोदं प्रत्यस्यते कृत्यत एति भेदम् ॥ कृष्णो मृदुर्वस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥ २ ॥ दंदह्यते धूप्यति चातिमात्रं पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ॥ रक्तः सपीतोऽप्यथवापि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम् ॥ ३ ॥ शीतो विवर्णोऽल्परुजोऽतिकंडुः पाषाणवत्संहननोपपन्नः ॥ चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ ४ ॥

जो ग्रंथि ( गांठ ) फूले, व्यथितसी हो, जिसमें चीस हो तथा चमचमाट हो, विदीर्णसी होती हो, फटीसी जाती हो, सांवला रंग हो, कर्कश हो, मशकसी फैली हो और टूटनेपर ( या नश्तर लगानेपर ) स्वच्छ, सुरख रुधिर निकले वह वातग्रंथि है ॥ २ ॥ जिसमें दाह हो, संताप अधिक हो, पकाईसी जाती हो, अति प्रज्वलित ( गरम ) सी हो और लाल, पीला रंग हो, फूटनेपर गरम और अधिक रक्त निकले वह पित्तग्रंथि है ॥ ३ ॥ जो छूनेमें शीतल हो, जिसका वर्ण अन्यथा न हो ( त्वचाके रंग हो ), जिसमें स्वल्प पीडा हो, खाज अधिक हो और पत्थर जैसी कडी हो, मलने या दबानेसे चैन मालूम हो, बहुत समयमें बढे और फूटनेपर सुपेद, गाढी राध निकले वह कफकी ग्रंथि है ॥ ४ ॥

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महानल्परुजोऽतिकंडुः ॥ मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं तु मेदः ॥ ५ ॥ व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुर्हि शिराप्रतानम् ॥ संपीड्य संकोच्य विशोष्य वापि ग्रंथिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ ६ ॥

जो ग्रंथि शरीरकी वृद्धि और क्षयके अनुसार बढती घटती रहे, बहुत स्निग्ध हो, जिसमें पीडा अल्प हो, खाज अधिक हो और जिसको अधिक भेदन करनेसे तिलकी पिट्ठी, घृत इनके समान मेदसा निकले तो वह मेदकी ग्रंथि है ॥ ५ ॥ यदि दुर्बल मनुष्य अति व्यायाम ( परिश्रम ) करे तो उन्हीं व्यायामोंसे कुपित

( श्लो० २ ) आयम्यते वायोराकर्षणेन दीर्घ इव क्रियते । प्रत्यस्यते क्षिप्यते । ( श्लो० ३ ) अतिमात्रं धूप्यति अतिशयेन संताप करोति ( इति डल्लनः ) । ( श्लो० ४ ) पाषाणवत् कठिन इति शेषः । संहननोपपन्नः संहननायोपपन्नः पीडनप्रिय इत्यर्थः । ( श्लो० ६ ) वृद्धवाग्भटे तु विशेषः—अस्थिग्रंथिः व्रणग्रंथिश्च यथा—"अस्थिभङ्गाभिघाताभ्यामुन्नतावनतं तु यत् । सोऽस्थिग्रंथिः—" इति । व्रणग्रंथिर्यथा—"आरूढे रूढमात्रे वा व्रणे सर्वरसाशिनः । सार्द्रे वा बन्धरहिते गात्रेऽश्माभिहतेऽथवा ॥ वातोऽस्रमसृतं दुष्टं संशोष्य ग्रथितं व्रणम् । कुर्यात्सदाहः कण्डूमान्व्रणग्रंथिरयं स्मृतः ॥" ( इति वृद्धवाग्भटः ) ॥

वायु नसोंके जालको इकट्ठा करके अथवा दबाकर या सकोडकर या शोषित करके ऊँची, फैली हुई, ग्रंथि शीघ्र उत्पन्न करता है (वह शिरा अर्थात् नसोंकी ग्रंथि है) ॥ ६॥

**ग्रंथिः शिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ॥**
**अरुक् स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥७॥**

वह शिराकी ग्रंथि ( नसोंकी गांठ ) यदि पीडायुक्त हो तथा सरकती हो तो कष्टसाध्य होती है और यदि उसमें कुछ भी दर्द न हो और स्थिर हो, बडी हो तथा मर्मस्थानमें हो तो वह ग्रंथि त्याग करने योग्य ( असाध्य ) है ॥ ७ ॥

### अपचीनिदान।

**हन्वस्थिकक्षाक्षकबाहुसंधिमन्यागलेषूपचितं तु मेदः ॥ ग्रंथिं स्थिरं वृत्तमथायतं वा स्निग्धं कफश्चाल्परुजं करोति ॥ ८ ॥ तं ग्रंथिभिश्चामलकास्थिमात्रैर्मत्स्यांडजालप्रतिमैस्तथान्यैः ॥ अनन्यवर्णैरुपचीयमानं चयप्रकर्षादपचीं वदंति ॥ ९ ॥**

ठोढीके अस्थि, काख, नेत्रके कोये, भुजाकी संधि, कनपटी और गला इन स्थानोंमें मेद और कफ ( दूषित हो ) स्थिर, गोल, चौडी, फैली, चिकनी, अल्प पीडावाली ग्रंथि उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥ आमलेकी गुठली जैसी गांठों करके तथा मछलीके अंडोंके जाल जैसी त्वचाके वर्णकी अन्य गांठों करके उपचीयमान (संचित) होती है इससे चय ( संचय ) की उत्कर्षतासे इसे अपची कहते हैं ॥ ९ ॥

**कंडूयुतास्तेल्परुजः प्रभिन्नाः स्रवंति नश्यंति भवंति चान्ये ॥**
**मेदःकफाभ्यां खलु रोग एष सुदुस्तरो वर्षगणानुबंधः ॥ १० ॥**

यह अपची रोग खाजयुक्त होता है और अल्पपीडा होती है इनमेंसे कोई तो फूटकर बहने लगजाते हैं और कोई स्वयं नाश होजाते हैं यह रोग मेद और कफसे होता है यदि यह कई वर्षोंका होजाय तो नहीं जाता ॥ १० ॥

### अर्बुद।

**गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्च्छिता मांसमभिप्रदूष्य ॥ वृत्तं स्थिरं मंदरुजं महांतमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥ कुर्वंति मांसोपचयं च शोफं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदंति ॥ ११ ॥**

---

( श्लो० १० ) वर्षगणानुबंधः सुदुस्तरः इति-बहुवर्षानुबंधो दुस्साध्यः । ( श्लो० ११ ) संमूर्च्छिताः स्थिताः । महांत ग्रथेः सकाशाद्दीर्घम् । ( इति भावमिश्रः ) ॥

शरीरके किसी प्रदेशमें मूर्च्छित हुए वातादि दोष मांसको दूषित करके गोल, स्थिर, अल्प पीडावाले, बडे और फैली जडवाले तथा बहुत दिनमें कुछ २ बढने-वाले, पककर नहीं फूटनेवाले ऐसे मांसके पिंडसे तथा शोथ उत्पन्न करतेहैं उन्हें शास्त्रज्ञ अर्बुद अर्थात् रसोली कहतेहैं ॥ ११ ॥

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा वा ॥
तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रंथेः समानानि सदा भवंति॥१२॥

वायुसे, पित्तसे, रुधिरसे, कफसे तथा मांससे अथवा मेदसे यह जो अर्बुदरोग होता है उसके लक्षण सदैव ग्रंथिके समान होतेहैं ॥ १२ ॥

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिरास्तु संपीड्य संकोच्य गतस्तु पाकम् ॥
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिंडं मांसांकुरैराचितमांसवृद्धिम् ॥ १३ ॥
स्रवत्यजस्रं रुधिरं प्रदुष्टमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं स्यात् ॥ रक्तक्षयो-
पद्रवपीडितत्वात्पांडुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ॥ १४ ॥

दूषित हुआ ( पित्त ) दोष रुधिर और शिराओंको पीडित करके तथा संकुचित करके जब कभी पाकको प्राप्त हो तब स्रावयुक्त मांसपिंडको तथा मांसोंके अंकुर-युक्त मांसवृद्धिको उत्पन्न करताहै ॥१३॥ उससे दूषित हुआ रुधिर बहुत निकलता-है। यह रक्तार्बुद असाध्य है क्योंकि इसमें रक्तक्षयके उपद्रवोंसे पीडित होनेके कारण रक्तार्बुद रोगवाला पीला पडजाताहै ( या उसे पांडुरोग होजाताहै ) ॥ १४ ॥

मांसार्बुद ।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेंगे मांसं प्रदुष्टं प्रकरोति शोफम् ॥ आवे-
दनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ॥ १५ ॥ प्रदुष्ट-
मांसस्य नरस्य बाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ मांसार्बुदं त्वेतद-
साध्यमुक्तं साध्येष्वपीमान्युपवर्जयेत्तु ॥१६॥ संप्रस्रुतं मर्मणि यच्च
जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ॥ यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्व-

( श्लो० १२ ) ग्रथे. समानानि वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकमेदोजानामर्बुदाना लक्षणानि भवंतीति ॥ ( श्लो० १३।१४ ) दोषोऽत्र पित्तम् । उन्नह्यति उद्गतं करोति 'गतस्तु पाकम्' इत्यत्र ततस्त्वपाकमिति वा पाठ । अपाक यथास्यात्तथा कोथं. पूयमभूत्वा अजस्रं रुधिरमेव स्रवति । ( श्लो० १५ ) मुष्टिप्रहारा-दिभिरित्यत्र आदिशब्देन अन्योपि हेतुर्बोद्धव्य. । ( श्लो० १६ ) बाढम् अतिशयेनेति ( श० स्तो० ) ॥ मांसपरायणस्य मांसभक्षणशीलस्य ( इति डल्हन. ) । अस्य चतुर्थपादमग्रिमेनार्द्धश्लोकेनान्वेतव्यम् ॥

जाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ॥ यद्द्वन्द्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ १७ ॥

पीडित शरीरमें मुष्टि अथवा काष्ठादिके प्रहार आदिसे दूषित हुआ मांस ऐसे शोथको पैदा करता है जिसमें वेदना न रहे, स्निग्ध हो, त्वचाके वर्णकाही हो, पककर फूटे नहीं, कडा पत्थरसा हो तथा चलायमान नहीं हो ( उसे मांसार्बुद कहते हैं ) ( यहां आदि शब्दके कथनसे प्रहारके सिवाय दबजाने कुचला जाने इत्यादि कारणों तथा अन्य कारणोंसेभी मांसार्बुद हो सकता है ) ॥ १५ ॥ प्रायः मांसार्बुद मांसभोजी मनुष्योंके जब मांस दूषित होता है तब विशेष करके होता है । और यह मांसार्बुद असाध्य कहा है तथा साध्य वातादिके अर्बुदोंमेंसेभी आगे कहे हुए अर्बुदोंको ( असाध्य जानके ) त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥ जो सदा झिरता हो अथवा जो मर्मस्थानोंमें हो अथवा जो स्रोत अर्थात् द्वारोंमें हो तथा चलायमान न हो और जो पहले अर्बुद हो उसीके समीप और अन्य अर्बुद उत्पन्न हो जाय तो उसे वैद्य अध्यर्बुद कहते हैं । अथवा दो दोषोंसे एकही वार पास पास दो अर्बुद पैदा हों तो वे द्विरर्बुद होते हैं और येभी असाध्य हैं ॥ १७ ॥

न पाकमायाति कफाधिकत्वान्मेदोधिकत्वाच्च विशेषतस्तु ॥
दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ १८ ॥

ये अर्बुद इस हेतुसे पाकको प्राप्त नही होते कि इनमें ग्रंथिकी अपेक्षा कफका भाग बहुत अधिक होता है और विशेष करके मेदका भाग तो बहुतही अधिक होताहै तथा दोषकी स्थिरता हो जाती है और गांठसी बँध जाती है जिससे स्वभावहीसे सब अर्बुद प्रायः नही पकते ॥ १८ ॥

## गलगंड ।

वातः कफश्चैव गले प्रवृद्धौ मन्ये तु संसृत्य तथैव मेदः ॥ कुर्वन्ति गंडं क्रमशः स्वलिंगैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥ १९ ॥ तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः कृष्णोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु ॥ मेदोन्वितश्चोपचितैश्च कालाद्भवेत्प्रदिग्धे च गले रुजश्च ॥ २० ॥

यदि बढेहुए वायु और कफ गले ( की त्वचादि ) में स्थित होकर तथा मेदमें स्थित होकर अपने अपने लक्षणों सहित यथाक्रम गंड अर्थात् फोडा पैदा करें तो

---

( श्लो० १८ ) निसर्गतः स्वभावत एवेति । ( श्लो० १९ ) गंडः स्फोटकः । स्वलिंगैर्वातादिलक्षणैः । ( श्लो० २० ) प्रदिग्धे प्रकर्षेण लिप्ते ।

उसको गलगंड रोग कहतेहैं ॥ १९ ॥ जो गलगंड पीडायुक्त हो, काली नसोंसे पूरित हो, रंग काला अथवा रक्त हो वह वायुका गलगंड होता है और इसमें देरसे मेदका संचय होता है, गलेके लिप्त होनेपर पीडा होती है ॥ २० ॥

वातजगलगंडके लक्षण ।

पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥
वैरस्यमास्यस्य च तस्य जंतोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥ २१ ॥

जो कठोरतायुक्त हो बहुत दिनमें बढे और पककर फूटे नहीं तथा कदाचित् अपनी इच्छासे पक (फूट) भी जाय और उस मनुष्यके मुँहमें विरसता हो तथा तालु और गलेमें खुश्की हो (तो वायुका गलगंड हो) ॥ २१ ॥

कफजगलगंडके लक्षण ।

स्थिरः सवर्णोल्परुगुग्रकंडुः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु॥चिराभिवृद्धिं कुरुते चिराद्वा प्रपच्यते मंदरुजं कदाचित् ॥ माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ २२ ॥

जो स्थिर हो, पके वर्णका हो, जिसमें थोडी पीडा हो, खाज अधिक हो, (स्पर्शमें) शीतल हो, स्थूल हो,बहुत दिनोंमें बढे और बहुतही दिनोंमें पके भी और मंद २ पीडा हो और उस मनुष्यके मुखमें मीठापन हो तथा तालु और गलेमें लेपसा हो तो कफका गलगंड है ॥ २२ ॥

मेदोजगलगंडके लक्षण ।

स्निग्धो मृदुः पांडुरनिष्टगंधः मेदःकृतो नीरुगथातिकंडुः ॥ प्रलंबतेलाबुरिवाल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जंतोर्गलेन शब्दं कुरुते च नित्यम् ॥ २३ ॥

जो चिकना हो, पीला हो, जिसमें बुरी बास आवे, पीडा नहीं हो, खाज विशेष हो और जो घीया तोंबीके तुल्य लटके और जडमेंसे कुछ पतला हो तथा शरीरकी वृद्धि और क्षयके अनुसार छोटा बडा हो और उस मनुष्यका मुँह चिकना हो तथा नित्य गलेसे शब्द करे तो उसे मेदकी प्रधानताका गलगंड जानो ॥ २३ ॥

गलगंडकी असाध्यता ।

कृच्छ्राच्छ्वसंतं मृदु सर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम् ॥
क्षीणं तु वैद्यो गलगंडिनं तं भिन्नस्वरं चैव विवर्जयेत्तु ॥ २४ ॥

---

(श्लो० २२) वातगलगंडानंतर श्लेष्मगलगंडस्यैव लक्षणमुक्तं पैत्तिकगलगंडाभावात् ॥

जो गलगंडका रोगी मनुष्य कष्टसे श्वास लेवे और सब गात्र कोमल होजायँ तथा एक वर्षसे अधिकका गलगंड हो, अरुचि हो, क्षीण होजाय तथा जिसका स्वर भंग होजाय ऐसे गलगंडके रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ २४ ॥

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लंबते गले ॥
महान्वा यदि वा ह्रस्वस्तं गंडमिति निर्दिशेत्॥ २५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थान एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

जिसके गलेमें नियमित शोथ हो और वह वृषणकी तरह लटके, बडा हो या छोटा हो उसको गलगंड कहते हैं ॥ २५ ॥

## परिशिष्ट ।

### भावप्रकाशोक्त-गंडमालालक्षण ।

श्लोक-कर्कंधुकोलामलकप्रमाणौ कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु ॥
मेदःकफाभ्यां चिरमंदपाकैः स्याद्गंडमाला बहुभिश्च गंडैः ॥ १ ॥

अर्थ-छोटे या बडे बेर तथा आंवलेके प्रमाण कांख, कांध और गलेसे पीछेकी मोटी नसें तथा गलेके वंक्षण अर्थात् हाथोंकी संधि (हँसलीके नीचे) में यदि मेद और कफसे उत्पन्न हुए बहुत दिनोंमें मन्द मन्द पकनेवाले बहुतसे गंड होजायँ तो उन्हें गंडमाला कहते हैं ॥ १ ॥

गंडमालाको डाक्टरीमें 'इस्काफ्यूला' कहते हैं और यूनानी हकीम अर्बुदको 'सलआ' कहतेहैं और ग्रंथिको 'अकद' कहतेहैं और गलगंडको भी इसीका भेद कहतेहैं॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा०टी० निदानस्थान एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

# द्वादशोऽध्यायः १२.

## अथातो वृद्ध्युपदंशश्लीपदानां निदानं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी वृद्धि (अंडवृद्धि), उपदंश, श्लीपद इन रोगोंके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

### अंडवृद्धि ।

वातपित्तश्लेष्मशोणितमेदोमूत्रांत्रनिमित्ताः सप्त वृद्धयः । तासां मूत्रांत्रनिमित्ते वृद्धी वातसमुत्थे केवलमुत्पत्तिहेतुरन्यतमः ॥ १ ॥

---

(गय १) वृद्धिः अण्डवृद्धिः । मूत्रांत्रनिमित्ते वृद्धी वातसमुत्थे केवलमुत्पत्तिहेतुरन्यतमः । अस्य स्पष्टोऽर्थः मूत्रनिमित्ता वृद्धिः अंत्रनिमित्ता वृद्धिश्च द्वे वातसमुद्भवे एव केवलमुत्पत्तिहेतुरन्यः यथा मूत्रवृद्धेः उत्पत्तिहेतुर्मूत्रम् अन्त्रवृद्धेरन्त्रम् । अथवा अनयोर्व्याध्योः निमित्तं तु वायुरेव केवलमुत्पत्तिहेतुरन्यतमः यथा मूत्रवृद्धेरुत्पत्तिहेतुर्मूत्रसंधारणम् अन्त्रवृद्धेः भारहरणमिति ॥

अधः प्रकुपितोऽन्यतमो हि दोषः फलकोशवाहिनीरभिप्रपद्य धमनीः फलकोशयोर्वृद्धिं जनयति तां वृद्धिमित्याचक्षते ॥ २ ॥

वायु, पित्त, कफ, रुधिर, मेद, मूत्र तथा अंत्र ( अँतडी ) इन कारणोंसे वृद्धि (अंडवृद्धि ) रोग सात प्रकारका होताहै। इनमेंसे मूत्रज और अंत्रज वृद्धिका निमित्तभी वायुहीसे उत्पन्न होताहै, केवल उत्पत्तिका हेतुमात्र और होताहै ( अर्थात् मूत्रवृद्धि और अन्त्रवृद्धिकी उत्पत्तिके हेतु क्रमसे मूत्र और अन्त्र हैं अथवा मूत्रसंधारण मूत्रजवृद्धिका अन्य हेतु और भारहरण ( बोझ उठाना ) अंत्रजवृद्धिका अन्य हेतु होजाताहै)॥ १ ॥ नीचे वस्तिस्थानमें कुपित हुआ कोईसा ( वातादि ) दोष अंडकोशवाहिनी धमनीमें प्राप्त होकर अंडकोशोंमें वृद्धि उत्पन्न करदेताहै उसे वृद्धिरोग कहतेहैं ॥ २ ॥

वृद्धिका पूर्वरूप ।

तासां भविष्यतीनां पूर्वरूपाणि वस्तिकटीमुष्कमेढ्रेषु वेदना । मारुतनिग्रहः । फलकोशयोः शोफश्चेति ॥ ३ ॥

जब अंडवृद्धि होनेवाली होतीहै तब उसके ये पूर्वरूप होतेहैं। वस्ति, कमर, वृषण, लिंग इनमें पीडा हो, अधोवायुका निरोध हो तथा अंडकोशमें सूजन होनेलगे॥ ३॥

तत्राऽनिलपरिपूर्णां वस्तिमिवाततां परुषामनिमित्तानिलरुजं वातवृद्धिमाचक्षते। पक्वोदुंबरसंकाशां ज्वरदाहोष्मवतीं चाशुसमुत्थानपाकां पित्तवृद्धिम् । कठिनामल्पवेदनां शीतां कंडूमतीं श्लेष्मवृद्धिम् । कृष्णस्फोटावृतां पित्तवृद्धिलिंगां रक्तवृद्धिम् । मृदुस्निग्धां कंडूमतीमल्पवेदनां तालफलप्रकाशां मेदोवृद्धिम् ॥४॥ मूत्रसंधारणशीलस्य मूत्रवृद्धिर्भवति सा गच्छतोंऽवुपूर्णादृतिरिव क्षुभ्यति मूत्रकृच्छ्रवेदनां वृषणयोः श्वयथुं कोशयोश्चापादयति तां मूत्रवृद्धिं विद्यात् ॥ ५ ॥

उनमेंसे जो वायुसे भरी मशककी तरह फूली हो, खरदरी हो, विना कारण वायुकी पीडा हो तो उसे वायुकी अंडवृद्धि कहतेहैं। जिसमें वृषण पके गूलरके वर्ण हों, मनुष्यको ज्वर, दाह और गरमीकी व्याधि हो तथा शीघ्रही बढें और पकजायँ उसे पित्तकी अंडवृद्धि कहते हैं। जिसमें कठिनता हो, अल्प पीडा हो, वृषण ठंढे

(गद्य २) फलम् अंडम् ॥

हों, खाज विशेष हो वह कफकी अंडवृद्धि है। जिसमें वृषणोंपर काली २ बहुतसी फुन्सियां हों और प्रायः पित्तवृद्धिके लक्षण हों वह रुधिरकी अंडवृद्धि है। जिसमें वृषण कोमल हों, चिकनाई हो, खाज हो, पीडा अल्प हो, तालफलके तुल्य दीखे उसे मेदकी अंडवृद्धि कहतेहैं ॥४॥ जो मनुष्य मूत्रको रोके प्रायः उसके मूत्रज अंडवृद्धि होती है वह चलते हुए पानीसे भरी मशककी तरह थलथलाती है और मूत्र कठिनतासे आता है तथा वृषणों और वृषणकोश ( थैलियों ) में शोथ पैदा कर देतीहै उसे मूत्रकी अंडवृद्धि जानना चाहिये ॥ ५ ॥

भारहरणबलवद्विग्रहवृक्षप्रपतनादिभिरायासविशेषैर्वायुरतिप्रवृद्धः प्रकुपितश्च स्थूलांत्रस्येतरस्य चैकदेशं द्विगुणमादायाधो गत्वा वंक्षणसंधिमुपेत्य ग्रंथिरूपेण स्थित्वाऽप्रतिक्रियमाणे च कालांतरेण फलकोशं प्रविश्य मुष्कशोफमापादयत्याध्मातो वस्तिरिवाततः प्रदीर्घः शोफो भवति। सशब्दमवपीडितश्चोर्द्ध्वमुपैति विमुक्तश्च पुनराधमति तामंत्रवृद्धिमसाध्यामित्याचक्षते ॥६॥

बोझा उठानेसे, बलवान्के साथ लडने ( कुश्ती करने ) से, वृक्षसे गिरने आदि विशेष कष्टोंसे वायु अत्यंत बढकर और कुपित होकर मोटी आतोंमेंसे अथवा अन्य पतली आंतोंमेंसे किसीके एकदेशको दोहरा करके नीचेको पहुँचा वृषणोंकी संधिमें लाके ग्रंथिरूपसे स्थित होता है और यदि उसकी प्रतिक्रिया नहीं कीजाय तो वह समय पाकर अंडकोशमें प्रविष्ट होजाता है और वृषणोंमें सूजन उत्पन्न करता है और फूलीहुई मशककी तरह फैला हुआ बडा शोथ होता है और ऊपरको दबानेसे शब्दके साथ ऊपरको चढ जाता है और छोड देनेसे फिर उतर आता है उसे अंत्रज ( अँतडीकी ) अंडवृद्धि कहतेहैं और इसको असाध्य कहते हैं ( अंडवृद्धिको डाक्टरीमें 'इन्फलमिशन औफदी टिसटीकिल्स' कहते हैं और यूनानीमें 'ताजीमुल अनीसैन' कहते हैं) ॥ ६ ॥

### उपदंशनिदान।

तत्रातिमैथुनादतिब्रह्मचर्याद्वा तथा ब्रह्मचारिणीं चिरोत्सृष्टां रजस्वलां दीर्घरोमां कर्कशरोमां संकीर्णरोमां निगूढरोमामल्पद्वारां महाद्वारामप्रियामकामामचौक्ष्यसलिलप्रक्षालितयोनिमक्षालितयोनिं योनिरोगोपसृष्टां स्वभावतो वा दुष्टयोनिं वियोनिं वा नारीमत्यर्थमुपसेवमानस्य तथा करजदशनविषशूकनिपातनादर्दनाद्ध-

स्ताभिघाताच्चतुष्पदीगमनादचौक्ष्यसलिलप्रक्षालनादवपीडनाच्छु-क्रसूत्रवेगविधारणान्मैथुनांते वाप्रक्षालनादिभिर्मेढ्रमागम्य कुपिता दोषाः क्षतेऽक्षते वा श्वयथुमुपजनयंति तमुपदंशमित्याचक्षते ॥ ७ ॥ स पंचविधस्त्रिभिर्दोषैः पृथक्समस्तैरसृजा चैकः ॥ ८ ॥

अति मैथुनसे, अति ब्रह्मचर्यसे तथा ब्रह्मचारिणी, बहुतदिनकी छुटी हुई, रजस्वला, बडे रोमोंवाली, कडे रोमोंवाली, संकीर्ण रोमोंवाली स्त्रीके साथ संग करनेसे तथा जिसके भीतरको बाल घुसे हों उस स्त्रीके संगसे तथा जिसकी योनि तंग हो या जिसकी बडी हो उसके संगसे तथा जो अप्रिय हो, जो मैथुनकी इच्छा न करे या जिसने मलिन जलसे योनि धोई हो या जिसने ( बहुत दिनसे ) योनि धोई नहीं हो या जिसकी योनिमें कोई व्रणादि रोग हो या स्वभावहीसे जिसकी योनि दूषित ( अस्थ्यादि युक्त ) हो या जिसके योनि होही नही ( अर्थात् हीजड़ी हो जिसके छोटासा मूत्रमार्ग होताहै ) ऐसी स्त्रियोंके साथ संग करनेसे या विशेष स्त्रियोंके पास रहनेसे तथा नाखून, दांत लगनेसे, विष, तिनका गिरनेसे, दबानेसे, हाथके मर्दनसे, पशुगमनसे, मैले जलसे लिंग धोनेसे, मसलनेसे, वीर्य और मूत्रके वेग रोकनेसे, मैथुनांतमें न धोने इत्यादिसे कुपित हुए वातादि दोष लिंगमें प्राप्त होकर घावमें या विना घावही शोथ पैदा करते हैं इसे उपदंश कहते हैं ॥७॥ यह उपदंश पांच प्रकारका होता है १ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ सन्निपातसे और ५ पाँचवां रक्तदोषसे होता है ॥ ८ ॥

तत्र वातिके पारुष्यं त्वक्परिपुटनं स्तब्धमेढ्रता परुषशोफता विविधाश्च वातवेदनाः।पैत्तिके ज्वरः श्वयथुः पक्वोदुंबरसंकाशस्तीव्रदाहः क्षिप्रपाकः पित्तवेदनाश्च । श्लैष्मिके श्वयथुः कंडूमान् कठिनः स्निग्धः श्लेष्मवेदनश्च । रक्तजे कृष्णस्फोटप्रादुर्भावोत्यर्थमसृक्प्रवृत्तिः पित्तलिंगानि चात्यर्थं ज्वरदाहौ शोषश्च याप्यश्च कदाचित् । सर्वजे सर्वलिंगदर्शनमवदरणं शेफसः क्रिमिप्रादुर्भावो मरणं चेति ९

इनमेंसे वायुके उपदंशमें खरदरापन होताहै, लिंगकी चमडीमें तरेडें होजाती हैं, इंद्रिय कड़ी होजातीहै और खरदरा सोजा होताहै तथा अनेक प्रकारकी वायुजनित वेदना होतीहैं । पित्तके उपदंशमें ज्वर हो, शोथ हो, पके गूलरके समान लाल वर्ण हो, बहुत जलन हो, शीघ्र पके तथा पित्तकी वेदना हो । कफके उपदंशमें खाजसे

( गद्य ९ ) कटकैरुपचितं मांसाकुरैः उपचितम् ॥

रुक्ष, कडा, चिकना और कफकी वेदनावाला सोजन (शोथ) हो। रक्तके उपदंशमें काली २ फुन्सियां पैदा हों, अधिक रुधिर निकले, पित्तकेसे लक्षण हों, विशेष कर ज्वर हो, दाह हो, शोष (खुश्की) हो, कभी कभी यह रक्तोपदंश याप्य होजाताहै सन्निपातके उपदंशमें सबके लक्षण होतेहैं, लिंगमें दारुण जखम पड़जातेहैं, उनमें कीड़े पड़जातेहैं तथा मृत्यु होजातीहै ॥ ९ ॥

## अथ परिशिष्ट।

### फिरंगरोगोत्पत्ति।

यद्यपि चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीत आदि सनातन संहिताओंमें फिरंगरोग नहीं लिखा केवल उपदंशही लिखाहै परंतु इस समय जो रोग आतशक (गरमी) के नामसे विख्यात है और बहुत फैला है वह पूर्वलिखित उपदंशसे विलक्षणही प्रतीत होताहै। चरक, सुश्रुतादिमें जो इसे पृथक् नहीं लिखा इससे जाना जाताहै कि उस समय भारतभूमिमें यह दारुण रोग फिरंग नहीं था परंतु प्रकृतिविरुद्ध अन्यदेशीय मनुष्योंका यहीं अधिक समागम हुआ तो उनके संगसे इसका प्रादुर्भाव हुआ और भावमिश्रके समयमें इस फिरंगरोगका यहां प्रादुर्भाव होगयाथा इसीसे अपने भावप्रकाश ग्रंथमें भावमिश्रने इस रोगको उपदंशसे पृथक् लिखाहै देखो भावप्रकाशमें लिखाहै कि-

श्लोक-फिरंगसंज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत् ॥ तस्मात्फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः ॥ १ ॥ फिरंगिणोऽङ्गसंसर्गात्फिरंगिण्याः प्रसंगतः ॥ व्याधिरागंतुजो ह्येष दोषाणामत्र संक्रमः ॥ २ ॥

अर्थ-फिरंग आदि ठंडे देशोंमें यह रोग विशेषतासे होताहै इस कारणसे इसका नाम वैद्योंने फिरंगरोगही कहाहै ॥ १ ॥ फिरंगी (फिरंगरोगवाले) के अंगके संसर्गसे अथवा फिरंगिणी (फिरंगरोगवाली) स्त्रीके प्रसंगसे यह आगंतुक व्याधि पैदा (हुई और) होतीहै इसमें दोषोंकी संक्रामकता प्रसंगसे होतीहै ॥ २ ॥

श्लोक-फिरंगस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्य आभ्यंतरस्तथा ॥ बहिरंतर्भवश्चापि तेषां लिंगानि च ब्रुवे ॥ ३ ॥ तत्र बाह्यफिरंगः स्याद्विस्फोटसदृशोऽल्परुक् ॥ स्फुटितो व्रणवद्वैद्यैः सुखसाध्योपि स स्मृतः ॥ ४ ॥ संधिष्वाभ्यंतरः स स्यादामवात इव व्यथाम् ॥ शोथं च जनयेदेष कष्टसाध्यो बुधैः स्मृतः ॥ ५ ॥ कार्श्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मंदता ॥ रक्तदोषोस्थिवक्रत्वं फिरंगोपद्रवा अमी ॥ ६ ॥

अर्थ-फिरंगरोग तीन प्रकारका होताहै। १ बाह्य, २ आभ्यंतर, ३ बाह्याभ्यंतर उनके लक्षण कहतेहैं ॥ ३ ॥ इनमेंसे बाह्य (बाहरी) फिरंगमें फुन्सियांसी होतीहैं, कष्टभी अल्प होताहै, फूट जानेपर व्रणकी भांति वैद्योंने सुखसाध्य कहाहै ॥ ४ ॥ आभ्यंतर (भीतरी) फिरंग आमवातरोगकी तरह संधियोंमें व्यथा और शोथ पैदा

करता है यह वैद्योंने कष्टसाध्य कहा है ॥ ५ ॥ इस रोगके ये उपद्रव हैं—कृशता, बलकी क्षीणता, नाक भंग होजाना, अग्निकी मंदता, रक्तदोष ( खून बिगडजाना ), अस्थियोंका टेढा होना। ( कई ' रक्तदोष ' की जगह ' अस्थिशोष ' ऐसा पाठांतर मानते हैं ) ॥ ६ ॥

(वक्तव्य) सुश्रुतपाठी वैद्य "योनिरोगोपसृष्टामुपसेवमानस्य" इस सुश्रुतवचनानुसार फिरंगरोगका भी उपदंशमेंही अंतर्भाव करते हैं इसी कारण फिरंगयोनि रोगवाली स्त्रीके साथ संग करनेसे इसकी उत्पत्ति भी मानते हैं और वहींपर " शुक्रमूत्रवेगविधारणात् " ऐसा भी लिखा है जिससे वर्तमान समयके सुजाकरोग ( कृच्छ्र ) का भी अंतर्भाव होसकता है परंच भावप्रकाशके अनुसार उपदंश और फिरंगकी औषध और चिकित्सामें अन्तर होनेसे तथा फिरंगमें आमवातकेसी व्यथा और नासाभंगादि उपद्रवोंके अन्तरसे अवश्य यह पृथक्ही सिद्ध होता है। डाक्टरीमें इसे "सिफलिस" और यूनानी हकीम "वादफरंग" या " आतशक " कहते हैं ॥

इति परिशिष्टम्।

## श्लीपदनिदान।

कुपितास्तु दोषाः वातपित्तश्लेष्माणोऽधःप्रपन्ना वंक्षणोरुजानुजंघास्ववतिष्ठमानाः कालांतरेण पादमाश्रित्य शनैः शोफं जनयंति तत् श्लीपदमित्याचक्षते॥१०॥तत्त्रिविधं वातपित्तकफनिमित्तमिति॥११॥

कुपित हुए वायु, पित्त, कफ दोष नीचेको प्राप्त होकर वंक्षण (पावोंकी ऊपरली संधि ), साथल, जानु और जंघा इन स्थानोंमें स्थित हुए समय पाकर पैरों ( पिडलियों ) में प्राप्त होकर धीरे धीरे शोथ उत्पन्न करते हैं ( पैरको मोटा स्थूल करदेते हैं ) इसे श्लीपद ( पीलपाव रोग ) कहते हैं ॥१०॥ यह तीन प्रकारका होता है वायुका, पित्तका और कफका ॥ ११ ॥

तत्र वातजं खरं कृष्णं परुषमनिमित्तानिलरुजं परिस्फुटति च बहुशः। पित्तजं तु पीतावभासमीषन्मृदु ज्वरदाहप्रायञ्च। श्लेष्मजं तु श्वेतं स्निग्धावभासं मंदवेदनं भारिकमिति महाग्रंथिकं कंटकैरुपचितं च॥१२॥ तत्र संवत्सरातीतमतिमहद्वल्मीकजातं प्रस्रुतमिति वर्जनीयम्॥ १३ ॥ भवन्ति चात्र—

( गद्य १२ ) कटकैरुपचित मांसांकुरैः उपचितम् ॥

वायुके श्लीपदमें पांव खरदरा, साँवला, कडा होता है तथा विना हेतु वायुके विकार होते हैं और विशेष करके पाँवका शोथ फटने लगता है (लकीरेंसी होतीहैं) पित्तका श्लीपद हो तो पाँवके शोथमें पीली चमक मालूम हो, कुछ २ कोमल हो तथा प्रायः ज्वर और दाह हो। कफके श्लीपदमें सोजा सुपेद हो, चिकनी चमक हो, मंद पीडा हो, भारीपन अधिक हो, वडी गाँठिसी हों तथा मांसके अंकुरोंसे व्याप्त हो ॥१२॥ इनमेंसे जो एक वर्षसे अधिक पुराना हो, जो साँपोंकी बँबईके समान होगया हो तथा जो नित्य झिरता हो तो (असाध्य जान) त्यागने योग्य है ॥१३॥ इस विषयमें श्लोक हैं-

त्रीण्येतानि विजानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ॥
गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ १४ ॥

ये तीनोंही प्रकारके श्लीपद कफकी उल्वणतासे होते हैं क्योंकि कफके विना भारीपन और मोटापन नही हो सकता (इससे इस रोगमें प्रधान कफही है) ॥१४॥

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः ॥ ये देशास्तेषु जायंते श्लीपदानि विशेषतः ॥ १५ ॥ पादयोर्हस्तयोश्चापि श्लीपदं जायते नृणाम् ॥ कर्णाक्षिनासिकौष्ठेषु केचिदिच्छंति तद्विदः ॥ १६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

जिन देशोंमें बहुत करके पुराना (कई वर्षोंका भरा) जल हो और वे देश सब ऋतुवोंमें शीतलही हों ऐसे देशोंमें विशेष करके श्लीपद रोग अधिक होताहै (जैसे बिहार, अवध, बंगाल प्रांतके अनूपदेशोंमें यह अधिक होताहै) ॥ १५ ॥ मनुष्योंके पैरोंमें तथा किसीके हाथोंमेंभी यह श्लीपद रोग होताहीहै परंतु कई आचार्य ऐसाभी कहते हैं कि यह श्लीपद कान, नेत्र, नासिका और होठ (तथा लिंग) मेंभी हो सकताहै (श्लीपदको डाक्टरीमें "इन्फ्लीमेशन औफदीलिंग" कहतेहैं और यूनानी-वाले "पीलपाँव" कहतेहैं) ॥ १६ ॥

इति पण्डितमुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थाने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

## त्रयोदशोऽध्यायः १३.

### अथातः क्षुद्ररोगाणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी क्षुद्ररोगोंके निदानकी व्याख्या करते हैं ।

समासेन चतुश्चत्वारिंशत् क्षुद्ररोगा भवंति तद्यथा ॥ १ ॥ अज-गल्लिका यवप्रख्याऽन्धालजी विवृता कच्छपिका वल्मीकमिंद्रवृद्धा

पनसिका पाषाणगर्दभो जालगर्दभः कक्षा विस्फोटकोऽग्निरोहिणी चिप्पं कुनखोऽनुशयी विदारिका शर्करार्बुदं पामा विचर्चिका रकसा पाददारिका कदरमलसेंद्रलुप्तौ दारुणकोऽरुंषिका पलितं मसूरिका यौवनपिडका पद्मिनीकंटको जतुमणिर्मशकश्चर्मकीलस्तिलकालको न्यच्छं व्यंगः परिवर्तिकाऽवपाटिका निरुद्धप्रकाशः निरुद्धगुदोऽहिपूतनं वृषणकच्छूर्गुदभ्रंशश्चेति ॥ २ ॥

संक्षेपतासे चवालीस ४४ क्षुद्ररोग होते हैं जैसे ॥ १ ॥ १ अजगल्लिका, २ यवप्रख्या, ३ अंधालजी, ४ विवृता, ५ कच्छपिका, ६ वल्मीक, ७ इन्द्रवृद्धा, ८ पनसिका, ९ पाषाणगर्दभ, १० जालगर्दभ, ११ कक्षा, १२ विस्फोटक, १३ अग्निरोहिणी, १४ चिप्प, १५ कुनख, १६ अनुशयी, १७ विदारिका, १८ शर्करार्बुद, १९ पामा, २० विचर्चिका, २१ रकसा, २२ पाददारिका, २३ कदर, २४ अलस, २५ इंद्रलुप्त, २६ दारुणक, २७ अरुंषिका, २८ पलित, २९ मसूरिका ३० यौवनपिडिका, ३१ पद्मिनीकंटक, ३२ जतुमणि, ३३ मशक, ३४ चर्मकील, ३५ तिलकालक, ३६ न्यच्छ, ३७ व्यंग, ३८ परिवर्तिका, ३९ अवपाटिका, ४० निरुद्धप्रकाश, ४१ निरुद्धगुद, ४२ अहिपूतन, ४३ वृषणकच्छु तथा ४४ गुदभ्रंश ऐसे ये ४४ हुए इनके लक्षण चिह्नादि अगाडी लिखते हैं ॥ २ ॥

क्षुद्ररोगोंके लक्षण ।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा ॥
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ ३ ॥

जो चिकनी, त्वचाके वर्णकी ग्रथित मूँगके समान, पीडारहित बालकोंके फुन्सी होती है उसे " अजगल्लिका " कहते हैं यह कफ और वायुसे होती है ॥ ३ ॥

यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंसृता ॥ पिडका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ ४ ॥ घनामवक्त्रां पिडकामुन्नतां परिमंडलाम् ॥ अंधालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ ५ ॥ विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुंबरसन्निभाम् ॥ विवृतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमंडलाम् ॥ ६ ॥ ग्रंथयः पंच वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः ॥ कफानिलाभ्यामुद्भूतां विद्यात्तां कच्छपीमिति ॥ ७ ॥

( गद्य २ ) शार्ङ्गधरेण तु षष्टिक्षुद्ररोगाः पठिताः ॥

जो फुन्सी यव (जौ) के आकार हो, बहुत कठिन हो, गांठसी पडगई हो, जिसपर मांस आच्छादित हो उसे "यवप्रख्या" कहते हैं यह कफ और वायुसे उत्पन्न होती है ॥ ४ ॥ जो फुन्सी कडी हो, जिसमें मुख न हो, ऊपरको उठी हुई हो या नीचे फैली हो, उसमें अल्प पीब हो उसे "अंधालजी" कहते हैं यह भी कफ, वायुसेही उत्पन्न होतीहै ॥ ५ ॥ जिसका मुँह फैला हुआ हो, अत्यंत दाह हो तथा जो पके गूलरके समान हो, फैली हो वह "विवृता" है यह पित्तसे उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥ जिसमें पांच या छः ग्रंथि दारुण हों और कछवेके भांति ऊपरको उठी हो वह "कच्छपी" है, यह कफ और वायुसे होती है ॥ ७ ॥

**पाणिपादतले संधौ ग्रीवायामूर्द्ध्वजत्रुणि ॥ ग्रंथिर्वल्मीकवद्यस्तु शनैः समुपचीयते ॥ ८ ॥ तोदक्लेदपरीदाहकंडूमद्भिर्व्रणैर्वृतः ॥ व्याधिर्वल्मीक इत्येष कफपित्तानिलोद्भवः ॥ ९ ॥**

जो हाथकी हथेली, पावोंके तलवे, संधि, ग्रीवा (गरदन) तथा ऊर्द्ध्वजत्रु (ऊपरके जोते) इन स्थानोंमें धीरे धीरे बढकर बँबईके आकार होजाय, दरद और क्लेदना तथा दाह और खाजवाले व्रणोंसे व्याप्त हो तो वह "वल्मीक" नामक रोग है यह कफ, पित्त और वायुसे होता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

**पद्मपुष्करवन्मध्ये पिडकाभिः समाचिताम् ॥ इंद्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ १० ॥ कर्णोपरि समंताद्वा पृष्ठे वा पिडकोग्ररुक् ॥ शालूकवत्पनसिकां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ ११ ॥**

जो बीचमें कमलकी कर्णिकाकी भांति फुन्सियोंसे व्याप्त हो वह फुन्सी "इंद्रवृद्धा" है, इसे वैद्य वात, पित्तसे उत्पन्न जाने ॥ १० ॥ जो कानपर आस पास या पीठपर शालूककी तरह उग्रपीडावाली फुन्सी हो उसे "पनसिका" जाने यह कफ, वायुसे होती है ॥ ११ ॥

**हनुसंधौ समुद्भूतं शोफमल्परुजं स्थिरम् ॥ पाषाणगर्दभं विद्याद्बलासपवनात्मकम् ॥ १२ ॥ विसर्पवत्सर्पति यो दाहज्वरकरस्तनुः ॥ अपाकः श्वयथुः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १३ ॥**

जो हनु (ठोडी) की संधिमें उत्पन्न हुआ, अल्प पीडावाला और स्थिर सोजा हो उसे "पाषाणगर्दभ" जाने (इसे देशभाषामें "कनफेड" और डाक्टरीमें

(श्लो० ११) शालूकं कुमुदादिमूलं जातीफलं च (इति शब्दस्तोमः) ॥

"पेरोटा इटिस" कहते हैं ) यह भी कफ और वायुमें होता है ॥ १२ ॥ जो विसर्पकी भांति फैले, दाह और ज्वर पैदा करे, हलका हो और पके नहीं ऐसा सोजा पित्तसे उपजा "जालगर्दभ" कहलाता है ॥ १३ ॥

बाहुपार्श्वांसकक्षासु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ॥ पित्तप्रकोपात्संभूतां कक्षामिति विनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥ अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्ततः ॥ क्वचित्सर्वत्र वा देहे स्मृता विस्फोटका इति ॥ १५ ॥ कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायंते मांसदारुणाः ॥ अंतर्दाहज्वरकरा दीप्ताः पावकसन्निभाः ॥ ॥ १६ ॥ सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नंति मानवम् ॥ तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सन्निपाततः ॥ १७ ॥

जो भुजा, पँसवाडा, स्कन्ध और काखके स्थानमें वेदनायुक्त काली फन्सी हो उसे "कक्षा" ( कँखलाई ) कहते हैं यह पित्तके कोपसे होती है ॥ १४ ॥ जो अग्निसे जलेके समान स्फोट ( फालकेसे ) किसी शरीरके एक भागमें या सारे शरीरमें हो, ज्वरभी हो तो उन्हें "विस्फोटक" कहतेहैं ये रक्त और पित्तसे होतेहैं ॥ १५ ॥ जो कांखके प्रदेशमें मांसको दारुण करनेवाले, अंतर्दाह और ज्वर करनेवाले, अग्निके समान जलनेवाले ऐसे फोडे हों उन्हें "अग्निरोहिणी" कहतेहैं ये सन्निपातसे होते हैं और असाध्य होते हैं तथा सात दिनमें अथवा दश दिनमें अथवा पंद्रह दिनमें मनुष्यको मारदेते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तं च वेदनाम् ॥
करोति दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्पमादिशेत् ॥
तदेव क्षतरोगाख्यं तथोपनखमित्यपि ॥ १८ ॥

जो नखूनके मांसमें वायु और पित्त प्राप्त होकर वेदना तथा दाह और पाक उत्पन्न करे तो उसे "चिप्प" कहते हैं और इसेही "क्षतरोग" तथा "उपनख" भी कहते हैं ॥ १८ ॥

अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षो सितः खरः ॥ भवेत्तु कुनखं विद्यात्कुलीनमिति संज्ञितम् ॥ १९ ॥ गंभीरामल्पसंरंभां सवर्णा-

( श्लो० १६।१७ ) वाताधिकैः सप्ताहात् पित्ताधिकैर्दशाहात् कफाधिकैः पक्षात् घ्नंति ( इति डल्हनः ) ॥

मुपरिस्थिताम् ॥ कफादंतःप्रपाकांतां विद्यादनुशयीं भिषक् ॥२०॥ विदारीकंदवद्वृत्तां कक्षावंक्षणसंधिषु ॥ रक्तां विदारिकां विद्यात्सर्वजां सर्वलक्षणाम् ॥ २१ ॥

चोट आदि लगनेसे दूषित हुआ जो नख रूक्ष और काला तथा खरदरा होजाय तो उसे "कुनख" कहते हैं और इसेही "कुलीन" संज्ञकभी जानो ॥ १९ ॥ जो फोडा गहरा हो, आरंभमें थोडासा दखे, ऊपरसे त्वचाके रंगहीका हो (भीतर चकत्तदार हो ) और भीतरहीसे पकता आवे उसे वैद्य " अनुशयी " कहतेहैं यह कफसे उत्पन्न जानो ॥ २० ॥ जो विदारीकंदके समान गोल, फैला हुआ, कांख तथा नलोंके ऊपर लाल रंगका फोड़ा हो उसे "विदारिका" कहतेहैं यह विदारिका संनिपातसे होतीहै और इसमें सब दोषोंके लक्षण होतेहैं ॥ २१ ॥

प्राप्य मांसशिरास्नायुं श्लेष्मा मेदस्तथाऽनिलः॥ग्रंथिं कुर्वंति भिन्नोऽसौ मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २२ ॥ स्रवत्यास्रावमत्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः ॥ मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्पुनः ॥ २३ ॥ दुर्गंधं क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः ॥ स्रवंति सहसा रक्तं तद्विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ २४ ॥

मांस और शिरा तथा स्नायुमें कफ, मेद तथा वायु प्राप्त होकर ग्रंथि पैदा करते-हैं । वह जब फूटे या चीरिजाय तब उसमेंसे शहत, घृत, चरबी जैसा मल अधिक झिरताहै फिर वृद्धिको प्राप्त हुआ वायु उसमें मांसको शुष्क करके ग्रंथियुक्त शर्करा (रेतासा) उत्पन्न करदेताहै । फिर दुर्गंधयुक्त क्लिन्न ( क्लेदित ) नाना प्रकारके वर्णका रक्त अत्यंत शिराओंमेंसे एकाएक निकलने लगजाताहै तो इसे " शर्करा-र्बुद" कहतेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

पामाविचर्च्यौ कुष्ठेषु रकसा च प्रकीर्तिता॥ २५॥परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः॥पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंस्थिताम्॥२६॥

" पामा" (गीली खुजली), " विचर्ची " ( व्योंची ) तथा "रकसा" ( सूखी खाज ) इनके लक्षण कुष्ठोंके लक्षणोंमें वर्णन होचुके हैं ॥ २५ ॥ बहुत फिरनेवाले मनुष्योंके अतिरूखे पांवोंके नीचे पीडावाली दारी ( बिंवाई ) रोगको वायु उत्पन्न करता है उसे "पाददारी" कहतेहैं ॥ २६ ॥

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कंटकादिभिः॥मेदोरक्तानुगैश्चैव दोषै-र्वा जायते नृणाम् ॥ २७ ॥ सकीलः कठिनो ग्रंथिर्निम्नमध्यो-न्नतोपि वा ॥ कोलमात्रः सरुक् स्रावी जायते कदरस्तु सः ॥२८॥ क्लिन्नांगुल्यंतरौ पादौ कंडूदाहरुगन्वितौ ॥ दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विनिर्दिशेत् ॥ २९ ॥

जब छोटी २ कंकरियोंसे कुचले हुए पांवोंमें या कांटे आदिसे घाव हुएमें मेद और रुधिरके अनुगत दोष हो जाते हैं तब मनुष्योंके पांवोंमें कीलयुक्त कडी, नीची, मध्यम, अथवा ऊपरको उठी हुई बडे बेरके समान पीडावाली, गाँठ पडजाती है यह " कदर " नामक क्षुद्ररोग कहलाता है ( इसे भाषामें डील कहते हैं ) ॥ २७ ॥ २८ ॥ जो भीगे हुए पैरोंकी अंगुलियोंके बीचमें खाज, दाह, चीसयुक्त पीडा, दुष्ट कीचडके स्पर्शसे होती है उसे " अलस " ( वा खार ) कहते हैं ॥ २९ ॥

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम्॥प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥ ३० ॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोन्येषाम-संभवः ॥ तदिंद्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभाव्यते ॥ ३१ ॥

जब रोमकूपके अनुगत पित्त होता है और वायुसे मिलकर मूर्च्छित होजाता है तब रोमों ( बालों ) को गिरा देता है फिर रक्तसे मिला कफ रोमकूप ( रोमोंके छिद्रों ) को रोक देता है जिससे फिर और बाल नहीं आते इस रोगको " इंद्र-लुप्त " और " खालित्य " रोग कहते हैं ( इसे भाषामें ' कुरा ' या ' गंज ' कहते हैं ) ॥ ३० ॥ ३१ ॥

दारुणा कंडुरा रूक्षा केशभूमिः प्रजायते ॥ कफवातप्रकोपेण विद्याद्दारुणकं तु तम् ॥ ३२ ॥ अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदानि मूर्द्धनि ॥ कफासृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम् ॥ ३३ ॥

जिसमें बालोंकी जमीनमें दारुण खाज चले, रूक्षता हो उसे " दारुणक " कहते हैं यह कफ और वायुके कोपसे होता है ॥ ३२ ॥ जिसमें अनेक मुखवाली बहुत गीली शिरमें फुंसियां हों उसे "अरुंषिका" रोग कहते हैं। यह कफ, रक्त और कृमि ( जूं ) के विकारसे होता है ॥ ३३ ॥

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ॥ पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते ॥३४॥ दाहज्वररुजावंतस्ताम्राः स्फो-

ष्टाः सपीतकाः ॥ गात्रेषु वदने चांतर्विज्ञेयास्ता मसूरिकाः ॥३५॥ शाल्मलीकंटकप्रख्याः कफमारुतशोणितैः ॥ जायंते पिडका यूनां वक्त्रे या मुखदूषिकाः ॥ ३६ ॥ कंटकैराचितं वृत्तं कंडूमत्पांडुमंडलम् ॥ पद्मिनीकंटकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ ३७ ॥

जब क्रोध, शोक और परिश्रम करनेसे शरीरकी गरमी और पित्त शिरमें प्राप्त होकर बालोंको सुपेद करते हैं तब "पलित" नामक रोग होजाता है ॥ ३४ ॥ जो दाह, ज्वर और पीडावाली सुरख, पीलापन युक्त शरीरमें तथा मुँहके भीतर (मरक समान) फुन्सियां हों उन्हें ' मसूरिका " कहते हैं। ( हिन्दी भाषामें इसे ' शीतला ' और उरदूमें ' चेचक ' कहते हैं ) यह रुधिर और पित्तकी प्रधानतासे होती है ॥ ३५ ॥ जो सम्भलके कांटेके तुल्य तरुण मनुष्योंके मुँहपर छोटी २ फुंसियां होती हैं उन्हें " मुखदूषिका " तथा " यौवनपिडका " कहते हैं ये कफ, वायु और रुधिरसे होती हैं ( भाषामें इन्हें 'मुहांसा' कहते हैं ) ॥३६॥ जो अंकुरोंसे व्याप्त, गोल, खाजवाली, पीली जडवाली, कमलिनीके कांटोंकी भांति फुन्सियां हों उन्हें "पद्मिनीकंटक" कहते हैं यह कफ और वायुसे उत्पन्न होतीहैं॥३७॥

नीरुजं सममुत्पन्नं मंडलं कफरक्तजम्॥सहजं रक्तमीषच्च श्लक्ष्णं जतुमणिं विदुः ॥ ३८ ॥ अवेदनं स्थिरं चैव यस्य गात्रेषु दृश्यते॥ माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्मशकं दिशेत्॥३९॥कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च ॥ वातपित्तकफोद्रेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ ४० ॥

जो चकत्ता पीडारहित, समान हो, मण्डलसा हो, कुछ लाल ( ऊदा ) हो, खरदरा न हो, जन्मसेही हो वह कफरक्तज "जतुमणि" ( लशुन ) कहाता है ॥३८॥ जो वेदनारहित, स्थिर माषके तुल्य, उभरा हुआ, काला शरीरपर हो उसे "मशक" ( मसा ) कहते हैं। यह वायुसे होता है ॥ ३९ ॥ जो छोटे २ तिलके समान काले छीटेसे, वेदनारहित शरीरपर होते हैं उन्हें " तिलकालक" ( तिल ) कहतेहैं ये वात, पित्त, कफके उद्रेकसे होते हैं ॥ ४० ॥

मंडलं महदल्पं वा श्यामं वा यदि वा सितम्॥सहजं नीरुजं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥ ४१ ॥ समुत्थाननिदानाभ्यां चर्मकीलः प्रकीर्तितः ॥४२॥ क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः ॥ सहसा

मुखमागम्य मंडलं विसृजेत्ततः ॥ नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यंगं तमादिशेत् ॥ ४३ ॥

जो शरीरपर छोटे या बडे, काले या सुपेद, पीडारहित, जन्मसे मंडल हों उन्हें "न्यच्छ" ( चकट्टे ) कहते हैं ( यह रक्त और पित्तसे होते हैं ) ॥ ४१ ॥ उत्थान और निदानसे " चर्मकील " रोग जानना चाहिये अर्थात् वात आदि दोषसे जैसा और जिस स्थानमें हो उसीसे जाने ॥ ४२ ॥ जब क्रोध तथा श्रमसे कुपित हुआ वायु पित्तसे मिलकर एकाएक मुखकी बहिर्गत त्वचामें प्राप्त होकर मण्डल (धब्बे) पैदा करता है तब पीडारहित कुछ २ काले चकट्टेसे मुखपर होजाते हैं उसे "व्यंग" अर्थात् झांई कहते हैं ॥ ४३ ॥

मर्दनात्पीडनाच्चापि तथैवाप्यभिघाततः ॥ मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरः॥४४॥तदा वातोपसृष्टं तु चर्म प्रतिनिवर्त्तते॥मणेरधस्तात्कोशश्च ग्रंथिरूपेण लंबते॥४५॥ सवेदनः सदाहश्च पाकं च व्रजति कचित्॥मारुतागंतुसंभूतां विद्यात्तां परिवर्तिकाम्॥ सकंडूः कठिना चैव सैव श्लेष्मसमुत्थिता ॥ ४६ ॥

जब लिंग इंद्रियको मसलने, अति दबानेसे तथा चोट आदिलगनेसे मेढ्रकी चर्मका वायु चारोंतरफसे उस चर्मको नीचे करदेताहै ॥ ४४ ॥ तब वायुसे नीचे उतराहुआ चर्म फिर ऊपरको नहीं चढता और अग्रभागके नीचे चर्मका खोलिया ग्रंथिरूपसे स्थित होजाताहै ॥ ४५ ॥ उसमें पीडा होतीहै, दाह होताहै, कभी कभी पकभी जाताहै । यह आगंतुककारण और वायुसे होताहै इसे " परिवर्त्तिका " रोग जानो यदि इसमें अति खाज हो और कडापन हो तो इसे कफसे उपजा जानना चाहिये ॥ ४६ ॥

अल्पीयसीं यदा हर्षाद्बालां गच्छेत्स्त्रियं नरः ॥ हस्ताभिघातादथवा चर्मण्युद्वर्तिते बलात् ॥ ४७ ॥ मर्दनात्पीडनाद्वापि शुक्रवेगविघाततः ॥ यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ ४८ ॥

जो पुरुष अत्यंत छोटी अवस्थावाली बालक स्त्रीके पास हर्षके कारण गमन करे अथवा किशोर अवस्थाका पुरुष बलसे चर्मको ऊपर चढावे ॥ ४७ ॥ अथवा

( श्लो० ४७ ) अल्पीयसीम् अल्पतरयोनिछिद्रं यस्यास्ताम् ( इति भावमिश्रः ) ॥

लिंगके चर्मको बहुत मले अथवा दबावे या वीर्यका वेग रुक जाय इन कारणोंसे यदि लिंगके ऊपरका चर्म फट जाय तो उसे "अवपाटिका" कहते हैं॥४८॥

**वातोपसृष्टमेवं तु चर्म संश्रयते मणिम्॥मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च॥ ४९ ॥निरुद्धप्रकशे तस्मिन् मंदधारमवेदनम्॥ मूत्रं प्रवर्तते जंतोर्मणिर्नच विदीर्यते ॥ निरुद्धप्रकशं विद्यादरूढां चावपाटिकाम् ॥ ५० ॥**

जिसके वायुसे उपसृष्ट चर्म लिंगके अग्रभागको आच्छादन करले तब मणि अर्थात् लिंगका अग्रभाग ( सुपारी ) चर्मसे ढक जाय और मूत्रके द्वारको रोक दे ॥ ४९ ॥ फिर उस निरुद्धप्रकाशवाले स्थानमेंसे वेदना रहित पतली धारसे मूत्र आवे और अग्रभाग उघडेही नहीं तो इसे "निरुद्धप्रकाश" कहते हैं यह अवपाटिकाके नही उघडनेसेभी होता है (या इसे अरूढ अवपाटिकाभी कहते हैं) ॥ ५० ॥

**वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदमाश्रितः ॥ निरुणद्धि महत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ५१ ॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति ॥ संनिरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात्सुदुस्तरम् ॥५२॥**

जब मलका वेग रोकनेसे रुका हुआ वायु गुदामें प्राप्त होकर मलके निकलनेके वडे द्वारको निरोध करके मार्गको तंग करदेता है ॥ ५१ ॥ तब मल निकलनेका रास्ता तंग होनेसे मल कष्टसे निकलता है इसे "संनिरुद्धगुद" रोग कहते हैं यह दुस्तर ( कष्टसाध्य ) रोग है ॥ ५२ ॥

**शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ॥ स्विन्नस्यास्नाप्यमानस्य कंडूरक्तकफोद्भवः ॥ ५३ ॥ कंडूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ॥ एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५४ ॥**

जब बालकको विष्ठामूत्रसे भरे हुए, विनाधोये अपान वायु होताहै तथा पसीना नित्य आया करे और स्नान नहीं कराया जाय तो उस बालकके रक्त और कफसे उपजी खाज होतीहै ॥ ५३ ॥ फिर विशेष खुजानेसे शीघ्रही फुन्सियां होकर झिरने लगतीहैं और व्रणोंसे एकरूप घोर छत्तडासा होजाताहै इसे "अहिपूतन" जानो ॥ ५४ ॥

---

( श्लो० ४९।५० )वातोपसृष्टमिति–एवमतिमर्दनपीडनाभिघातादिना इत्यर्थः।सश्रयते समग्र श्रयंते । अरूढामित्यत्र दुरूढामिति वा पाठः।निरुद्धप्रकाशाख्यं दुरूढा अवपाटिकां विद्यादित्यर्थः । (इति डल्हनः) प्रकश इत्यार्षः ॥

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंश्रितः ॥ प्रक्लिद्यते यदा स्वेदात्स कंडूं जनयेत्तदा ॥ ५५ ॥ तत्र कंडूयनात्क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ॥ प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य न्हाने धोने और मैल उतारनेसे हीन हों उनके वृषणोंमें आश्रित हुआ मैल जब पसीने आकर क्लेदित होताहै तब खाज पैदा करताहै ॥ ५५ ॥ फिर वहां खुजानेसे शीघ्रही फुन्सियां होतीहैं, पसीना निकलने लगताहै इसे " वृषणकच्छू " कहतेहैं यह कफ और रुधिरके कोपसे होताहै ॥ ५६ ॥

प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः ॥
रूक्षदुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रंशमादिशेत् ॥ ५७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अतिप्रवाहण ( किनछने ) से तथा अतिसारसे जब रूक्ष और दुर्बल मनुष्यकी गुदा (कांच) बाहर निकले तो उसे "गुदभ्रंश" रोग कहतेहैं (यह वायुसे होताहै) ५७

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

## चतुर्दशोऽध्यायः १४.

### अथातः शूकदोषनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी शूकदोषके निदानकी व्याख्या करतेहैं ।

लिंगवृद्धिमिच्छतामक्रमप्रवृत्तानां शूकदोषनिमित्ता दश चाष्टौ च व्याधयो जायंते तद्यथा सर्षपिका अष्ठीलिका ग्रथितं कुम्भीका अलजी मृदितं संमूढपिडका अवमन्थः पुष्करिका स्पर्शहानिः उत्तमा शतपोनकः त्वक्पाकः शोणितार्बुदं मांसार्बुदं मांसपाकः विद्रधिः तिलकालकश्चेति ॥ १ ॥

---

(गद्य १) शूक: सविषजलजन्तुविशेष:, यस्य प्रयोगेन पुरा लिंगवृद्धिं कुर्वंति कामिनो जनाः। तथाच [illegible] यथा– 'भल्लातकास्थि जलशूकमथाब्जपत्रमंतर्विदाह्य मतिमान्सह सैंधवेन । एतद्विलिप्त[illegible] मर्दयेद्विविमर्दितं लिंगे ॥ स्थूलं महद्[illegible]लिंगतुल्यं शेफः करोत्यभिमतं नहि [illegible] ॥ १ ॥" तस्य शूकस्यानुचितप्रयोगेन चाष्टादश व्याधयो भवंति । ( इति भावमिश्रः ) डल्लना- [illegible]–अत्र शूकादिशब्दो [illegible]. तेन "शूकादिदोषनिमित्ता० व्याधय." इत्यत्रादिशब्देन तीक्ष्ण- [illegible] आद्यः । शूक: [illegible]जन्तु, कीट ॥

जो पुरुष अयोग्य क्रमसे लिंगकी वृद्धि ( तथा स्थूलता, कठोरता आदि ) की इच्छामें प्रवृत्त होते हैं ( अर्थात् अयोग्य मूढ लोगोंकी बताई औषध तिले, पट्टी, लेप आदिसे लिंगकी वृद्धि आदिके लिये यत्न करते हैं) उनको शूकदोषके कारणसे अठारह प्रकारकी व्याधियां होतीहैं वे ये हैं-१ सर्षपिका, २ अष्ठीलिका, ३ग्रथित,४ कुंभिका, ५ अलजी, ६ मृदित, ७ संमूढपिडका, ८ अवमंथ, ९ पुष्करिका, १० स्पर्शहानि, ११ उत्तमा, १२ शतपोनक, १३ त्वक्पाक, १४ शोणितार्बुद १५ मांसार्बुद, १६ मांसपाक, १७ विद्रधि, १८ तिलकालक ॥ १ ॥

सर्षपिकादिलक्षण ।

**गौरसर्षपतुल्या तु शूकदुर्भग्नहेतुका ॥ पिडका कफरक्ताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका बुधैः ॥ २ ॥ कठिना विषमैरंतैर्मारुतस्य प्रकोपतः ॥ शूकैस्तु विषसंयुक्तैः पिडकाष्ठीलिका भवेत् ॥ ३ ॥**

जो सुपेद सरसोंके तुल्य छोटी २ फुन्सियां कफ और रक्तसे हों उन्हें "सर्षपिका" कहते हैं ये शूक ( नामक लिंगवृद्धिकारक कृमि ) क दुर्भग्न होने ( ठीक न होने) के दोषसे होती हैं॥२॥ जो कडी और भीतरसे विषम ऐसी वायुके कोपसे पिडिका हो वह "अष्ठीलिका" है यह विषयुक्त शूकोंसे होतीहै ॥ ३ ॥

**शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं तत्कफोत्थितम् ॥ कुंभीका रक्तपित्तोत्था जांबवास्थिनिभा सिता ॥ ४ ॥ अलजीलक्षणैर्युक्तामलजीं च वितर्कयेत् ॥५॥ मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वायुकोपतः ॥ पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिडका भवेत् ॥ ६ ॥ दीर्घा बह्व्यश्च पिडका दीर्यते मध्यतस्तु याः ॥ सोऽवमंथः कफासृग्भ्यां वेदना-रोमहर्षकृत् ॥ ७ ॥**

जो बहुतसे शूकोंसे निरंतर पूरित रहे उसे कफसे उपजा "ग्रथित" रोग जाने तथा रक्त और पित्तसे उपजी जामुनकी गुठली जैसी काली कुंभीफल सदृश जो

( श्लो० २ ) दुर्भग्नाः शूका यत्र योगे तद्धेतुका ॥ ( श्लो०३ ) अतैः पतितैः ( इति नि० सं० )॥
( श्लो० ४ ) शूकैर्यत्पूरितमिति—बहुभिः शूकैः शश्वत् यत् पूरित तद्ग्रथितं भवति । एकदिनांतर-पूरणं प्रशस्तमिच्छति कामतन्त्राचार्यः नित्याधिकशूकपूरणाद्ग्रथितनाम्नो रोगस्योत्पत्तिः । "कुभीकेति" कुंभीफलमिव अयमपि दुष्टशूकावचारणात् भवति । ( इति डल्लनः ) ॥ ( श्लो० ६ ) शूकदोषे जाते पीडित स यत् संरब्धं सशोथ भवति तत् मृदितम् । शूकदोषे पाणिभ्यां भृशसंमूढे पिशिते लिंगे समूढपिडका भवति अत्रापि वातकोपत इत्यनुवर्तते ( इति भावमिश्रः ) ॥ ( श्लो० ७ ) अवमंथोपि स्थूलीकर्म शूक-कर्मोपचारेण ज्ञेयः ॥

फुंसी लिंगपर होती है उसे "कुंभीका" या कुंभिका कहते हैं यहभी दुष्ट शूकके अवचारणसे होतीहै ॥ ४ ॥ जो अलजी प्रमेहपिडिकाओंमें वर्णन होचुकी है उसके लक्षणोंसे युक्त फुन्सी हो तो उसे "अलजी" जानना चाहिये ॥५॥ (शूककी पीडा होनेपर) जो लिङ्ग मसला या दबाया जाय तो वायुके कोपसे "मृदित" नाम रोग होता है तथा (शूकदोष होनेपर) बारबार हाथ लगानेसे "संमूढपिडिका" रोग हो जाता है ॥ ६ ॥ जिसमें बडी २ बहुतसी फुंसियां बीचसे फटीसी होजायँ उसे "अवमंथ" कहते हैं यह कफ और रक्तसे होता है । यह रोग वेदना तथा रोमहर्ष करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

पित्तशोणितसंभूता पिडका पिडकाचिता ॥ पद्मपुष्करसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिकेति सा ॥८॥ जनयेत्स्पर्शहानिं तु शोणितं शूकदूषितम् ॥९॥ मुद्गमाषोपमा रक्ता पिडका रक्तपित्तजा ॥ उत्तमैषा तु विज्ञेया शूकाजीर्णनिमित्तजा ॥ १० ॥

जिसमें पित्त और रक्तसे उपजी हुई फुन्सीसे फुन्सी मिलकर कमलकी कर्णिकाके तुल्य हों उसे "पुष्करिका" जानो ॥ ८ ॥ जिसके शूकदोषसे दूषित हुआ रुधिर स्पर्शकी हानि उत्पन्न कर दे उसे "स्पर्शहानि" रोग जानो ॥ ९ ॥ जो मूँग और उड़दके बराबर लाल फुंसी रक्त, पित्तसे उपजी हो उसे "उत्तमा" नाम रोग कहते हैं, यह शूकके जीर्ण नही होनेसे होताहै ॥ १० ॥

छिद्रैरणुमुखैर्यत्तु चितं मेढ्रं समंततः॥वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपोनकः॥११॥पित्तरक्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहवान्॥१२॥ कृष्णस्फोटैः सरक्तैश्च पिडकाभिश्च पीडितम्॥ यस्य वस्तिरुजश्चोग्रो ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥ १३ ॥ मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससंभवम् ॥ १४ ॥

छोटे२ मुखवाले छिद्रोंसे लिंग इंद्रिय चारोंतरफसे व्याप्त हो तो इसे "शतपोनक" नाम शूकरोग कहतेहैं यह व्याधि वायु और रक्तसे होतीहै ॥ ११ ॥ यदि लिंगकी

---

(श्लो० ८) पद्मपुष्करं कमलकर्णिका एषापि स्वकर्मापचारजा ज्ञेया ॥ (श्लो० ९) शूकदूषितं शूकेन दुष्टता नीतं शोणितम् ॥ (श्लो० १०) शूका न जीर्णीभूता यत्र तन्निमित्तजा रक्तपित्तकृता उत्तमा ज्ञेया॥ (श्लो० ११) शतपोनकः शूकदूषितवातशोणितजः॥ (श्लो० १२) त्वक्पाकः शूकदूषितपित्तरक्तकृतः ॥ (श्लो० १३) शोणितार्बुदं शूकदूषितरक्तेन भवति ॥ (श्लो० १४) मांसार्बुदं शूकदूषितमांसेन भवति ॥

त्वचा पित्त और रक्तके विकारसे पकजाय और ज्वर तथा दाह हो तो इसे "त्वक्पाक" कहतेहैं ॥ १२ ॥ जिसके काली और लाल अथवा रक्तसहित पिडकाओंसे इंद्रिय पीडित हो तथा वस्तिमें दारुण पीडा हो तो उसके "शोणितार्बुद" रोग जानो॥१३॥ और मांसके दोषसे इसी भांति "मांसार्बुद" होताहै ॥ १४ ॥

**शीर्यंते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः ॥ विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ १५ ॥ विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ १६ ॥ कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि च ॥ पातितानि पचंत्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ १७ ॥ कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यंते यस्य देहिनः ॥ सन्निपातसमुत्थानं तं विद्यात्तिलकालकम् ॥ १८ ॥**

जिसका मांस गलकर विखरने लगे तथा सब दोषोंकी वेदना हो उसे संनिपातसे उपजा "मांसपाक" वैद्यको जानना चाहिये ॥ १५ ॥ "विद्रधि" को सन्निपातसे उपजी यथोक्त लक्षणोंसे जाने (विद्रधिके लक्षण पहले कह आये हैं) उसी भांति लक्षण सब दोषोंके जाने ॥ १६ ॥ जो काले और कबरे विषयुक्त शूकोंको योगमें डालते हैं तो वे शीघ्रही समस्त मेढ्रको पका देते हैं और मांस काला होकर विखर जाता है इसे सन्निपातसे उपजा "तिलकालक" रोग जानो ॥ १७ ॥ १८ ॥

**तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः ॥**
**विद्रधिश्च न सिध्यंति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १९ ॥**

**इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥**

इनमेंसे जो मांसार्बुद हो तथा मांसपाक हो तथा विद्रधि और जो तिलकालक रोग होजाय तो ये सिद्ध नहीं होते अर्थात् असाध्य हैं तथा इनके सिवाय साध्यहैं॥१९॥

(वक्तव्य) इस समय लिंगवृद्धि और पुष्टि आदिके लिये शूकनामक कृमिके वरतावका प्रचार नहीं है इससे ऐसे शूकदोष नहीं होते परंतु हां, इस समय भी कई मूढ तीक्ष्ण तिलेपट्टी आदिका वर्ताव अयोग्य करते हैं उससे अनेक उपद्रव होतेही हैं ॥ १९ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

(श्लो० १५) मांसपाकः शूकदूषितदोषत्रयेण। (श्लो० १६) विद्रधिरयमपि पूर्वोक्तसन्निपातविद्रधितुल्यः ॥ (श्लो० १७। १८) सविषकृष्णचित्रशूकदूषितसर्वदोषेण तिलकालकः ॥

## पंचदशोऽध्यायः १५.

### अथातो भग्नानां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी भग्न (शरीरका अवयवभंग होने) के निदानकी व्याख्या करतेहैं ॥

**पतनपीडनप्रहाराक्षेपणव्यालमृगदशनप्रभृतिभिरभिघातविशेषैरनेकविधमस्थ्नां भंगमुपदिशंति तत्तु भंगजातमनुसार्य्यमाणं द्विविधमेवोत्पद्यते संधिमुक्तं कांडभग्नं च ॥ १ ॥**

ऊपरसे गिरने, दबजाने, चोट लगने तथा कूदने ( फलाँकने ) से तथा व्याल ( हिंसक पशु ) और मृग ( पशुमात्र ) के काटने ( मुँहसे पकडकर खींचने चबाने ) आदिके अभिघातोंसे अनेक प्रकारसे अस्थि आदिका भंग होना वर्णन करतेहैं । वह भंग हुआ स्थान अनुसरणके योग्य दोही प्रकारसे प्रतिपादन किया जासकताहै १ संधिमुक्त ( किसी जोड परसे अलग होगयाहो ), २ कांडभग्न ( बीचसे अस्थिभंग होगयाहो ) ॥ १ ॥

#### संधिमुक्त ।

**तत्र संधिमुक्तमुत्पिष्टं विश्लिष्टं विवर्तितमवक्षिप्तमतिक्षिप्तं तिर्यक्क्षिप्तमिति षड्विधम् ॥ २ ॥**

इनमेंसे संधिमुक्त ६ छःप्रकारका होताहै १ उत्पिष्ट ( जो दोनों भाग रगडे या पीसे गयेहों ), २ विश्लिष्ट ( जो टहलगयाहो-अलग होगयाहो ), ३ विवर्तित ( संधि बराबर हटजाय ), ४ अवक्षिप्त ( दोनों ओर संधि हटजाय ), ५ अतिक्षिप्त ( संधि और अस्थि दोनों हटजावें ), ६ तिर्यक्क्षिप्त ( संधिअस्थि टेढा होजावे )

**तत्र प्रसारणाकुंचनविवर्तनाक्षेपणाऽशक्तिरुग्ररुजत्वं स्पर्शासहत्वं चेति सामान्यं संधिमुक्तलक्षणमुक्तम् ॥ ३ ॥**

तिसमें पसारने, सिकोडने, हिलाने ( उठाने ), रखने ( टिकाने ) की शक्ति न रहे और दारुण पीडा हो तथा स्पर्श सहा नहीं जाय ये संधिमुक्तके सामान्य लक्षण वर्णन किये गये हैं ॥ ३ ॥

**विशेषेणोत्पिष्टे संधावुभयतः शोफो वेदना प्रादुर्भावो विशेषतश्च नानाप्रकारा वेदना रात्रौ प्रादुर्भवंति ॥ ४ ॥ विश्लिष्टेऽल्पशोफो**

( गद्य १ ) भग्नमित्यत्र भावे क्तः भंगश्च अत्र विश्लेषोऽभिप्रेतः ( भा० मि० )। व्यालो हिंसकपशुः दुष्टगजश्च । मृगः पशुमात्रः ( इति शब्दस्तोमः ) ॥

वेदनासातत्यं संधिविक्रिया च ॥ ५ ॥ विवर्तिते तु संधि-पार्श्वापगमनाद्विषमांगता वेदना च ॥ ६ ॥ अवक्षिप्ते संधिविश्लेषस्तीव्ररुजत्वं च ॥ ७ ॥ अतिक्षिप्ते द्वयोः संध्यस्थ्नोरतिक्रांतता वेदना च ॥८॥ तिर्यक्क्षिप्ते त्वेकास्थिपार्श्वापगमनमत्यर्थं वेदना चेति ॥ ९ ॥

विशेष करके "उत्पिष्ट" में दोनों तरफ संधिमें शोथ होता है और पीडा होती है और रात्रिमें अधिक पीडा उत्पन्न होती है ॥ ४ ॥ "विश्लिष्ट" में थोडा शोथ होता है और निरंतर वेदना होती है और संधिमें विक्रिया हो अर्थात् संधि काम न दे ॥ ५ ॥ "विवर्तित" में संधि पार्श्वकी तरफ चली जानेसे अंग टेढा होजाता है और पीडा होती है ॥ ६ ॥ "अवक्षिप्त" में संधि दूर टहल जाती है और तीव्र वेदना होती है ॥ ७ ॥ "अतिक्षिप्त" में दोनों संधियों और अस्थियोंमें अन्तराय होजाता है और पीडा होती है ॥ ८ ॥ तथा "तिर्यक्क्षिप्त" में एकतरफका अस्थि टेढा होकर पार्श्वकी तरफ चला जाता है इससे अधिक वेदना होती है ॥ ९ ॥

## कांडभग्नमत ऊर्द्ध्वं वक्ष्यामः ।

यहांसे अगाडी कांडभग्न ( बीचसे अस्थिभंग ) को कहते हैं ।

कर्कटकमश्वकर्णं चूर्णितं पिच्चितमस्थिच्छलितं कांडभग्नं मज्जानुगतमतिपातितं वक्रं छिन्नं पाटितं स्फुटितमिति द्वादशविधम्॥१०॥

कांडभग्न बारह प्रकारका होता है १ कर्कटक, २ अश्वकर्ण, ३ चूर्णित, ४ पिच्चित, ५ अस्थिच्छलित, ६ कांडभग्न, ७ मज्जानुगत, ८ अतिपातित, ९ वक्र, १० छिन्न, ११ पाटित, १२ स्फुटित ॥ १० ॥

श्वयथुबाहुल्यं स्पंदनविवर्तनस्पर्शासहिष्णुत्वमवपीड्यमाने शब्दः स्रस्तांगता विविधवेदनाप्रादुर्भावः सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभ इति समासेन कांडभग्नलक्षणमुक्तम् ॥ ११ ॥

शोथ अधिक हो, टहलाने, हिलाने और स्पर्श ( छूने ) की सहिष्णुता ( बरदाश्त ) नही हो, रगडनेसे शब्द हो, अंग शिथिल होजायँ, नाना प्रकारकी वेदना उत्पन्न हो, सब प्रकार चैन नहीं पड़े । संक्षेपतासे ये कांडभग्नके लक्षण कहे हैं ॥ ११ ॥

विशेषतस्तु संमूढमुभयतोऽस्थिमध्यभग्नं ग्रंथिरिवोन्नतं कर्कटकम् ॥ १२ ॥ अश्वकर्णवदुद्गतमश्वकर्णम् ॥ १३ ॥ चूर्णितमस्थि तत्तु शब्दस्पर्शाभ्यां बोद्धव्यम् ॥ १४ ॥ पिच्चितं पृथुतां गतमनल्पशोफम् ॥ १५ ॥ पार्श्वयोरस्थि हीनोद्गतमस्थिच्छलितम् ॥ १६ ॥ खल्लितप्रकंपमानं कांडभग्नत्वम् ॥ १७ ॥ अस्थ्यवयवोऽस्थिमध्यमनुप्रविश्य मज्जानमुन्नह्यतीति मज्जानुगतम् ॥ १८ ॥ अस्थि निःशेषतश्छिन्नमतिपातितम् ॥ १९ ॥ आभुग्नमाविमुक्तास्थि वक्रम् ॥ २० ॥ अन्यतरपार्श्वावशिष्टं छिन्नम् ॥ २१ ॥ पाटितमणु बहुविदारितं वेदनावच्च ॥ २२ ॥ शूकपूर्णमिवाध्मातं विपुलं विस्फुटीकृतं स्फुटितमिति ॥ २३ ॥

इनके विशेषतासे लक्षण कहते हैं—जो दोनों तरफसे अस्थि उठा हुआ बीचसे भंग हो, गांठकी भांति उभरा हो इसे "कर्कटक" कहते हैं इसका आकार कर्कट (ककेडे) कासा होनेसे कर्कटक कहलाता है ॥ १२ ॥ जो टूटा अस्थि घोडेके कानकी भांति ऊँचा होजाय उसे "अश्वकर्ण" कहते हैं ॥ १३ ॥ जो अस्थिका चूर्ण होगया हो तो उसे "चूर्णित" कहते हैं इसको शब्द और स्पर्श (छूने) से जान सकते हैं ॥ १४ ॥ जो चौडा होजाय और बहुत शोथवाला हो उसे "पिच्चित" कहते हैं ॥ १५ ॥ जो अस्थि एकतरफ नीचा होजाय और दूसरा टूटा भाग ऊँचा हो तो उसे "अस्थिच्छलित" कहते हैं ॥ १६ ॥ जो हिलानेसे चलायमान हो (टूटा मालूम दे) उसे कांडभग्न (हड्डीका डंडा टूटा ऐसा) जाने ॥ १७ ॥ जो अस्थिका भाग दूसरे अस्थिमें प्रवेश होजाय और अस्थिके भीतरकी मज्जाको बाहर निकाले तो उसे "मज्जानुगत" कहते हैं ॥ १८ ॥ जो निःशेष अस्थि कटजाय तो उसे "अतिपातित" कहतेहैं ॥ १९ ॥ जो अस्थि टेढा होजाय परंतु टूटे नहीं उसे "वक्र" कहतेहैं ॥ २० ॥ जो एक ओरसे कट जाय या टूट जाय और एक तरफसे शेष रहे अर्थात् एक पार्श्वमेंसे कुछ बाकी रहे उसे "छिन्न" कहतेहैं ॥ २१ ॥ जो थोडा या बहुत विदारित (फटा) हो और उसमें वेदना हो उसे "पाटित" कहतेहैं ॥ २२ ॥ जो धान्यसे भराहुआसा बहुत फूला हो, स्फुट न हो उसे "स्फुटित" कहते हैं ॥ २३ ॥

तेषु चूर्णितछिन्नातिपातितमज्जानुगतानि कृच्छ्रसाध्यानि कृशवृद्धबालानां क्षतक्षीणकुष्ठश्वासिनां संध्युपगतं च॥२४॥भवंति चात्र—

इनमेंसे चूर्णित, छिन्न और अतिपातित तथा मज्जानुगत नामक काण्डभग्न कृच्छ्रसाध्य होते हैं और दुबले, वृद्ध, बालक तथा क्षतक्षीण मनुष्योंके तथा कुष्ठरोगवालों और श्वासरोगवालोंके भी कांडभग्न कष्टसाध्य होताहै तथा जो कांडभग्न संधिके समीप या संधिमें हो वहभी कष्टसाध्यही होताहै ( अथवा कृशादिकोंके संधिगत भग्नभी असाध्य होताहै ) ॥ २४ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं-

**भिन्नं कपालं कट्यां तु संधिमुक्तं तथा च्युतम् ॥ जघनं प्रतिपिष्टञ्च वर्जयेत्तच्चिकित्सकः ॥ २५ ॥ असंश्लिष्टं कपालं तु ललाटे चूर्णितं च यत् ॥ भग्नं स्तनांतरे शंखे पृष्टे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥२६॥**

कपालका अस्थि टूट गयाहो ( तथा कमरका बांस टूट गयाहो ) अथवा कमरकी संधि अलग होगई हो या छूट गईहो तथा जांघ पिसगई हो तो इन्हें चिकित्सक त्यागदे ( क्योंकि ये असाध्य हैं ) ॥ २५ ॥ कपालके अस्थि अलग होजायँ तथा मस्तकका चूर्ण होजाय तथा चूंचियोंका बीच (छाती) फटजाय अथवा कनपटी फटजायँ तथा पृष्ठवंश भग्न होजाय, मूर्द्धा ( दिमाग ) भग्न होजाय तो इन्हें भी त्यागदे॥२६॥

**आदितो यच्च दुर्जातमस्थि संधिरथापि वा ॥ सम्यक् संहितमप्यस्थि दुर्न्यासाद्दुर्निबंधनात् ॥ २७ ॥ संक्षोभाद्वापि यद्गच्छेद्विक्रियां तत्तु वर्जयेत् ॥ २८ ॥**

जो आरंभहीसे अयोग्य पैदा हुएहों, अस्थि और संधि तथा ठीक ठीक जोडे हुए अस्थिभी अनुचित रखनेसे या अनुचित बंधनसे अथवा क्षोभसे जो विक्रिया ( विकार और खराबी ) को प्राप्त होजायँ तो इन्हेंभी त्यागदे ॥ २७ ॥ २८ ॥

**मध्यस्य वयसोवस्थास्तिस्रो याः परिकीर्तिताः ॥**
**तत्र स्थिरो भवेज्जंतुरुपक्रांतो विजानता ॥ २९ ॥**

मध्यम आयुवाले ( १६ से ४० वर्षतक) मनुष्यकी तीन अवस्था वृद्धि, यौवन, संपूर्णता वर्णन की हैं इन अवस्थाओंमें मनुष्य स्थिर होताहै, इन्हीं अवस्थाओंमें भग्नकी चिकित्साके योग्य ठीक होता है ॥ २९ ॥

**तरुणास्थीनि नम्यंते भज्यंते नलकानि तु ॥**
**कपालानि विभिद्यंते स्फुटंति रुचकानि च ॥ ३० ॥**

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

तरुण अस्थि अर्थात् नासिका, कर्ण, नेत्र इनके अस्थि तो नवजाया करते हैं (नीचे होजाते हैं) तथा नलका (शाखाके अस्थि) टूट जाया करते हैं तथा कपाल (नितंब, कनपटी, तालु, ललाटके अस्थि) फटजाया करते हैं और रुचक संज्ञक अस्थि (दांत) उखड या टूट या झड जाया करते हैं और श्लोकमें 'च' शब्दके ग्रहणसे वलय संज्ञक अस्थि भी टूटतेही हैं। यह अस्थियोंकी जातिके अनुसार भग्न वर्णन किया है। अस्थि पांचही ५ प्रकारके होते हैं-तरुण, नलक, कपाल, रुचक और वलय (इन्हें शारीरकस्थानमें देखो) ॥ ३० ॥

इति पं०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० निदानस्थाने पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## षोडशोऽध्यायः १६.

अथातो मुखरोगाणां निदानं व्याख्यास्यामः।

अब यहांसे अगाडी मुखरोगोंके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

मुखरोगाः पंचषष्टिः सप्तस्वायतनेषु। तत्रायतनानि ओष्ठौ दन्तमूलानि दंताः जिह्वा तालु कंठः सर्वाणि चेति। तत्राष्टावोष्ठयोः पंचदश दंतमूलेषु। अष्टौ दन्तेषु। पञ्च जिह्वायाम्। नव तालुनि। सप्तदश कंठे। त्रयः सर्वेष्वायतनेषु ॥ १ ॥

मुखके सातों स्थानोंमें सब पैंसठ ६५ प्रकारके रोग होते हैं। वे सात स्थान ये हैं १ होट, २ दंतमूल (मसूढे), ३ दांत, ४ जिह्वा, ५ तालु, ६ कंठ, ७ सम्पूर्णमुख इनमेंसे होठोंमें आठ रोग होते हैं और दांतोंकी जड (मसूढोंमें) पन्द्रह तथा दांतोंमें आठ और जिह्वामें पांच, तालूमें नव तथा कंठमें सत्रह और सम्पूर्ण मुखमें तीन प्रकारके रोग होतेहैं ऐसे सब मिलकर ६५ हुए इनके लक्षण कहतेहैं ॥ १ ॥

### ओष्ठरोग।

तत्रौष्ठप्रकोपा वातपित्तश्लेष्मसन्निपातरक्तमांसमेदोऽभिघातनिमित्ताः ॥ २ ॥

इनमें ओष्ठप्रकोप (होठके रोग) वायु, पित्त, कफ, सन्निपात, रुधिर, मांस, मेद और अभिघात निमित्तवाले होते हैं ॥ २ ॥

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्ररुगन्वितौ ॥ दाल्येते परिपुटयेते ओष्ठौ मारुतकोपतः ॥ ३ ॥ आचितौ पिडकाभिस्तु सर्षपा-

(गद्य २) वृद्धवाग्भटे ओष्ठरोगेषु खण्डोष्ठोऽपि लिखितः यथा—"तत्र खण्डौष्ठ इत्युक्तो वातेनोष्ठो द्विधा कृतः" इति ॥

कृतिर्भिर्भृशम् ॥ सदाहपाकसंस्रावौ नीलौ पीतौ च पित्ततः ॥४॥ सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडकाभिरवेदनौ ॥ कंडूमंतौ कफाच्छूनौ पिच्छलौ शीतलौ गुरू ॥ ५ ॥

खरदरे हों, कडे हों, ठिठरायेसे हों, काले हों, तीव्र पीडा हो, विदीर्णसे होते हों फूटनसी हो तो जाने कि वातसे ओष्ठरोग है ॥ ३ ॥ बहुतसी सरसों जैसी फुन्सियोंसे व्याप्त हों, दाह, पाक और स्राव युक्त हों, नीले या पीले हों तो पित्तका ओष्ठरोग जानों ॥४॥ त्वचाके वर्णकी फुन्सियोंसे व्याप्त हों, वेदना अति न हो, खाज हो, शोथ हो, मोटे हों, शीतल और भारी होठ हो तो कफकी व्याधि है ॥ ५ ॥

सकृत् कृष्णौ सकृत् पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च ॥ सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडकाचितौ ॥ ६ ॥ खर्जूरफलवर्णाभिः पिडकाभिः समाचितौ ॥ रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ७ ॥ मांसदुष्टौ गुरू स्थूलौ मांसपिंडवदुद्गतौ ॥ जंतवश्चात्र मूर्च्छंति सृक्कस्योभयतो मुखात् ॥ ८ ॥

कभी एकवार काले होठ होजायँ, कभी पीले और कभी सुपेद तथा अनेक भांतिकी फुन्सियोंसे व्याप्त हों तो सन्निपातका ओष्ठरोग जानो ॥ ६ ॥ खजूरके फलके रंगकी फुन्सियोंसे व्याप्त हो और जिनमें रक्तकी चमक हो तथा रुधिर झिरे तो रुधिरका ओष्ठरोग है ॥ ७ ॥ जो होठ भारी हों और मोटे हों तथा मांसके पिंडकी भांति ऊपरको उठे हों और मुखसे दोनों तरफके ओष्ठभागोंपर (बैठनेसे) जंतु मूर्च्छित होजातेहैं तो उसे मांसदुष्टजनित ओष्ठरोग जानो ॥ ८ ॥

मेदसा घृतमंडाभौ कंडूमंतौ स्थिरौ मृदू ॥ अच्छस्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो गुरू ॥ ९ ॥ क्षतजाभौ विदीर्येते पाट्येते चाभिघाततः ॥ ग्रथितौ च समाख्यातावोष्ठौ कंडूसमन्वितौ ॥ १० ॥

जो घृत तथा मंडके वर्णके हों, खाज हो, स्थिर हों, कोमल हों और उनमेंसे सुपेद स्फटिक जैसा पीव झिरे और भारी हों तो मेदो दुष्टजनित ओष्ठरोग होताहै ॥ ९ ॥ चोट लगीसी मालूम हो, विदारणसे होगयेहों, फटगयेसे हों, गांठसी पडगई हो तथा खाजयुक्त हों तो यह अभिघात ( चोट आदिके लगने ) से ओष्ठरोग कहाहै ॥१०॥

( श्लो० ८ ) सृक्कम् ओष्ठयोः प्रान्तभागः ( इति वाचस्पतिः ) ॥

## दंतमूल ( मसूढों ) के रोग ।

**दंतमूलगतास्तु शीतादो दंतपुप्पुटको दंतवेष्टकः शौषिरो महाशौषिरः परिदर उपकुशो दंतवैदर्भो वर्द्धनोऽधिमांसो नाड्यः पंचेति ११॥**

दंतमूलगत १५ रोग इस प्रकार हैं–१ शीताद, २ दंतपुप्पुट, ३ दंतवेष्टक, ४ शौषिर, ५ महाशौषिर, ६ परिदर, ७ उपकुश, ८ दंतवैदर्भ, ९ वर्द्धन, १० अधिमांस और इनके सिवाय ५ नाडी हैं ( नाडीरोगोंकी उत्पत्ति जैसे पहले दशवें अध्यायमें वात, पित्त, कफ, सन्निपात और शल्यसे कह चुकेहैं वैसेही यहां दंतमूलमेंभी ५ प्रकारके नाडीरोग जानों इसको दन्तनाडी अर्थात् नासूर कहतेहैं )॥ ११ ॥

**शोणितं दंतवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते ॥ दुर्गंधीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥१२॥ दंतमांसानि शीर्यंते पचंति च परस्परम् ॥ शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥ १३ ॥**

जिसके मसूढोंमें अकस्मात् रुधिर निकले और मसूढे दुर्गंध युक्त हों, काले पड जायँ, क्लेदित रहें और नरम हो जायँ ॥ १२ ॥ तथा दांतोंकी जडका मांस गिरने लगे तथा परस्पर मसूढे पकने लगें तो यह कफ और रक्तसे उपजा " शीताद " नाम रोग कहलाता है ॥ १३ ॥

**दंतयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुः सरुजो महान् ॥ दंतपुप्पुटको ज्ञेयः कफरक्तनिमित्तजः ॥ १४ ॥ स्रवंति पूयरुधिरं चला दंता भवंति च ॥ दंतवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥ १५ ॥ श्वयथुर्दंतमूलेषु रुजावान् कफरक्ततः ॥ लालास्रावी स विज्ञेयः कण्डूमाञ्छौषिरो गदः ॥ १६ ॥**

जिसके दांतों, मसूढों अथवा तालु सहित तीनों स्थानोंमें पीडा सहित महाशोथ हो उसके कफ और रक्तसे उपजा "दंतपुप्पुट" रोग जानना ॥ १४॥ यदि मसूढोंसे पीव और रुधिर झिरे और सब दाँत हिलजायँ तो वह दुष्ट रुधिरसे उपजा " दंतवेष्टक" रोग जानना चाहिये ॥१५॥ मसूढोंमें पीडा युक्त शोथ हो, खाजभी हो तथा मुँहसे लार गिरे तो कफ और रुधिरसे उपजा " शौषिर " नाम रोग जानने योग्य है ॥ १६ ॥

**दंताश्चलंति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ॥ दंतमांसानि पच्यंते मुखं च परिपीड्यते ॥ यस्मिन्स सर्वजो व्याधिर्महाशौषिरसंज्ञकः॥**

॥ १७ ॥ दंतमांसानि शीर्यंते यस्मिन्ष्ठीवंति चाप्यसृक् ॥ पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ १८ ॥

जिसके दांत मसूढोंमेंसे हिलकर गिरने लगें और तालु विदीर्ण हो( फट ) जाय और मसूढें पक जायँ तथा मुखमें अतिपीडा हो तो यह संन्निपातसे उपजी "महाशौषिर" नाम व्याधि कहलाती है ॥ १७ ॥ जिसके मसूढें विदीर्ण होजायँ और थूकनेमें खून आवे तो पित्त, कफ और रुधिरसे उपजी हुई "परिदर" नाम व्याधि जाननी चाहिये ॥ १८ ॥

वेष्टेषु दाहः पाकश्च तेभ्यो दंताश्चलंति च ॥आघट्टिताः प्रस्रवंति शोणितं मंदवेदनाः ॥ १९ ॥ आध्मायंते स्रुते रक्ते मुखं पूति प्रजायते ॥ यस्मिन्नुपकुशः स स्यात्पित्तरक्तकृतो गदः ॥ २० ॥ घृष्टेषु दंतमूलेषु संरंभो जायते नृणाम् ॥ भवंति च चला दंताः स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ २१ ॥

मसूढोंमें दाह हो पकजायँ और दांत हिलकर मसूढोंसे गिरने लगें और विना दवाये रगडे उनमेंसे रक्त निकले और मंद २ वेदना हो ॥ १९ ॥ और यदि रक्त नहीं निकले तो मसूढें फूल जायँ और मुखमें दुर्गंध आवे यह पित्त और रुधिरसें उपजा "उपकुश" रोग है ॥ २० ॥ दांतोंकी जडको रगडनेसे संरंभ ( शोथ ) उत्पन्न होजावे और दांत हिलजावें तो अभिघात ( रगडने ) से उपजा "वैदर्भ" रोग जानो ॥ २१ ॥

मारुतेनाधिको दंतो जायते तीव्रवेदनः॥ वर्द्धनः स मतो व्याधिर्जाते रुक् च प्रशाम्यति ॥ २२॥ हानव्ये पश्चिमे दंते महाशोथो महारुजः ॥ लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥ २३ ॥ दंतमूलगता नाड्यः पंच ज्ञेया यथेरिताः ॥ २४ ॥

यदि वायुसे तीव्र वेदना युक्त और अधिक दांत ( मसूढोंमें ) पैदा होजाय तो उसे "वर्द्धन" कहतेहैं इसमें अधिक दांत उत्पन्न होनेमें तो वेदना होतीहै और निकल आये पीछे वेदना शांत हो जाती है ॥ २२ ॥ हनु ( ठोढी ) के पिछली तरफके दंत ( मूल ) में भारी शोथ और पीडा होय, मुँहसे लार गिरे तो कफका

---

( श्लो० २१ ) संरंभोऽत्र श्वयथुः ( इति डल्हनः ) ( श्लो० २३ ) हानव्ये हनुभवे ।

किया हुआ यह "अधिमांस" जानना चाहिये ॥ २३ ॥ मसूढोंकी जडमें पाँच प्रकारकी नाडी ( नासूर ) होती हैं जैसे दशमाध्यायमें नाडीरोग कहा है-वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और शल्यज वैसेही यहांभी जानो ( देशभाषामें इस नाडीको जाडिया कहते हैं ) ॥ २४ ॥

## दंतरोग ।

**दंतगतास्तु दालनः क्रिमिदंतको दंतहर्षो भंजनकः शर्करा कपालिका श्यावदंतको हनुमोक्षश्चेति ॥ २५ ॥**

दंतगत ( दांतोंके ) ८ रोग इस प्रकार होते हैं-१ दालन, २ क्रिमिदंत, ३ दंतहर्ष, ४ भंजनक, ५ शर्करा, ६ कपालिक, ७ श्यावदंतक, ८ हनुमोक्ष ॥ २५ ॥

**दाल्यंते बहुधा दंता यस्मिंस्तीव्ररुगन्विताः ॥ दालनः स इति ज्ञेयः सदागतिनिमित्तजः ॥ २६ ॥ कृष्णश्छिद्री चलः स्रावी ससंरंभो महारुजः ॥ अनिमित्तरुजो वाताद्विज्ञेयः कृमिदंतकः ॥ २७ ॥ दशनाः शीतमुष्णं च सहंते स्पर्शनं न च ॥ यस्य तं दन्तहर्षं तु व्याधिं विद्यात्समीरणात् ॥ २८ ॥ वक्रं वक्रं भवेद्यस्मिन् दंतभंगश्च तीव्ररुक् ॥ कफवातकृतो व्याधिः स भंजनकसंज्ञितः ॥ २९ ॥**

जिसमें दांत विदारणसे होतेहों और तीव्र पीडा युक्त हों वह "दालन" नामक दंतरोग जानना यह सदैव गतिके कारणसे होताहै ॥ २६ ॥ जो दांत काला पड जाय, इसमें छिद्र हो हिलने लगजाय, उससे मल निकले, शोथयुक्त हो और वेदना अधिक हो और विना कारणके पीडा होजाय तो वायुसे यह "कृमिदंत" रोग जानना ( अर्थात् दांतमें कीडा लगाहै ऐसा जानना ) ॥ २७ ॥ जिसके दांत शीतल और गरम वस्तु तथा स्पर्शको नहीं सहसकें उसे वायुसे उपजी "दंतहर्ष" नाम व्याधि जानना ॥ २८ ॥ जिसमें मुँहका आकार टेढा होजाय और दांत टूटनेलगें तथा तीव्र वेदना हो वह कफ और वायुका किया हुआ "भंजनक" नाम रोग होता है ॥ २९ ॥

**शर्करेव स्थिरीभूतो मलो दंतेषु यस्य वै ॥ सा दंतानां गुणघ्नी तु विज्ञेया दंतशर्करा ॥ ३० ॥ दलंति दंतवल्कानि यदा शर्करया सह ॥ ज्ञेया कपालिका सैव दशनानां विनाशिनी ॥ ३१ ॥ योऽसृग्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दंतस्त्वशेषतः ॥ श्यावतां नीलतां वापि गतः स श्याव-**

**दंतकः॥३२॥ वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसंधिर्विसंहतः ॥ हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ३३ ॥**

जिसके दांतोंमें शर्करा (पथरी) की तरह मल जमकर स्थिर होजाय वह दांतोंके गुण नाश करनेवाली " दंतशर्करा " होती है ॥ ३० ॥ यदि उस जमी हुई शर्कराके साथ दांतोंकी फच्चटें गिरने लगें तो दांत नाश करनेवाली " कपालिका " नाम व्याधि जाननी चाहिये ॥ ३१॥ जो रुधिरसे मिले हुए पित्त करके सारा दांत भस्मसा होकर काला या नीला होजाय तो उसे " श्यावदंत " कहते हैं उन उन भावों ( कठिन चर्वण, अतिजृंभा आदि ) करके वायुसे ठोडीकी संधि बिगड जाय तो उसे " हनुमोक्ष " रोग कहते हैं इसमें अर्दित वायुकेसे लक्षण होते हैं ( यह व्याधि दांतोंमें पीडा करनेवाली और दांतोंके समीप होनेसे दंतरोगमें कही है ) ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

## जिह्वारोग।

**जिह्वागतास्तु कंटकास्त्रिविधास्त्रिभिर्दोषैरलास उपजिह्विका चेति३४॥**

जिह्वाके ५ रोग इस प्रकार हैं—कंटक तीन प्रकारके तीनों दोषोंसे जैसे १ वातकंटक, २ पित्तजकंटक, ३ कफजकंटक, ४ अलास, ५ उपजिह्विका ॥ ३४ ॥

**जिह्वानिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥ पित्तेन पीता परिदह्यते च चिता सरक्तैरपि कंटकैश्च ॥ ३५॥ कफेन गुर्वी बहुला चिता च मांसोद्गमैः शाल्मलिकंटकाभैः ॥ जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः॥ जिह्वां स तु स्तंभयति प्रवृद्धो मूले तु जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥३६॥ जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः ॥ प्रसेककंडूपरिदाहयुक्ता प्रकथ्यतेऽसावुपजिह्विकेति ॥ ३७ ॥**

---

( श्लो० ३३ ) वाग्भटेन भावमिश्रेण च हनुमोक्षः दंतरोगेषु न पठितः किन्तु करालः दंतभेदश्चालश्च पठिता एव वाग्भटे दश दंतरोगाः सन्ति तेषा लक्षणानि यथा–"दतभेदे द्विजास्तोदभेदरुक्स्फुटनान्विताः। चालश्चलद्भिर्दशनैर्भक्षणादधिकव्यथैः ॥" करालक्षणन्तु भावप्रकाशात्–"शनैः शनैः प्रकुरुते यत्र दंताश्रितोनिलः । करालान्विकटान्दंतान्स करालो न सिद्ध्यति" इति ॥

( श्लो० ३५ ) शाकः वृक्षविशेषो महाखरपत्रलक्षणः । ( श्लो० ३६ ) अलासरोगे जिह्वास्तंभेन तु वायुरप्यस्ति तथाच भृशं पाकेन पित्तमप्यस्ति अतएव सान्निपातिकत्वेनाऽसाध्यत्व दुरुपक्रमत्वात् इति निबंधसंग्रहः ) ॥

वायुके दोषसे ( कंटक ) हों तो जिह्वा फटी हुई और सोई हुईसी अर्थात् सुन्नसी तथा शाकके पत्ते जैसी ( खरदरी और पतली ) मालूम होती है । पित्तके दोषसे कंटक हों तो जिह्वा पीली होती है और उसमें दाह होता है और रक्त युक्त कंटकों ( मांसांकुरों ) से व्याप्त होती है ॥ ३५ ॥ कफके दोषसे कंटक हों तो जिह्वा भारी, मोटी और सिंभलके कांटों जैसे मांसांकुरोंसे व्याप्त होती है ॥ और जो जिह्वाके नीचे मोटा सोजा हो तो कफ और रक्तकी मूर्त्ति अलास नामक जिह्वारोग जानों यह रोग बढकर जिह्वाको स्तंभित करदेता है और जडमेंसे जिह्वा पाकको प्राप्त होजाती है ॥ ३६ ॥ जिसके जिह्वाके अग्रभागमें सोजा हो और जिह्वाको ऊपरको नवादेवे, मुँहसे लार गिरे, खाज और दाहसे युक्त हो तो कफ और रुधिरसे उपजा इसे " उपजिह्विका " नामक रोग कहते हैं ॥ ३७ ॥

## तालुरोग ।

**तालुगतास्तु गलशुंडिका तुंडकेर्य्यऽध्रुषो मांसकच्छपोऽर्वुदं मांससंघातस्तालुपुप्पुटस्तालुशोषस्तालुपाक इति ॥ ३८ ॥**

तालुके ९ रोग इस भांति होते हैं-१ गलशुंडिका, २ तुंडिकेरी, ३ अध्रुष, ४ मांसकच्छप, ५ अर्बुद, ६ मांससंघात, ७ तालुपुप्पुट, ८ तालुशोष और ९ तालुपाक ॥ ३८ ॥

**श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोफोध्मातवस्तिप्रकाशः॥ तृष्णाकासश्वासकृत्संप्रदिष्टो व्याधिर्वैद्यैः कंठशुंडीति नाम्ना ॥ ३९ ॥ शोफः स्थूलस्तोददाहप्रपाकः प्रागुक्ताभ्यां तुंडिकेरी मता तु ॥ शोफः स्तब्धो लोहितस्तालुदेशे रक्ताज्ज्ञेयः सोऽध्रुषो रुग्ज्वराढ्यः ॥ ४० ॥**

जो कफ, रक्तसे उपजा हुआ तालुकी जडसे लेकर दीर्घ सोजा होता है और भरी मशककी तरह तालु फूल जाता है, तृषा अधिक होती है तथा खांसी और श्वास पैदा कर देता है वैद्योंने उस व्याधिको " कंठशुंडी " ( गलशुंडी ) नामसे कहा है ॥ ३९ ॥ जिसके तालुमें सोजा हो, तालु भारी हो, पीडा, दाह और पाक हो तो पूर्वोक्त कफ और रुधिरसे उपजा " तुंडिकेरी " नाम रोग जानो ॥ और जिसमें कडा सोजा हो और तालुप्रदेशमें रक्तता अधिक हो, दर्द और ज्वर करके युक्त हो उसे रुधिरविकारसे उपजा " अध्रुप " नाम रोग जानना ॥ ४० ॥

**कूर्मोत्सन्नोऽवेदनो शीघ्रजन्माऽरक्तो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा स्यात् ॥ पद्माकारं तालुमध्ये तु शोफं विद्याद्रक्तादर्वुदं प्रोक्तलिं-**

गम्॥४१॥दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजं च तालव्यंतस्थं मांससंघात-माहुः॥ नीरुक् स्थायी कोलमात्रः कफात्स्यान्मेदोयुक्तात्पुप्पुट-स्तालुदेशे ॥ ४२ ॥

जो कछुवेकी भांति ऊपरको उठा हो, वेदना रहित हो, बहुत दिनोंमें पैदा हो, लाल वर्ण नहीं हो तो कफसे उपजा " कच्छप " नाम रोग जानना। जो कमलके आकार तालुके मध्यमें सोजा हो और उसमें पूर्वोक्त ग्यारहवें अध्यायमें कहेहुए रक्तार्बुदके लक्षण हों तो रक्तसे उपजा " अर्बुद " रोग जानना ॥ ४१ ॥ और यदि तालुमें कफसे मांस दूषित हो, वेदना रहित हो तो "मांससंघात" कहते हैं। तथा बडे बेरके समान स्थिर और वेदना रहित ग्रंथिसी हो तो मेदयुक्त कफसे उपजा " तालुपुप्पुट " रोग जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

शोषोत्यर्थं दीर्यते चापि तालुः श्वासो वातात्तालुशोषः सपित्तात्॥ पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येनं तालुपाकं वदंति ॥ ४३ ॥

जिसमें अत्यन्त शोष (तालुमें खुश्की) हो और तालु विदीर्णसा होता हो और श्वास हो तो पित्तयुक्त वायुसे उपजा " तालुशोष " रोग होता है। और यदि पित्त तालुप्रदेशमें अत्यन्त घोररूप पाक पैदा करे तो उसे " तालुपाक " कहते हैं ॥ ४३ ॥

कंठरोग।

कंठगतास्तु रोहिण्यः पंच कंठशालूकमधिजिह्वो वलयो बलास एकवृंदो वृंदः शतघ्नी गिलायुर्गलविद्रधिर्गलौघः स्वरघ्नो मांसतानो विदारी चेति ॥ ४४ ॥

कंठके १७ रोग इस प्रकारसे होते हैं–५ प्रकारकी रोहिणी (१ वातरोहिणी, २ पित्तरोहिणी, ३ श्लेष्मरोहिणी, ४ सन्निपातरोहिणी, ५ रक्तरोहिणी), ६ कण्ठशालूक, ७ अधिजिह्व, ८ वलय, ९ बलास, १० एकवृंद, वृंद ११ शतघ्नी, १२ गिलाय, १३ गलविद्रधि, १४ गलौघ, १५ स्वरघ्न, १६ मांसतान और १७ विदारी ॥४४॥

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणि-तम् ॥ प्रदूष्य मांसं गलरोधिनोंकुरान् सृजंति यान् साशुहरा तु

---

(गद्य ४४) पूर्वोद्दिष्टकठरोगास्तु सप्तदशैव कथमत्राष्टादश इत्याह डल्लनः–एकवृंदो विशेषानुगमेनावस्थांतरं प्राप्तो वृंदत्व प्रतिपद्यते अतो मूलोक्ता सप्तदशसख्या न विरुद्धा इति जैज्जटमतम्। भावमिश्रस्तु स्वग्रथे अष्टादश इत्येवमाह। (श्लो० ४५) आशुहरा शीघ्रमारका अथवा असुहरा प्राणहरा चेति ॥

रोहिणी ॥ ४५ ॥ जिह्वां समंताद्भृशवेदना ये मांसांकुराः कण्ठनिरोधिनः स्युः ॥ तां रोहिणीं वातकृतां वदंति वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ताम् ॥ ४६ ॥ क्षिप्रोद्भवा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्ततः स्यात् ॥ स्रोतोनिरोधिन्यपि मंदपाका गुर्वी स्थिरा सा कफसम्भवा वै ॥ ४७ ॥

गलप्रदेशमें वायु अथवा पित्त अथवा कफ तथा तीनों दोष अथवा रक्त मूर्च्छित होकर मांसमें दूषण उत्पन्न करके गलके रोकनेवाले मांसके अंकुर पैदा कर देते हैं उसे रोहिणी कहते हैं यह रोहिणी शीघ्र मृत्युकारिणी है ॥४५॥ जो जिह्वाके आसपास दारुण वेदनावाले और कण्ठके रोक देनेवाले और वायुके उपद्रवोंसे युक्त मांसके अंकुर हों तो इसे वायुकी रोहिणी कहते हैं ॥ ४६ ॥ यदि शीघ्र उत्पन्न होनेवाले और शीघ्रही विदाह ( जलन ) को प्राप्त होने वाले तथा शीघ्रही पकनेवाले अंकुर हों और तीक्ष्ण ज्वर भी हो तो पित्तकी रोहिणी है । यदि गल आदि मार्ग रोकनेवाली, मंद पकनेवाली, भारी और स्थिर हो तो कफकी रोहिणी जानना ॥ ४७ ॥

गंभीरपाकाऽप्रतिवार्यवीर्या त्रिदोषलिंगा त्रयसंभवा स्यात् ॥
स्फोटाचिता पित्तसमानलिंगाऽसाध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मकेयम् ॥४८॥

जिसका पकाव गहरा हो तथा उसका बल निवारण करने योग्य न हो, ( तीक्ष्ण पीडा हो ) और तीनों दोषोंके लक्षण हों तो त्रिदोषसे उपजी रोहिणी होती है ॥ तथा जिसमें बहुतसी फुन्सियां हों और पित्तकी रोहिणीके समान लक्षण हों तो उसे रुधिरकी रोहिणी समझनी चाहिये और यह असाध्य होती है ॥ ४८ ॥

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रंथिर्गले कंटकशूकभूतः॥ खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कंठशालूकमिति ब्रुवंति॥४९॥जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वाप्रबंधोपरि रक्तमिश्रः ॥ ज्ञेयोधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥५०॥ बलास एवायतमुन्नतं च शोफं करोत्यन्नगतिं निवार्य॥ तं सर्वथैवाऽप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ ५१ ॥

बडे बेरकी गुठलीके बराबर कफसे उपजी ग्रंथि जो गलेमें हो और वह कांटे और तिनके जैसोंसे छाई हुईसी हो खरदरी या कडी और स्थिर हो तथा शस्त्र ( नश्तर आदि ) के अवचारसे साध्य होने योग्य हो ( अर्थात इतनी कडी और

स्थिर हो कि शस्त्रके विना स्वयं नहीं फूटे ) उसे "कण्ठशालूक" कहते हैं ॥ ४९ ॥ जिसमें जिह्वाके अग्रमें कफसे सोजा हो और जिह्वाके प्रबंध ( मूल ) पर रुधिरसे मिला हुआ रक्तवर्णका सोजा हो तो इसको "अधिजिह्व" नाम रोग जाने और जब यह पकजाय तब त्यागने योग्य होता है ॥ ५० ॥ जब कफ ( बढकर ) फैला हुआ और ऊँचा सोजा पैदा करे और अन्नके भीतर जानेकी गतिको रोकदे तो उसे सर्वथा प्रतिकारके योग्य नहीं और त्यागने योग्य ऐसा "वलयरोग" कहते हैं ॥५१॥

गले च शोफं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम्॥मर्म-
च्छिदं दुस्तरमेनमाहुर्वलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ ५२ ॥वृत्तो-
न्नतो यः श्वयथुः सदाहः कंड्वन्वितोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च॥नाम्नैकवृंदः
परिकीर्तितोसौ व्याधिर्वलासक्षतजप्रसूतः ॥ ५३ ॥ समुन्नते
वृत्तममंददाहं तीव्रज्वरं वृंदमुदाहरंति ॥ तं चापि पित्तक्षतज-
प्रकोपाद्विद्यात्सतोदं पवनास्रजं तम् ॥ ५४ ॥

कफ और वायु बढकर गलेमें शोथ पैदा करें और श्वासयुक्त हो तथा मर्मका छेदन करनेवाला हो तो निपुण वैद्य दुस्तर "वलास" संज्ञक रोग उसे कहतेहैं ॥५२॥ जो गलेमें फैला हुआ और ऊंचा दाहयुक्त, खाजसहित, विना पकनेवाला, मृदु ( कडा ) और भारी ऐसा सोजा हो तो इस व्याधिको "एकवृंद" नाम रोग कहते हैं और यह कफ और क्षतज ( चोट लगने आदिके रक्त ) से उत्पन्न होता है ॥ ५३ ॥ यदि उठा हुआ और फैला हुआ, तीक्ष्ण दाह युक्त हो और तीव्रज्वरभी हो तो उसे "वृंद" कहते हैं इसे पित्त और क्षतज(चोट आदि) से उपजा जानना चाहिये और यदि इसमें चीस या दरद हो तो इसे वायु और रक्तसे उपजा जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

वर्तिर्घना कंठनिरोधिनी या चितातिमात्रं पिशितप्ररोहैः ॥
नानारुजोच्छ्रायकरी त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नीव शतघ्न्यसाध्या ॥५५॥
ग्रंथिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोल्परुक् स्यात्कफरक्तमूर्तिः ॥
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥५६॥
सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोफो रुजो यत्र वसंति सर्वाः ॥
स सर्वदोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ ५७॥

( श्लो० ५६ ) अशनं सक्तमिवेति-भोजनग्रासं स्थितमिवेत्यर्थः ॥

जो कंठमें कंठरोकनेवाली गहरी वत्तीसी हो और मांसके अंकुरोंसे अत्यंत आच्छादित हो, नाना प्रकारकी वेदना और उभार करने वाली हो तो उसे " शतघ्नी " कहते हैं यह शतघ्नीकी भांति ( जो लोहेकी तोप होती है उसके तुल्य ) होती है और त्रिदोषसे उपजती है तथा असाध्य होती है ॥ ५५ ॥ गलेमें जो आँवलेकी गुठलीके बराबर स्थिर और थोडी पीडा करनेवाली ग्रंथि हो और ऐसा मालूम हो जैसे गलेमें भोजनका ग्रास अटका हो तो उसे कफ और रक्तकी मूर्त्ति " गिलायु " रोग जानना और यह गिलायु शस्त्रसे साध्य होने योग्य होता है ॥ ५६ ॥ जो समस्त गलेमें फैलकर सोजा उपजे और वेदना उसमें तीनों दोषोंकी हो तो त्रिदोषसे उपजा "गलविद्रधि" नाम रोग होताहै यह गलविद्रधि पूर्वोक्त त्रिदोषविद्रधिके तुल्य होता है ॥ ५७ ॥

शोफो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वातगतेर्निहंता ॥ कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यतेऽसौ ॥ ५८ ॥ योऽतिप्रताम्यन् श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकंठः ॥ कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ ५९ ॥

जो गलेमें अन्न और जलको रोकनेवाला बडा शोथ हो, ज्वर युक्त हो तथा ( उदान ) वायुकी गतिका अवरोध करे तो रुधिरसे मिले हुए कफसे उपजा यह " गलौघ " नाम रोग वर्णन किया है ॥ ५८ ॥ जिसमें श्वास लेते समय अंधेरासा आवे और निरंतर स्वर भिन्न हो तथा कंठ सूखजाय और विमुक्तकण्ठ अर्थात् कण्ठ खुलासा होजाय अथवा भोजन निगलनेमें स्वाधीन नहीं रहे और पवनके मार्गोंमें कफ उपलिप्त हो तो श्वास वायुसे उपजा यह " स्वरघ्न " रोग जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

प्रतानवान् यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ॥ स मांसतानः कथितोऽवलंबी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ ६० ॥ सदाहतोदं श्वयथुं सरक्तमंतर्गले पूति विशीर्णमांसम् ॥ पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ ६१ ॥

( श्लो० ५८ ) वातगतेर्निहंता इति–उदानवातगतेरवरोधकः ( इति भावमिश्रः ) । अन्ये च श्वासवायोर्गतिनिहन्तेति वदन्ति ॥ ( श्लो० ५९ ) अतिताम्यन् तमपश्यन् । प्रसक्तं निरंतरम् ( इति डल्हनः ) । शुष्कविमुक्तकंठः शुष्को विमुक्तो अस्वाधीनः कंठो यस्य स ग्रासं निगलितुमशक्त इत्यर्थः । अनिलायनेषु कफोपदिग्धेषु इति वायुवर्त्मसु कफोपलिप्तेषु । श्वसनात् वातात् ॥

जो फैला हुआ सोजा कष्टसाध्य रूप गलेमें होकर गलेको क्रमसे बंदकरे और अवलंबनशील हो तो त्रिदोषसे उपजा हुआ "मांसतान" नामक विकार कहाहै और यह प्राणोंका प्रेरक ( दूर करनेवाला ) है ॥ ६० ॥ गलेके भीतर दाह और दर्दयुक्त तथा रक्तयुक्त सोजा हो और गलेमें दुर्गंधियुक्त मांस विखरासा होजाय तो इसे पित्तसे उपजी मुखमें विदारी जानो और यह विदारीरोग जिस करवट मनुष्य अधिक सोताहै उस तरफ मुखमें विशेषतासे होतीहै ॥ ६१ ॥

सर्वमुखके रोग।

सर्वसरास्तु वातपित्तकफशोणितनिमित्ताः ॥ ६२ ॥

संपूर्ण मुखमें होनेवाले रोग वायु, पित्त, कफ और रक्त निमित्तवाले होते हैं ॥ ६२ ॥

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समंताद्यस्याचितं सर्वसरः स वातात् ॥
रक्तैः सदाहैस्तनुभिः स पीतैर्यस्याचितं चापि स पित्तकोपात्
॥ ६३ ॥ कंडूयुतैरल्परुजैः सवर्णैर्यस्याचितं चापि स वै कफेन॥
रक्तेन पित्तोदित एक एवं कैश्चित्प्रदिष्टो मुखपाकसंज्ञः ॥ ६४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

जिसका समस्त मुख पीडायुक्त फालकोंसे व्याप्त हो तो वह वायुका मुखरोग ( मुखपाक ) है। यदि लाल वर्णके, दाहयुक्त, पतले, पीले वर्णवाले फालके हों तो पित्तका मुखपाक है ॥ ६३ ॥ जो खाजयुक्त, थोडी पीडा वाले, सवर्ण ( सुपेद ) फालकोंसे व्याप्त हो तो कफका मुखपाक है। और किसीने रक्तका भी मुखपाक एक कहाहै उसमें पित्तहीके अनुसार सब जानना ( धन्वंतरिजी वात, पित्त और कफका ही मुखपाक कहते हैं ) ॥ ६४ ॥

इन सबके डाक्टरी और यूनानीमें ठीक २ नाम प्रायः नहीं मिलते किसीका नाम मिलता या किसीका ठीक २ नहीं मिलता इसीसे नहीं लिखे उन हरएककी तजवीज और ढंग औरही प्रकारसे है ॥

( वक्तव्य ) निदानस्थानमें जितने रोगोंका निदान वर्णन हुआ उससे यह नहीं समझना चाहिये कि सुश्रुतसंहितामें इतने थोडेहीसे रोगोंका निदान है—क्योंकि जिन बहुतसे रोगोंका निदान यहां वर्णन नहीं हुआ है उन सबका निदान चिकित्सित स्थान तथा उत्तरतंत्रमें यथायोग्य वर्णन होगा। और हम जो रोगोंके निदानके साथ २ प्रायः डाक्टरी तथा यूनानीके मतसे नाम आदि लिखतेहैं उसमें गडबड यह रहती-है कि उनके अपनी रीतिपर संख्या और रोगके लक्षणादि और ही और ढंगसे हैं

इससे कहीं २ किसी किसी रोगका लक्षणसहित ठीक नाम मिलजाता है, किसीका किसी औरहीके साथ संबंध या अंतर्भाव समझा जाताहै तो जिसके लक्षणोंमेंसे कुछ मिलताहै कुछ नहीं या सभी नहीं मिलता या किसीके लक्षणोंमें बहुत भेद है या किसीके वर्णन करनेमें लेखबाहुल्य बहुतही होता है तो ऐसी अवस्थामें उन्हें छोड़ दिया है यदि उनका ठीक २ वर्णन देखना हो तो उनकी पुस्तकोंमें देखो ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० निदानस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

---

पूर्तिः ।

श्लोक-श्रीमन्मालवभूमिपालतिलकः शैलाननाधीश्वरो विद्याप्रेमनिधिर्विनीतिनिपुणः प्राज्ञो यशस्वी नृपः ॥ नित्यं वृद्धिमियाद्यदाश्रितभिषग्वर्येण पूर्तिं गतं टीकायां मुरलीधरेण विदुषा स्थानं निदानं शुभम् ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीयुक्त मालवप्रांतके राजाओंमें तिलकरूप शैलानन ( सैलाना ) के महाराज जोकि विद्याप्रेमके निधि और नीतिमें निपुण तथा विद्वान् हैं और यशस्वी अर्थात् जिनका नाम श्री १०८ यशवंतसिंह बहादुर है वे नित्य वृद्धिको प्राप्त हों कि जिनके समाश्रित राजवैद्य पं० मुरलीधरशर्म्मासे यह सुश्रुतसंहिताकी टीकामें सुंदर निदानस्थान पूर्ण हुआ ॥

इति सुश्रुतसंहितायाः पं० मुरलीधरशर्मविरचितसान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्ट-भाषाटीकायां निदानस्थानं समाप्तम् ॥ २ ॥

॥ समाप्तमिदं निदानस्थानम् ॥

---

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.

॥ श्रीः ॥

# अथ सुश्रुतसंहिता ।

## सान्वयभाषाटीकासहिता ।

## शारीरस्थानम् ३.

### प्रथमोऽध्यायः १.

**अथातः सर्वभूतचिंताशारीरं व्याख्यास्यामः ॥**

निदानस्थानके अनंतर अब शारीरस्थान वर्णन किया जाता है । इस शारीरक स्थानके आरंभमें सब भूतों ( प्राणियों ) ( अथवा पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ) की चिंता ( चिंतन अर्थात् ये कैसे पैदा हुए, इनके क्या २ कार्य हैं इत्यादि ) शारीरकका प्रथम व्याख्यान करते हैं ॥

**सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभवहेतुरव्यक्तं नाम तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्र इवोदकानां भावानाम् ॥ १ ॥**

---

( गद्य १ ) सर्वभूतानामिति–पृथिव्यादीनाम् अथवा सर्वस्थावरजगमाना सत्त्वरजस्तमोलक्षण गुणत्रयात्मकम् अष्टरूपम् अष्टधाप्रकृतिरूपमिति–प्रकृतिभावेनैव।व्यक्त महानहकारः पच तन्मात्राणीति अष्टौ रूपाणि यस्य तत्तथा । प्रकृतित्व चाष्टानामव्यक्तादीना साख्ये प्रतिपादित शिलापुत्रकन्यायेन रूपत्वरूपित्व च । अव्यक्तस्याव्यक्तं महानहकारः पचभूतानीत्यष्टौ रूपाणीत्येके । अपरे तु मनोबुद्ध्यहकारमहाभूतानि इत्यष्टौ भाषते । अखिलस्य जगतः संभवहेतुः अभिव्यक्तिकारणम् । अत्र गयदासाचार्यस्त्वन्यथा व्याख्याति यथा–अखिलस्य जगतः सभवहेतुरित्यनेनोपादानकारणत्वम् अव्यक्तस्य जगदुत्पत्तौ प्रतिपादितम् । अकारणं न कारण यस्य तत् अविकृतिरूपं न कस्यचित्कार्यमित्यर्थः । अव्यक्त प्रकृतिः प्रधान मूलप्रकृतिरिति यावत् ( इति डल्लनः )। अपरे शून्य वाचस्पत्ये तु अव्यक्तशब्दः विष्णौ शिवे च । साख्यमते सर्वकारणे प्रधाने रूपाद्यहीनतया चक्षुराद्यगोचरत्वात्तस्य तथात्वम् । वेदान्तमते सूक्ष्मशरीरे स्वप्नावस्थाया शब्दप्रवृत्तिनिमित्तजातिगुणादिभिर्वर्जिते निराकारे ब्रह्मणि च ।क्षेत्रज्ञाना जीवाना, क्षेत्रं देहमात्मत्वेन जानातीति क्षेत्रज्ञः "क्षेत्राण्यानि शरीराणि तेषा चैव यथासुखम्। आत्मानं वेत्ति सयोगादतः क्षेत्रज्ञ उच्यते" इत्युक्तो जीवात्मा क्षेत्रज्ञः॥

सम्पूर्ण भूतों (पृथिवी,अप, तेज, वायु, आकाश अथवा प्राणियों) का कारण सत्त्व, रज, तम ( गुणत्रय ) के लक्षणवाला तथा अष्टधा प्रकृतिरूप अव्यक्त नाम ( मूल प्रकृति ) अथवा ( ब्रह्म ) समस्त जगत्की उत्पत्तिका हेतु है और वह अव्यक्त स्वयं अकारण है अर्थात् उसका कोई कारण नहीं है किन्तु वही सबका कारण है। वह एक अद्वितीय ब्रह्म असंख्य क्षेत्रज्ञों ( जीवों ) का आश्रय है जैसे असंख्य नदी तथा नालोंका अधिष्ठान समुद्र है अथवा " औदकानां भावानाम्" का अर्थ कई मत्स्य, शंख, पद्मादि ऐसा करतेहैं अर्थात् जैसे मत्स्य, पद्मादिका अधिष्ठान समुद्र है तैसे जीवोंका अधिष्ठान अव्यक्त समुद्र है। तात्पर्य यह है कि "अद्वैतवादी" जो जीव और ब्रह्मको एक ( सजातीय ) मानतेहैं वे तो औदकभाव समुद्रके सजातीय नदी, नाले ऐसा अर्थ करतेहैं और " द्वैतवादी" जो जीव और ब्रह्मको पृथक् ( विजातीय) मानतेहैं वे मत्स्य, शंखादि ऐसा अर्थ करतेहैं ॥ १ ॥

**तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिंग एव तल्लिंगाच्च महतस्तल्लिंग एवाहंकार उत्पद्यते स च त्रिविधो वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति२॥**

उस अव्यक्त ( क्षेत्रज्ञोंके अधिष्ठान ) से उसीकेसे ( सत्त्वरजस्तमोमय ) लक्षणोंवाला महत्तत्त्व (निश्चयात्मक बुद्धितत्त्व ) उत्पन्न हुआ और उस अव्यक्तलिंग महत्तत्त्व ( निश्चयात्मक बुद्धितत्त्वसे ) अव्यक्तलिंग ( सत्त्वरजस्तमःस्वभाववाला ) अहंकार ( अहमिति अर्थात् मैं हूं ऐसा अस्त्यात्मक ज्ञान) उत्पन्न हुआ वह तीन प्रकारका है१ वैकारिक ( प्रकृतिका विकृतरूप विकारवाला ), २ तैजस ( तेजोमय स्वयंप्रकाश), ३ भूतादि ( भूतोंका आदिकारण ) और इसका यहभी अर्थ करते हैं कि वैकारिकादि संज्ञा अहंकारकी पूर्व आचार्योंने व्यवहारके अर्थ की हैं अर्थात् वह अहंकार सात्त्विक, राजस और तामस ऐसे तीन प्रकारका होताहै जहां वैकारिक(सात्त्विक), तैजस ( राजस ) और भूतादि ( तामस ) ऐसे जानना ॥ २ ॥

**तत्र वैकारिकादहंकारात्तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेंद्रियाण्युत्पद्यंते। तद्यथा श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्घस्तोपस्थपायुपा-**

(गद्य २) तस्मादिति-तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठानात् अव्यक्तात् महानिति बुद्धिस्तत्त्वं तच्च सत्त्वसमुद्रान्निर्मलस्फटिकोपलप्रख्य चिच्छायासङ्क्रान्तिप्राप्तचैतन्य पुरुषवद्ज्ञानात्मकमध्यवसेयविषय निश्चिनकारिणमित्यर्थः । उत्पद्यते व्यक्तीभवति । तल्लिंग इति-सत्त्वरजस्तमःस्वभाव एव । तल्लिंगात् सत्त्वरजस्तमःस्वभावात् । महतः इति-बुद्धितत्त्वात् । तल्लक्षणः सत्त्वरजस्तमःस्वभाव एव अहंकारः अहमिति अभिमानव्यापारलक्षणः उत्पद्यते। सोऽहंकारः वैकारिकादिभेदेन त्रिविधः । तत्र वैकारिकः प्रकृतेर्विकृतरूपात्मकः , तैजसः तेजोमयस्वयंप्रकाशरूपः, भूतादिः भूतानामादिकारणरूप इति शब्दार्थः । अथवा वैकारिकादिसंज्ञास्तु पूर्वाचार्यैः संव्यवहाराय कृताः । तत्र वैकारिकः सात्त्विकः, तैजसः राजसः, भूतादिः तामस इति ( नि० स० ) ॥

**देमनांसीति । तत्र पूर्वाणि पंच बुद्धीन्द्रियाणि इतराणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि उभयात्मकं मनः ॥ ३ ॥**

तहां तैजसकी सहायता युक्त वैकारिक ( सात्त्विक ) अहंकारसे सात्त्विकलक्षणवाली या प्रकाशलक्षणवाली एकादश ११ इंद्रियां उत्पन्न हुई वे ११ इंद्रिय इस प्रकार हैं कि श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण तथा वाणी, हाथ, लिंग, गुदा और पांव, तथा मन इनमें पहलेकी पांच ज्ञानेंद्रिय कहलाती हैं और उनके पिछाडीकी पांच कर्म इंद्रिय हैं और उभयात्मक ( दोनोंका अधिष्ठाता ) ग्यारहवां मन है ॥ ३ ॥

**भूतादेरपि तैजससहायात् तल्लक्षणान्येव पंचतन्मात्राण्युत्पद्यंते । तद्यथा—शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गंधतन्मात्रमिति तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगंधास्तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानलजलोर्व्यः।एवमेषां तत्त्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता ॥४॥**

तैजस ( रजोगुण ). युक्त भूतादि ( तामस ) अहंकारसे तामसलक्षणवाली ( मोहलक्षणवाली ) पांच तन्मात्रा उत्पन्न हुई जैसे शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गंधतन्मात्रा और उनके विशेष ( अनुभवयोग्य स्थूल विषय ) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यथाक्रम होते हैं ( जैसे शब्दतन्मात्रासे शब्द और स्पर्शतन्मात्रासे स्पर्श इत्यादि ) ( तन्मात्रा अतिसूक्ष्म होते हैं और उनके विषय स्थूल होते हैं ) और इन्हीं तन्मात्राओंसे यथाक्रमसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी उत्पन्न हुए ( शब्दतन्मात्रासे आकाश तथा स्पर्शतन्मात्रासे वायु, रूपतन्मात्रासे तेज, रसतन्मात्रासे जल और गंधतन्मात्रासे पृथ्वी ऐसे उत्पन्न हुए ) इन्हींको चौवीस तत्त्व वर्णन किया है ( तन्मात्राओंमेंसे एक एककी वृद्धिसे आकाशादिकी उत्पत्ति हुई ऐसा भाष्यकारका मत है जैसे—शब्दतन्मात्रासे शब्दगुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ । और शब्दतन्मात्रा सहित स्पर्शतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श गुण-

---

( गद्य ३ ) तत्र वैकारिकादिति—सात्त्विकादहंकाराद्राजससहायात् तमोमात्रानुविद्धादेकादशेंद्रियाणि उत्पद्यंते । तल्लक्षणानि प्रकाशलक्षणानि सत्त्वस्य प्रकाशत्वात् । ( इति डल्हनः ) । उभयात्मकमिति—बुद्ध्यात्मकं कर्मात्मकं च ॥

( गद्य ४ ) भूतादेरिति—तामसादहंकारात् राजससहायात् सत्त्वमात्रानुविद्धात् पंचतन्मात्राण्युत्पद्यंते । तल्लक्षणानि मोहलक्षणानि तमसो मोहत्वात् । तन्मात्राणि सा मात्रा येषु तानि शब्दादिपंचानां कारणभूतानि अविशेषाणि तेभ्यः पंचभ्यः शब्दतन्मात्रादिभ्यः एकोत्तरपरिवृद्ध्या व्योमादय उत्पद्यंते यथा—शब्दतन्मात्रात् शब्दगुणं व्योम । शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्रात् शब्दस्पर्शगुणो वायुः । शब्दस्पर्शतन्मात्रसहितात् रूपतन्मात्रात् शब्दस्पर्शरूपगुणं तेजः । शब्दस्पर्शरूपतन्मात्रसहितात् रसतन्मात्रात् शब्दस्पर्शरूपरसगुणा आपः । शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रसहितात् गंधतन्मात्रात् शब्दस्पर्शरूपरसगंधगुणा पृथ्वी ( इति भाष्यमतेन डल्हनः ) ॥

वाला वायु । और शब्द-स्पर्श-तन्मात्रा सहित रूपतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप गुणवाला तेज ( अग्नि ) उत्पन्न हुआ । तथा शब्द-स्पर्श-रूप तन्मात्रा सहित रसतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप-रस गुणोंवाला जलतत्त्व उत्पन्न हुआ । ऐसेही शब्द-स्पर्श-रूप-रस तन्मात्रा सहित गंधतन्मात्रासे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध गुणोंवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई ) ॥ ४ ॥

**तत्र बुद्धीन्द्रियाणां शब्दादयो विषयाः । कर्मेन्द्रियाणां यथासंख्यं वचनादानानंदविसर्गविहरणानि ॥५॥ अव्यक्तं महानहंकारः पंच तन्मात्राणि चेत्यष्टौ प्रकृतयः शेषाः षोडशाविकाराः ॥ ६ ॥**

इनमें ज्ञानेंद्रियोंके तो शब्दादिक विषय हैं ( जैसे श्रोत्रका विषय शब्द । त्वचाका विषय स्पर्श । चक्षुका विषय रूप । जिह्वा (रसना) का विषय रस । घ्राणका विषय गंध है ) और कर्मेंद्रियोंके विषय क्रमसे वचन, ग्रहण, आनन्द, मलत्याग और गमन ये हैं ( जैसे वाणीका विषय बोलना । हाथोंका विषय पकडना । लिंगका विषय मैथुन करना । गुदाका विषय मल और वायु त्यागना, तथा पैरोंका विषय चलना है ) ॥ ५ ॥ " अष्टधा प्रकृतिः " अव्यक्त, महत्तत्त्व और अहंकार तथा पांचों तन्मात्रा अर्थात् शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गंधतन्मात्रा ये आठ प्रकृति हैं ( अर्थात् कारणभूत हैं ) और शेष सोलह अर्थात् ग्यारह इंद्रिय और पांच पृथिव्यादि महाभूत ये विकार हैं ( जैसे पूर्वोक्त श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण तथा वाणी, हाथ, लिंग, गुदा और चरण तथा मन ये ग्यारह इंद्रिय और पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश ये पंचमहाभूत हैं सब मिलकर १६ सोलह विकार हैं ऐसे सब २४ तत्त्व हुए ) ॥ ६ ॥

**स्वः स्वश्चैषां विषयोऽधिभूतं स्वयमध्यात्ममधिदैवतं च यथा बुद्धेर्ब्रह्मा । अहंकारस्येश्वरः । मनसश्चन्द्रमाः । दिशः श्रोत्रस्य । त्वचो वायुः । सूर्यश्चक्षुषोः । रसनस्यापः । पृथिवी घ्राणस्य । वचसोऽग्निः । हस्तयोरिंद्रः । पादयोर्विष्णुः पायोर्मित्रम् । प्रजापतिरुपस्थस्येति ॥७॥**

( गद्य ६ ) अव्यक्तमित्यादिप्रकृतय अपरेषा कारणभूताः । अव्यक्तमिति विविधपाठात् केवलहेतुभावेनाव्यक्तप्रकृतिरेवेति बोधनार्थम् ( इति डल्हनः )। अपरेत्वित्यत्राव्यक्तपदेन कालस्य ग्रहण कुर्वन्ति । केचिदव्यक्तपदेन शून्यस्य ग्रहणं कुर्वंति । प्रकृतयस्तु कारणभूता विकाराः कार्यमित्यर्थः । षोडशविकारा यथा पंच महाभूतानि एकादशेंद्रियाणि चेति । ( गद्य ७ ) स्वः स्वश्चैषामिति-एषा बुद्ध्यहंकारेन्द्रियमनसां स्वस्वविषयोऽधिभूतसंज्ञकः । स्वयमेतानि बुद्ध्यादीनि त्रयोदश अध्यात्मम् । ब्रह्मादयोऽधिदैवतम् । भूतानि अधिकृत्य वर्तते तदधिभूतम् । आत्मान शरीरसबंधेनाधिकृत्य वर्तते तदध्यात्मम् । दैवतमधिकृत्य वर्तते तदधिदैवतम् । अयं चाधिभूतादिभावो वेदांतेपि वर्णितः ॥

इन बुद्ध्यादिकके अपने अपने विषय अधिभूत कहलाते हैं और ये बुद्ध्यादिक स्वयं अध्यात्म कहलाते हैं और इनके अधिदैवत ब्रह्माको आदि लेके इस प्रकार हैं- बुद्धि ( महत्तत्त्व ) का अधिदैवत ब्रह्मा है और अहंकारका शिव । मनका चन्द्रमा । श्रोत्र ( कर्ण ) का दिशा । त्वचाका वायु । चक्षुका सूर्य । जिह्वाका जल । घ्राण (नासिका) का पृथ्वी । वाणीका अग्नि । हाथोंका इंद्र । पैरोंका विष्णु । गुदाका मित्र और लिंगका अधिदैवत प्रजापति है । (इन सबके अधिभूत और अध्यात्म तथा अधिदैवत इस भांति जानने चाहिये कि बुद्धि अध्यात्म, बोद्धव्य अधिभूत और ब्रह्मा अधिदैवत । अहंकार अध्यात्म, अहंकर्त्तव्य अधिभूत, और शिव अधिदैवत । मन अध्यात्म संकल्पविकल्प कर्त्तव्य अधिभूत और चंद्रमा अधिदैवत । श्रोत्र अध्यात्म, श्रोतव्य अधिभूत और दिशा अधिदैवत । त्वचा अध्यात्म, स्पर्शनीय अधिभूत और वायु अधिदैवत । चक्षु अध्यात्म, दृश्य अधिभूत और सूर्य अधिदैवत । रसन अध्यात्म, रसनीय अधिभूत और जल अधिदैवत । घ्राण अध्यात्म, घ्रातव्य अधिभूत और पृथ्वी अधिदैवत । वाणी अध्यात्म, वक्तव्य अधिभूत और अग्नि अधिदैवत । हाथ अध्यात्म, आदातव्य ( ग्रहण करने योग्य ) अधिभूत और इंद्र अधिदैवत । पैर अध्यात्म, गंतव्य अधिभूत और विष्णु अधिदैवत । गुदा अध्यात्म, विसर्जन ( मलत्याग ) अधिभूत और मित्र नामक देवता अधिदैवत । लिंग अध्यात्म, आनंदनीय अधिभूत और प्रजापति नामक देवता अधिदैवत ) ॥ ७ ॥

**तत्र सर्व एवाचेतन एष वर्गः पुरुषः पंचविंशतितमः स च कार्य्यकारणसंयुक्तश्चेतयिता भवति सत्यप्यचैतन्ये प्रधानस्य पुरुषकैवल्यार्थं प्रवृत्तिमुपदिशंति क्षीरादींश्च हेतूनुदाहरंति ॥ ८ ॥**

तहां समस्त यह वर्ग ( अव्यक्तादि २४ तत्त्व ) चेतनासे रहित है और चेतनावाला पच्चीसवाँ "पुरुष" ( जीवात्मा ) है वह पुरुष कार्य (पंचमहाभूत पृथिव्यादिक और एकादश इंद्रिय) तथा कारण ( अव्यक्तादिक अष्ट प्रकृति ) से संयुक्त होकर चेतन करनेवाला होता है और प्रकृति अचैतन्य है तोभी पुरुष ( जीवात्मा ) मोक्षके अर्थ उसकी ( अव्यक्त ) की प्रवृत्ति होती है ऐसे आचार्य उपदेश करते हैं और अचैतन्यकी प्रवृत्ति क्योंकर होसकती है इसमें दुग्धादिककी प्रवृत्तिके हेतुका

---

( गद्य ८ ) तत्र सर्व इत्यादि—सर्व एप वर्गोऽव्यक्तादिकोऽचेतनः कारणस्याव्यक्तस्याचेतनत्वेन तत्कार्यस्य महदादेरचेतनत्वात् कार्यकारणसयुक्तः पुरुषश्चेतयिता भवति । तस्य पुरुपस्य कैवल्यार्थं प्रधानस्य मूलप्रकृतेरव्यक्तस्य प्रवृत्तिमुपदिशत्याचार्याः । एव चतुर्विंशतिभिरिति—प्रकृतयोऽष्टौ विकारा. षोडशेति चतुर्विंशति. तत्त्वानि । तैः सिद्धे शरीरात्मके गृहे नियतेर्निघ्नः शुभाशुभकर्मणस्समाधीनो जीवात्मा स्वान्दूतवान् मनोरूपदूतवान् वसति ॥

उदाहरण देतेहैं कि जैसे दुग्ध चेतनारहित जड होकर भी वत्सादिकके प्रेम संबंधसे प्रवृत्त होताहै ( चलायमान हो टपकने लगताहै ) इसी प्रकार शुक्र भी अचैतन्य होकर स्त्रीके संभाषणादिसे प्रवृत्त होताहै तथा जल अचैतन्य होकर अग्निके संयोगसे स्थालीगत वेगवान् होने लगताहै अर्थात् उफनने और शब्दकरनेमें उसकी प्रवृत्ति होती है इत्यादि ॥ ८ ॥ इस विषयमें भावमिश्र कहतेहैं-

श्लोक-एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वे सिद्धे वपुर्गृहे ।
जीवात्मा नियतेर्निघ्नो वसति स्वांतदूतवान् ॥ १ ॥

अर्थ-इस प्रकार चौबीस तत्त्वोंकरके सिद्ध किये (रचे हुए) शरीररूप घरमें नियति (कर्मों) के आधीन हुआ मनरूप दूतवाला जीवात्मा ( पुरुष ) वास करताहै ॥ १ ॥

**अत ऊर्द्ध्वं प्रकृतिपुरुषयोः साधर्म्यवैधर्म्ये व्याख्यास्यामः ॥**

यहांसे अगाडी हम प्रकृति और पुरुषके साधर्म्य और वैधर्म्यका व्याख्यान करतेहैं।

साधर्म्य ।

**तद्यथा उभावप्यनादी उभावप्यनंतौ उभावप्यलिंगौ उभावपि नित्यौ उभावप्यपरौ उभौ च सर्वगताविति ॥ ९ ॥**

वह इस प्रकार है कि दोनों प्रकृति और पुरुष अनादि हैं तथा दोनोंही अनंत हैं और दोनों ही अलिङ्ग ( चिह्नरहित ) हैं तथा दोनोंही नित्य ( अविनाशी ) हैं और दोनों ही अपर हैं अर्थात् इनसे परे कोई और नहीं है तथा दोनोंही सर्वव्यापी हैं यह तो इनमें समानधर्मत्व है ॥ ९ ॥

वैधर्म्य ।

**एका तु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणा बीजधर्मिणी प्रसवधर्मिणी अमध्यस्थधर्मिणी चेति । बहवस्तु पुरुषाश्चेतनावंतोऽगुणा अबीजधर्मिणोऽप्रसवधर्मिणो मध्यस्थधर्मिणश्चेति ॥ १० ॥**

---

(गद्य ९) उभौ प्रकृतिपुरुषौ अलिंगौ न विद्यते लिंग ययोस्तौ । नित्यौ क्वचिदपि लयं नाशं न गच्छतः। अपरौ न परो याभ्या इति । सर्वगौ सर्वं व्याप्य स्थितौ । ( गद्य १० ) प्रकृतिस्तु अव्यक्तापरपर्याया मूलप्रकृतिरेका शून्यमया । त्रिगुणा सत्त्वरजस्तमोगुणा । बीजधर्मिणी इति-सर्वेषां महदादिविकाराणां बीजभावेनावस्थिता बीजधर्मिणीत्युच्यते । गयदासाचार्यस्तु संहारे भूतेंद्रियतन्मात्राहंकारमहदादीनामाधारभूतेति बीजधर्मिणी सैव सिसृक्षुणा विभुना पुरुषेण सार्द्धं क्षोभमाणा साम्यावस्थाने प्रच्युता महदहंकारादिक्रमेण चराचरस्य जगतः प्रसवित्रीत्वात् प्रसवधर्मिणीत्युच्यते ( नि. स. )। अमध्यस्थधर्मिणी सुखदुःखभोगभागिनी न तु सुखदुःखभोगादुदासीना ( इति भावमिश्रः ) ॥

पुरुषा जीवात्मत्वेनासंख्याता परमात्मत्वेन तु पुरुषोप्येक एवेति नैय्यायिकाः । पुरुषे अबीजधर्मित्वं महाप्रलये महदादिविकाराणां प्रकृताविव तस्मिन्ननवस्थानात् । मध्यस्थधर्मित्वं सुखदुःखेच्छादिशून्यत्वात्, तथाचोक्तं सांख्यतत्त्वकौमुद्याम्-"तस्मात्तु विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य ।कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावाच" ( इति निबंधसंग्रहः ) ॥

अव्यक्तात्मक मूलप्रकृति एक है, चेतनारहित है, सत्त्व, रज और तम ऐसे तीनों गुणोंवाली है। समस्त पदार्थ बीजरूप होकर प्रलयमें इसीमें स्थित होतेहैं इससे यह बीजधर्मवाली है। और इसीमेंसे सब उत्पन्न होते हैं इससे यह प्रसवधर्मवाली है। यह सुखादिकभोगभागिनी है इससे मध्यस्थधर्मवाली ( उदासीन ) नहीं है किंतु अमध्यस्थ धर्मवाली है। पुरुष ( आत्मा ) जीवरूप होकर अनेक ( असंख्य ) हैं और चेतनावाले हैं सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंसे रहित हैं और अबीजधर्मी हैं ( अर्थात् बीजरूप होकर कोई पदार्थ जीवात्मामें नहीं रहते किन्तु प्रकृतिमें रहते हैं इससे यह पुरुष बीजधर्मी नहीं है किंतु अबीजधर्मी है ) और पुरुष अप्रसवधर्मी हैं ( अर्थात् आत्मामेंसे कुछ उत्पन्न नहीं होता इससे यह प्रसवधर्मी नही है किन्तु अप्रसवधर्मवाला है ) तथा मध्यस्थधर्मवाला है अर्थात् सुख दुःखादिमें उदासीनरूप मध्यस्थकी भांति है, सुख, दुःखादिको प्रकृति ही भोगतीहै, प्रकृति विना जीवको सुख दुःखादि नहीं होते ॥ १० ॥

**तत्र कारणानुरूपं कार्यमिति कृत्वा सर्व एवैते विशेषाः सत्त्वरजस्तमोमया भवंति तदंजनत्वात्तन्मयत्वाच्च तद्गुणा एव पुरुषा भवंतीत्येके भाषंते ॥ ११ ॥**

कई आचार्य ऐसा कहते हैं कि, कारणके अनुरूप कार्य होता है ऐसा मानकर ये समस्त विशेषरूप विकार ( महदादि, भूतादि ) भी सत्त्व, रज और तमोगुणमय होते हैं तो "तदंजनत्वात्" अर्थात् सत्त्व, रज, तमो व्यक्तिवाले होनेसे और तन्मय होनेसे पुरुष ( आत्मा ) भी तद्गुण अर्थात् तीनों गुणवाले (सत्त्वरज और तमोगुणवाले ) होते हैं (जैसे तडागस्थ जलमें पडा हुआ चंद्रमाका प्रतिबिंब जलके कंपनविकारसे कंपायमान प्रतीत होता है वैसेही प्रकृतिके संयोगसे आत्माभी तद्गुणवाला प्रतीत होता है अर्थात् सत्त्वादि गुणयुक्त प्रकृति ( महत्तत्त्व, अहंकार और महाभूत ) इनके प्रतिबिंबरूप आत्माभी सत्त्वादि गुणयुक्त प्रतीत होता है और सुखी दुःखी मूढ ऐसा जाना जाता है) ॥ ११ ॥

**वैद्यके तु—स्वभावमीश्वरं कालं यदृच्छां नियतिं तथा ॥**
**परिणामं च मन्यन्ते प्रकृतिं पृथुदर्शिनः ॥ १२ ॥**

( गद्य ११ ) विशेषाः महदादिप्रकाराः । तदजनत्वात् इति—तेषां सत्त्वरजस्तमसाम् अंजनं व्यक्तिर्येषु तस्मात् । तन्मयत्वात् सत्त्वादिमयत्वात् पुरुषाः तद्गुणसत्त्वरजस्तमोगुणा भवतीत्येके यथा—तडागोदके प्रतिबिंबितो विधुस्तडागोदकप्रकंपनेन प्रकंपात्मकः कथ्यते एवं सत्त्वादिरूपे महदादौ प्रतिबिंबिताः पुरुषाः सत्त्वादिमया भवंति न तु वास्तवसत्त्वादिमयत्वात् तादृशाच्च तन्मयत्वात् तल्लक्षणानि। तद्गुणाः सुखिनो दुःखिनो मूढाश्च पुरुषा भवंति ( इति डल्हनः ) । ( गद्य १२ ) अत्रैके स्वभाववादिनः स्वभावः सर्वस्य कारण-

( वैद्यक शास्त्रमें तो ) स्वभावको, ईश्वरको, कालको, यदृच्छाको और नियतिको तथा परिणामको दीर्घदर्शी विद्वान् लोग ऐसे छः प्रकार प्रकृति मानते हैं अर्थात् कोई स्वभावहीको प्रकृति मानते हैं कि जो जिसका स्वभाव है वह वैसाही होता है। और कोई ईश्वरहीको मुख्य मानते हैं कि ईश्वरही सबका कारण है । और कोई कालहीको मानते हैं कि काल पाकरही संसार पैदा होताहै और काल पाकरही नष्ट होता है। और कोई यदृच्छा (होनहार) हीको मानते हैं कि जैसा भवितव्य हो वैसाही होता है। और कोई नियति अर्थात् पूर्वजन्मार्जितादि शुभाशुभ कर्मोंहीको मानते हैं कि जैसा कर्म होता है उसीके अनुसार सब कुछ होताहै तथा कोई परिणामहीको मुख्य मानतेहैं कि अव्यक्तादि सब परिणाम पाकरही जगत्के कारणरूप होतेहैं॥ १२॥

तन्मयान्येव भूतानि तद्गुणान्येव चादिशेत्॥ तैश्च तल्लक्षणः कृत्स्नो भूतग्रामो व्यजन्यत ॥१३॥ तस्योपयोगोऽभिहितश्चिकित्सां प्रति सर्वदा॥ भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते ॥१४॥

भूत, आकाश आदि तन्मय अर्थात् प्रकृतिके परिणाम ( उष्ण, द्रव, शीत, घन, खर, मृदु आदि ) मय हैं और तद्गुण (उसीके गुणवाले) हैं अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुणवाले हैं ( जैसे सत्त्वबहुलमाकाशं तमोबहुला पृथ्वी इत्यादि ) इससे समस्त भूतग्राम ( स्थावर-जंगम-रूप संपूर्ण जगत् ) उन ( शीत, उष्ण, द्रव, घन आदि तथा सत्त्व, रज, तम ) लक्षणोंसे युक्तही उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ उस पंचमहाभूतारब्ध भूतग्रामका उपयोग ( प्रयोजन ) ही चिकित्साके प्रति ( इस चिकित्सा-

—मित्यूचुः तथाहि—"कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं चित्रं विचित्रं मृगपक्षिणां च । माधुर्यमिक्षोः कटुतां मरीचेः स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तम् ॥" इति । ईश्वरवादिन एवमाहुः—ईश्वर एव उर्वीपर्वततर्वादिजन्तूनां स्वर्गनरकादेश्च कारणम् इति । केचिदित्याहु. कालवादिनः—काल एव जगत्सृष्टिस्थितिप्रलयनिमित्तमिति । यदृच्छावादिनश्चेत्याहुः—यो यतो भवति तत्तु तन्निमित्तमिति यथा—तृणारणिनिर्मितो वह्निः । तथाच पूर्वजन्मार्जितौ धर्माऽधर्मौ नियतिः सैव सर्वस्य कारणमिति नियतिवादिनः । केचिदित्याहुः—प्रधानमेवाक्षरादिरूपतया परिणतं सर्वस्य निमित्तमिति परिणामवादिनः । वस्तुतस्तु,ते च स्वभावादयोपि समुच्चयेन जगदुत्पत्तौ कारणभूताः तत्रापि प्रकृतिपरिणामस्योपादानकारणत्वं स्वभावादीनां पंचानां निमित्तकारणत्वमिति । ईश्वरश्च पञ्चविंशतितमः पुरुषः प्रकृतेः क्षोभकतया कारणत्वेनोदाहृत एव ( इति निबंधसंग्रहः ) ॥

( श्लो० १३ ) तन्मयान्येवेति—चलोष्णद्रवखरस्वभावादिधर्मविशेषाक्रान्तप्रकृतिपरिणाममयानि । भूतानीति—आकाशादीनि । तद्गुणानि चेति—सत्त्वरजस्तमोगुणानि यथा—सत्त्वबहुलमाकाशं तमोबहुला पृथ्वीत्यादि । भूतग्रामः स्थावरजंगमात्मकः । तल्लक्षणः स्थिरगुरुकठिनादिलक्षणः । ( नि. सं. ) ॥

( श्लो० १४ ) तस्य पंचमहाभूतारब्धस्य भूतग्रामस्य परस्परोपकार्योपकारणत्वेन व्यवस्थितस्य । उपयोगः प्रयोजनम् । अभिहितः कथितः । चिकित्सां प्रति रोगापनयनं लक्षीकृत्य । चिकित्सां प्रति तस्य भूतग्रामस्य उपयोगः सर्वदा अभिहित इति यस्मात् भूतेभ्यः परं चिकित्सिते चिन्ता नास्तीति स्पष्टार्थः ।

शास्त्रमें रोगनाशके प्रति ) वर्णन कियागया है इसीसे चिकित्सित ( चिकित्साविषय ) में भूतों ( पंचमहाभूत-पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश और इनके कार्य्यों ) से परे अव्यक्त ( अदृष्ट ) आदिकी चिंता ( विचार और मीमांसा ) नहीं है अर्थात् नहीं हो सकती है ॥ १४ ॥

**यतोऽभिहितं तत्संभवद्रव्यसमूहो भूतादिरुक्तः । भौतिकानि चेंद्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यंते तथेंद्रियार्थाः ॥ १५ ॥ भवति चात्र--**

उस अव्यक्तसे उत्पन्न हुआ द्रव्यसमूह ( महदादि-बुद्ध्यादि और व्योमादि ) ही भूतादि वर्णन किया है इससे वैद्यकशास्त्रमें वही महदादिक ( महत्तत्त्व, अहंकार, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और सत्त्व, रज, तम ) ही अभिहित ( वर्णित ) है। तथा भौतिक इंद्रिय ( श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन और घ्राण ) तथा इंद्रियार्थ ( शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ) इनका वर्णन होता है॥१५॥इस विषयमें श्लोक है—

**इंद्रियेणेन्द्रियार्थं तु स्वंस्वं गृह्णाति मानवः ॥**
**नियतं तुल्ययोनित्वान्नान्ये नान्यमिति स्थितिः ॥ १६ ॥**

मनुष्य इन्द्रियसे नियत उसी उसके अर्थको समानयोनि होनेसे ग्रहण करता है अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियसे उसके तुल्ययोनित्व करके नियत शब्दको ग्रहण करता है और त्वचासे स्पर्शको चक्षुसे रूपको, रसनासे रसको और घ्राणसे गंधको ग्रहण करताहै क्योंकि आकाशकी इन्द्रिय श्रोत्र है और गुण शब्द है। इसी तरह वायुकी इंन्द्रिय त्वचा और गुण स्पर्श है तथा तेजकी इंद्रिय चक्षु और गुण रूप है तथा जलकी इन्द्रिय रसना और गुण रस है और पृथ्वीकी इंद्रिय घ्राण और गुण गंध है इसीसे सजातीय अपने सजातीयको ग्रहण करता है और अन्यसे अन्यको ग्रहण नहीं करता यही सिद्धांत है ॥ १६ ॥

**न चायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्ते सर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च असर्वगतेषु च क्षेत्रज्ञेषु नित्येषु पुरुषव्यापकान्हेतूनुदाहरंति ॥ १७ ॥ आयुर्वेदशास्त्रेष्वसर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च तिर्यग्योनिमानुषदेवेषु**

---

( गद्य १५ ) तत्सभवद्रव्यसमूहो महत्तत्त्वादि ( बुद्ध्यादि ) आकाशादिक एवं भूतादिरुक्तः यतोऽभिहितमायुर्वेदे भौतिकानींद्रियाणि इन्द्रियार्थाश्च वर्ण्यन्ते । डल्हनस्त्वन्यथा व्याख्याति यथा—यतः तस्य पुरुषस्य सभवद्रव्याणि शुक्रशोणितादीनि तेषा समूहः सयोगविशेषः । भूतादिः भूतं पृथिव्यादिकम् आदिमूलकारण यस्य सः तथा न परं पुरुषसभवं द्रव्यस्य भूतादिष्वभिधानात् भूतेभ्यः परं चिता नास्ति इति ॥

( श्लो० १६ ) तुल्ययोनित्वात् इति—एकभूतहेतुत्वात् भूतं हि स्वयोनिमेवाभिधावति ॥ ( गद्य १७ ) असर्वगता इति—न सर्वव्यापिनः किंत्वेकशरीरव्यापिनः ॥

संचरंति धर्माधर्मनिमित्तम् ॥ १८ ॥ त एते ऽनुमानग्राह्याः परमसूक्ष्माश्चेतनावंतः शाश्वता लोहितरेतसोः संनिपातेष्वभिव्यंज्यंते ॥ १९ ॥ यतोऽभिहितं पंचमहाभूतशरीरसमवायः पुरुष इति स एव कर्मपुरुषश्चिकित्साधिकृतः ॥ २० ॥

आयुर्वेदके शास्त्रोंमें क्षेत्रज्ञों ( जीवों ) को सर्वगत ( सर्वव्यापी ) नहीं कहते ( क्योंकि जो जीव सर्वव्यापी होता तो एकका सुख, दुःख सबको होता ऐसा नहीं होनेसे जीव सर्वव्यापी नही है ) परन्तु नित्य कहते हैं असर्वगत ( एकदेशी एक शरीरव्यापी ) जीवोंमें नित्य पुरुष व्यापक ( कहानेवाले ) हेतुओंको दिखाते हैं ॥ ॥ १७ ॥ आयुर्वेद शास्त्रके मतमें असर्वगत ( एकदेशीय ) जीव नित्य हैं वे धर्म और अधर्मका निमित्त पाकर तिर्यग्योनि ( पशुकीटादि ) तथा मनुष्यदेह तथा देवशरीरोंमें विचरते हैं ॥ १८ ॥ ये परम सूक्ष्म जीवात्मा अनुमानसे ग्रहण किये जाते हैं ( प्रत्यक्षतासे ग्रहण नहीं किये जासकते ) ये चेतनावाले ( चैतन्य ) हैं, शाश्वत अर्थात् नित्य हैं और माता पिताके रजवीर्यके संयोगसे प्रगट होते हैं ॥ १९ ॥ इसीसे पंचमहाभूत और शरीरी ( आत्मा ) के संयोगको पुरुष कहा गया है और यही कर्मपुरुष चिकित्सामें अधिकार किया गया है ( चिकित्सामें ग्रहण किया है ) ॥ २० ॥

तस्य सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नः प्राणापानावुन्मेषनिमेषौ बुद्धिर्मनः संकल्पो विचारणा स्मृतिर्विज्ञानमध्यवसायो विषयोपलब्धिश्च गुणाः ॥ २१ ॥

उस कर्मपुरुषके ये १६ गुण हैं १ सुख, २ दुःख, ३ इच्छा, ४ द्वेष, ५ प्रयत्न, ६ प्राण ( श्वासलेना ), ७ अपान ( अधोवायुनिःसारण ), ८ उन्मेष निमेष ( नेत्रोंको खोलना मीचना ), ९ बुद्धि, १० मन ( इन्द्रियोंकी प्रेरणात्मकशक्ति ),

( गद्य १९ ) एते क्षेत्रज्ञाः जीवात्मानः परसूक्ष्मा अतएवानुमानग्राह्याः नतु प्रत्यक्षप्रमाणेन कथंचिदपि ग्राह्या इत्यर्थः । शाश्वता नित्याः ॥ ( गद्य २० ) पंचमहाभूताना शरीरितः समवायः संयोगः पुरुषः इत्यभिहितम् । स एव कर्मपुरुषः कर्मफलभागीत्यर्थः । चिकित्सायाम् अधिकृतः गृहीतः ॥

( गद्य २१ ) इदानीं तस्यैव पुरुषस्य शरीरात्मनोः संयोगकारकेण मनसा संयोगे ये गुणा उत्पद्यते तानाह—तस्येत्यादि । सुख अनुकूलवेदनीयम् । दुःख प्रतिकूलवेदनीयम् । प्रयत्न. उद्योगः । उन्मेषनिमेषौ नेत्रयोः उन्मीलन निमीलनं च । अध्यवसायः बुद्धेर्व्यवसायः । विषयोपलब्धिः शब्दादीना स्वैःस्वैरेवेंद्रियैर्ग्रहणम् । ननु षोडशगुणा. कथिता. कथमत्र सप्तदशसंख्या गुणानामित्यत्र केचित्तु उन्मेषनिमेषावित्येकं पठति केचित्तु मनःसंकल्पो विचारणा चेति मनसः संकल्पो मनसः कल्पना इत्येकं पठंति मनसो गुणत्वाभावात् ॥

११ संकल्प ( कल्पना ), १२ विचारणा ( सोचना ), १३ स्मृति ( याद रखना ), १४ विज्ञान ( चातुर्य ), १५ अध्यवसाय (व्यवसाय ), १६ विषयोपलब्धि ( शब्द, स्पर्श आदिको ग्रहण करना ) ॥ २१ ॥

सात्त्विक राजस और तामस ( जीवोंके ) मनके गुण ।

सात्त्विकास्तु आनृशंस्यं संविभागरुचिता तितिक्षा सत्यं धर्म आस्तिक्यं ज्ञानं बुद्धिर्मेधा स्मृतिर्धृतिरनभिषंगश्च ॥२२॥ राजसास्तु दुःखबहुलताऽटनशीलताऽधृतिरहंकार आनृतिकत्वमकारुण्यं दम्भो मानो हर्षः कामः क्रोधश्च ॥२३॥ तामसास्तु विषादित्वं नास्तिक्यमधर्मशीलता बुद्धेर्निरोधोऽज्ञानं दुर्मेधस्त्वमकर्मशीलता निद्रालुत्वं च ॥ २४ ॥

सात्त्विक ( सत्त्वगुणप्रधान जीवोंके ) मनके ये गुण हैं-आनृशंस्य ( निर्दयता न होना ) और संविभागरुचिता ( औरोंको अवश्य देना चाहे आप पदार्थ ले या न ले ), तितिक्षा ( क्षमा ), सत्यता, धर्माचरण, आस्तिकता ( ईश्वरादिका आस्तित्व मानना), ज्ञान ( विचारशक्ति ), बुद्धि, मेधा (धारणाशक्ति ), स्मृति (याद रखना), धृति ( धैर्य ), अनभिषंग ( निरपेक्ष शुभ कर्म करना ) ॥ २२ ॥ राजस ( रजोगुणप्रधान जीवोंके ) मनके ये गुण हैं-विशेष दुःखी रहना, एक जगह स्थिरप्राय न होना अर्थात् फिरना, धैर्य न होना, अभिमान करना, झूठ बोलना, दया न रखना, पाखंड करना, मान ( मद या घमंड रखना ), हर्ष ( आनन्द बहुत मानना ), काम ( विशेष कामना राखना ), क्रोध ( चट गुस्सा होजाना ) ॥ २३ ॥ तामस ( तमोगुणप्रधान जीवोंके ) मनके ये गुण हैं-विषाद रखना, नास्तिकता ( ईश्वरादिमें विश्वास न करना ), अधर्मशील होना, बुद्धिकी रुकावट रहना, अज्ञान तथा दुर्मेधस्त्व ( धारणाशक्ति अच्छी न होना ), अकर्मशीलता ( कोई काम करनेको चित्त न चाहना अर्थात् आलस्य ) और निद्रा अधिक आना ॥ २४॥

पंचमहाभूतोंके गुण ।

आंतरिक्षास्तु शब्दः शब्देंद्रियं सर्वछिद्रसमूहो विविक्तता च । वायव्यास्तु स्पर्शः स्पर्शेंद्रियं सर्वचेष्टासमूहः सर्वशरीरस्पंदनं लघुता च । तैजसास्तु रूपं रूपेन्द्रियं वर्णः संतापो भ्राजि-

( गद्य २२ ) संविभागरुचिता संविभज्य भोक्तुमभिलाषुकता । ज्ञानं डल्हनमते तु आत्मज्ञानं वाचस्पत्ये तु बुद्धिपरिणामः केषाञ्चिन्मते विचारशक्तिश्चेति । बुद्धिर्बोधनम् । मेधा धारणाशक्तिः । अनभिषंगः फलनिरपेक्षया बुद्ध्या श्रेयस्कर्मकरणम् ॥ ( गद्य २३ ) अहंकारो गर्वः । मानो मदः ॥

ष्णुता पक्तिरमर्षस्तैक्ष्ण्यं शौर्य्यं च । आप्यास्तु रसः रसनेंद्रियं सर्वद्रवसमूहो गुरुता शैत्यं स्नेहो रेतश्च । पार्थिवास्तु गंधो गंधेंद्रियं सर्वमूर्तिसमूहो गुरुता चेति ॥ २५ ॥

आकाशतत्त्वके गुण ये हैं-शब्द और शब्देंद्रिय अर्थात् श्रोत्र तथा सम्पूर्ण छिद्र ( मुख, नासिका, कर्ण आदि ) तथा विविक्तता ( न्यारा न्यारा होना ) । वायुतत्त्वके गुण ये हैं-स्पर्श और स्पर्शेंद्रिय अर्थात् त्वचा और संपूर्ण चेष्टाओंका समूह ( हिलना, चलना आदि ) और सारे शरीरमें फैलाने ( सिकोडनेकी शक्ति ) तथा हलकापन । अग्नितत्त्वके गुण ये हैं-रूप ( देखना ) और रूपेंद्रिय अर्थात् चक्षु तथा वर्ण ( सौंदर्य ), संताप ( गरमाई ), भ्राजिष्णुता ( दीप्ति ), पक्ति ( आहारका पकना ), अमर्ष ( क्रोध ), तैक्ष्ण्य ( तेजी ) और शूरवीरता । जलतत्त्वके गुण ये हैं-रस और रसनेंद्रिय ( जिह्वा ) तथा संपूर्ण द्रवसमूह अर्थात् पतले पदार्थ और भारीपन, शीतलता, चिकनाई और वीर्य । पृथिवीतत्त्वके गुण ये हैं-गंध और गंधेंद्रिय ( घ्राण ) तथा संपूर्ण मूर्तिसमूह ( कठिन पदार्थ अस्थि आदि ) तथा गुरुता ( भारीपन ) ॥ २५ ॥

तत्र सत्त्वबहुलमाकाशम् । रजोबहुलो वायुः । सत्त्वरजोबहुलोऽग्निः । सत्त्वतमोबहुला आपः तमोबहुला पृथिवीति ॥ २६ ॥ श्लोकौ चात्र भवतः-

इनमेंसे सत्त्वगुणकी विशेषतावाला आकाशतत्त्व है । और रजोगुणकी विशेषतावाला वायु है । सत्त्वगुण और रजोगुण दोनोंकी विशेषतावाला अग्नि है । सत्त्वगुण और तमोगुण इन दोनों गुणोंकी विशेषतावाला जल है । और केवल तमोगुणकी विशेषतावाली पृथ्वी है ॥ २६ ॥ इस विषयमें दो श्लोक हैं-

अन्योन्यानुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ स्वे स्वे द्रव्ये तु सर्वेषां व्यक्तलक्षणमिष्यते ॥ २७ ॥ अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ता विकाराः षोडशैव तु ॥ क्षेत्रज्ञश्च समासेन स्वतंत्रपरतंत्रयोः ॥ २८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ये आकाशादि पांचो तत्त्व परस्पर संमिलित हैं अर्थात् एक दूसरेमें सब प्रविष्ट हो रहे हैं जैसे आकाशमें परमाणुरूपसे सब व्याप्त हैं और इसी प्रकार वायुमें परमाणुरूपसे सब व्याप्त है तथा अग्निमें भी परमाणुरूपसे सब रहते हैं इसी प्रकार जल और पृथ्वीमें भी सभी परमाणुरूपसे व्याप्त हैं परंतु प्रगट नहीं दीखते किंतु अपने अपने स्थूलरूपमें उनके प्रगट लक्षण जाने जाते हैं ॥ २७ ॥ अव्यक्त (मूल-

( गद्य २५ ) सर्वमूर्तिसमूहः दोषधातुमलेषु यः कश्चित् काठिन्यनिवहः । ( इति नि० म० ) ॥

प्रकृति या शून्य ), महत्तत्त्व, अहंकार तथा पंचतन्मात्रा ( १शब्दतन्मात्रा, २ स्पर्शतन्मात्रा, ३ रूपतन्मात्रा, ४ रसतन्मात्रा, ५ गंधतन्मात्रा ) ये आठ प्रकृति ( कारणरूप ) हैं। और श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण तथा वाणी, हाथ, पांव लिंग, गुदा और मन ये ग्यारह इंद्रिय और आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पांचों महाभूत ऐसे ये श्रोत्रादि सोलह १६ विकार कार्यरूप हैं। ये २४ तत्त्व और पचीसवां चैतन्यस्वरूप क्षेत्रज्ञ ( पुरुष ) स्वतंत्र ( आयुर्वेद ) और परतंत्र ( सांख्यादि ) में संक्षेपसे वर्णन किये हैं ॥ २८ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा०टी० शारीरस्थाने प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः ।

### अथातः शुक्रशोणितशुद्धिनाम शारीरं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब शुक्र और शोणितकी शुद्धि नामक शारीरककी व्याख्या करतेहैं॥

**वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपग्रंथिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषरेतसः प्रजोत्पादने न समर्था भवंति ॥ १ ॥**

जिनका वीर्य वायुसे, पित्तसे, कफसे, रक्तसे दूषित हो तथा कुणप ( जिसमें मुरदेके सी गंध हो ), जिसमें गाँठ हों, दुर्गंधयुक्त हो या राधके समान हो अथवा जिन पुरुषोंका मूत्र, विष्ठा, मल तथा वीर्य क्षीण होगया हो अथवा क्षीणवीर्य या वीर्यमें मूत्र, विष्ठा हो वे संतान उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होते ( अर्थात् निरोग और दीर्घायु संतान उत्पन्न नही कर सकते ) ॥ १ ॥

#### दूषितशुक्रलक्षण ।

**तेषु वातवर्णवेदनं वातेन । पित्तवर्णवेदनं पित्तेन । श्लेष्मवर्णवेदनं श्लेष्मणा । शोणितवर्णवेदनं कुणपगंध्यनल्पं रक्तेन । ग्रंथिभूतं श्लेष्मवाताभ्याम् । पूतिपूयनिभं पित्तश्लेष्मभ्याम् । क्षीणं प्रागुक्तं पित्तमारुताभ्याम् । मूत्रपुरीषगंधि सन्निपातेनेति ॥ २ ॥**

इनमेंसे जिसके शुक्रमें वायुके वर्ण ( लाल, कालापन ) हों और वायुकी वेदना ( तोदभेदादिक ) हो वह वायुसे दूषित शुक्र है। तथा पित्तके वर्ण ( पीत, नील )

---

( वाक्य० १ ) पूर्वाध्याये सर्वभूतचिंताशारीरे "शुक्रशोणितयोः सन्निपातेष्वभिव्यज्यन्ते क्षेत्रज्ञाः" इत्युक्तं तस्मादस्मिन्नध्याये चादौ शुक्रशोणितयोर्वर्णनं क्रियते । कुणप शवः । क्षीणमूत्रपुरीषरेतस इति– क्षीणानि मूत्रपुरीषरेतांसि येषां ते अथवा क्षीणरेतसः तथा मूत्रपुरीषौ रेतसि येषां ते मूत्रपुरीषावत्र गंधत्वेनैव॥

(वाक्य० २) वातवर्णवेदनामिति–वातवर्णाः अरुणकृष्णादयः । यद्यप्यव्यक्तस्य वायोः वर्णाः न भवंति तथापि वातदुष्टेऽरुणकृष्णवर्णौ भवतः । वातवेदनास्तोदभेदादयः । एवमेव पित्तादिषु ज्ञेयः ॥

और पित्तवेदना ( दाहादि ) हों तो पित्तसे दूषित । और कफका वर्ण ( शुक्ल ) और कफकी वेदना ( कंडू आदि ) हों तो कफसे दूषित जाने। और रुधिरका वर्ण ( लाल ) और रुधिरकी वेदना ( दाहादि ) और कुणपगंधि ( मुरदेकेसी गंध ) और अल्प न होना ये रुधिरदूषित शुक्रमें होतेहैं । और कफ, वायुसे शुक्रमें गांठें होजाती हैं । तथा दुर्गंधि और राधके तुल्य शुक्र पित्त,कफसे होता है । क्षीणशुक्रके लक्षण पहले सूत्रस्थानके पंद्रहवें अध्यायमें कह चुके हैं यह पित्त और वातसे होता है । तथा शुक्रमें मूत्रपुरीषता या मूत्रपुरीषगंधि सन्निपातसे होती है ॥ २ ॥

तेषु कुणपग्रंथिपूतिपूयक्षीणरेतसः कृच्छ्रसाध्याः । मूत्रपुरीषरेतसस्त्वसाध्याः । शेषाः साध्याश्चेति ॥ ३ ॥

इनमेंसे कुणप ( मुरदेकेसी गंधवाला ) और दुर्गंधित तथा राधसदृश और क्षीणवीर्यवाले पुरुष कष्टसाध्य होतेहैं और जिनके शुक्रमें मूत्र और विष्ठा हो वे असाध्य होते हैं और शेष साध्य हैं ॥ ३ ॥

आर्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैः पृथग्द्वंद्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवति। तदपि दोषवर्णवेदनाभिर्विज्ञेयम् । तेषु कुणपग्रंथिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यं साध्यमन्यद्भवति ॥ ४ ॥

भवंति चात्र–

यदि पुरुषके शुक्रकी भांति स्त्रियोंका आर्तवभी वायु, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंसे और चौथे रुधिर करके दूषित हो तथा न्यारे २ दोदो दोषोंसे तथा सन्निपातसे दूषित हो तो वहभी अबीज अर्थात् संतान उत्पन्न करने योग्य नहीं होता, इसेभी वातादि दोषोंके वर्ण और वेदना आदिसे जानलेना चाहिये ( अर्थात् जिस एक या कई दोषोंका वर्ण और वेदना हों उन्हींसे दूषित आर्तव जाने) उनमेंसे कुणप(मुरदे) के समान गंधवाला, गाँठोंसे युक्त, दुर्गंधित, राधसरीखा तथा क्षीण और मूत्र, पुरीष जैसा आर्तव असाध्य होताहै और शेष साध्य होते हैं ॥४॥ इस विषयमें श्लोक हैं–

दूषित शुक्र और शोणितकी शुद्धिका उपाय ।

तेष्वाद्यांञ्छुक्रदोषांस्त्रीन् स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् ॥ क्रियाविशेषैर्मतिमांस्तथा चोत्तरबस्तिभिः ॥ ५ ॥ पाययेत्तं नरं सर्पिर्भिषक् कुणपरेतसि ॥ धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनसाधितम् ॥ ६ ॥

---

( श्लो० ५ ) अत्रादिशब्देन रेचनवमनादीना ग्रहणम् ॥ ( श्लो० ६ ) धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनत्वचाकल्ककाथाभ्यां साधितं घृतं यथा–"कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव च ॥ चतुर्गुणे द्रवे साध्यं–

पाययेदथवा सर्पिः शालसारादिसाधितम् ॥ ग्रंथिभूते शठीसिद्धं पालाशे वापि भस्मनि ॥ ७ ॥ परूषकवटादिभ्यां पूयप्रख्ये तु साधितम् ॥ प्रागुक्तं वक्ष्यते यच्च तत्कार्यं क्षीणरेतसि ॥ ८ ॥ विट्प्रभे पाययेत्सिद्धं चित्रकोशीरहिंगुभिः ॥ ९ ॥

इन शुक्रदोषोंमेंसे आदिके तीन दोषोंको स्नेहपान, स्वेद और विरेचन, वमन तथा उत्तरवास्ति आदि क्रियाओंसे जीते अर्थात् वायुदूषित शुक्रमें स्नेहपान और स्वेद करावे। पित्तदूषितमें विरेचन तथा कफदूषितमें वमन करावे (यहां विरेचन और वमनका बोध आदि शब्दसे होताहै) ॥ ५ ॥ और शुक्रमें कुणप (मुरदेकेसी गंध) हो तो धायके फूल, खदिर, अनार और कुहेकी छालसे सिद्ध किया घृत पिलावे ॥ ६ ॥ अथवा शालसारादिसे सिद्ध किया घृत पिलावे और जो शुक्रमें गांठें पड़गई हों तो कचूरसे सिद्ध किया घृत पिलावे अथवा पलाशकी भस्मका सिद्ध घृत पिलावे (एक आढक पलाशकी भस्ममें छः आढक जल गेर औटावे जब चौथाई शेष रहे तब उतारे दृढ वस्त्रसे सातवार छाने फिर एक प्रस्थ घृत उस पलाशक्षारयुक्त जलमें मिलाकर अग्निपर चढावे जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार ले) ॥ ७ ॥ जिसका वीर्य राधके सदृश हो उसे परूषक (फालसे) और सूत्रस्थानोक्त वटादि गण (न्यग्रोधादिगण) में सिद्ध किया घृत पिलावे और जिसका वीर्य क्षीण हो उसे पूर्वोक्त स्वयोनिवर्द्धन द्रव्य तथा जो अगाडी वाजीकरण अधिकारमें कहेंगे वे उपाय करने चाहिये ॥ ८ ॥ और जिसके शुक्रमें विष्ठाकीसी गंध हो या विष्ठा हो तो चित्रक, खस और हींगसे सिद्ध किया हुआ घृत पिलावे (यद्यपि यह विट्प्रभ शुक्र असाध्य है तोभी कई इसे साध्य कहते हैं इससे उपर्युक्त औषध उचित है। और मूत्रगंधवाला या मूत्रयुक्त शुक्र तो सर्वथा असाध्यही है) ॥ ९ ॥

स्निग्धं वांतं विरिक्तं च निरूढमनुवासितम्।
योजयेच्छुक्रदोषार्तं सम्यगुत्तरबस्तिना ॥ १० ॥

---

—तस्य मात्रा पलोन्मिना ॥ १ ॥ निक्षिप्य क्वाथयेत्तोयं क्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ॥ पादशिष्टं गृहीत्वा तु स्नेहं तेनैव साधयेत् ॥ २ ॥ चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये कठिनेष्टगुणं जलम् ॥ मृद्वादिक्वाथ्यसंघाते दद्यादष्टगुणं पय. ॥ ३ ॥ अत्यंतकठिने द्रव्ये नीरं षोडशिकं मतम् ॥ कर्षादितः पल यावत् क्षिपेत्षोडशिकं जलम् ॥ ४ ॥ तदूर्ध्वं कुडवं यावत् भवेदष्टगुण पयः ॥ प्रस्थादितः क्षिपेन्नीर खारी यावच्चतुर्गुणम् ॥ ५ ॥ (इति भावमिश्रः) एव सर्वत्र ज्ञेयम् ॥

(श्लो० १०) उत्तरबस्तिना इति—उत्तरबस्त्यंत स्नेहादुत्तरबस्तिपर्यंत कृत्वा पश्चादौषधादिक योजयेदिति भावः ॥

शुक्रदोष युक्त मनुष्यको पहले यथोचित स्नेहपान कराके या वमन कराके या विरेचन कराके या निरूहण और अनुवासन वास्तिकर्म करके या सम्यक् रीतिसे उत्तरवस्ति करके पीछे अन्य औषधका उपयोग करे । ( स्नेहपान, वमन, विरेचन, निरूहण वस्ति, अनुवासन वस्ति और उत्तरवास्ति इन सबकी विधि विस्तारपूर्वक अन्यत्र देखना ) ॥ १० ॥

**विधिमुत्तरवस्त्यंतं कुर्यादार्तवशुद्धये ॥ स्त्रीणां स्नेहादियुक्तानां चतसृष्वार्तवार्तिषु ॥ ११ ॥ कुर्य्यात्कल्कान्पिचूंश्चापि पथ्यान्याचमनानि च ॥ ग्रंथिभूते पिबेत्पाठां त्र्यूषणं वृक्षकानि च ॥ १२ ॥ दुर्गन्धे पूयसंकाशे मज्जतुल्ये तथार्त्तवे ॥ पिबेद्भद्रश्रियः क्वाथं चंदनक्वाथमेव च ॥ १३ ॥ शुक्रदोषहराणां च यथास्वमवचारणम् ॥ दोषाणां शुद्धिकरणं शेषास्वप्यार्त्तवार्तिषु ॥ १४ ॥ अन्नं शालियवं मद्यं हितं मांसं च पित्तलम् ॥ १५ ॥**

स्त्रियोंके वातज, पित्तज, कफज और रक्तज इन चार प्रकारके आर्तवदोषोंमें स्नेहपान, वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन और उत्तरवस्ति पर्यंत क्रिया करे फिर आर्तवशुद्धिके लिये यथायोग्य कल्कोंका उपचार करे ॥११॥ तथा दोषोंके अनुसार औषधोंमें पिचु अर्थात् वस्त्र भिगोकर बत्ती बनाकर रक्खे या रूईका फोहा औषधोंमें भिगोकर रक्खे अथवा आचमन अर्थात् उचित द्रव्योंके क्वाथसे पिचकारी द्वारा या वैसेही योनि धोवे और यथायोग्य पथ्य करे । और जो आर्तवमें गांठें हों तो पाठा, त्र्यूषण ( सोंठ, मिरच, पीपल ), वृक्षक ( कुडा ) इनका क्वाथ पीवे ॥ १२ ॥ जो आर्तवमें दुर्गंध हो या राध जैसा तथा मज्जा तुल्य आर्तव हो तो भद्रश्रिय ( श्रीचंदन ) तथा चन्दन ( सुपेद चंदन ) का क्वाथ पीवे ( गयदासाचार्य यहां गोरोचनका ग्रहण करते हैं ) ॥ १३ ॥ इन ऊपर लिखे दोषोंके सिवाय आर्तवमें और दोष हों तो शुक्रदोष दूर करनेके लिये जो जो क्रिया लिखी हैं उन्हीका उपयोग करे ॥ १४ ॥ इसमें शालि ( चावल ) और जवका भोजन तथा हितकारक यथोचित मदिरा-पीना और पित्तकारक मांस भोजन करना पथ्य है ॥ १५ ॥

( श्लो० ११ ) स्नेहादियुक्तानां कृतस्नेहपानवमनविरेचनानाम् । चतसृष्वार्तवार्तिषु इति–वातपित्तश्लेष्मशोणितकृतार्तिषु ॥ ( श्लो० १२ ) कल्कान् योनिव्यापद्युक्तान् । पिचून् औषधयुक्तवर्तितूलादीन् आचमनं वातादिदोषहरद्रव्यकृतं योनिप्रक्षालनोदकम् । ( इति डल्हनः ) ॥ ( श्लो० १३ ) भद्रश्रियं श्रीचंदनं गयदासाचार्यस्तु भद्रश्रिय श्वेतचंदनं, चंदन गोशीर्षरक्तचंदनं पठति तस्य रक्तचंदनस्य गंधहरणशक्तेरभावात् ॥

### शुद्धशुक्रके लक्षण।

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च ॥
शुक्रमिच्छंति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा ॥ १६ ॥

जो वीर्य ( बिल्लोरके समान ) सुपेद हो, पतला, चिकना, मधुर ( मीठा ) हो तथा शहतकेसी सुगंधयुक्त हो तो उसे शुद्ध जानना। कई आचार्य तैल तथा शहतके समान वीर्य शुद्ध होता है ऐसा कहते हैं ॥ १६ ॥

### शुद्ध आर्तवके लक्षण।

शशासृक्प्रतिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम् ॥
तदार्तवं प्रशंसंति यद्वासो न विरंजयेत् ॥ १७ ॥

जो शश ( खरगोश ) के रुधिरके समान हो अथवा लाखके रंगके सदृश हो और जिसमें रंगाहुवा वस्त्र सूखकर धोनेसे सुपेद हो जाय अथवा जिसका भराहुवा वस्त्र बदरंगा ( पीला, काला आदि ) न हो किंतु सुरखही रहे तो वह आर्तव शुद्ध ( गर्भ धारणके योग्य ) कहाता है ॥ १७ ॥

### असृग्दर ( रक्तप्रदर )

तदेवातिप्रसंगेन प्रवृत्तमनृतावपि ॥ असृग्दरं विजानीयादतोऽन्यद्रक्तलक्षणात् ॥ १८ ॥ असृग्दरो भवेत्सर्वः सांगमर्दः सवेदनः ॥ तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा तमस्तृषा ॥ दाहः प्रलापः पांडुत्वं तंद्रारोगाश्च वातजाः ॥ १९ ॥

वह आर्तव अधिक प्रवृत्त हो और मासिक समयसे अन्यथा प्रवृत्त हो और उपर्युक्त शुद्ध आर्तवसे विपरीत वर्णवाला हो तो उसे असृग्दर ( रक्तप्रदर ) जानना चाहिये ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण असृग्दरोमें अंगमर्द ( अंग टूटनासा ) और वेदना होती है और रक्तके अधिक जारी होनेमें दुबलापन, भ्रम, मूर्च्छा, तम (अँधेरीसी आना) और प्यास विशेष लगना तथा दाह और प्रलाप ( बकवाद ) तथा पांडुत्व (पीलापन ) और तंद्रा ( घुमेर ) और वायुके रोग ( जैसे कमर दूखना आदि ) उपद्रव होते हैं ॥ १९ ॥

---

( श्लो० १६ ) तैलक्षौद्रनिभं शुद्धशुक्रमिति न वन्यतरेमतम् ( श्लो० १७ ) यद्वासो न विरजयेत् इति—यत् वस्त्रं रक्तवर्णादन्यथा विवर्णं न कुर्यात् अथवा आर्तवं वाससिथनं शुष्कमुदकप्रक्षालितं वासः न विरजयेत् रागोयर्त न कुर्यात् तत्प्रशस्त गर्भजननायेति शेष. ॥ ( श्लो० १९ ) तदेवेति—अतिप्रसंगेन अतिमैथुनेन अनृतावपि प्रवृत्तम्। अथवा अतिप्रसंगेन बाहुल्येन अनृतावपि प्रवृत्तम्। रक्तलक्षणात् शुद्धार्तवलक्षणादन्यत् तत् असृग्दरं विजानीयात् न तु रक्तपित्तम् ॥

असृग्दरका यत्न ।

तरुण्यां हितसेविन्यास्तदल्पोपद्रवं भिषक् ॥
रक्तपित्तविधानेन यथावत्समुपाचरेत् ॥ २० ॥

जो यह तरुण अवस्थावाली, हित पदार्थ सेवनवाली स्त्रीके हो और उसमें थोडे उपद्रव हों तो उसे वैद्य रक्तपित्तके विधानसे यथोचित उपचार करे ॥ २० ॥

नष्टार्तव ।

दोषैरावृतमार्गत्वादार्तवं नश्यति स्त्रियाः ॥ तत्र मत्स्यकुलत्थाम्ल-तिलमाषसुरा हिताः ॥ पाने मूत्रमुदश्विच्च दधि शुक्तं च भोजनम् ॥ २१ ॥

वातादि दोषों करके जब रजोधर्मका मार्ग रुक जाताहै तब स्त्रियोंका आर्तव नष्ट होजाताहै अर्थात् मासिक रजोधर्म नहीं आता ( दोपोंसे प्रयोजन यहां वायु और कफसे है क्योंकि पित्त और रक्तसे आर्तव नष्ट नहीं होताहै ) यदि आर्तव नष्ट होगया हो तो मछलीका मांस कुलथी, खट्टे पदार्थ, तिल, उडद तथा सुरा(मदिरा) सेवन करना हित है और गोमूत्र पान करना तथा उदश्वित्(दधिमें आधा जल मिला हुआ मट्ठा ) तथा दही और शुक्त ( सिरका ) ये खाने चाहिये ( डल्लन शुक्तका अर्थ चुक्र करतेहैं ) ॥ २१ ॥

क्षीणं प्रागीरितं रक्तं सलक्षणचिकित्सितम् ॥
तथात्रापि विधातव्यं विधानं नष्टरक्तवत् ॥ २२ ॥

रक्त क्षीण होनेके लक्षण और चिकित्सा पहले सूत्रस्थानके पन्द्रह १५वें अध्यायमें वर्णन करचुके हैं उसी प्रकार ( स्वयोनिवर्द्धन पदार्थोंसे ) यहांभी नष्ट रक्तकी विधिसे विधान करना चाहिये ॥ २२ ॥

एवमदुष्टशुक्रः शुद्धार्तवा च ऋतौ प्रथमदिवसात्प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नांजनाश्रुपातस्नानानुलेपनाभ्यंगनखच्छेदनप्रधावनहसनकथनातिशब्दश्रवणावलेखनानिलायासान्परिहरेत् ॥ २३ ॥

ऐसे उपर्युक्त शुद्ध शुक्रवाला पुरुष और शुद्ध आर्तववाली स्त्री ( होनेसे सुन्दर गर्भ होताहै ) स्त्रीको चाहिये कि रजस्वला होनेके पहलेही दिनसे आदिलेकर

---

( श्लो० २१ ) मूत्र गोमूत्रम् । उदश्वित् अर्द्धोदक तक्रम् । तथा चोक्तम् "तक्र पादजलं प्रोक्तं उदश्विदर्द्धवारिकम्" (इति भावमिश्रः ) शुक्तं यथा—"कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च । यत्र द्रव्येऽभिपूर्यन्ते तच्छुक्तमभिधीयते ॥" इत्युक्तश्चेक्षुविकारः सिरका इति लोके । डल्लनस्तु शुक्तं चुक्रमित्याह ॥

( गद्य २३ ) अवलेखनं कङ्कतिकादिना केशसमार्जनं विलेखनं वा ॥

( रजस्वलाकी अवधितक ) ब्रह्मचारिणी रहे और दिनमें सोना, अंजन लगाना, अश्रुपात करना ( रोना, स्नान करना, चन्दनादि लगाना या उबटन लगाना ), तैलाभ्यंग करना,नखून काटना,दौडके चलना, हँसना, बहुत बोलना, तीक्ष्ण शब्द सुनना, अवलेखन अर्थात् कंघीसे वालपट्टी बनाना या जमीन खुरेदना, तेज हवा खाना, परिश्रम करना इन सबको त्यागदे ॥ २३ ॥

**किं कारणम् । दिवास्वपंत्या स्वापशीलोऽजनादंधो रोदनाद्विकृतदृष्टिः स्नानानुलेपनाद्दुःखशीलस्तैलाभ्यंगात्कुष्ठी नखापकर्त्तनात्कुनखीप्रधावनाच्चंचलो हसनाच्छ्यावदंतौष्टतालुजिह्वः प्रलापी चातिकथनादतिशब्दश्रवणाद्बधिरोऽवलेखनात्खलतिर्मारुतायाससेवनादुन्मत्तो गर्भो भवतीत्येवमेतान्परिहरेत् ॥ २४ ॥**

उपर्युक्त पथ्याचरणका कारण क्या है कि यदि रजस्वला अवस्थाके तीन दिनोंमें दिनमें सोवे तो ( जो उसी ऋतुमें गर्भ रहे तो ) बालक स्वापशील ( बहुत सोने वाला ) पैदा हो, और कज्जल लगानेसे अंधा, रोनेसे नेत्रविकारवाला और स्नान तथा अनुलेपन करनेसे दुःखशील, तैलाभ्यंग करनेसे कुष्ठी, नखून कतरनेसे कुनखी ( खराब नखूनवाला ), दौडकर चलनेसे चंचल, हँसनेसे काले दांतोंवाला तथा काले होठ, तालु और जीभवाला हो, बहुत बोलनेसे प्रलापी ( बकवादी ), अतिशब्द सुननेसे बहिरा होता है तथा अवलेखन ( शिरके बालोंमें कंघी करने ) से गंजा और हवा अधिक खाने तथा कष्ट करनेसे मतवाला बालक पैदा होता है इससे इन कामोंको त्यागदे ॥ २४ ॥

**दर्भसंस्तरशायिनीं करतलशरावपर्णान्यतमभोजनीं हविष्यं त्र्यहं भर्त्तुः संरक्षेत् ॥ २५ ॥ ततः शुद्धस्नातां चतुर्थेऽहन्यहतवाससमलंकृतां कृतमंगलस्वस्तिवाचनां भर्तारं दर्शयेत् तत्कस्य हेतोः॥२६॥**

रजस्वला स्त्रीको तीन दिन कुशाकी सज्जापर सोना और हथेली या मिट्टीके बरतन या पत्तोंकी पातल इनमेंसे किसीमें रखकर हविष्यान्न ( जौ, चावल आदि ) अन्न खाना चाहिये और पुरुषसे बहुतही बचा रखना ( दर्शन तक भी नहीं करना

( गद्य २४ ) खलतिः खल्वाटः । मारुतायाससेवनादिति–मारुतसेवनात् आयाससेवनाद्वा अथवा मारुतस्यायाससेवनात् मत्तो भवति आयासः कष्टम् ॥ ( वाक्य २५ ) हविष्यं सघृतशाल्योदनादिक्षीरसस्कृतं यवान्नमित्येके ( इति डल्हनः ) भर्तुः संरक्षेदिति भर्तुदर्शनमात्रमपि न कारयेत् वैद्य इति शेषः ॥ ( वाक्य २६ ) चतुर्थेऽहनि शुद्धस्नातां भर्तारं दर्शयेदिति तत्कस्य हेतोः इत्यत्र तत् छंदःसंबोधने तेनाहो कस्य हेतोः ॥

चाहिये ॥ २५ ॥ फिर चौथे दिन शुद्ध स्नान कराके अहत (नवीन) वस्त्र पहना कर आभूषण धारण कराके मंगलपाठ स्वस्तिवाचन कराके वैद्य भर्ताका दर्शन करावे इसका कारण क्या है ( सो अगले श्लोकमें कहते है ) ॥ २६ ॥

पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमंगना ॥
तादृशं जनयेत्पुत्रं भर्तारं दर्शयेदतः ॥ २७ ॥

ऋतुसे शुद्ध स्नानकरके स्त्री जैसे पुरुषके पहले दर्शन करे उसके ( यदि उस ऋतुमें गर्भ रहे तो ) वैसाही ( उसकीही, आकृति ) का पुत्र उत्पन्न होता है इससे भर्ताके दर्शन कराने चाहिये और कई " भर्तारं दर्शयेदतः " इस पदकी जगह " ततः पश्येत्पति प्रियम् " ऐसा पाठ मानते हैं इसका अभिप्राय यह है कि पतिके दर्शन करे अथवा " प्रियम् " जैसी आकृति, रूप आदि संतानका चाहिये वैसेही देवरादि या देवमूर्ति या सुन्दर पुरुषके प्रथम दर्शन करने चाहिये ( यूरोप और अमेरिकाके विद्वान् भी इस बातको मानने लगे हैं और कईपर तजरुवा करनेसे सिद्ध पाया है कि दर्शनका प्रभाव अवश्य होता है इसपर अमेरिकाके एक डाक्टर साहिबने स्त्रीसमाजमें इसपर बडा गम्भीर व्याख्यान दिया था और उसे छपाकर भी प्रसिद्ध किया था जिसका हिंदी अनुवाद ( संतानके सुयोग्य करनेकी विधि ) इस नामसे बाबू काशिनाथ सिरसा निवासीने किया है ) ॥ २७ ॥

ततो विधानं पुत्रीयमुपाध्यायः समाचरेत् ॥
कर्मांते च क्रमं ह्येनमारभेतैं विचक्षणः ॥ २८ ॥

तब उपाध्याय ( पंडित ) पुत्रकी कामनाके अर्थ विधान ( पुत्रेष्टि यज्ञ ) करावे

---

( श्लो० २७ ) भर्तारं दर्शयेदत इत्यत्र भावमिश्रेण "ततः पश्येत् पति प्रियम्" इति पाठपरिवर्तन कृतम्॥

( श्लो० २८ ) तत उपाध्यायः पुत्रीयविधान समाचरेत् ( अनेन विधिना यथाह-गयी ) तत्राचार्यो ब्राह्मणप्रयुक्तोऽनुनहतश्वेतवस्त्रेण सवीनश्चार्पमे चर्मण्युपविष्टो राजन्यप्रयुक्तो वैय्यात्रे आनुडुहे वा वैश्यप्रयुक्तो रौरवे शूद्रप्रयुक्तो वास्ते वा चतुर्हस्तस्थंडिलमुपलिप्योल्लिख्य दर्भैरास्तीर्य वेणुयूपं दक्षिणेन ब्राह्मणे व्यवस्थाप्य शुक्लकुसुमगन्धवल्लिभिरभ्यर्च्याग्नि प्रणीय पालाशाभि समिद्भिरग्निमुपसमाधाय मंत्रोदकपूर्णपात्रमभरग्रे स्थापयित्वा पुत्रजन्मागमाज्य जुहुयान्महाव्याहृतिभिः । योषिच्च पुत्रार्थिनी सह भर्त्रा पश्चिमतोग्नेः ऋत्विजो दक्षिणतः समुपविशेत् । ततोऽस्या ब्राह्मणः प्रजापतिमुद्दिश्य यथाभिलषितं संपादनाय मनसा योनौ काम्यामिष्टि निर्वपेत् । 'अनयोर्विष्णुर्योनि कल्पयतु, त्वष्टा रूपाणि निर्विशतु' इति । ततः श्वेतस्थालीपाकमभिघार्य निर्जुहुयात् यथाम्नाय चोपमन्त्रितमुदपात्रमस्यै दद्यात् 'सर्वानुदकार्थां कुरुष्व' इति ततः समाप्ते कर्मणि पूर्वं दक्षिण पादमभिन्नती प्रदक्षिणमग्निमुपक्रमेत् । ततः परिक्रम्य ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयित्वा सह भर्त्रा आज्यशेष प्राश्नीयात् । पूर्वं पुमान् जघन्यं स्त्री नचोच्छिष्टमवशेषयेदिति । पुत्रीयविधानकर्मांते एवं क्रमं वक्ष्यमाणं आरभेत शूद्रे मंत्रवर्जित कारयेत् पुत्रीयविधानम् ( इति निबंधसंग्रहः ) ॥

और उस पुत्रेष्टि–यज्ञके पीछे इस ( वक्ष्यमाण ) क्रमका ( चतुर पुरुष ) आरम्भ करे ॥ २८ ॥

ततोऽपराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिःस्निग्धः सर्पिःक्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ सामादिभिर्विश्वास्य विकल्प्यैवं चतुर्थ्यां षष्ठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्यां चोपेयादिति पुत्रकामः ॥२९॥

पुत्रेष्टि यज्ञ करके अपराह्ण कालमें महिने भरसे ब्रह्मचारी रहा हुआ पुरुष शरीरमें घृतका मर्दन तथा घृत और दूधके संग शाली ( चावलों ) के भातका भोजन करके और महीने भरसे ब्रह्मचारिणी रही हुई तथा शरीरमें तैलका मर्दन करके तैल और माष ( उड़द ) प्रधान भोजन किया है जिसने ऐसी स्त्रीके समीप रात्रिमें गमन करे ( अर्थात् ऊपरके अनुसार पुरुष और स्त्री दोनों पथ्य करके प्रसंग करें ) और पुरुष प्रेमके वचनोंसे स्त्रीकी तसल्ली करके विचारके रजस्वला होनेके दिनसे चौथी, छठी, आठवीं, दशवीं और बारहवी रात्रिमें ( पुत्रकी इच्छावाला पुरुष स्त्रीसंग करे ॥ २९ ॥

( वक्तव्य ) पुरुष घृत मर्दन करे और घृतयुक्त आहार करे तथा स्त्री तैलमर्दन करे और तैलयुक्त आहार करे इसका अभिप्राय यह है कि वीर्यका पोषक सौम्यपदार्थ घृत है जो पुरुषको उपयोग करना चाहिये और रजकी पुष्टि करनेवाला आग्नेय पदार्थ तैल है जिससे स्त्रीका शोणित पुष्ट होता है और सम तथा विषम रात्रियोंका हेतु यह है कि, विषम रात्रियोंमें स्त्रीका आर्तव - बलिष्ठ होता है इससे कन्या होतीहै और समरात्रियोंमें सम होताहै तो पुरुषके वीर्यकी उत्कर्षतासे पुत्र होताहै।

एषूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च ॥
प्रजासौभाग्यमैश्वर्यं बलं च दिवसेषु वै ॥ ३० ॥

इन चौथे, छठे, आठवें आदि दिनोंमें उत्तरोत्तर आयु, आरोग्य, सौभाग्य, ऐश्वर्य तथा बल संतानमें होता है ऐसा जानना चाहिये ( अर्थात् रजस्वला होनेके दिनसे जितना जितना पीछे गर्भ धारण होगा उतनाही उतना अधिक आयु, आरोग्यता आदि संतानमें होगा ) ॥ ३० ॥

---

( गद्य २९ ) तत्र युग्मासु रात्रिष्वल्पीभवत्यार्तवमयुग्मासु आप्यायते तस्मात्तासु क्रमात्पुत्रस्य दुहितुश्च जन्म अत एव चानुपरतार्तवदर्शना पुत्रार्थी विषमेष्वहःसु नोपेयात् । यदि त्वाहारानुरोधादयुग्मासु शुक्रस्याधिकता युग्मासु च न्यूनता स्यात्ततः पुमान् स्त्र्याकृतिर्दुर्बलो हीनांगो वा जायते स्त्री च पुरुषाकृतिर्दुर्बला हीनांगी वा ( इति वृद्धवाग्भटः ) ॥

अतः परं पंचम्यां सप्तम्यां नवम्यामेकादश्यां च स्त्रीकामः । त्रयोदशीप्रभृतयो निंद्याः ॥ ३१ ॥

इसके सिवाय जिसकी वांछा पुत्रीकी हो वह पांचवी, सातवीं, नवी और ग्यारहवीं रात्रिमें गमन करे। और तेरहवीं रात्रिसे परे निंदित है (इनमें संग करना उचित नहीं) (कई ऐसाभी कहते हैं कि शुक्रकी अधिकतासे पुत्र हो और रजके आधिक्यसे पुत्री) ३१

तत्र प्रथमे दिवसे ऋतुमत्यां मैथुनगमनादनायुष्यं पुंसां भवति यश्च तत्राधीयते गर्भः स प्रसवमानो विमुच्यते। द्वितीयेऽप्येवं सूतिकागृहे वा । तृतीये प्येवमसंपूर्णांगोऽल्पायुर्वा भवति । चतुर्थे तु संपूर्णांगो दीर्घायुश्च भवति ॥ ३२ ॥

स्त्री जिस दिन रजस्वला हो उसी ( प्रथम ) दिन रजस्वला स्त्रीसे मैथुन करनेमें पुरुषोंकी आयुका नाश होता है और यदि उस दिन गर्भ रहजावे तो जन्मतेही बालक प्राण छोड़ देता है । दूसरे दिन भी रजस्वलाके संग मैथुन करनेसे पूर्वोक्त हानि ( भर्ताकी आयुका नाश और जन्मतेही शिशुका मरण) हो अथवा सूतिकागृहमें ( दशही दिनके भीतर ) ही बालक मरजावे । तीसरे दिन रजस्वलाके साथ गमन करनेसे भी पूर्वोक्त हानि होती है तथा अधूरे अंगका और अल्पायु बालक होताहै । चौथे दिन गमन करनेसे पूर्ण अंगोंवाला और दीर्घ आयु बालक उत्पन्न होताहै ॥ ३२ ॥

( वक्तव्य ) रजस्वलागमनमें भर्ताकी आयुका क्षय और संतानकी स्वल्पायुके सिवाय पतिको अनेक दारुण रोग भी होते हैं जैसे उपदंश ( देखो निदानस्थानके १२ वें अध्यायमें उपदंशका कारण ) और रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्रादि । इसीलिये रजस्वलाके लिये धर्मशास्त्रमें यों लिखा है कि " प्रथमेहनि चांडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी पुंसां यथा वर्ज्या तथांगना ॥"

न च प्रवर्तमाने रक्ते बीजं प्रविष्टं गुणकरं भवति यथा नद्यां प्रतिस्रोतः प्लाविद्रव्यं प्रक्षिप्तं प्रतिनिवर्तते नोर्द्ध्वं गच्छति तद्वदेव द्रष्टव्यं तस्मान्नियमवतीं त्रिरात्रं परिहरेत् । अतः परं मासादुपेयात् ३३

---

( वाक्य ३१ ) एकादशीत्रयोदश्योस्तु नपुंसकं स्यात् । शुक्रस्य बाहुल्यात् पुमान् आर्तवस्य बाहुल्यात्स्त्री तयोः साम्येन नपुंसकमिति ( वृ० वा० ) ॥ ( गद्य ३२ ) दिवसकथनादहोरात्रग्रहणम् । मैथुनगमनात् मैथुनार्थं गमनात् मैथुनकरणादिति यावत् । विमुच्यते इति–प्राणैर्विमुच्यते, प्राणैरिति शेषः ॥ (गद्य ३३) प्लाविद्रव्यं प्रतरणशीलं प्रतिनिवर्तते व्यावृटति (इति डल्लनः)। मासादुपेयात् मासात् अत्र–

रजस्वलासमयमें रक्तका प्रवाह होताही है और रक्तके प्रवृत्त होनेमें प्रविष्ट हुआ बीज ( वीर्य ) गुणकारक ( शुद्धगर्भस्थितिकारक ) नहीं होता जैसे नदीके बहते-हुए जलमें पडा हुआ द्रव्य वहजाता है तथा व्याघुटित होजाता है ऊपरको नहीं आता ( ऊगकर उसका अंकुर ऊपरको नहीं आता ) इसी तरह रजस्वलामें भी जानना चाहिये इस कारणसे नियमित तीन रात्रियोंमें रजस्वलाको त्याग दे, इसके पीछे १ मास तक यथोचित रात्रियोंमें गमन करे ॥ ३३ ॥

### लब्धगर्भाका कृत्य ।

**लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसु लक्ष्मणावटशुंगासहदेवाविश्वदेवानामन्यतमं क्षीरेणाभिषुत्य त्रींश्चतुरो वा बिंदून् दद्याद्दक्षिणे नासापुटे पुत्रकामायै न च तान्निष्ठीवेत् ॥ ३४ ॥**

जब स्त्रीके गर्भ रहजावे तब इन दिनोंमें ( तीन मास पहले ) लक्ष्मणा और बडकी कोंपल,सहदेवा (पीले फूलकी कंघी) और विश्वदेवा(गंगेरण)इनमेंसे किसीको ( बछडेवाली ) गौके दूधमें घिसकर पुत्र चाहनेवाली स्त्रीकी नासिकाके दहिने नथनेमें तीन या चार बूंदें डाले और उन्हें थूकने न दे ( अर्थात् स्त्रीसे कहदे कि थूकना नहीं )॥ ३४ ॥

### गर्भके चार हेतु ।

**ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्यात् गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः ॥ ऋतुक्षेत्रांबुबीजानां सामर्थ्यादंकुरो यथा ॥ ३५ ॥ एवं जाता रूपवंतो महासत्त्वाश्चिरायुषः ॥ भवंत्यृणस्य मोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणे हिताः ३६॥**

—ऊर्ध्वमिति शेषः । अर्वाग्गमनन्तु गर्भद्वारविघट्टनेन स्थितमपि गर्भं च्यावयति इति । गर्भधारणकालतः परं मासादूर्ध्वमुपेयादित्यर्थः । धृतगर्भाया तु मासादूर्ध्वमपि न गतव्यम् । यदि तस्मिन्मासे गर्भस्थापन न भवेत्तदा मासादूर्ध्वे द्वितीये ऋतौ गतव्यमिति भावार्थः । केचिदित्याहुः अतःपर दिनत्रयादूर्ध्वं मासात् मासपर्यंतं गच्छेत् उचितासु रात्रिषु इति ॥

( गद्य ३४ ) लब्धगर्भाया एतेषु अहःसु स्थितगर्भाया मासत्रयाल्पांतरे पुत्रापत्यजननार्थं लक्ष्मणादिनस्यदानम् ।अत्र चकारात् अलब्धगर्भास्तु सर्वथैव लक्ष्मणादिकाना नस्य देयमित्यर्थः।"लक्ष्मणाया लक्षणम्" यथा—"पुत्रकारकरक्ताल्पबिंदुभिर्लांछिता यदा । लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगधाकृतिर्भवेत् ॥" इति । विधिः शरत्काले पुष्पफलोपेतां दृष्ट्वा शनिदिने संध्याया तस्याश्चतुर्भागेषु खदिरकीलकान्निखायापरेद्युर्दि मूलपुष्ययोगं गते रविवारे मन्त्रवद्गृहीत्वा समानवर्णवत्साया गोः क्षीरेण यथाविधि नस्यं दद्यात् ( इति डल्हनः ) । वटशुंगा वटप्ररोहः । सहदेवा बलाभेदः । पीतपुष्पा कगहीं इति लोके । विश्वदेवा गागेरुकी एतदौषध सहस्राभिहुत कृत्वा मागल्यदेशे गोक्षीरेण पेपयित्वा त्रीन् बिंदून् अलब्धगर्भाया दक्षिणे नासापुटे दद्यात् कंठप्राप्तान् न निष्ठीवेत सा पंचादिनादि पयसौदनमश्नीयात् तदूर्ध्वं ग्राम्यधर्मसेवनम् ( नि० सं० ) ॥

निश्चय चार पदार्थोंके संयोगसे विधिपूर्वक गर्भ होता है । जैसे ऋतु ( फसल ) और क्षेत्र ( दोषरहित संस्कृत पृथ्वी ) और जल (जितना और जैसा चाहिये) तथा बीज ( निर्दोष बीज ) इन चारों सामग्रियोंके मिलनेसे जैसे अंकुर उत्पन्न होजाता-है वैसेही ऋतु ( गर्भका समय अर्थात् तरुण स्त्रीके रजस्वला होनेके दिनसे १६ दिनतक ) और शुद्ध गर्भाशय तथा माताके भोजनका यथोचित रस और बीज ( शुद्ध शुक्र ) इनके संयोगसे गर्भ होता है ॥ ३५ ॥ ऐसे ( यथायोग्य ) चारों पदार्थोंके संयोगसे रूपवान् गम्भीर सत्त्ववाले दीर्घायु माता पिताके ऋणके छुडाने-वाले सत्पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ३६ ॥

### शरीरके वर्णका कारण ।

**तत्र तेजोधातुः सर्ववर्णानां प्रभवः स यदा गर्भोत्पत्तावब्धातुप्रायो भवति तदा गर्भं गौरं करोति । पृथिवीधातुप्रायः कृष्णम् । पृथिव्याकाशप्रायः कृष्णश्यामम् । तोयाकाशधातुप्रायो गौरश्यामम् ॥ ३७ ॥ यादृग्वर्णमाहारमुपसेवते गर्भिणी तादृग्वर्णप्रसवो भवत्येके भाषंते ॥ ३८ ॥**

तेज ( अग्नि ) धातु ही गौरादि सम्पूर्ण वर्णोंका उत्पन्न करनेवाला है वह (शारीरक अथवा आर्तव अग्नि ) यदि गर्भोत्पत्तिके समय जल धातुप्राय ( अर्थात् जलके अधिकांश युक्त ) हो तो गौरवर्ण सन्तान उत्पन्न करता है । और यदि वह तेज धातु पृथ्वी धातुप्राय ( पृथ्वीके अधिकांशयुक्त ) हो तो गर्भस्थ बालकका वर्ण काला कर देता है । और यदि पृथ्वी और आकाशके अधिकांश युक्त हो तो कृष्ण-श्याम ( कालापन लिये सांवला रंग ) करता है और जो जल और आकाशके अधिकांश हो तो गौर-श्याम ( गोरापन लिये हुए सांवला रंग ) करता है ॥ ३७ ॥ कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि गर्भिणी जैसे वर्णका आहार सेवन करे वैसेही वर्ण ( रंग ) की सन्तान होती है ॥ ३८ ॥

( वक्तव्य ) वायुधातुप्राय हो तो उसका वर्ण कैसा हो यह क्यों नहीं लिखा इसका उत्तर यह है कि जब गर्भस्थितिके समय तेज धातु वायुप्राय होता है तब वायु चलनात्मक होनेसे गर्भ स्थितही नहीं होता तो फिर उसका वर्ण क्या लिखें ॥

( गद्य ३७ ) वर्णविषये वृद्धवाग्भट इत्याह-"शुक्रे शुक्ले घृतमंडाभे वा गर्भस्य गौरत्वम् । तैलाभे कृष्णत्व मध्वाभे श्यामत्वचस्तथा ॥ क्षीरादिमधुराहारोपयोगान्मातुरुदकविहाराच्च गौरता । तिलान्नविदाहिनां कृष्णता व्यामिश्राणा श्यामता च ॥" इति ॥

## नेत्रोंका वर्ण ।

**तत्र दृष्टिभागमप्रतिपन्नं तेजो जात्यंधं करोति तदेव रक्तानुगं रक्ताक्षं पित्तानुगं पिंगाक्षं श्लेष्मानुगं शुक्लाक्षं वातानुगं विकृताक्षमिति ॥ ३९ ॥**

गर्भगत बालकके दृष्टिभागमें यदि तेज धातु पहुँचेही नहीं तो बालक जन्मांध होता है और यदि रुधिरके अनुगत ( संग ) होकर दृष्टिभागमें जाता है तो लाल नेत्रवाला ( जिसमें सुरखी अधिक हो ) बालक होता है और पित्तके अनुगत होकर पहुँचे तो पीले नेत्रवाला हो और कफके अनुगत होकर पहुँचे तो सुपेद नेत्रवाला हो और वायुके अनुगत पहुँचे तो विकृताक्ष ( चंचलाक्ष या नेत्रविकारवाला ) होता है ( गर्भके चतुर्थमासमें दृष्टिकी उत्पत्ति होती है इससे चतुर्थ मासमें रूपेंद्रिय ( दृष्टि ) का हेतु तेजतत्त्व जिस प्रकार दृष्टिभागमें प्राप्त होता है, वैसेही नेत्र होते हैं ) ॥ ३९ ॥

**घृतपिंडो यथैवाग्निमाश्रितः प्रविलीयते ॥**
**विसर्पत्यार्तवं नार्यास्तथा पुंसां समागमे ॥ ४० ॥**

जैसे अग्निके आश्रित होनेसे ( आगपर या आगके पास रखनेसे ) घृतका जमा हुआ पिंड घुल जाता है वैसेही पुरुषोंके समागम होनेसे स्त्रियोंका आर्तव शोणित भी चलायमान होता है अर्थात् गर्भाशयमें प्राप्त होकर शुक्रसे मिलकर गर्भका कारण होता है ॥ ४० ॥

( वक्तव्य ) स्त्रियोंके मैथुन समय श्वेत वीर्यरूप द्रव पदार्थ भी द्रवता है परंतु वह शुक्रसे मिलकर गर्भका हेतु नहीं होता इसपर वृद्धवाग्भटका यह श्लोक है- " योषितोपि स्रवंत्येव शुक्रं पुंसां समागमे । तत्र गर्भस्य किंचित्तु करोतीति न चिंत्यते " ॥

**बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ ॥**
**यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ ॥ ४१ ॥**

गर्भाशयमें प्राप्त हुआ वीर्य जब भीतरके वायुसे भिन्न ( दो भागोंमें विभक्त ) हो जाता है तब दो जीव ( बालक ) कुक्षिमें आजाते हैं ( और उत्पन्न होते हैं )

---

( वाक्य ३९ ) चतुर्थे मासि कस्यचित् पूर्वकर्मवशात् दृष्टिभागं चक्षुरिंद्रियाधिष्ठानम् अप्रतिपन्नम् अन्यात्तं तेजो जात्यंध करोति ( नि० सं० ) ( श्लो० ४० ) पुंसां समागमे नार्या आर्तवं विसर्पतीति स्वाभाविको धर्मः यथा घृतस्याग्नेः संयोगात् द्रवत्वमिति ॥ ( श्लो० ४१ ) शुक्रार्तवेऽनिलेन खंडशो भिन्ने यथाविभागमपत्यानामुत्पत्तिः ( इति वृद्धवाग्भटः ) ॥

उन्हें यम वा यमल अर्थात् जोड़ला कहते हैं और वे धर्मेतर अर्थात् अधर्मपूर्वक होते हैं ( यदि तीन या अधिक चार भागोंमें शुक्र विभक्त हो तो कदाचित् तीन या चार गर्भभी इकट्ठे हो सकते हैं परन्तु पूर्णावकाशके अभावसे वे जीते नहीं रह सकते ) ॥ ४१ ॥

### आसेक्यादिकी उत्पत्ति ।

**पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ॥ स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ ४२ ॥ यः पूतियोनौ जायेत स सौगंधिकसंज्ञितः ॥ स योनिशेफसोर्गंधमाघ्राय लभते बलम् ॥ ४३॥ स्वे गुदेऽब्रह्मचर्याद्यस्त्रीषु पुंवत्प्रवर्तते ॥ कुंभीकः स च विज्ञेयः ईर्ष्यकं शृणु चापरम् ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्तते ॥ ईर्ष्यकः स च विज्ञेयः षण्ढकं शृणु पंचमम् ॥ ४५ ॥ यो भार्यायामृतौ मोहादंगनेव प्रवर्तते ॥ तस्य स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्ढसंज्ञितः ॥ ४६ ॥ ऋतौ पुरुषवद्वापि प्रवर्तेतांगना यदि ॥ तस्य कन्या यदि भवेत् सा भवेन्नरचेष्टिता ॥ ४७ ॥**

पिताका बहुतही अल्पवीर्य हो तो उससे आसेक्य संज्ञक ( अत्यल्पवीर्य ) पुरुष उत्पन्न होता है वह अन्यके शुक्रको पीनेसे निःसन्देह ध्वजोच्छ्राय ( मढ़की उत्थिति ) को प्राप्त होता है । कई शुक्रसे यहां गन्धमार्जारवीर्य जो सुगंधित द्रव्य है उसके खानेसे पुरुषार्थी हो जाता है ऐसा समझते हैं और वास्तवमेंभी गन्धमार्जारवीर्य वीर्यका करनेवाला है । बहुतसे लोग "अंबर" नामक सुगंध द्रव्यको गंधमार्जारवीर्य मानते हैं और यथार्थमें अंबर अति पुरुषार्थ, देनेवाला है भी ॥ ४२ ॥ जो दुर्गंधितयोनिसे उत्पन्न होता है उसे सौगंधिकसंज्ञक (क्लीव ) कहते हैं यह योनि और मढ़की बास सूंघनेसे पुरुषार्थी होता है ( स्त्रीके योग्य होता है अर्थात् सूंघकर चैतन्यता होती है ) ॥ ४३ ॥ जो पुरुष अब्रह्मचर्यसे निज गुदामैथुन कराने पर स्त्रियोंके संग मैथुनमें प्रवृत्त होता है उसे "कुंभीक" कहते हैं वह माताकी विपरीत रति और पिताकी वीर्यकी दुर्बलतासे होता है ॥ ४४ ॥ जो औरोंको मैथुन करते देखकर मैथुन करने योग्य होता है उसे ईर्ष्यक कहते हैं ( यह गर्भोत्पत्तिके समय ईर्षायुक्त स्त्री-पुरुषोंके संगसे होता है ) ॥ ४५ ॥ जो ऋतुके समय मोहवश स्त्रीके नीचे हो विपरीत रति करे उसके स्त्रीकेसी चेष्टावाला ( जनानियां जनखा ) पुत्र होता है उसे षण्ढ कहते हैं ॥ ४६ ॥ और जो ऋतुके समय बलवती

स्त्री पुरुषके तुल्य उपरिगामिनी हो जावे तो उसके पुरुषके ( आकार दाढी, मूछों-युक्त और पुरुषकेसी ) चेष्टावाली कन्या उत्पन्न होती है ॥ ४७ ॥

**आसेक्यश्च सुगंधी च कुंभीकश्चेर्ष्यकस्तथा ॥ सरेतसस्त्वमी ज्ञेया अशुक्रः षंढसंज्ञितः ॥ ४८ ॥ अनया विप्रकृत्या तु तेषां शुक्रवहाः शिराः ॥ हर्षात्स्फुटत्वमायांति ध्वजोच्छ्रायस्ततो भवेत् ॥ ४९ ॥**

आसेक्य, सौगंधिक, कुंभीक तथा ईर्ष्यक ये तो वीर्य युक्त होते हैं परन्तु षण्ढ संज्ञित ( जनखे ) वीर्य रहित होते हैं ॥ ४८ ॥ इन आसेक्यादि चारोंमें वीर्य कुछ होता है तो भी इन इन विक्रियाओं ( वीर्यप्राशन, लिंग और भगका आघ्राण, गुद-मैथुन और परमैथुन देखना आदि ) से उनकी शुक्रवहा शिरा हर्षके कारण जब स्फुटताको प्राप्त होतीहैं ( फूलतीहैं ) तब लिंगेंद्रियमें चैतन्यता होती है यही नपुं-सकताहै ॥ ४९ ॥

**आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ ॥ स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोपि तादृशः ॥ ५० ॥ यदा नार्य्यावुपेयातां वृषस्यंत्यौ कथंचन ॥ मुंचंत्यौ शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र जायते ॥ ५१ ॥**

जैसे जैसे आहार और विहार तथा चेष्टाओंसे युक्त स्त्रीपुरुष संगम करे वैसेही वैसे गुणोंवाला बालक उत्पन्न होताहै ॥ ५० ॥ यदि कदाचित् रतिकी इच्छा युक्त दो स्त्री आपसमें मैथुनकासा आचरण करें और परस्पर वीर्यपात करें ( यदि उनमेंसे एकका श्वेत वीर्य और दूसरीका शोणित मिलकर किसी एक गर्भाशयमें प्रविष्ट होजाय तो ) उनसे अनस्थि अर्थात् विना हड्डीका गर्भ होजाता है ( यह गर्भ पैतृक अस्थि और वीर्यादिसे शून्य होनेके कारण सजीव नहीं होसकता । डल्लनके मतमें अनस्थिका अर्थ कोमल हड्डीवाला होताहै ) ॥ ५१ ॥

**ऋतुस्नातां तु या नारी स्वप्ने मैथुनमाचरेत् ॥ आर्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति च ॥ ५२ ॥ मासि मासि विवर्द्धेत गर्भि-ण्या गर्भलक्षणम् ॥ कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः ॥ ५३ ॥ सर्पवृश्चिककूष्मांडविकृताकृतयश्च ये ॥ गर्भास्त्वेते स्त्रियाश्चैव ज्ञेयाः पापकृता भृशम् ॥ ५४ ॥**

---

( श्लो० ५१ ) यदा द्वे नार्य्यावेव वृषस्यत्यौ सुरतार्थिन्यौ उपेयातां परस्पर योनिसंघर्षण कुर्य्यातां तदा अनस्थिर्जायते इति—अस्थिरहितो गर्भः पिंडाकारो जायते इति। अस्थ्नः पितृजत्वात्। अत्र तदभावादनस्थि-श्चैव जायते इति सौम्योर्थः। डल्लनस्तु अनस्थिरित्यत्र ईषदर्थे नञ् तेन कोमलास्थिः इति, तन्न पैतृकांशाभावात् ॥

रजस्वला स्त्री शुद्ध स्नान करके यदि स्वप्नमें मैथुन करे तो वायु उसके आर्तव शोणितको ग्रहण करके कूखमें गर्भसा कर देताहै ॥ ५२ ॥ वह गर्भिणीके गर्भमें गर्भकेसे चिह्नोंसे युक्त प्रति मासमें वृद्धिको प्राप्त होता है और फिर पिताके गुणों ( अस्थिकेशादि ) से रहित कलल ( पिंडासा ) उत्पन्न होता है ॥५३॥ इनके सिवाय किसी २ स्त्रीके सर्पके आकार, किसीके विच्छूके आकार, किसीके कुम्हडेके आकार ( पिंडासा ), किसीके विकृत आकृतिवाले ( शिरहीन, दो शिरवाले, न्यूनाधिक अंगवाले) गर्भ उत्पन्न होते हैं वे स्त्रीके पाप (दुराचरण)के करनेसे प्रायः होतेहैं॥५४॥

गर्भो वातप्रकोपेण दौहृदे चावमानिते ॥ भवेत्कुब्जः कुणिः पंगुर्मूको मिन्मिन एव च ॥ ५५ ॥ मातापित्रोस्तु नास्तिक्यादशुभैश्च पुराकृतैः ॥ वातादीनां च कोपेन गर्भो विकृतिमाप्नुयात्॥५६॥

वायुके कोपसे तथा दौहृदके न मिलनेसे गर्भ ( गर्भगतबालक ) कुबडा, पंगुवा, कुणि ( लूला अर्थात् हाथोंमें विकारवाला ), गूँगा तथा मिन्मिना होजाताहै ॥५५॥ माता पिताके नास्तिकत्व ( शास्त्रोक्त शुभाचरणपर श्रद्धा नहीं रखकर दुराचरण करनेसे ) अथवा पूर्वकृत अशुभ कर्मोंसे तथा वातादिकके कोपसे गर्भगत बालक विकृति ( अगभंगता ) को प्राप्त होता है ) ॥ ५६ ॥

गर्भमें बालकके मलमूत्रादि न करने और न रोनेका हेतु ।

मलाल्पत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाशयस्य च ॥ वातमूत्रपुरीषाणि न गर्भस्थः करोति हि ॥ ५७ ॥ जरायुणा मुखे छन्ने कंठे च कफवेष्टिते ॥ वायोर्मार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदिति ॥ ५८ ॥

मलके अति अल्प होनेसे तथा पक्वाशयके वायुका योग ( अतियोग ) न होनेसे गर्भस्थ बालक अधोवायु और मल मूत्र नहीं करता ॥ ५७ ॥ जरायु ( झिल्ली ) से मुँह ढका हुआ रहनेसे और कंठ कफाच्छादित होनेसे, वायुका अधिक आने जानेका मार्ग रुका होनेसे गर्भस्थ बालक नहीं रोसकता ॥ ५८ ॥

बालक गर्भमें श्वासादि कैसे लेता है ।

निश्वासोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नान्गर्भोऽधिगच्छति ॥
मातुर्निश्वसितोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नसंभवान् ॥ ५९ ॥

( श्लो० ५५ ) कुणिः विकृतपाणिः ॥ ( श्लो० ५६ ) नास्तिक्यमिति—न अस्ति परलोक इत्यादि-मतिर्येषां ते नास्तिकाः तेषां भावो नास्तिक्यम् ( इति डल्लनः ) । वाचस्पत्ये तु शास्त्रोक्तेषु फलवत्कर्मसु अश्रद्धाबुद्धिर्नास्तिक्यमिति ॥ ( श्लो० ५७ ) अयोगात् अल्पयोगात् अत्र नञ् ईषदर्थे ॥ ( श्लो० ५८ ) वायोर्मार्गनिरोधात् इति—रोदनजनकस्य वायोर्मार्गनिरोधात् इत्यर्थः. किंतु निश्वासादिकरस्य वायोस्तु निःसरणमार्गं बध्यति यतस्तदभावे जीविताभाव एव भवति गर्भस्य ( इति डल्लनः ) ॥

गर्भमें बालक श्वासलेना और बाहरको श्वास छोडना तथा चलना फिरना और सोना इन सब कार्योंको माताके श्वास लेने और छोडने तथा चलने फिरने और सोने आदिके अन्तर्भावसे करताहै ( अर्थात् जो शरीरोपयोगी आहार विहार तथा चेष्टा आदि माता करतीहै गर्भ भी उनको प्राप्त करता है ) ॥५९॥

सन्निवेशः शरीराणां दंतानां पतनोद्भवौ ॥
तलेष्वसंभवो यश्च रोम्णामेतत्स्वभावतः ॥ ६० ॥

शरीरोंका सन्निवेश अर्थात् अंग और प्रत्यंगोंकी रचना और दांतोंका टूटना और निकलना, हाथोंकी हथेली और पावोंके तलवोंमें रोमों ( बालों ) का न होना, यह सब स्वभावहीसे होजाताहै ॥६०॥

भाविताः पूर्वदेहेषु सततं शास्त्रबुद्धयः ॥ भवंति सत्त्वभूयिष्ठाः पूर्वजातिस्मरा नराः ॥ ६१ ॥ कर्मणा चोदितो येन तदाप्नोति पुनर्भवे ॥ अभ्यस्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान् ॥ ६२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

जिन्होंने पूर्व जन्ममें निरंतर शास्त्रचिंतनम बुद्धिभावित रक्खीहै वे मनुष्य सत्त्वगुण प्रधान होतेहैं और पूर्वजन्मकी स्मृतिवाले होतेहैं अर्थात् पूर्वाभ्यस्त विद्यादि उन्हें शीघ्रही थोडेसे पढाने मात्रसे आजाती है ॥ ६१ ॥ जैसे कर्म करके मनुष्य प्रेरण किया जाताहै ( अर्थात् जैसे शुभाशुभ कर्म मनुष्य करताहै उसीके अनुसार दूसरे जन्ममें प्राप्त होता है) और जो पूर्वजन्ममें अभ्यास किये हुए गुण होते हैं उन्हींको दूसरे जन्ममें धारण करता है ॥ ६२ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० शारीरस्थाने द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

---

## तृतीयोऽध्यायः ३.

अथातो गर्भावक्रांतिशारीरं व्याख्यास्यामः ॥

यहांसे अगाडी अब हम गर्भावक्रांति अर्थात् गर्भका गर्भाशयमें आना इस विषयके शारीरकका व्याख्यान करतेहैं ॥

सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयमितरेषामप्यत्र भूतानां सांनिध्यमस्त्यणुना विशेषेण परस्परोपकारात्परस्परानुग्रहात्परस्परानुप्रवेशाच्च॥१॥

---

( वाक्य१ ) गर्भावक्रांतिः गर्भावक्रमणम् उपगमनमवतरणमिति यावत्। इतरेषां पृथिवीवाय्वाकाशाना भूतानामणुना विशेषेण च सानिध्यमस्ति कुतः परस्परोपकारात् । भूजलानलानिलाकाशाना धारणसंहनन-परिणामव्यूहावकाशदानैरुपकारस्तस्मात् ॥

गर्भोत्पत्तिमें वीर्य सौम्य और आर्तव आग्नेय है ( क्योंकि अग्निसोमात्मक जगत् है ) और इनके सिवाय अन्य महाभूतों ( पृथ्वी, वायु और आकाश इन )का भी थोडा वहुत सांनिध्य है क्योंकि ये सव आपसमें उपकारक हैं तथा दूसरेका अनुग्रह करतेहैं इससे तथा सव आपस ( एकदूसरे ) में परमाणुरूपसे प्रविष्ट हैं इसकारण गर्भोत्पत्तिमें अग्नि और सोम तो मुख्य ( प्रधान ) हैं और शेप अणुरूपसे व्याप्त और संमिलित होतेहैं ॥ १ ॥

**तत्र स्त्रीपुंसयोः संयोगे तेजः शरीराद्वायुरुदीरयति ततस्तेजोनिलसन्निपातात् शुक्रं च्युतं योनिमभिप्रतिपद्यते संसृज्यते चार्तवेन ततोऽग्निसोमसंयोगात् सृज्यमानो गर्भो गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते २॥**

तहां स्त्री और पुरुषका संयोग होनेपर जो गरमाई उत्पन्न होती है वह शरीरमें वायुको उत्कट करती है फिर उस गरमाई और वायुके मिलनेसे पुरुषका वीर्य निकलकर स्त्रीकी योनिमें प्राप्त होता है और आर्तवके संग मिलता है फिर अग्नि ( आर्तव ) और सोम (वीर्य) का संयोग होनेसे उत्पन्न हुआ गर्भ गर्भाशयमें प्राप्त होता है॥ २॥

**क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुषः स्रष्टा गंता साक्षी धाता वक्ता योसावित्येवमादिभिः पर्य्यायवाचकैर्नामभिरभिधीयते दैवसंयोगादक्षयोऽव्ययोऽचिंत्यो भूतात्मना सहान्वक्षं सत्त्वरजस्तमोभिर्दैवासुरैरपरैश्च भावैर्वायुनाऽभिप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते ॥ ३ ॥**

गर्भाशयमें शुक्र और शोणितका संयोग होनेपर वह क्षेत्रज्ञ जाननेवाला,(त्वगिंद्रियसे) स्पर्शका वोध करनेवाला,(घ्राणसे) सूंघनेवाला,(चक्षुसे)देखनेवाला, (कर्णेंद्रियसे) सुननेवाला, ( रसनासे ) स्वाद लेनेवाला पुरुष स्रष्टा, गमनशील, साक्षी, धारण करनेवाला, वोलनेवाला ( जीवात्मा ) जो क्षेत्रज्ञादि पर्यायवाची नामोंसे वोला जाता है, दैवयोगसे वही अव्यय ( अविनाशी ), अचिंत्य (जो चिंतवनमें नहीं आसके ), भूतात्मा ( सूक्ष्म लिंगशरीर ) के साथ सत्त्व, रज, तम इन गुणों करके और देवता, असुर आदि अनेक भावों करके युक्त तत्काल वायु करके प्रेरण किया हुआ गर्भाशयमें प्रविष्ट होकर स्थित होता है ( अर्थात् कर्मवश वायुका प्रेरण किया हुआ गर्भभावको प्राप्त होता है ) ॥ ३ ॥

---

( गद्य ३ ) दैवयोगात् इति—प्राक्तनजन्मकर्मणो धर्माधर्माभिधानस्य संबंधात् । भूतात्मना इति—भौतिकशरीरेण सूक्ष्मेन लिंगशरीरेणेत्यर्थः । अन्वक्षं तत्क्षणमेव ।(इति नि० स०) देवासुरैरपरैर्भावैरिति कदाचित्सुकर्मवशाद्देवो भूत्वा कदाचित्कुकर्मवशादसुरो भूत्वा कदाचित् कर्मवशात् मनुष्ययोनिस्तिर्यग्योनिश्च भूत्वेत्यर्थः॥

**तत्र शुक्रबाहुल्यात्पुमानार्तवबाहुल्यात्स्त्री साम्यादुभयोर्नपुंसकमिति ॥४॥ ऋतुस्तु द्वादशरात्रं भवति दृष्टार्तवः। अदृष्टार्तवोप्यस्तीत्येके भाषंते ॥ ५ ॥ भवंति चात्र-**

वहां (गर्भाशयमें) शुक्रकी बाहुल्यता होनेसे लडका होता है और आर्तव शोणितकी बाहुल्यतासे लडकी होती है तथा दोनोंके बराबर होनेसे नपुंसक संतान होतीहै ॥ ४ ॥ जब रजस्वला होनेका दर्शन हो तभीसे बारह रात्रि ऋतु ( गर्भस्थितिका समय ) कहलाता है। रजस्वलादर्शनसे १६ रात्रि ऋतु कहाता है जिसमें आदिकी तीन और अंत्यकी एक त्याज्य है(तब बारह रहीं अथवा रजोदर्शनसे बारह रात्रिही ऋतु है क्योंकि पहले " त्रयोदशीप्रभृतयो निंद्याः" ) ऐसा कह आये हैं और अदृष्टार्त्तवाकोभी कई ऋतुमती होती है ऐसा कहते हैं ( अर्थात् कई ऐसा कहते हैं कि रजस्वला न होनेपरभी ऋतुकाल गर्भस्थितिका- समय कभी कभी हो जाता है जैसे बालक दूध पीता हो वह दूध छोड दे या दूध पीते बालककी मृत्यु होजाय या बालक गोदमें हो और बहुत दिनसे पतिके संगकी वांछा हो इत्यादि मौकोंपर विना रजस्वला हुएभी गर्भस्थिति हो जाती है देशभाषामें ऐसे गर्भका इनामका गर्भ कहते हैं ) ॥ ५ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं-

### ऋतुमतीस्त्रीके लक्षण।

**पीनप्रसन्नवदनां प्रक्लिन्नात्ममुखद्विजाम् ॥ नरकामां प्रियकथां स्रस्तकुक्ष्यक्षिमूर्द्धजाम् ॥ ६ ॥ स्फुरद्भुजकुचश्रोणिनाभ्यूरुजघनस्फिचम् ॥ हर्षौत्सुक्यपरां चापि विद्यादृतुमतीमिति ॥ ७ ॥**

जिस स्त्रीका मुख पुष्ट और प्रसन्न हो तथा शरीर, मुख और दंतवेष्ट ( मसूडे ) क्लदित (गलगलाये हुएसे )हों और उसको पुरुषकी अभिलाषा हो तथा मीठी प्यारी बातें करे और कुक्षि, नेत्र और बाल ढीले होजायँ ॥ ६ ॥ तथा हाथ, कुच, कमर, नाभि, जानु, जंघा और चूतड़ फडकने लगजायँ तथा हर्ष और आनंदमें तत्पर हो तो उसको ( विना रजोदर्शनके भी ) ऋतुमती जानना चाहिये ॥ ७ ॥

---

( वाक्य ४ ) शुक्रबाहुल्यादिति-शुक्र प्रसृतिमात्रम् आर्तव चतुरंजलिप्रमाणं च नैव यावन्मात्रमार्तवं गर्भाशयावस्थितं मलरहित गर्भजननं तावदेव ग्राह्यम् अथवा स्वमानापेक्षया शुक्रशोणितयोर्बाहुल्यमत्र चाभिप्रेतं शुक्र तु कदाचिदत्यत हर्षवशात् बहु स्रवति कदाचिद्वैमनस्यादल्पमिति। अन्ये त्वाचार्या एवं ब्रुवति शुक्रार्तवयोर्न्यूनाधिकसमत्वं च वीर्येण भवति ( इति नि० सं० ) ॥ ( श्लो० ६। ७ ) अदृष्टार्तवाया ऋतुमत्या लक्षणमाह-पीनेत्यादि । प्रक्लिन्नात्ममुखद्विजामित्यत्र आत्मा देहः। द्विजशब्देन द्विजसमीपवर्तिनो दंतवेष्टका अभिप्रेताः द्विजानां प्रक्लेदासंभवात् ( इति नि० सं० ) ॥

नियतं दिवसेऽतीते संकुचत्यंबुजो यथा ॥
ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिः संव्रियते तथा ॥ ८ ॥

जैसे दिनके व्यतीत होनेपर अवश्य कमल बंद होजाता है उसी तरह ऋतु ( सोलह रात्रि ) व्यतीत होजानेपर स्त्रीकी योनि ( गर्भाशयका मुख ) बन्द होजाता है ॥ ८ ॥

मासेनोपचितं काले धमनीभ्यां तदार्तवम् ॥ ईषत्कृष्णं विगंधं च वायुर्योनिमुखं नयेत् ॥ ९ ॥ तद्वर्षाद्द्वादशात्काले वर्तमानमसृक् पुनः ॥ जरापक्वशरीराणां याति पंचाशतः क्षयम् ॥ १० ॥

वह आर्तव जब एक महीने भरसे इकट्ठा होजाता है तब कुछ काला और दुर्गंध युक्त हुआ धमनियों करके योनिके मुखपर बाहर आजाता है ( इसीको रजोदर्शन कहते हैं ) ॥ ९ ॥ वह अनुमान १२ वर्षकी अवस्थासे पीछे स्त्रियोंके वर्तमान होता है और जब बुढापेसे शरीर पक जाता है तब पचास वर्षकी अवस्था होजानेपर क्षय होजाता है ॥ १० ॥

युग्मेषु तु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाऽबला ॥
पुष्पकाले शुचिस्तस्मादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत् ॥ ११ ॥

सम दिनोंमें ( रजकी प्रबलता न होनेसे ) पुत्र होता है और अन्यथा अर्थात् विषम दिनोंमें ( रजकी प्रबलता होनेसे ) कन्या होती है इससे पुष्पकाल ( ऋतुकाल ) में सन्तानकी इच्छावाला पुरुष पवित्र होकर स्त्रीगमन करे ॥ ११ ॥

### गर्भरहनेका तात्कालिक लक्षण ।

तत्र सद्योगृहीतगर्भाया लिंगानि श्रमो ग्लानिः पिपासा सक्थिसदनं शुक्रशोणितयोरवबंधः स्फुरणं च योनेः ॥ १२ ॥

तत्कालही गर्भधारण की हुई स्त्रीके ये चिह्न होते हैं–श्रम ( थकान ) और ग्लानि प्यास तथा साथलें थकी हुईसी होना और शुक्र, शोणितकी प्रवृत्ति न होना तथा योनिका फरकना ॥ १२ ॥

### गर्भवती स्त्रीके लक्षण ।

स्तनयोः कृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा ॥ अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः संमील्यंते विशेषतः ॥१३॥ अकामतश्छर्दयति गंधादुद्विजते शुभात् ॥ प्रसेकः सदनं चापि गर्भिण्या लिंगमुच्यते ॥१४॥

( वाक्य १४ ) प्रसेकः थूत्करणम् ॥

दोनों चूँचियोंके मुखपर कालापन हो, रोमराजि ( पेटपर बालोंकी सेली ) उठीसी दीखे और नेत्रोंकी पलकें विशेष मिचें ॥ १३ ॥ तथा विना कारण वमन हो, और सुगंधभी बुरीलगे, मुँहमें थूक अधिक आवे और थकान हो तो जानना चाहिये कि यह स्त्री गर्भवती है ॥ १४ ॥

**तदाप्रभृत्येव व्यायामं व्यवायमतर्पणमतिकर्षणं दिवास्वप्नं रात्रिजागरणं शोकं यानावरोहणं भयमुत्कटकासनं चैकांततः स्नेहादिक्रियां शोणितमोक्षणं चाकाले वेगविधारणं च न सेवेत १५॥**

जबसे गर्भवती मालूम हो तभीसे आदि ले प्रसव पर्यंत व्यायाम ( अति परिश्रम बोझ उठाना आदि ), मैथुन और अतर्पण ( जो तृप्तिकारक न हो किंतु दाहादिजनक पदार्थ ) और अतिकर्षण ( तेज वमन, विरेचन तथा कृश करनेवाले आहार विहार ), दिनको सोना, रात्रिको जागना, शोक ( फिकर ), सवारी पर बैठना, डरना और उत्कटकासन अर्थात् जोरसे खांसना अथवा उत्कटक आसन ( ऊँचे नीचे विशेष अंग करके या बहुत मोड तोडके या विषम आसनमें बैठना ) तथा अकालमें नियमसे तैलाभ्यंगादि करना तथा रक्त निकलवाना और वेगोंको रोकना इन सब बातोंको स्त्री न करे ( अकालमें तैलाभ्यंगादि न करे किंतु अष्टम और नवम मासमें तो तैलाभ्यंग योग्यही है) ॥ १५ ॥

**दोषाभिघातैर्गर्भिण्यां यो यो भागः प्रपीड्यते ॥**
**स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥ १६ ॥**

वातादि दोषों करके अथवा अभिघात आदिसे गर्भिणी स्त्रीके जिस २ भागको पीडा पहुँचे उससे गर्भगत बालकके भी उसी उस भागको पीडा पहुँचती है ॥ १६ ॥

**तत्र प्रथमे मासि कललं जायते ॥ १७ ॥ द्वितीये शीतोष्णानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः संजायते यदि पिंडः पुमान् स्त्री चेत्पेशी नपुंसकं चेदर्बुदमिति ॥ १८ ॥ तृतीये हस्तपादशिरसां पंच पिण्डका निर्वर्तंते अंगप्रत्यंगविभागश्च सूक्ष्मो भवति ॥ १९ ॥ चतुर्थे सर्वांगप्रत्यंगविभागः प्रव्यक्ततरो भवति गर्भहृदयप्रव्यक्तभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति**

---

( वाक्य १५ ) अत्र अकालशब्दः एतज्ज्ञापयति काले अष्टमे मासि तु गर्भिण्या अपि स्नेहादिक्रियान्तर्गते आस्थापनानुवासनीये कार्य्ये ( इति डल्हन ) ॥

कस्मात्तत्स्थानत्वात्तस्माद्गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति द्विहृदयां च नारीं दौहृदिनीमाचक्षते ॥ २० ॥

उस गर्भका आकार पहले महीनेमें कलल ( द्रवरूप शिंघाणकसा ) होताहै ॥ ॥ १७ ॥ फिर दूसरे महीनेमें शीत और उष्ण तथा वायुसे परिपाक हुए पृथिव्यादिक महाभूतोंका कडा संघात होकर पिंडासा हो जाता है तब यदि वह गोल पिण्डासा हो तो पुत्रका गर्भ समझना चाहिये और जो कन्या हो तो पेशी लंबी मुष्टीसी होती है और जो नपुंसक हो तो अर्बुद (रसोलीसा जैसे गोलफल आधा किया हुआ हो ऐसा) होता है ॥१८॥ तीसरे महीनेमें हाथ, पाँव और शिर इन पांचोंकी पांच शाखासी निकलने लगती हैं और थोडा २ अंग, प्रत्यंगका विभागसा प्रगट होने लगता है ॥ १९ ॥ चौथे महीनेमें सारे अंग, प्रत्यंगोंके विभाग प्रगट होते हैं और गर्भस्थका हृदय प्रगट हो जानेसे चैतन्य धातु ( क्षेत्रज्ञ जीव ) भी प्रगट प्रतीत होजाता है क्योंकि हृदय चेतनाका स्थान है । चेतना धातुके उत्पन्न होजानेसे चौथे महीनेमें गर्भस्थ जीव इंद्रियोंके अर्थों (भोगों)में रुचि करनेलगताहै चौथे मासमें गर्भवती स्त्रीके दोहृदय होते हैं एक उस स्त्रीका हृदय और दूसरा गर्भस्थ बालकका इससे उसे दौहृदिनी अर्थात् दो हृदयवाली कहते हैं ॥ २० ॥

### दौहृद न मिलने और मिलनेके हानिलाभ ।

दौहृदविमाननात्कुब्जं कुणिं खंजं जडं वामनं विकृताक्षं वा नारी सुतं जनयति तस्मात्सा यद्यदिच्छेत्तत्तस्यै दापयेत् । लब्धदौहृदा हि वीर्यवंतं चिरायुषं च पुत्रं जनयति ॥ २१ ॥

दौहृद ( द्विहृदया स्त्रीका वांछित पदार्थ ) उसे प्राप्त न होनेसे कूबडा, टूँटा, पाँगला,मूर्ख या बौना तथा विकारयुक्त नेत्रोंवाला बालक स्त्रीके पैदा होताहै इससे वह स्त्री जिस पदार्थकी इच्छा करे उसे वही वह पदार्थ अवश्य दिलवाना चाहिये ( इस कारणसे कि ) दौहृद प्राप्त होनेसे पराक्रमवाला, दीर्घायु, अच्छा बालक पैदा होताहै ॥ २१ ॥

इंद्रियार्थांस्तु यान् यान्सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी । गर्भाबाधभयात्तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत् ॥ २२ ॥ सा प्राप्तदौहृदा पुत्रं जनयेत गुणान्वितम् ॥ अलब्धदौहृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् ॥ २३ ॥ येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदे वै विमानना ॥ प्रजायेत सुतस्यार्तिस्तस्मिंस्तस्मिंस्तथेन्द्रिये ॥ २४ ॥

जिन जिन इन्द्रियोंके अर्थों ( शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि भोगों ) को गर्भिणी स्त्री भोगनेकी इच्छा करे उन २ के न मिलनेसे गर्भमें बाधा होती है इस भयसे उन उन सब भोगोंको वैद्य दिलावे॥ २२॥ (क्योंकि) जब स्त्रीको दौहृद मिल जाता है तो गुणयुक्त पुत्र ( या पुत्री ) पैदा करती है और उसे दौहृद न मिले तो गर्भगत बालकको अथवा आप गर्भिणीको भय रहता है ( कि कुछ उपाधि न हो जाय ) ॥ २३ ॥ जिन जिन इंद्रियोंके भोगोंकी दौहृदमें प्राप्ति न हो उससे बालकके उन्हीं उन भोगोंको ग्रहण करनेवाली इंद्रियोंमें हानि होती है ॥ २४ ॥

दौहृदके फल।

राजसंदर्शने यस्या दौहृदं जायते स्त्रियाः ॥ अर्थवंतं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ २५ ॥ दूकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दौहृदात्॥ अलंकारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ २६ ॥

जिस स्त्रीका दौहृद (मन) राजाके दर्शनमें होता है उसके द्रव्यवान् बडे भागवाला लड़का पैदा होता है ॥ २५ ॥ रेशमी पाटके और टसरके अच्छे २ वस्त्रों तथा आभूषणोंमें दौहृद (मन) होनेसे अलंकार ( शृंगार ) चाहनेवाला, ललित ( शौकीन ) पुत्र पैदा होता है ॥ २६ ॥

आश्रमे संयतात्मानं धर्मशीलं प्रसूयते ॥ देवताप्रतिमायां तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥ २७ ॥ दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते ॥ गोधामांसाशने पुत्रं सुषुप्सुं धारणात्मकम् ॥ २८ ॥

जिस स्त्रीका मन महात्माओंके आश्रम (और तीर्थादि ) में हो उसके धर्मशील बालक होवे और जिसका चित्त देवताओंकी प्रतिमा (मंदिर आदिमें हो ) उसके सत्पात्र पार्षद जैसा पुत्र होवे ॥ २७ ॥ तथा जिसका चित्त सर्पादि हिंसकजीवोंके देखनेका चाहे उसके हिसक बालक पैदा होवे और जिसका मन गोहका मांस खानेमें हो उसके निद्रालु, धारणशील ( दीर्घसूत्री) बालक होवे ॥ २८ ॥

गवां मांसे च बलिनं सर्वक्लेशसहं तथा ॥ माहिषे दौहृदाच्छूरं रक्ताक्षं लोमसंयुतम् ॥ २९ ॥ वाराहमांसात्स्वप्नालुं शूरं संजनयेत्सुतम् ॥ मार्गाद्विक्रांतजंघालं सदा वनचरं सुतम् ॥ सृमराद्दुद्विग्नमनसं नित्यभीतं च तैत्तिरात् ॥ ३० ॥

गौमांसका दौहृद हो तो बलवान् और सब क्लेशोंका सहनेवाला बालक हो और महिषमांस पर दौहृद हो तो शूरवीर लाल नेत्रवाला, रोमों युक्त बालक होवे ॥ २९ ॥

वाराह (शूकर) के मांसपर दोहद हो तो सोनेवाला और शूरवीर बालक पैदा होवे तथा मार्ग चलनेपर मन हो तो वडी वडी जाँघोंवाला और सदैव वनका विचरने-वाला बालक होवे (अथवा "मार्गात्" मृगमांसपर दोहद होनेसे बडी जंघा-वाला, सदा वनचारी बालक होवे ) तथा सृमर ( साबर ) के मांसपर चित्त हो तो उद्विग्न मनवाला बालक हो और तीतरके मांसपर चित्त होनेसे सदा डरनेवाला बालक होवे ( कई "नित्यभीत"की जगह 'नित्यशील' पाठ मानकर तीतरके मांस पर मन होनेसे नित्य शीलवान् हो ऐसा अर्थ करतेहैं ) ॥ ३० ॥

अतोनुक्तेषु या नारी समभिध्याति दौहृदम् ॥ शरीराचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥ ३१ ॥ कर्मणा चोदितं जंतोर्भावित-व्यं पुनर्भवेत् ॥ यथा तथा दैवयोगाद्दौहृदं जनयेद्धृवम् ॥ ३२ ॥

इनके सिवाय जो अन्य बहुत दोहद नहीं कहेहैं यदि उनपर दोहद होवे तो उनके शरीर, आचार और शीलके समान बालक पैदा होवे ऐसा जानना ( पहले मांसा-शी, वनवासी मनुष्य अधिक थे इसकारण उनके अनुसारही सुश्रुतजीने दोहद कह दिये परन्तु अनेक व्यंजन और फलादि, धान्यादि नहीं कहे इससे उनके गुण और प्रकृति आदिको देखकर अबके वैद्योंको विचार लेना चाहिये ) ॥ ३१ ॥ कर्मका प्रेरण किया हुआ और भवितव्य जैसा होताहै दैवयोगसे वैसा वैसाही दोहद होताहै अर्थात् उसीके अनुसार स्त्रीका मन चलताहै ॥३२॥

पंचमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति षष्ठे बुद्धिः । सप्तमे सर्वांगप्रत्यं-गविभागः प्रव्यक्ततरः ॥ ३३ ॥ अष्टमेऽस्थिरीभवत्योजस्तत्र जातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वान्नैर्ऋतभागत्वाच्च ततो बलिं मांसौ-दनमस्मै दापयेत् ॥ ३४ ॥ नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतम-स्मिञ्जायते अतोन्यथा विकारी भवति ॥ ३५ ॥

पांचवें महीनेमें मनमें अधिक चैतन्यता हो जाती है और छठे महीनेमें बुद्धि उत्पन्न होती है। तथा सातवेंमें सम्पूर्ण अंग और सब प्रत्यंग स्पष्टरूपसे स्फुट होजाते हैं ॥ ३३ ॥ आठवें महीनेमें ओज स्थिर नहीं होता इससे आठवें महीनेका पैदा हुआ बालक ओज रहित होनेके कारण और इन दिनों यह राक्षसोंका भाग होनेसे नहीं जीवता है इस लिये मांस और चावल राक्षसोंको बलिदान करना॥ ३४॥ और नवें तथा दशवेंमें और कभी कभी ग्यारहवें, बारहवें महीनेमेंभी बालक जन्मताहै और कदाचित् बारहवें महीनेसेभी अधिक व्यतीत होजाय तो इसे गर्भ न समझे किन्तु एकप्रकारका विकार है ऐसा जाने ॥ ३५ ॥

### गर्भकी पुष्टि ।

**मातुस्तु खलु रसवहायां नाड्यां गर्भनाभिनाडी प्रतिबद्धा सास्य मातुराहाररसवीर्यमभिवहति तेनोपस्नेहेनास्याभिवृद्धिर्भवति ॥३६॥**

माताके रस ( भोजनके रस ) की बहनेवाली नाडीमें गर्भस्थ बालककी नाभि-नाडी( नाल )बंधी हुई अर्थात् लगी हुई है वह माताके किये हुए आहारके रस और वीर्यको प्राप्तकरलेती है उसके सारभूत स्नेहसे गर्भस्थबालककी वृद्धि होतीहै ॥ ३६ ॥

**असंजातांगप्रत्यंगविभागमानिषेकात्प्रभृति सर्वशरीरावयवानुसारिणीनां रसवहानां तिर्यग्गतानां धमनीनामुपस्नेहो जीवयति ॥३७॥**

और जबतक अंगप्रत्यंग नही पैदा होते हैं केवल कलल पिंडरूपही गर्भ होता-है तथा गर्भके नाभिनाडी भी नहीं होती तबसे अर्थात् गर्भस्थितिके समयहीसे लेकर उस अवस्थामें गर्भिणीके सारे शरीरमें अनुसरण करनेवाली, रस बहानेवाली और तिर्यग्गमन करनेवाली धमनियोंका उपस्नेह (सारभूत द्रव ) गर्भको जीवन ( पोषण वर्द्धनादि ) करता है ॥ ३७ ॥

### गर्भका कौन अंग पहले हो इसका विवेचन ।

**गर्भस्य हि संभवतः पूर्वं शिरः सम्भवतीत्याह शौनकः शिरोमूलत्वाद्देहेन्द्रियाणाम् ॥ ३८ ॥ हृदयमिति कृतवीर्यो बुद्धेर्मनसश्च स्थानत्वात् ॥ ३९ ॥ नाभिरिति पाराशर्यस्ततो हि वर्द्धते देहो देहिनः ॥ ४० ॥ पाणिपादमिति मार्कंडेयस्तन्मूलत्वाच्चेष्टायाः गर्भस्य ॥ ४१ ॥ मध्यशरीरमिति सुभूतिगौतमस्तन्निबद्धत्वात् सर्वगात्रसंभवस्य ॥ ४२ ॥**

गर्भस्थ बालकके पहले शिर पैदा होता है ऐसे शौनक कहते हैं क्योंकि देह इंद्रियोंका मूल शिर है ॥ ३८ ॥ और कृतवीर्य ऐसा कहते हैं कि हृदय बुद्धि और मनका स्थान है इस कारणसे हृदयही पहले होता है ॥ ३९ ॥ और पराशरका ऐसा मत है कि नाभिसे प्राणियोंका देह बढता है ( उसमेंही रसवहा शिरा द्वारा रस पहुँच कर शरीर बढता है ) इससे नाभिही पहले होती है ॥ ४० ॥ मार्कंडेय ऋषि ऐसा कहतेहैं कि चेष्टाके मूल हाथ, पाँव हैं और गर्भमें चेष्टा प्रगटही होतीहै इससे हाथ, पांव पहले होतेहैं ॥ ४१ ॥ सुभूति गौतम ऐसा कहतेहैं कि मध्य शरीरसेही सब गात्र सन्निबद्ध हैं इससे मध्य शरीर (मंदला अर्थात् धड ) ही पहले होताहै ॥४२॥

( वाक्य,३६ ) अस्य बालस्य नाभिनाडी मातुः रसवहाया नाड्या प्रतिबद्धा सा मातुराहाररसवीर्यमभिवहतीत्यन्वयः ॥

तत्तु न सम्यक् । सर्वांगप्रत्यंगानि युगपत्संभवंतीत्याह धन्वंतरिर्गर्भस्य सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यंते वंशांकुरवच्चूतफलवच्च । तद्यथा चूतफलेऽपरिपक्वे केशरमांसास्थिमज्जा न पृथग् दृश्यंते कालप्रकर्षात्तान्येव तरुणेनोपलभ्यंते सूक्ष्मत्वात्तेषां सूक्ष्माणां केशरादीनां कालः प्रव्यक्ततां करोति । एतेनैव वंशांकुरोपि व्याख्यातः । एवं गर्भस्य तारुण्ये सर्वेष्वंगप्रत्यंगेषु सत्स्वपि सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः तान्येव कालप्रकर्षात् प्रव्यक्तानि भवंति ॥ ४३ ॥

अङ्गोंकी उत्पत्तिमें शौनकादिका कथन यथार्थ नहीं है ऐसा धन्वंतरिजी कहते हैं । श्री धन्वंतरिजीका मत इस विषयमें यह है कि बालकके सब अंग,प्रत्यंग एकसाथही पैदा होतेहैं वे गर्भके सूक्ष्म होनेके कारणसे जाने नहीं जातेहैं जैसे बांसकी कोंपल अथवा जैसे आँबका फल । वह यूँ हैं कि कच्चे (बहुत छोटे ) आंबके फलमें केसरें ( सूत ) और मांस अर्थात् गूदा और अस्थि अर्थात् गुठली तथा मज्जा उसकी गिरी ये सूक्ष्म होनेसे न्यारे न्यारे नहीं मालूम होते और फिर कालके बढनेपर वेही पकावमें आनेसे प्रगट मालूम होने लगतेहैं इससे सिद्ध हुआ कि सूक्ष्म केसर आदिकी समयही प्रगटता कर देता है इसी तरह बांसके अंकुरमें भी समय पाकरही पोरी आदि सब स्फुट होती हैं इसी प्रकारसे छोटपनमें गर्भके संपूर्ण अंग,प्रत्यंग उसमें हैं तो भी सूक्ष्मताके कारण दिखाई नहीं देते और वेही फिर समयके बढनेसे स्फुट ( प्रगट ) हो जातेहैं ॥ ४३ ॥

गर्भके पितृज मातृज आदि अंश ।

तत्र गर्भस्य पितृजमातृजरसजात्मजसत्त्वजसात्म्यजानि शरीरलक्षणानि व्याख्यास्यामः ॥ ४४ ॥

उस गर्भस्थमें पितृज ( पैतृक भाग)कौन २ हैं तथा मातृज क्या क्या हैं,रसज क्या हैं, आत्मज क्या हैं, सत्त्वज क्या हैं और सात्म्यज क्या २ भाग शरीरमें हैं इनके लक्षणोंकी व्याख्या करते हैं ॥ ४४ ॥

गर्भस्य केशश्मश्रुलोमास्थिनखदंतशिरास्नायुधमनीरेतःप्रभृतीनि स्थिराणि पितृजानि ॥ ४५ ॥

संतानके बाल, डाढी, मूछें, रोम, हाड, नखून, दांत, शिरा ( बारीक रगें ), स्नायु

( वाक्य ४३ ) केशरास्थिमज्जा न पृथग् दृश्यते इत्यत्र मज्जाशब्द आकारान्तस्त्रीलिंग,-तथा चोक्तं शब्दस्तोममहानिधौ-मज्जा स्त्री० मस्ज्-अन् आप् । अस्थिसारे । तानि केशरादीनि ॥

( नसें ) और धमनी ( नाडी ) तथा वीर्य आदि स्थिर पदार्थ पितृज हैं ( पितासे उत्पन्न होते हैं अर्थात् इनमें पैतृक अंश होता है ) ॥ ४५ ॥

**मांसशोणितमेदोमज्जहृन्नाभियकृत्प्लीहान्त्रगुदप्रभृतीनि मृदूनि मातृजानि ॥ ४६ ॥**

मांस, रुधिर, मेद, मज्जा,हृदय, नाभि, यकृत् (जिगर), प्लीहा (तिल्ली) और अंत्र ( अंतडी ) तथा गुदा आदि कोमल पदार्थ माताके अंशसे होते हैं॥ ४६ ॥

**शरीरोपचयो बलं वर्णः स्थितिर्हानिश्च रसजानि । इंद्रियाणि ज्ञानं विज्ञानमायुः सुखदुःखादिकं चात्मजानि । सत्त्वजान्युत्तरं वक्ष्यामः । वीर्यमारोग्यं बलवर्णौ मेधा च सात्म्यजानि ॥ ४७ ॥**

शरीरका मुटापा, बल, वर्ण, स्थिति और हानि (क्षीणता ) ये रससे ( गर्भिणीके भोजनके रससे ) होते हैं अर्थात् जैसा गर्भिणी भोजन करती है और जैसा उसका रस गर्भमें पहुंचता है वैसे होते हैं। इंद्रिय ( ज्ञानेंद्रिय ) तथा ज्ञान और विज्ञान, आयु, सुख, दुःख इत्यादिक आत्मज हैं ( अर्थात् जीव जैसे शुभाशुभ कर्म पूर्वजन्ममें करता है उसके अनुसार आत्माके सान्निध्यसे होते हैं ) । सत्त्वसे होनेवाले भाग अगाडी कहेंगे। और वीर्य, आरोग्यता,बल, वर्ण और मेधा ये सात्म्यज अर्थात् अपनी अनुकूलतासे होते हैं यदि इसमें यह शंका हो कि, वीर्य और बल, वर्ण ये दो दो वार वर्णन क्यों किये तो उत्तर यह है कि, वीर्य पैतृकभागसे तो होताही है पर सात्म्यसेभी होता है इसी तरह बल और वर्णभी गर्भिणीके भोजनके रससे तो होतेही हैं पर सात्म्यसेभी होते हैं ) ॥ ४७ ॥

### गर्भमें पुत्रपुत्री आदिकी परीक्षा ।

**तत्र यस्या दक्षिणे स्तने प्राक् पयोदर्शनं भवति दक्षिणाक्षिमहत्त्वं च पूर्वं च दक्षिणसक्थ्युत्कर्षति बाहुल्याच्च पुन्नामधेयेषु द्रव्येषु दौहृदमभिध्यायति स्वप्नेषु चोपलभते पद्मोत्पलकुमुदाम्रातकादीनि पुन्नामान्येवं प्रसन्नमुखवर्णा च भवति तां ब्रूयात् पुत्रमियं जनयिष्यतीति तद्विपर्यये कन्याम् ॥४८॥**

जिस गर्भवतीके दाहिने स्तनमें पहले दूध दिखलाई देवे और दाहिनी आँख कुछ२ भारी जान पडे तथा पहले दाहिनी साँथलमें भारीपन हो और विशेषतासे पुरुषवाचक द्रव्योंको दौहृदमें चाहे तथा स्वप्नमें कमल,कुमुद, आमडा आदि पुरुषनामवाले पदार्थोंको प्राप्त करे और मुख तथा रूप सुंदर हों तो कहना चाहिये कि इसके पुत्र उत्पन्न होगा और जो इसके विपरीत हो तो कन्या होगी ऐसे कहना चाहिये ॥४८॥

यस्याः पार्श्वद्वयमुन्नतं पुरस्तान्निर्गतमुदरं प्रागभिहितलक्षणं च तस्य नपुंसकमिति विद्यात् ॥ ४९ ॥ यस्या मध्ये निम्नं द्रोणीप्रभूतमुदरं सा युग्मं प्रसूत इति ॥ ५० ॥ भवन्ति चात्र–

जिसके दोनों पँसवाडे ऊँचे हों और पेट आगेको निकलासा हो तथा पूर्वोक्त दोनोंके मिले हुएसे लक्षणहों तो उसके नपुंसक बालक होगा ऐसा जानना चाहिये॥४९॥ और जिसके उदरके बीचमें नीचापन और गोणकी भांति उदर दोनों तरफसे उभरा हो उस स्त्रीके दो बालक होंगे ऐसा जानना चाहिये ॥५०॥ इस विषयमें श्लोक हैं–

गर्भके अंगप्रत्यंगोंकी सुंदरता, असुंदरता।

देवताब्राह्मणपरा शौचाचारहिते रता॥ महागुणान् प्रसूयंते विपरीतास्तु निर्गुणान् ॥५१॥ अंगप्रत्यंगनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते॥ अंगप्रत्यंगनिर्वृत्तौ ये भवंति गुणागुणाः ॥ ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजाः ॥ ५२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३॥

जो गर्भिणी स्त्री गर्भके समय देवता तथा ब्राह्मणादिके सेवनादिमें तत्पर हो तथा शौच, आचार और परोपकारमें रत हो तो अच्छे गुणवाला सन्तान उत्पन्न होवे और इसके विपरीत हो अर्थात् देवता आदिकी निंदा करे, शौच न रक्खे तो गुणोंसे रहित सन्तान पैदा होवे ॥ ५१ ॥ अंग, प्रत्यंगोंका उत्पन्न होना यह स्वभावहीसे होता है परंतु तो भी अंग, प्रत्यगके उत्पन्न होते समय जो जो गुण और दोष गर्भिणी स्त्रीके होते हैं वेही वे धर्माधर्मके अनुकूल बालकके भी होतेही हैं अर्थात् जैसा धर्माधर्म जीवका होता है उसके अनुसारही गर्भिणी स्त्री गर्भके अंग, प्रत्यंग होते समय गुण, अगुण करती है और उसीके अनुकूल बालकके पूर्ण अंग, प्रत्यंग सुंदर होते हैं या पंगु, कूवडा आदि होता है। गर्भिणी शुभ गुणोंका आचरण करे तो सुंदर अंग, प्रत्यंग हों और अयोग्य आचरणोंसे विकारयुक्त अंग, प्रत्यंग होते हैं ॥५२॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी०शारीरस्थाने तृतीयोऽध्याय: ॥ ३ ॥

## चतुर्थोऽध्यायः ४.

### अथातो गर्भव्याकरणं नाम शारीरं व्याख्यास्यामः।

अब यहांसे अगाडी गर्भके व्याकरण अर्थात् विवेचन नामक शारीरकका व्याख्यान करते हैं ॥

( वाक्य ) गर्भव्याकरण गर्भविवरणमित्यर्थः ।

**अग्निः सोमो वायुः सत्त्वं रजस्तमः पंचेंद्रियाणि भूतात्मेति प्राणाः॥१॥**

अग्नि ( पाचकादिरूप शारीरोष्मा), सोम (कफ, रस, शुक्रादि द्रवत्वविशिष्टादि शीत ), वायु ( प्राणोदानादि भेदसे जो पांच प्रकारका है ) तथा सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण और पांच इंद्रिय ( श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ) और भूतात्मा ( पंचभूतात्मक जीवात्मा जो शुभाशुभ कर्मों करके ग्रहण किया हुआ कर्मपुरुष कहलाता है ) ये सब प्राण अर्थात् जीव कहलाते हैं ( अर्थात् प्राणोंको पोषण करते हैं इससे ये प्राणही हैं ) ॥ १ ॥

### त्वचाओंका वर्णन ।

**तस्य खल्वेवं प्रवृत्तस्य शुक्रशोणितस्याभिपच्यमानस्य क्षीरस्येव संतानिकाः सप्त त्वचो भवंति ॥ २ ॥**

इस प्रकार ( अग्नि, सोमादिके संयोगसे ) प्रवृत्त ( भूतात्माधिष्ठित ) शीतोष्ण वातादि करके पचायमान शुक्र, शोणित ( संयोगरूपगर्भ ) के सात त्वचा (चर्म) होते हैं जैसे दूधके पकनेपर मलाई होती है ॥ २ ॥

**तासां प्रथमावभासिनी नाम या सर्ववर्णानवभासयति पंचविधां च छायां प्रकाशयति सा व्रीहेरष्टादशभागप्रमाणा सिध्मपद्मकंटकाधिष्ठाना ॥ ३ ॥ द्वितीया लोहिता नाम षोडशभागप्रमाणा तिलकालकन्यच्छव्यंगाधिष्ठाना ॥ ४ ॥**

इनमेंसे प्रथम ( सबसे ऊपरकी त्वचा ) अवभासिनी नामक है यह समस्त वर्णों ( कृष्णता, गौरतादि ) को प्रकाश करती है और वही पांच प्रकारकी पांचभौतिक छाया तथा चकारके ग्रहणसे प्रभाको प्रकाश करती है यह त्वचा व्रीहि अर्थात जौके ( जो बीस भाग हैं उनमें ) अठारह भागके समान मोटी है यही सीप

---

( वा० १ ) तत्राग्निस्तावदाहारपाकादिकर्मणा प्राणयति । सोमश्च सौम्यधातोरोजःप्रभृतेः पोषणेन । वायुश्च दोषधातुमलादीनां संचारणोच्छ्वासनिश्वासाभ्यां च । सत्त्वं रजस्तमश्च मनोरूपतया परिणतं भूतात्मनः शरीरांतरग्रहणमोक्षणे हेतुरिति तदपि प्राणयति । पंचेंद्रियाणि चक्षुरादीनि रूपादिग्रहणकर्मणा प्राणयति । एव भूतात्मा पचभूतात्मा कर्मपुरुषोप्यशेषस्यैवं कर्मराशेराहतश्चेतनैरिति प्राणयति । एते चाग्निसोमादयः प्राणयति जीवयतीति प्राणाः । ( इति डल्हनः ) ॥

( वाक्य २ ) एव प्रवृत्तस्य भूतात्माधिष्ठितस्य ॥ (वाक्य ३ ) सर्ववर्णान् गौरादीन् । अवभासयति भ्राजकेनाग्निनेति शेषः । छाया पंचविधां पंचात्मिकां पंचभूतकृतत्वात् चशब्दात् प्रभापि ग्राह्या या आसन्ना लक्ष्यते सा छाया, प्रभा तु दूरात्प्रकाशते इति तयोर्भेदः । तस्या त्वचः प्रमाणं व्रीहिविस्तारस्य विंशतिर्भागाः तेषु व्रीहिपरिणाहविंशतिभागेष्वष्टादशभागप्रमाणमवभासिन्याः व्रीहिरत्र यवः (इति डल्हनो भावमिश्रश्च)

और पद्मकंटकनामक चर्म रोगोंके होनेका स्थान है अर्थात् सीप, पद्मकंटक इसी ऊपरकी त्वचामें होते हैं ॥ ३ ॥ दूसरी लोहितानामक त्वचा है यह जौके सोलह भागके समान मोटी है और तिल, न्यच्छ (चकदे) और व्यंग (झाँई) इनके होनेका स्थान है अर्थात् तिल, चकदे और झांई ये दूसरी त्वचामें होते हैं ॥ ४ ॥

**तृतीया श्वेता नाम द्वादशभागप्रमाणा चर्मदलाजगल्लिकामशकाधिष्ठाना ॥ ५ ॥ चतुर्थी ताम्रा नामाष्टभागप्रमाणा विविधकिलासकुष्ठाधिष्ठाना ॥६॥ पंचमी वेदिनी नाम व्रीहिपंचभागप्रमाणा कुष्ठविसर्पाधिष्ठाना ॥७॥ षष्ठी रोहिणी नाम व्रीहिप्रमाणा ग्रंथ्यपच्यर्वुदश्लीपदगलगंडाधिष्ठाना ॥ ८ ॥ सप्तमी मांसधरा नाम व्रीहिद्वयप्रमाणा भगंदरविद्रध्यर्शोऽधिष्ठाना ॥९॥ यदेतत्प्रमाणं निर्दिष्टं तन्मांसलेष्ववकाशेषु न ललाटे सूक्ष्मांगुल्यादिषु यतो वक्ष्यत्युदरेषु व्रीहिमुखेनांगुष्ठोदरप्रमाणमवगाढं विध्येदिति॥१०॥**

तीसरी श्वेता नाम (श्वेत) त्वचा है यह जौके बारह भागके समान मोटी है और यही चर्मदल, अजगल्लिका तथा मशक (मस्से) पैदा होनेका स्थान है ॥५॥ चौथी ताम्रा नाम (तांबेजैसी वर्णकी) त्वचा है यह जौके आठ भागके बराबर मोटी है और इसमें अनेक प्रकारके किलास और कुष्ठ होते हैं ॥ ६ ॥ पाँचवीं वेदिनीनामक त्वचा जौके पांच भागके बराबर है इसीमें कुष्ठ और विसर्प होते हैं ॥ ७ ॥ छठी रोहिणीनामक त्वचा यवकी मुटाईके समान है ग्रंथि (गांठ) और अपची तथा अर्बुद (रसोली) और श्लीपद (पीलपाव) तथा गलगंड ये इस छठी त्वचामें होते हैं ॥ ८ ॥ सातवीं मांसधरानामक त्वचा है यह दो जौकी मुटाईके समान है इसीमें भगंदर और विद्रधि तथा बवासीरके मस्से होते हैं ॥९॥ यह जो प्रमाण कहा सो अति मांसवाले शरीरके स्थूलभागकी त्वचाओंमें होता है जैसे (जंघा, नितंबादि) और ललाट तथा छोटी अंगुली आदिमें नहीं होता क्योंकि अगाडी उदररोगोंकी शस्त्रचिकित्सामें ऐसा कहा है कि, व्रीहिमुखनामक शस्त्रसे अँगूठेके उदर प्रमाण गहरा वेध करे ॥ १० ॥

## अथ परिशिष्टम् ।

### त्वचाके विषयमें मतान्तर ।

श्लोक-त्वचायमखिलः कायः संवृतो विश्वकर्मणा ॥ बाह्योपद्रवसंघाताद्रक्षितः साधु तिष्ठति ॥ १ ॥ स्तरद्वयवतीयं त्वक् तद्बाह्यश्चर्म कथ्यते ॥ स्तरो नामोच्यते-

तस्त्वक् भूमिस्पर्शेंद्रियस्य सा ॥ २ ॥ उपर्य्युपरिविस्तीर्णस्तरसप्तकसंहते ॥ एषा त्वगखिला जाता कैश्चिदिति च मन्यते ॥ ३ ॥ तोयानिलादिसंकर्षः स्वेदस्य च विनिर्गमः ॥ दैहिकस्योष्मणो रक्षा त्वचा संपाद्यते ध्रुवम् ॥ ४ ॥

अर्थ–विश्वकर्मा परमेश्वरने यह सम्पूर्ण शरीर त्वचासे इस लिये आच्छादित किया है कि जिसमें बाहरके उपद्रवों और आघातोंसे रक्षित हुआ यह शरीर सुख पूर्वक रहे ॥ १ ॥ यह त्वचा दो पुडतवाली है जिसमें बाहरके पुडतको चर्म ( चमडी ) कहते हैं और भीतरके पुडतको स्तर (अस्तर) कहते हैं यह त्वचा स्पर्श इंद्रियका स्थान है ॥२॥ कइयोंका ऐसा मत है कि इस त्वचामें ऊपर नीचे ऐसे सब मिलकर सात अस्तर हैं और उन सात पुडतोंसेही यह सारी मोटी त्वचा बनी है ॥३॥ इस त्वचासे जल वायु आदिके परमाणु भीतरको आकर्षण होते हैं और पसीना बाहर निकलता है और शारीरक अग्निकी रक्षा यही त्वचा ठीक ठीक करतीहै ॥४॥

( वक्तव्य ) डाक्टरी मतसे त्वचाके दोही भाग हैं इनमेंसे ऊपरले भागको ' एपीडर मिस ' या ' क्यूटि किल '–( Epidermis or Cuticle ) कहते हैं और नीचेके भागको ' डरमिस '–( Dermis ) कहते हैं और इन दोनोंमेंसे भी प्रत्येकके दो दो भाग हैं इनमेंसे क्यूँटिकिलकी मुटाई कहीं एक इंचका २४ वां भाग है और कहीं कहीं चौबीसवां और कही बारहवां भागही है। स्वेद-जनक छिद्र सब शरीरपर प्रायः तीस लाखके अनुमान होते हैं इन्हें एक इंचमें प्रायः तीन हजारके लगभग समझो, देखो ईश्वरकी विचित्रता ॥

इति परिशिष्टम् ।

## कलाओंका वर्णन ।

**कलाः खल्वपि सप्त भवंति धात्वाशयांतरमर्यादाः॥११॥भवतश्चात्र–**

कला भी सातही हैं और धातुओंके आशयोंके बीचमें इनकी मर्यादा है ॥११॥ इस विषयमें दो श्लोक हैं–

**यथा हि सारः काष्ठेषु छिद्यमानेषु दृश्यते ॥ तथा धातुर्हि मांसेषु छिद्यमानेषु दृश्यते ॥ १२ ॥ स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नां संततांश्च जरायुणा ॥ श्लेष्मणा वेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान्विदुः॥१३॥**

---

( वाक्य ११ ) धात्वाशयांतरमर्यादा इति–धातुशब्देनात्र रक्तमांसमेदःशुक्रकफपित्तपुरीषा ज्ञेयाः–तेषामाशयाः अवस्थानप्रदेशाः तेषामतरेषु मर्यादाः सीमाभूताः ( इति डल्हनः ) । कलारूपे वृद्धवाग्भट इत्याह–"यस्तु धात्वाशयांतरेषु क्लेदोऽवतिष्ठते स यथास्वमूष्माभिः विपक्वः स्नायुश्लेष्मजरायुच्छन्न. काष्ठ इव सारो धातुरसशेषाल्पत्वात् कलासंज्ञः " इति । भावमिश्रोऽप्याह " धात्वाशयांतरे धातोर्यः क्लेदस्त्वधितिष्ठति ॥ देहोष्मणाभिपक्वश्च सा कलेत्यभिधीयते " ॥ इति ॥

जैसे गीले काठको काटनेसे उसका सार द्रव स्नेह दिखाई देता है वैसेही मांसके छेदन करनेसे धातु ( रक्त आदि ) दीखते हैं ॥ १२ ॥ स्नायु ( नसों ) से व्याप्त और जरायु ( पतली झिल्ली ) से आच्छादित तथा कफ करके वेष्टित कला (भाग) होते हैं ( इन्हें कलाभाग जानों ) ॥ १३ ॥

**तासां प्रथमा मांसधरा नाम यस्यां मांसे शिरास्नायुधमनीस्रोतसां प्रताना भवंति ॥ १४ ॥ भवति चात्र-**

इनमें प्रथम मांसधरा कला है जिसमें मांसमें शिरा (रग), स्नायु ( नसें ), धमनी ( नाडी ) और स्रोत ( छिद्र ) इनका जालसा फैला हुआ है ॥१४॥ इसमें श्लोक है-

**यथा विसमृणालानि विवर्द्धन्ते समंततः ॥**
**भूमौ पंकोदकस्थाने तथा मांसे शिरादयः ॥ १५ ॥**

कीचडवाली पृथ्वीमें जैसे कमलकी जड और नाली व्याप्त हुए ( फैले हुए ) बढते हैं तैसेही ( मांसधरा कलाके ) मांसमें रगें और नसें आदि होतीहैं ॥१५॥

**द्वितीया रक्तधरा नाम मांसस्याभ्यंतरतस्तस्यां शोणितं विशेषतश्च शिरासु यकृत्प्लीह्नोश्च भवति ॥१६॥ भवति चात्र-**

दूसरी रक्तधरा नाम ( रुधिरको धारण करनेवाली) कला है यह मांसके भीतर है इसमें विशेष करके शिरा ( रगों ) में तथा यकृत् और प्लीहामें रक्त रहता है॥१६॥ यहां दृष्टांत रूप श्लोक है-

**वृक्षाद्यथाभिप्रहतात्क्षीरिणः क्षीरमावहेत् ॥**
**मांसादेवं क्षतात् क्षिप्रं शोणितं संप्रसिच्यते ॥ १७ ॥**

जैसे दूधवाले ( अर्कादि ) वृक्षके तोडनेसे दूध टपकने लगताहै वैसेही मांसके कटनेपर तुरंत ( रगोंसे ) रुधिर टपकने लगताहै ॥ १७ ॥

**तृतीया मेदोधरा नाम मेदो हि सर्वभूतानामुदरस्थमण्वस्थिषु च महत्सु च मज्जा भवति ॥ १८ ॥ भवति चात्र-**

तीसरी मेदोधरा नामक (मेदको धारण करनेवाली) कला है। मेद सब जीवोंके प्रायः उदरमें होता है और छोटे २ अस्थियोंमेंभी मेद होता है और बडे अस्थियोंमें मज्जा होती है ॥ १८ ॥ इसमें श्लोक है-

**स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यंतराश्रितः ॥ इतरेषु च सर्वेषु सरक्तं मेद उच्यते॥शुद्धमांसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता॥१९॥**

---

( वाक्य १८।१९ ) तृतीया मेदोधरा मेदो हि तस्यामुदरेऽण्वस्थिषु च सरक्त भवति, तदेव च शिरसि कपाले प्रतिच्छन्न मस्तिष्काख्य मस्तुलुङ्गाख्य च स्थूलास्थिषु तु मज्जा ( इति वृद्धवाग्भटः ) ॥

मोटे अस्थियोंके भीतर विशेष करके मज्जा होती है तथा इतर सबमें रुधिर सहित मेदही होता है। शुद्ध मांसका जो स्नेह ( चिकनाई ) है उसे वसा ( चरवी ) कहते हैं ॥ १९ ॥

**चतुर्थी श्लेष्मधरा नाम सर्वसंधिषु प्राणभृतां भवति॥२०॥भवति चात्र-**

चौथी श्लेष्मधरा नाम ( कफको धारण करनेवाली ) कला है यह सब प्राणियोंके संधि ( जोडों ) में होती है ॥ २० ॥ इसपर दृष्टांतरूप एक श्लोक है-

**स्नेहाभ्यक्ते यथा ह्यक्षे चक्रं साधु प्रवर्तते ॥**
**संधयः साधु वर्तन्ते संश्लिष्टाः श्लेष्मणा तथा ॥ २१ ॥**

जैसे रथके पहियेके धुरेपर चिकनाई लगी होनेसे पहिया ठीक २ फिरतारहता है उसी तरह कफसे लिपी हुई संधियां ( हाथ, पांव आदिके जोड़ ) अच्छीतरह फैल और सुकड़ जाती हैं ॥ २१ ॥

**पंचमी पुरीषधरा नाम यान्तःकोष्ठे मलमभिविभजते पक्काशयस्था ॥ २२ ॥ भवति चात्र-**

पांचवी पुरीषधरा नामक (मलको धारण करनेवाली ) कला होतीहै यह पक्काशयमें रहती है और भीतर कोठेमें मलको जुदा जुदा करती है ॥ २२ ॥ यहां श्लोक है-

**यकृत्समंतात् कोष्ठं च तथांत्राणि समाश्रिता ॥**
**उंडुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला ॥ २३ ॥**

यह मलधरा कला यकृत्के आसपास कोष्ठ और अंत्र ( आंतडों ) के आश्रय होकर ( अर्थात् यकृत्के पास प्लीहा, वस्ति, पक्काशय, अग्न्याशय, हृदय और आमाशय आदि कोष्ठ और मलमूत्रको बहानेवाले मोटे अंत्र इन स्थानोंमें होकर ) उंडुकस्थ ( मोटे बडे मलाधार अँतडेमें स्थित ) मल और मूत्रको पृथक् २ करती है ॥२३॥

**षष्ठी पित्तधरा नाम या चतुर्विधमन्नपानमुपयुक्तमामाशयात्प्रच्युतं पक्काशयोपस्थितं धारयति ॥ २४ ॥ भवति चात्र-**

---

( वाक्य० २० । २१ ) अक्ष चक्रमध्यस्थं केंद्रस्थानम् ॥ ( वाक्य २२ । २३ ) यकृत्समतादिति समंतात् सर्वतः यकृदादिकं यकृत्समीपाना हृदयादीना चाप्यत्र ग्रहणम् । उडुकग्रहणेन सानिध्यात् गुदं गृह्यते तेनोर्ध्वं यकृदादिव्यवस्थितम् अधस्ताद्गुदपर्यंतं कोष्ठम् । उडुकस्थ मल विभजतीति-उडुकः पोटलक इति लोके, चरके तु पुरीषोंडुकः प्रतिपादितः । मल विभजते इति-मूत्रपुरीषरूपतया विभागं करोतीत्यर्थः । गयी तु विभजते इति-कोष्ठात्पृथक् करोति इति व्याख्याति ॥ ( श्लो० २४ ) षष्ठी पित्तधरा नाम कलैव ग्रहणी "षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता । पक्कामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता ॥" इत्युक्तत्वात् । पित्तं चात्रांतराग्निसंज्ञकम् । पक्काशयोपस्थितं पक्काशयगमनायोपस्थितम् । धारयति पाकार्थमिति शेषः॥

छठी पित्तधरा नाम ( पित्तको धारण करनेवाली ) कला है ( यही ग्रहणी है ) यह चारों प्रकारके ( चबाये, खाये, पीये और चाटे हुए ) पदार्थ जो आमाशयमें द्रवरूप नीचेको जातेहैं और पक्वाशयके ऊपर पकनेके लिये उपस्थित होतेहैं उन्हें धारण करती है ॥ २४ ॥ इसपर एक श्लोक है–

अशितं खादितं पीतं लीढं कोष्ठगतं नृणाम् ॥
तज्जीर्यति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा ॥ २५ ॥

चबाया, खाया, पिया और चाटा हुआ जो आहार मनुष्योंके कोष्ठमें प्राप्त होता है उसे यही यथाकाल पित्तकी गरमाईसे शोषित करके पकाती है ॥ २५ ॥

**सप्तमी शुक्रधरा नाम या सर्वप्राणिनां सर्वशरीरव्यापिनी ॥२६॥ भवंति चात्र–**

सातवीं शुक्रधरा नाम ( वीर्यको धारण करनेवाली ) कला है यह प्राणियोंके समस्त शरीरमें व्याप्त रहती है ॥ २६ ॥ इसमें तीन श्लोक हैं–

**यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा॥शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्भिषग्वरः ॥ २७ ॥ द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः ॥ मूत्रस्रोतःपथाच्छुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥ २८ ॥ कृत्स्न-देहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा ॥ स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते ॥ २९ ॥**

जैसे दूधमें घृत और इक्षु ( ऊख ) में रस व्याप्त रहता है ऐसेही पुरुषोंके शरीरमें वैद्य वीर्यको जाने ॥ २७ ॥ वस्तिके द्वारसे नीचे दो अंगुल दाहिनी तरफ होकर मूत्रके मार्ग ( मूत्र निकलनेके छिद्र ) हीसे पुरुषोंका वीर्य निकलता है ॥ ॥ २८ ॥ सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहनेवाला शुक्र प्रसन्न चित्त तथा स्त्रीसंगकी इच्छावाले पुरुषको हर्षके कारण प्रवृत्त होता है ॥ २९ ॥

**गर्भवतियोंके रजस्वला नहोने और स्तनोंमें दूध होनेका हेतु।**

**गृहीतगर्भाणामार्तववहानां स्रोतसां वर्त्मान्यवरुध्यंते गर्भेण तस्माद्गृहीतगर्भाणामार्तवं न दृश्यते॥३०॥ततस्तदधः प्रतिहतमू-**

( श्लो० २५ ) अशितमित्यादि–चतुर्विधमाहारं आमाशयस्थश्लेष्मणा क्लेदितं यथाकालं तीक्ष्णमध्यमंदाग्निक्रमेण अथवा मात्राद्रव्यगुरुलघूचितकालानतिक्रमेण च पित्ततेजसा शोषितमन्तराग्निना परिपाचितं जीर्यतीति । पक्वं च पक्वाशयाय विमुञ्चतीति ॥ ( वाक्य २६ से २९ ) सप्तमी शुक्रधरा नाम द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाधोमूत्रमार्गमाश्रिता सकलशरीरव्यापिनी शुक्रं प्रवर्तयतीति ( वृद्धवाग्भटः ) ॥

**र्द्ध्वमागतमपरं चोपचीयमानमपरेत्यभिधीयते शेषं चोर्द्ध्वतरमागतं पयोधरावभिप्रतिपद्यते तस्माद्गर्भिण्यः पीनोन्नतपयोधरा भवंति३१॥**

गर्भवती स्त्रियोंके आर्तवरक्तको बहानेवाले छिद्रोंका मार्ग गर्भसे रुक जाता है इससे गर्भवतियोंका आर्तव ( रजस्वलाभाव ) नहीं दीखता अथात् गर्भमें जबतक बालक हो रजस्वला नहीं होती ॥ ३० ॥ ( जरायुकी उत्पत्ति ) गर्भवती स्त्रियोंका आर्तव रक्त जब नीचेको प्रवृत्त नहीं होता और रुक जाता है तब ऊपरको ( गर्भाशयमें ) प्राप्त होजाता है फिर उसमें और कफादिक संचित होकर मिल जाते हैं वही अपरा ( जरायु ) अर्थात् जेर कहलाती है तथा उस आर्तवकाही शेष (द्रव) भाग अत्यन्त ऊपर गमन करके स्तनों ( चूँचियों ) में प्राप्त होता है जिससे गर्भिणी स्त्री पुष्ट ऊँचे दूधवाले स्तनोंको धारण करनेवाली होती हैं ( अर्थात् इसीसे गर्भवती स्त्रियोंकी चूँचियां पुष्ट ऊँची और दूधवाली होजाती हैं ) ॥ ३१ ॥

### यकृत, प्लीहा, फुप्फुस और उंडुककी उत्पत्ति ।

**गर्भस्य यकृत्प्लीहानौ शोणितजौ । शोणितफेनप्रभवः फुप्फुसः । शोणितकिट्टप्रभवः उंडुकः ॥ ३२ ॥**

गर्भगत बालकके शरीरमें यकृत( जिगर ) और प्लीहा ( तिल्ली ) ये दोनों रुधिरसे बनते हैं और फुप्फुस ( फेफडा ) रुधिर झागोंसे बनता है तथा उडुंक (पुरीषांत्र अर्थात् मलको धारण करनेवाला मोटा अंतडा) रुधिरकिट्टसे बनता है ( इनके आकार आदि अगाडी परिशिष्टमें लिखेंगे ) ॥ ३२ ॥

### अंत्रों ( अंतडियों ) की उत्पत्ति ।

**असृजः श्लेष्मणश्चापि यः प्रसादः परो मतः ॥ तं पच्यमानं पित्तेन वायुश्चाप्यनुधावति ॥ ततोऽस्यांत्राणि जायंते गुदं वस्तिश्च देहिनः ॥ ३३ ॥**

रक्त और कफका जो परम सार (प्रसाद) है जब वह पित्त करके पकता है और उसके अनुगत वायु गमन करताहै तब उससे गर्भमें मनुष्यके अंत्र (आंतडी) और गुदा तथा वस्ति ( मसाना ) ये बनते हैं अर्थात् रक्त और कफके प्रसादको जब पित्त पकाताहै तब उससे ये बनते हैं और वायु अनुगत होनेसे ये पोले अर्थात् थोथे होजाते हैं ( जैसे पिघले हुए काचमें वायु प्रविष्ट होनेसे नली आदि पोले पदार्थ बनजातेहैं ) ॥ ३३ ॥

---

( गद्य ३१ ) अपराममला इत्याहुः स्त्रियः (इति डल्हनः) अपरा जरायुर्नालसंज्ञ इत्यन्ये ॥ (गद्य३२) यकृत्प्लीहानावित्युपलक्षणं तेन क्लोमापि शोणितजः । उंडुकः पोट्टलकः ॥

### जिह्वाकी उत्पत्ति ।

उदरे पच्यमानानामाध्मानाद्रुक्ममसारवत् ॥
कफशोणितमांसानां सारो जिह्वा प्रजायते ॥ ३४ ॥

जैसे सुवर्णके तपायमान होनेसे कुन्दन बनता है वैसेही उदरमें पचायमान हुए कफ, रुधिर और मांसके सारसे जिह्वा उत्पन्न होती है ॥ ३४ ॥

### स्रोतों ( द्वारों ) और पेशियोंकी उत्पत्ति ।

यथार्थमूष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत् ॥
अनुप्रविश्य पिशितं पेशीर्विभजते तथा ॥ ३५ ॥

यथार्थ उष्णतासे जब वायु मिलता है तब स्रोतों ( मल मूत्रादिके वहानेवाले द्वारों ) को खोलता है अर्थात् बनाता है और उसी भांति मांसमें अनुप्रवेश करके पेशी ( मांसकी गिलटियां ) बना देता है ॥ ३५ ॥

मेदसः स्नेहमादाय शिरास्नायुत्वमाप्नुयात् ॥ शिराणां च मृदुः पाकः स्नायूनां च ततः खरः ॥ आशय्याभ्यासयोगेन करोत्याशयसंभवम् ॥ ३६ ॥

मेद ( चरबी ) का स्नेह लेकर वायु सिरा ( रग ) और स्नायु ( नसें ) बनाताहै उनमें सिरा ( रगों ) द्वारा नरम परिपाक होताहै और उससे तीक्ष्ण परिपाक स्नायु ( नसों ) द्वारा होताहै ( बारीक रगोंको शिरा कहतेहैं और मोटी नसों तथा पट्ठोंको स्नायु कहतेहैं ) और स्थितिका योग करके वायु आशयों ( वाताशय आदि ) की उत्पत्ति करताहै ॥ ३६ ॥

### वृक्कादिकी उत्पत्ति ।

रक्तमेदःप्रसादाद्वृक्कौ मांसासृक् कफमेदःप्रसादाद्वृषणौ शोणितकफप्रसादजं हृदयं यदाश्रया हि धमन्यः प्राणवहाः तस्याधो वामतः प्लीहा फुप्फुसश्च दक्षिणतो यकृत् क्लोम च ॥ ३७ ॥

रक्त और मेदके प्रसाद ( सार ) से वृक्क ( दोनों गुरदे ) पैदा होते हैं । मांस, रुधिर, कफ और मेदके सारसे वृषण ( अंडकोश ) बनतेहैं तथा रुधिर और कफके

---

( श्लो० ३४ ) 'उदरे' इत्यत्र हृदये इति वा पाठः ( इति गयः ) ॥ ( श्लो० ३५ ) यथार्थं यथाप्रयोजनमित्यर्थः। ऊष्मणा पित्तेन सह युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत् दारणं कुर्य्यात्। पेशी मांसखंडम् ॥

( श्लो० ३६ ) सिरास्नायुत्वमाप्नुयात् इति–सिराः स्नायूंश्च वायुः कुर्यादित्यर्थः । आशय्याभ्यासयोगेन वायुः स्थितिं कृत्वेत्यर्थः ( इति निबंधसंग्रहः ) ॥ ( वा० ३७ ) प्रसादः सारः । वृक्कौ कुक्षिगोलकौ ( इति डल्हनः ) ॥

प्रसादसे हृदय (दिल) बनताहै और उस हृदयके आश्रय प्राणको बहानेवाली धमनी (नाडियां) हैं इनके नीचे बायीं तरफ प्लीहा (तिल्ली) होतीहै और फुप्फुस (फेफडा) तथा दाहिने तरफ यकृत् (जिगर) और क्लोम (पित्ता) होताहै ॥ ३७ ॥

## निद्रा।

**तद्धृदयं विशेषेण चेतनास्थानमतस्तस्मिंस्तमसावृते सर्वप्राणिनः स्वपंति ॥ ३८ ॥ भवति चात्र–**

वह हृदय विशेष करके चेतनाका स्थान है इससे जब वह तमोगुणसे आच्छादित होता है तब प्राणी सोते हैं ॥ ३८ ॥ इसपर श्लोक है–

**पुंडरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम् ॥**
**जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतश्च निमीलति ॥ ३९ ॥**

हृदयका आकार कमलके सदृश नीचेको मुखवाला है, जागनेकी अवस्थामें वह प्रायः खिला हुआसा रहता है और सोनेकी अवस्थामें मिचा हुआ (बंद सा) हो जाता है ॥ ३९ ॥

**निद्रां तु वैष्णवीं पाप्मानमुपदिशंति सा स्वभावत एव सर्वप्राणिनोऽभिस्पृशति ॥ ४० ॥**

निद्राको सर्वव्यापी विष्णुकी माया और पापमय वर्णन करते हैं वह स्वभावहीसे सब प्राणियोंको स्पर्श करती है (अर्थात् सब प्राणिमात्रको यह निद्रा आती है)॥४०॥

## तामसी निद्रा।

**तत्र यदा संज्ञावहानि स्रोतांसि तमोभूयिष्ठः श्लेष्मा प्रतिपद्यते तदा तामसी नाम निद्रा सम्भवत्यनवबोधिनी सा प्रलयकाले॥४१॥**

---

(वा० ३८। ३९) हृदयस्य वर्णन तन्त्रातरात्–"उरोमध्यगत. कोष्ठः लवलीफलवर्तुलः। रक्ताधारश्चतुर्गर्भ आवरण्या समावृतः ॥१॥ तिर्य्यक्स्थो धमनीभूमिः फुफ्फुसद्वयशीर्षकः। स्फीत्याकुचनशीलोसौ हृत्कोष्ठ इति कीर्तितः ॥ २ ॥ अनिश स्फायते कोष्ठः प्रकृत्या संकुचत्यपि । आभूमिस्पर्शनाद्यावन्मृत्युः सर्वस्य देहिनः ॥३॥ तदाकुंचनतो रक्त महता खलु रंहसा । प्रविशेद्धमनीमूलं ततो भ्रमति विग्रहम्॥४॥ स्फायनाकुचने तस्य विरमेता क्षणं यदि । सहसैव भवेन्मृत्युर्नास्ति कोप्यत्र संशयः" ॥ ५॥ ननु सर्वस्मिन्काले स्फायनाकुंचन तदा कथ जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतश्च निर्मालतीति तत्राह–विकासनिमीलनावस्थानेपि स्फायनाकुंचनक्रिया समवतीति सिद्धांतः ॥

(वा० ४०) कृत्स्नशुभाशुभव्यापारनिरोधात् पाप्मानमिति वदंति । यद्यपि तन्त्रातरे सप्तविधा निद्रा पठिता तत्रापि त्रिविधैव-तामसी स्वाभाविकी वैकारिकी चेति (नि० सं०) ॥ (वा० ४१) अनवबोधिनी बोधप्रणाशिनी सुषुप्तिश्च सा प्रलयकाले, प्रलयशब्देनात्र केचित् सुषुप्ति व्याख्यानयति केचित् मृत्यु केचित् संसृतेर्नाशकालं चेति ॥

जब संज्ञाको प्राप्तकरनेवाले नाडियोंके छिद्रोंको तमोगुणकी बाहुल्यतावाला कफ प्राप्त होजाता है तब बोधका नाश करनेवाली तामसी नाम निद्रा होती है, यह प्रलयकालमें होती है ॥ ४१ ॥

स्वाभाविकी निद्रा ।

**तमोभूयिष्ठानामहःसु निशासु च भवति रजोभूयिष्ठानामनिमित्तं सत्त्वभूयिष्ठानामर्द्धरात्रे ॥ ४२ ॥**

तमोगुणकी बाहुल्यतावाले मनुष्योंको दिनमें भी निद्रा आती है और रात्रिमें भी अति निद्रा आती है तथा रजोगुणकी बाहुल्यतावालोंको वे नियम कभी २ दिनमें और कभी २ रात्रिमें निद्रा आती है तथा सत्त्वगुणकी बाहुल्यतावालोंको अर्द्धरात्रिके समय ( थोडीसी निद्रा ) आया करती है ॥ ४२ ॥

वैकारिकी निद्रा ।

**क्षीणश्लेष्मणामनिलबहुलानां मनःशरीराभितापवतां च नैव सा वैकारिकी भवति ॥ ४३ ॥ भवन्ति चात्र—**

जिनका कफ क्षीण हो जावे, वायु बढ जावे अथवा मन या शरीरमें संताप हो उन मनुष्योंको प्रायः निद्रा नहीं आती यदि आवे तो उसे वैकारिकी कहतेहैं ॥४३॥ इस विषयमें श्लोक हैं—

**हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत देहिनाम् ॥ तमोभिभूते तस्मिंस्तु निद्रा विशति देहिनाम् ॥ ४४ ॥ निद्राहेतुस्तमः सत्त्वं बोधने हेतुरुच्यते ॥ स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्तितः ॥ ४५ ॥ पूर्वदेहानुभूतांस्तु भूतात्मा स्वपतः प्रभुः ॥ रजोयुक्तेन मनसा गृह्णात्यर्थान् शुभाशुभान् ॥ ४६॥ करणानां तु वैकल्ये तमसाभिप्रवर्द्धिते ॥ अस्वपन्नपि भूतात्मा प्रसुप्त इव चोच्यते ॥ ४७ ॥**

---

( वा० ४२ ) यद्यपि सर्वासां निद्राणा तमोहेतुस्तथापि प्रकृष्टतमस्त्वात् तामसीरूपा अतिनिद्रा कथ्यते । अनिमित्त अनियतकालं चलत्वाद्रजसः कदाचिद्दिवा कदाचिद्रात्राविल्यर्थः ॥ ( वा० ४३ ) क्षीणकफादिकानां मनुजानां निद्रा नैव भवति यदि कदाचिद्भवति तदा सा वैकारिकी नाम । ननु यदा लंघनश्रमादिभिर्वायुर्वर्द्धते श्लेष्मा च क्षीयते तदा कथं निद्रा समुदेति अत्रोच्यते—मनसः श्रान्तत्वाद्भूतात्मविषयनिवृत्तौ प्राणिनः स्वपति तदुक्तं चरके—“यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः ॥ विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः” ॥ ( इति निबंधसं० )

( वा० ४६ ) पूर्वदेहानुभूतांस्त्विति—एतच्चोपलक्षणमतोऽनेनापि देहेनानुभूतान् । स्वापयुक्तस्य देहस्य प्रभुः क्षेत्रज्ञ. रजोयुक्तेन मनसा अव्यवस्थितान् शुभाशुभानर्थान् गृह्णातीति भावः ॥

धन्वंतरिजी कहते हैं कि हे सुश्रुत ! सब प्राणियोंका चेतनास्थान हृदयही है जब उसमें तमोगुण व्याप्त होता है तब प्राणियोंको निद्रा आती है ॥ ४४ ॥ निद्रा अवस्थाका हेतु तमोगुण है और बोध ( जाग्रत ) अवस्थाका हेतु सत्त्वगुण कहा है अथवा स्वभावही इन दोनोंका उत्कृष्ट हेतु कहा जाता है ॥ ४५ ॥ पूर्वजन्म वा इसी जन्मके जो दृष्टश्रुत शुभाशुभ अर्थ हैं उनको रजोगुण युक्त मनसे सोता हुआ जो क्षेत्रज्ञ जीव ग्रहण करता है ( उसे स्वप्न कहते हैं, इसका हेतु रजोगुण है ॥ ४६ ॥ जब तमोगुण बढकर इंद्रियोंमें विकलता ( यथोचित ज्ञानकी अशक्ति ) हो तब जागता हुआ भी जीवात्मा सोता हुआसा प्रतीत होता है ॥ ४७ ॥

दिनमें सोनेकी विधि और निषेध ।

**सर्वर्तुषु दिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्र ग्रीष्मात् ॥ ४८ ॥ प्रतिषिद्धेष्वपि तु बालवृद्धस्त्रीकर्षितक्षतक्षीणमद्यनित्ययानवाहनाध्वकर्मपरिश्रांतानामभुक्तवतां मेदःस्वेदकफरसरक्तक्षीणानामजीर्णिनां च मुहूर्तं दिवास्वपनमप्रतिषिद्धम् ॥ ४९ ॥ रात्रावपि जागरितवतां जागरितकालादर्द्धमिष्यते दिवास्वप्नः ॥ ५० ॥**

दिनमें सोना ग्रीष्म ऋतु ( गरमी ) के सिवाय सब ऋतुओंमें निषिद्ध है ॥४८॥ परंच निषिद्ध ऋतुओंमें भी बालक, वृद्ध, मैथुनसे थके हुए, उरःक्षत रोगवाले, क्षीण, नित्य मद्य पीनेवाले, सवारी, मार्ग और कामसे थके हुए, भोजन न करनेवाले तथा जिनके मेद, पसीना, कफ, रस और रुधिर ये क्षीण होगये हों तथा अजीर्णवाले ऐसे मनुष्योंको दो घडी दिनमें सोना निषिद्ध नहीं है ॥ ४९ ॥ और जो रातको जागे हों तो जितने समय रातको जागे हों उससे आधे समय दिनमें सो लेना चाहिये ॥ ५० ॥

दिनमें सोनेसे हानि ।

**विकृतिर्हि दिवास्वप्नो नाम । तत्र स्वपतामधर्मः सर्वदोषप्रकोपश्च तत्प्रकोपाच्च कासश्वासप्रतिश्यायशिरोगौरवांगमर्दाऽरोचकज्वराग्निदौर्बल्यानि भवंति ॥ ५१ ॥**

दिनका सोना विकृति ( विकार ) है ( अर्थात् ईश्वरके नियमसे विरुद्ध है ) इससे दिनमें सोनेवालोंको अधर्म होता है तथा सब दोषों ( वात, पित्त, कफ,

---

( गद्य ४९ ) प्रतिषिद्धेषु ऋतुषु । 'मद्यनित्ययान' इत्यत्र नित्यमद्यपान इति वा पाठः ॥

( गद्य ५१ ) सर्वदोष इत्यत्र सर्वशब्देन रक्तमपि गृह्यते ॥

रक्त ) का प्रकोप भी होजाता है उस प्रकोपसे खांसी, श्वास, जुखाम, शिरका भारीपन, अंगोंका टूटनासा, अरुचि, ज्वर और मंदाग्नि ये विकार होते हैं ॥ ५१ ॥

रातमें अधिक जागनेसे हानि ।

**रात्रावपि जागरितवतां वातपित्तनिमित्तास्त एवोपद्रवाः भवंति ॥ ५२ ॥ भवन्ति चात्र--**

रात्रिमें अति जागनेवालोंको भी वायु, पित्तके रोग और उनके उपद्रव होजाते हैं ॥ ५२ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं-

**तस्मान्न जागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥ ज्ञात्वा दोषकरावेतौ बुधः स्वप्नं मितं चरेत् ॥५३॥ अरोगः सुमना ह्येवं बलवर्णान्वितो वृषः ॥ नातिस्थूलकृशः श्रीमान्नरो जीवेत् समाः शतम् ॥ ५४ ॥ निद्रा सात्मीकृता यैस्तु रात्रौ च यदि वा दिवा ॥ न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां वा विधीयते ॥ ५५ ॥**

दिनमें सोने और रातमें अधिक जागनेसे विकार होता है इस कारण बुद्धिमान न रात्रिमें जागे और न दिनमें सोवे इन दोनोंको विकारकारक जानके यथोचित सोने ( और जागने ) का आचरण करे ॥ ५३ ॥ ऐसा करनेसे निरोग प्रसन्नचित्त बलवर्ण ( रूप ) युक्त पुरुषार्थी होते हैं न अधिक मोटे होते हैं न बहुत दुबले किंतु शोभायमान होकर सौ वर्ष मनुष्य जीते हैं ॥ ५४ ॥ जिन्होंने इच्छापूर्वक निद्राका अभ्यास किया हो (या जिनको जैसा माफकत हो ) उनको रात्रि या दिनमें कभी सोने तथा जागनेका दोष नहीं ॥ ५५ ॥

निद्रानाशका हेतु और यत्न ।

**निद्रानाशोऽनिलात्पित्तान्मनस्तापात्क्षयादपि ॥ संभवत्यभिघाताच्च प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥५६॥ निद्रानाशेऽभ्यंगयोगो मूर्ध्नि तैलनिषेवणम् ॥ गात्रस्योद्वर्तनं चैव हितं संवाहनानि च ॥५७॥ शालिगोधूमपिष्टान्नभक्ष्यैरैक्षवसंस्कृतैः ॥ भोजनं मधुरं स्निग्धं क्षीरमांसरसादिभिः ॥ ५८ ॥ रसैर्बिलेशयानां च विष्किराणां तथैव च ॥ द्राक्षासितेक्षुद्रव्याणामुपयोगो भवेन्निशि ॥५९॥ शयनासनयानानि मनोज्ञानि मृदूनि च ॥ निद्रानाशे तु कुर्वीत तथान्यान्यपि बुद्धिमान् ॥६०॥**

---

( श्लो० ५७ ) संवाहनं मृदुमर्दनम् ॥ ( श्लो० ६० ) अन्यानि प्रावरणपुष्पमालादीनि ॥

वायु और पित्तसे, मनके संतापसे तथा क्षयसे और चोट आदिकी पीडासे निद्राका नाश होजाता है और इनके विपरीत भावोंसे निद्रानाशकी शांति होती-है ॥ ५६ ॥ यदि निद्रानाश हो तो शरीरपर तेल मलके उबटन करना और स्नान करना चाहिये तथा शिरपर तैलका मर्दन करना और धीरे धीरे हाथ, पांव और शरीर दबवाना चाहिये ॥ ५७ ॥ शालि चावल, गेहूँ पिष्ट अन्न ( पिट्ठीके पदार्थ ), और शर्करा ( खांड ) के बने मधुर, चिकने, दूध या मांसरस ( शोरवे ) के साथमें उत्तम भोजन करने चाहिये ॥ ५८ ॥ बिलमें रहनेवाले जीवों ( शल्लकी, मूषक आदि ) तथा विष्किरों ( मुरगे ) आदिके रस ( शोरवे ) के संग तथा दाख, मिश्री और ईख ( गन्ने ) आदिका उपयोग रातको करे ॥ ५९ ॥ उत्तम नरम शय्या, साफ बिछोना या मुलायम गद्दी तथा सुन्दर मृदु पालकी जैसी सवारी इत्यादि पदार्थोंका उपयोग बुद्धिमान्को निद्रानाश होनेकी व्याधिमें करना हितकारक होता है ॥ ६० ॥

## अतिनिद्राका प्रतिकार ।

दैसेन्निद्रातियोगे तु कुर्य्यात्संशोधनानि च ॥
लंघनं रक्तमोक्षं च मनोव्याकुलनानि च ॥ ६१ ॥

यदि निद्रा अधिक आती हो तो वमन करावे तथा विरेचनादि द्वारा शोधन करे, लंघन करावे और रक्तमोक्ष ( फस्त ) करावे तथा मनके व्याकुल करनेवाले आचरण करावे ॥ ६१ ॥

## रातमें जागना तथा दिनमें सोना किनको हित है ।

कफमेदोविषार्तानां रात्रौ जागरणं हितम् ॥
दिवास्वप्नश्च तृट्शूलहिक्काजीर्णातिसारिणाम् ॥६२॥

जिनके शरीरमें कफ तथा मेद बढगये हों अथवा जो विषसे व्याप्त हों ऐसे मनुष्योंको रातमें भी जागना हित है । और जिन्हें तृषा, शूल, हिचकी, अजीर्ण और अतिसार ये रोग हों उन्हें दिनमें भी सोना अच्छा है ॥ ६२ ॥

## तन्द्राके लक्षण ।

इंद्रियार्थेष्वसंप्राप्तिं गौरवं जृंभणं क्लमः ॥
निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रा विनिर्दिशेत् ॥ ६३ ॥

इंद्रियां अपने२ अर्थोंमें ठीक प्राप्त न हों, शरीर भारी हो, जमाही आवे, थकानसी हो और निद्रायुक्तकेसी जिसकी चेष्टा हो उसे "तंद्रा" कहते हैं ॥ ६३ ॥

( श्लो० ६१ ) संशोधनादेव वमने लब्धे यद्वमनस्य पृथगुपादानं तद्विशेषेण ॥

जृंभा ।

पीत्वैकमनिलोच्छ्वासमुद्वेष्टन् विवृताननः ॥
यन्मुंचति सनेत्राश्रुं स जृंभ इति संज्ञितः ॥६४॥

जब मनुष्य ऊपरको मुँह पसार कर एक लंबी सांस खींचता है और फिर मुख मिचते २ कभी आखोंमें आँसू भरकर सांस छोडता है तो उस अवस्थाको " जृंभ " ( जमाही ) कहते हैं ॥ ६४ ॥

क्लम ।

योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः ॥
क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रवाधकः ॥ ६५ ॥

जिसमें अनायास ( बेपरिश्रम किये ) ही शरीरमें थकानसी हो और श्वास न बढे तथा इन्द्रियोंकी अपने अपने विषयोंमें कुछ २ अज्ञानता हो उसे "क्लम" कहते हैं ॥ ६५ ॥

आलस्य ।

सुखस्पर्शप्रसंज्ञित्वं दुःखद्वेषणलोलता ॥
शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मस्वालस्यमुच्यते ॥ ६६ ॥

जिस अवस्थामें सुखके स्पर्शकी लालसा रहे और दुःख ( श्रमादि ) दूर रहनेकी इच्छा हो तथा शक्ति होनेपर भी कार्योंमें उत्साह न हो तो उसे "आलस्य" कहते हैं ॥ ६६ ॥

उत्क्लेश ।

उत्क्लिश्यान्नं न निर्गच्छेत्प्रसेकष्ठीवनेरितम् ॥
हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ ६७ ॥

पेटका अन्न ऊपर ऊपरको आवे ( जी मिचलावे ) और अन्नादि बाहर न निकले (वमन हो नही) तथा हृदयमें दुःख हो तो उसे "उत्क्लेश" (हुड्डाक) कहते हे॥ ६७॥

ग्लानि ।

वक्त्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं भ्रमः ॥
न चान्नमभिकांक्षेत तस्य ग्लानिं विनिर्दिशेत् ॥६८ ॥

मुहमें मीठापन हो, तंद्रा हो, हृदयमें उद्वेष्टसी हो, भ्रम हो, अन्नपर रुचि न हो तो उसको "ग्लानि" कहते हैं ॥ ६८॥

गौरव।

**आर्द्रचर्मावनद्धं हि यो गात्रमभिमन्यते ॥**
**तथा गुरु शिरोऽत्यर्थं गौरवं तद्विनिर्दिशेत् ॥६९॥**

जब मनुष्य अपने शरीरको गीले चर्मसे ढका हुआसा ( गलगलायासा) जाने तथा शरीर भारी और शिर अति भारी हो तो इसे " गौरव." कहते हैं॥ ६९ ॥

**मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः ॥**
**तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥७०॥**

मूर्च्छा (बेहोश दंडाकारसा गिरे और जैसेहो वैसेही पडा रहे यह ) पित्त और तमोगुणकी प्रधानतासे हो और भ्रम ( अचेतहो कभी अस्त व्यस्त कहना या करना यह) रजोगुण और पित्त, वायुकी प्रधानतासे होता है तथा तंद्रा ( घुमेर ) तमोगुण और वायु, कफसे होती है तथा निद्रा कफ और तमोगुणसे होती है ॥ ७० ॥

**गर्भस्य खलु रसनिमित्ता मारुताध्माननिमित्ता च परिवृद्धिर्भवति ॥ ७१ ॥ भवन्ति चात्र-**

गर्भकी वृद्धि माताके रससेभी होतीहै और पवनके आध्मान ( धमने ) सेभी होती है ॥ ७१ ॥ इसी विषयपर श्लोक है-

**तस्यांतरेण नाभेस्तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम्॥तदा धमति वातस्तु देहस्तेनास्य वर्द्धते ॥ ७२ ॥ ऊष्मणा सहितश्चापि दारयत्यस्य मारुतः ॥ ऊर्द्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च स्रोतांस्यपि यथा तथा ॥ ७३ ॥ दृष्टिश्च रोमकूपाश्च न वर्द्धंते कदाचन ॥ ध्रुवाण्येतानि मर्त्यानामिति धन्वंतरेर्मतम् ॥७४॥ शरीरे क्षीयमाणेपि वर्द्धत द्वाविमौ सदा ॥ स्वभावं प्रकृतिं कृत्वा नखकेशावति स्थितिः ॥७५॥**

नाभिस्थानमें ध्रुव (निश्चल), ज्योतिःप्रकाशक अग्निका स्थान है वहां वायु धमन करता है उससे शरीर वढता है ॥७२॥ जब वह वायु गरमीसे मिलता है:तब बल

---

( श्लो० ६९ ) 'हि' स्थाने वा इति पाठांतरम् ॥ ( वा० ७१ ) रसनिमित्ता मातुराहारजन्यरसकृता। मारुताध्माननिमित्ता आध्मानं स्रोतसां पूरणं तदेव निमित्तं यस्याः । ( श्लो० ७२ ) नाभेरतरेण नाभिमध्ये अंतरेण मध्यार्थे ( इति डल्हनः ). । ज्योतिस्थानम् अग्निस्थानम् । ध्रुव निश्चलम् तच्च वायुराधमति ॥

( श्लो० ७३ ) ज्योतिःस्थानाध्मानेन मध्यस्रोतोवृद्धौ कथं सर्वतोवृद्धिरित्याह—ऊष्मणेति—यथातथाशब्दौ अत्रातर्भूतवीप्सार्थौ तेनोष्मणा सहितोऽनिलः यथा याऊर्ध्वं तिर्यक् अधस्ताच्च स्रोतांसि दारयति तथातथा देहो वर्द्धते इति पूर्ववाक्यात् संबधनीयः ( इति नि० सं० ) ( श्लो० ७४ ) दृष्टिः नेत्रांतर्गततिलमात्रम्॥

( श्लो० ७५ ) स्वभाव प्रकृति कृत्वा स्वभावं कारण कृत्वेत्यर्थ. ॥

करके ऊपर, तिरछा और नीचेको जहाँ जहाँ यथायोग्य है वहाँ २ स्रोतों(धमनीद्वारों) को खोलता है वैसेही शरीर बढता जाता है ॥७३॥ मनुष्योंके दृष्टि ( नेत्रोंके तिल ) और रोमकूप ( रोमछिद्र ) ये शरीरवृद्धिके साथ २ कभीभी नहीं बढते क्योंकि ये स्थिर हैं यह धन्वंतरिजीका मत है॥७४॥ और शरीर क्षीण होनेपर ( बुढापेमें )भी स्वभावकी प्रकृतिसे नाखून और बाल ये दो वस्तु सदा बढतेहीहैं ॥ ७५ ॥

## प्रकृति।

**सप्त प्रकृतयो भवंति दोषैः पृथक् द्विशः समस्तैश्च ॥ ७६ ॥ शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेद्दोष उत्कटः ॥ प्रकृतिर्जायते तेन तस्या मे लक्षणं शृणु ॥७७॥**

प्रकृति ( तासीर मिजाज या खासियत ) सात प्रकारकी होतीहै तीनों दोषोंसे पृथक् २ तीन जैसे वातप्रकृति,पित्तप्रकृति और कफप्रकृति तथा दो दो दोषोंकी तीन जैसे वात-पित्त प्रकृति, वात-कफ प्रकृति और कफ-पित्त प्रकृति। तथा एक तीनोंसे मिलकर त्रिदोष प्रकृति ऐसे ७ प्रकारकी प्रकृति होतीहैं ॥७६॥ गर्भाधानके समय पिताके शुक्र और माताके शोणितके संयोगमें जौनसा दोष प्रधान उत्कट होताहै उसीसे वही प्रकृति मनुष्यकी होतीहै उसके पृथक् २ लक्षण सुनों ॥ ७७ ॥

## वातप्रकृति।

**तत्र जागरूकः शीतद्वेषी दुर्भगः स्तेनो मत्सर्यनार्यो गांधर्वचित्तः स्फुटितकरचरणोऽतिरूक्षश्मश्रुनखकेशः क्रोधी दंतनखखादी च भवति ॥ ७८ ॥ अधृतिरदृढसौहृदः कृतघ्नः कृशपरुषो धमनीततः प्रलापी ॥ द्रुतगतिरटनोनवस्थितात्मा वियदपि गच्छति संभ्रमेण सुप्तः ॥ ७९ ॥ अव्यवस्थितमतिश्चलदृष्टिर्मंदरत्नधनसंचयमित्रः ॥ किंचिदेव विलपत्यनिबद्धं मारुतप्रकृतिरेष मनुष्यः ॥८०॥ वातिकाश्चाजगोमायुशशाखूष्ट्रशुनां तथा ॥ गृध्रकाकखरादीनामनूकैः कीर्तिता नराः ॥ ८१ ॥**

---

( श्लो० ७६ ) हीनमध्याधिकभेदेन प्रकृतीनामनेकप्रकारत्वेपि मुख्यतया सप्तैव ॥ ( श्लो० ७७ ) वातादिषु गर्भाधाने य उत्कटः तेन सा एव प्रकृतिर्भवति। उत्कटस्तु स्वभावस्थितो न तु प्रकुपितः। वातादयो द्विविधा ह्युत्कटाः प्राकृता वैकृताश्च। तत्र प्राकृतोत्कटैः सप्तविधा प्रकृतिः वैकृतैस्तु गर्भव्यापत्तिरिति सिद्धांत। वाग्भटस्त्वित्याह-"शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयर्तुषु ॥ यस्माद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता ॥ १ ॥" ( श्लो० ७९ ) दुर्भग. अमनोहराकारः कुचेष्टश्च। स्तेनः चौरः। मत्सरी परशुभासहनशीलः। अनार्यः असत्पुरुषः ( नि० स० ) ॥ ( श्लो० ८१ ) अनूक इति-अनूकशब्दः गतजन्मनि कुले शीले च ( इति शब्दस्तोमः )

बहुत जागनेवाला, शीतका द्वेषी और दुर्भग (बुरी चेष्टावाला), जिसमें चोरीकी लत हो, मत्सरता युक्त हो, अनार्य हो, गंधर्वोंकेसा जिसका चित्त हो अर्थात् गानेका प्रेमी हो, हाथ, पैर बहुत फटते हों, जिसके डाढी, मूछ, नखून और बाल अति रूखे हों, क्रोधी हो और दांतों तथा नखोंको चबानेवाला हो ॥ ७८ ॥ धैर्य रहित हो, दृढ प्रेम न करे, कृतघ्न (किये हुए उपकारका न माननेवाला) हो, दुबला हो, शरीर खुरदरा हो, शीघ्र २ श्वास लेनेवाला हो (अथवा जिसके शीघ्र सांस चढ-आवे), बहुत बोले, जलदा २ चले, बहुत फिरे, चलचित्त हो, सोते हुए स्वप्नमें आकाशचारी हो ॥ ७९ ॥ बुद्धि स्थिर न हो, चंचलदृष्टि हो, रत्नादि धनसंचय और मित्र जिसके अधिक न हों, कभी कभी कोई २ बात अस्तव्यस्तभी कह उठे ऐसे मनुष्यको वातप्रकृति (सौदायी) जानना ॥ ८० ॥ बकरा, गीदड, सुसा, चूहा, ऊँट और कुत्ता, गीध, काक और गधा ये जंतुभी वातप्रधान होतेहैं इससे वातप्रकृति मनुष्य भी कुछ २ इनके स्वभावसे मिलते हुए होतेहैं ॥८१॥

पित्तप्रकृति ।

स्वेदनो दुर्गन्धः पीतशिथिलांगस्ताम्रनखनयनतालुजिह्वौष्ठपाणिपादतलो दुर्भगो वलीपलितखालित्यजुष्टो बहुभुगुष्णद्वेषी क्षिप्रकोपप्रसादो मध्यमबलो मध्यमायुश्च भवति ॥८२॥ मेधावी निपुणमतिर्विगृह्यवक्ता तेजस्वी समितिषु दुर्निवारवीर्यः ॥ सुप्तः सन् कनकपलाशकर्णिकारान् संपश्येदपि च हुताशविद्युदुल्काः ॥ ८३ ॥ न भयात्प्रणमेदनतेष्वमृदुः प्रणतेष्वपि सान्त्वनदानरुचिः ॥ भवतीह सदा व्यथितास्यगतिः स भवेदिह पित्तकृतप्रकृतिः ॥ ८४ ॥ भुजंगोलूकगंधर्वयक्षमार्जारवानरैः ॥ व्याघ्रर्क्षनकुलानूकैः पैत्तिकास्तु नरा मताः ॥ ८५ ॥

---

(वा० ८२) ताम्रः अरुणवर्णः (इति शब्दस्तोमः) ॥

(श्लो० ८३।८४) मेधावीति—मेधा विद्यते यस्य सा मेधा धारणावतीबुद्धिः । निपुणा क्रियासु दक्षा मतिर्यस्य । विगृह्य वक्ता अवधार्य वक्ता अथवा परवाक्यमुच्छिद्य वचनशीलः (इति डल्लनः) समितिषु संग्रामेषु । सान्त्वन मुपशमः । व्यथितास्यगतिः व्यथितमुखः मुखपाकत्वात् (इति डल्लनः) । अन्ये तु व्यथितास्यगीतिरित्यत्र अस्य गतिर्व्यथिता गमने व्यथा भवतीति समर्थयन्ति ॥ (श्लो० ८५) भुजगोलूकगंधर्व इत्यत्र गंधर्वः पठितः तथा च वातप्रकृतावपि गांधर्वचित इति पठितस्तयोःत्रको भेद इत्याह—गानादौ तु वातप्रकृतिकः क्रोधे पित्तप्रकृतिकः संयोज्य गंधर्वेषु क्रोधाधिक्यमपि ॥

जिसके पसीना बहुत आवे, ( देहमें या पसीनेमें ) दुर्गंध हो, शरीर पीला और शिथिल हो, नखून, नेत्र, तालु वा जिह्वा, हथेली और तलवे विशेष लाल हों, लावण्यसे रहित हों, शरीरमें थोडी अवस्थाहीमें झरी पडजाय, और बाल सुपद हो जायँ, शिरके बाल उडजायँ, बहुत भोजन करे, उष्णताका द्वेषी हो ( धूप गरमी नहीं सुहावे ), शीघ्रही क्रोध हो जाय और शीघ्रही प्रसन्न हो जाय, बल और आयु मध्यम हो ॥ ८२ ॥ बुद्धिमान् हो, चतुराई युक्त हो, बातको सोच समझकर कहे, तेजस्वी हो, संग्राममें रुके नहीं ( शूरवीर हो ), सोते हुए स्वप्नमें सुवर्ण, केसूके फूल, सुरख कनेरके फूल, आग, बिजली, प्रकाश इत्यादि विशेष देखे ॥ ८३॥ भय दिखानेपरभी नरम न हो और जो अपनेसे नहीं नवे उससे आपभी कडा रहे और जो आपसे नवे उससे शांति करे और उसे कुछ दे देनेकी रुचि करे, मुहकी गति सदाही प्रायः व्यथित रहे ( मुँह आया रहे ) ऐसा मनुष्य पित्तप्रकृति (सफरावी गरम तासीरवाला ) होता है ॥ ८४ ॥ सर्प, उल्लू, गंधर्व, यक्ष, मार्जार, वानर, व्याघ्र, रीछ, नकुल ये भी पित्तप्रधान होते हैं इससे पित्तप्रकृति मनुष्योंका स्वभाव ( आदत ) प्रायः इनके सदृश होता है ॥ ८५ ॥

कफप्रकृति ।

दूर्वेंदीवरनिस्त्रिंशार्द्रारिष्टशरकांडानामन्यतमवर्णः सुभगः प्रियदर्शनो मधुरप्रियः कृतज्ञो धृतिमान् सहिष्णुरलोलुपो बलवांश्चिरग्राही दृढवैरश्च भवति ॥ ८६ ॥ शुक्लाक्षः स्थिरकुटिलातिनीलकेशो लक्ष्मीवान् जलदमृदंगसिंहघोषः ॥ सुप्तः सन् सकमलहंसचक्रवाकान् संपश्येदपि च जलाशयान्मनोज्ञान् ॥ ८७ ॥
रक्तांतनेत्रः सुविभक्तगात्रः स्निग्धच्छविः सत्वगुणोपपन्नः ॥
क्लेशक्षमो मानयिता गुरूणां ज्ञेयो बलासप्रकृतिर्मनुष्यः ॥ ८८ ॥
दृढशास्त्रमतिः स्थिरमित्रधनः परिगणय्य चिरात्प्रददाति बहु ॥
परिनिश्चितवाक्यपदः सततं गुरुमानकरश्च भवेत्स सदा ॥ ८९ ॥

( वा० ८६ ) इन्दीवरं नीलोत्पलम् । निस्त्रिंशः निर्गतास्त्रिंशद्भ्योऽगुलीभ्य इति निस्त्रिंशः खड्गः त्रिंशदंगुल्यधिकस्यैव खड्गत्वात् । ततो न्यूनत्वे तु छुरिका (इति वाचस्पतिः) । अरिष्टः निंबः अथवा फेनिलवृक्षः लोके रीठा इति प्रसिद्धः ॥ (श्लो० ८७ ) कुटिलो वक्रः ॥ ( श्लो०८९ ) पदशब्देनात्र सुप्तिङन्तरूपस्य वर्णसमुदायस्य वा चरणस्य ग्रहणम् । केचित्तु वातादिप्रकृतिषु वातिकाश्चाजगोमायुरिति तथा भुजगोलूकगंधर्व इति तथा दृढशास्त्रमतिरिति तथा ब्रह्मेन्द्ररुद्रवरुणैरितिचतुरश्चत्वारः श्लोकाः न पठनीयाः दोषकत्वादिति वदति ॥

**ब्रह्मरुद्रेन्द्रवरुणैः सिंहाश्वगजगोवृषैः ॥ तार्क्ष्यहंसैः समानूकाः श्लेष्मप्रकृतयो नराः ॥ ९० ॥**

जिसका वर्ण दूर्वा, इंदीवर ( नील कमल ), निस्त्रिंश ( खड्ग ), आर्द्रारिष्ट (स्निग्ध नींबके पत्ते ) अथवा ( ताजे रीठे) तथा शरकांड (सरकंडा) इनमेंसे किसीके समान ( सांवला ) हो, सुभग ( सुंदर ) और दीखनेमें मनोहर हो, मीठा भोजन जिसे अच्छा लगे, कृतज्ञ हो ( किसीके गुण भूले नहीं ), धैर्यवान् हो, शीत, उष्ण, सुख, दुःख और परिश्रमादिका सहनेवाला हो, जितेंद्रिय हो, बलवान् हो, देरसे हरेक बातको स्वीकार करे तथा दृढ वैर रखनेवाला हो अर्थात् किसी वैरीसे शीघ्र प्रसन्न न हो ॥ ८६ ॥ आंखे सुपेद हों, गहरे घुघराले तथा अत्यंत काले बाल हों, धनवान् हो ( अर्थात् फिजूल खर्च न हो ) और मेघ, मृदंग तथा सिंहके समान गंभीर शब्द बोले, सोतेमें कमल, हंस और चक्रवाकों सहित मनोहर जलाशयों ( तालाब, नदियों ) को देखे ॥ ८७ ॥ जिसकी आंखोंके कोने लाल हों, सब शरीर सुडौल हो, शरीरपर स्निग्ध कांति हो ( स्निग्ध शरीर हो ) और सत्त्वगुणसे संयुक्त हो, क्लेश सहनेकी शक्ति हो, बडे लोगोंका सत्कार करनेवाला हो ऐसा मनुष्य कफप्रकृति जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ जिसकी बुद्धि शास्त्रमें स्थिर हो और मित्रों और धनको स्थिर रखनेवाला हो, देरसे सोच, सँभाल कर बहुत देनेवाला हो, बातको निश्चय विचार कर कहे और पांवको जमा जमा कर धीरे धीरे धरे और प्रायः गुमान विशेष करनेवाला हो ॥ ८९ ॥ ब्रह्मा, शिव, इंद्र, वरुण, सिंह, अश्व, हाथी, गौ और वृषभ तथा गरुड और हंस ये कफप्रकृति हैं इससे इनके स्वभावके समान प्रायः कफप्रकृतियोंका स्वभाव होताहै ॥ ९० ॥

**द्वयोर्वा तिसृणां वापि प्रकृतीनां तु लक्षणैः ॥**
**ज्ञात्वा संसर्गजा वैद्यः प्रकृतीरभिनिर्दिशेत् ॥ ९१ ॥**

यदि दो अथवा तीन प्रकृतियोंके कुछ कुछ लक्षण मिले हुए जान पडें तो वैद्य उन्हें विचार कर संसर्गज प्रकृति कहे ( जैसे किसीमें कुछ वातप्रकृतिके लक्षण पाये जायं और कुछ पित्तप्रकृतिके तो उसे वात-पित्त प्रकृति जानना और जिसमें वात और कफके कुछ २ लक्षण हों उसे वात-कफ प्रकृति और जिस किसीमें कफ और पित्तके लक्षण हों उसे कफ-पित्त प्रकृति जानना) और जिसमें तीनोंके कुछ २ लक्षण हों उसे त्रिदोष प्रकृति जानना चाहिये ॥ ९१ ॥

**प्रकोपो वान्यथाभावः क्षयो वा नोपजायते ॥ प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुषः ॥ ९२ ॥ विषजातो यथा कीटो न वि-**

(श्लो० ९० ) 'तार्क्ष्यहंसैः समानूका' इत्यत्र तार्क्ष्यहंससमानूका इति वा समस्तः पाठः ॥

षेर्ण विपद्यते ॥ तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवंति न बाधितुम् ॥९३॥

स्वभावहीसे प्रकृतियोंका प्रकोप और अन्यथाभाव ( पलट जाना ) तथा क्षय नही होताहै यदि किसीको होजाय तो उसे गतायु( आसन्न मृत्यु ) समझना चाहिये (जैसे वातप्रकृति मनुष्योंको वायुका कोप या पित्तप्रकृति, कफप्रकृति होजाना या वायुका विशेषक्षय होजाय तो उसे मृत्युकारक जानों ) क्योंकि प्रकृतिके दोषका कोप तथा पलटा अथवा क्षय मृत्युके समीपही होताहै ॥९२॥ विषका पैदा हुआ कीडा जैसे विषसे व्यथित नही होता वैसेही प्रकृतिके वातादि दोष भी मनुष्यको विशेष बाधा नहीं करते ॥ ९३ ॥

प्रकारांतर ।

प्रकृतिमिह नराणां भौतिकीं केचिदाहुः पवनदहनतोयैः कीर्तितास्तास्तु तिस्रः ॥ स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमावान् शुचिरथ चिरजीवी नाभसः खैर्महद्भिः ॥ ९४ ॥

कोई ऐसा कहतेहैं कि मनुष्योंकी प्रकृति पांचभौतिकी अर्थात् पृथिवीप्रधान, जलप्रधान, तेजप्रधान, वायुप्रधान तथा आकाशप्रधान होती हैं उनमें वातप्रकृति वायुप्रधान, पित्तप्रकृति तेजःप्रधान और कफप्रकृति जलप्रधान जाननी चाहिये । इन तीनोंके लक्षण हम कहचुके ( शेष रहीं दो ) उनमेंसे जिसका शरीर स्थिर हो,वडा ( विशाल ) हो, क्षमायुक्त हो उसे पार्थिव ( पृथ्वीप्रधान प्रकृति ) जानों और जो बहुत पवित्र रहे, चिरजीवी हो जिसके नाक, कान आदिके छिद्र बडे चौडे हों(और हलका हो )वह आकाशप्रधान जानना चाहिये ॥ ९४ ॥

ब्रह्मकायादिके लक्षण ।

शौचमास्तिक्यमभ्यासो वेदेषु गुरुपूजनम् ॥ प्रियातिथित्वमिज्या च ब्रह्मकायस्य लक्षणम् ॥ ९५ ॥ माहात्म्यं शौर्यमाज्ञा च सततं शास्त्रबुद्धिता ॥ भृत्यानां भरणं चापि माहेन्द्रं कायलक्षणम् ॥ ९६ ॥ शीतसेवासहिष्णुत्वं पैंगल्यं हरिकेशता ॥ प्रियवादित्वमित्येतद्वारुणं कायलक्षणम् ॥ ९७ ॥

जिसमें पवित्रता हो, आस्तिकता हो, वेदादि शास्त्रोंमें अभ्यास हो, गुरुके पूजनमें निष्ठा हो, आये हुए अतिथि (अभ्यागत तथा महिमान ) प्यारे लगें, यज्ञा-

( श्लो०९३ ) शक्नुवंति न बाधितुमित्यत्र नञ् ईषदर्थे तेन किंचित् बाधितुं शक्नुवंति न तु भृशम् । ( इति डल्हन० ) ॥ ( श्लो० ९६ ) माहात्म्य महाशयत्वम् ॥ ( श्लो० ९७ ) पैंगल्य पिंगाक्षता । हरिकेशता कपिलकेशता ॥

दिमें प्रीति हो वह ब्रह्मसत्त्व शरीर होता है ॥ ९५ ॥ जिसमें माहात्म्य ( महाशयत्व ) हो, शूरता हो, आज्ञाशक्ति हो, निरंतर शास्त्रमें बुद्धि हो, भृत्योंका भरण करे वह महेंद्रकाय अर्थात् महेंद्रसत्त्व शरीर होता है ॥ ९६ ॥ शीतल पदार्थोंका विशेष सेवन करे, सुखदुःखादिको सहसके, नेत्र पीले हों तथा बालभी भूरे हों, प्यारे वचन बोले वह वरुणसत्त्वशरीर मनुष्य होता है ॥ ९७ ॥

**मध्यस्थता सहिष्णुत्वमर्थस्यागमसंचयौ ॥ महाप्रसवशक्तित्वं कौबेरं कायलक्षणम् ॥ ९८ ॥ गंधमाल्यप्रियत्वं च नृत्यवादित्रकामिता ॥ विहारशीलता चैव गांधर्वं कायलक्षणम् ॥ ९९ ॥ प्राप्तकारी दृढोत्थानो निर्भयः स्मृतिमाञ्शुचिः ॥ रागमोहभयद्वेषैर्वर्जितो याम्यसत्त्ववान् ॥ १०० ॥ जपव्रतब्रह्मचर्यहोमाध्ययनसेविनम् ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नमृषिसत्त्वं नरं विदुः ॥ १०१ ॥ सप्तैते सात्त्विकाः कार्या राजसांस्तु निबोध मे ॥ १०२ ॥**

जिसका स्वभाव मध्यस्थ होनेका हो (हरेकके बीचमें पड उनका झगडा मिटावे, सहनशीलता हो, जिसके धनका आगमभी बहुत हो और संचयभी हो, बहुत सन्तान पैदा करनेकी शक्ति हो यह कुवेरसत्त्व शरीरके लक्षण हैं ॥ ९८ ॥ जिसे सुगंध माला प्रिय हो, नाच और गानेका शौक हो, विहार ( सैल तमाशे ) का शौकीन हो यह गंधर्वसत्त्व कायके लक्षण हैं ॥ ९९ ॥ कामोंको युक्तिसे करे और दृढतासे कामका आरंभ करे, भय रहित हो, स्मृति बहुत हो अर्थात् भूले नहीं, पवित्र रहे तथा प्रेम, मोह, भय और द्वेष इनसे वर्जित हो उसे यमसत्त्व शरीरके लक्षणोंसेयुक्त जाने ॥ १०० ॥ जो प्रायः जप, व्रत, ब्रह्मचर्य, होम और पठन पाठनमें विशेष प्रवृत्त रहे, ज्ञान और विज्ञानसे युक्त हो उसे ऋषिसत्त्व मनुष्य जानो ॥ १०१ ॥ ये पूर्वोक्त सात प्रकृति सात्त्विक ( सत्त्वगुण प्रधान ) शरीरोंकी होतीहैं इसके अगाडी रजोगुणप्रधान प्रकृति शरीरोंके लक्षण सुनो ॥ १०२ ॥

**ऐश्वर्यवंतं रौद्रं च शूरं चंडमसूयकम् ॥ एकाशिनं चौदरिकमासुरं सत्त्वमीदृशम् ॥ १०३ ॥ तीक्ष्णमायासिनं भीरुं चंडं माया-**

---

( श्लो० ९९ ) नृत्यवादित्रकामिता नृत्यवाद्यप्रियत्वम् ॥ ( श्लो० १०० ) प्राप्तकारी युक्तकारी । दृढोत्थानः दृढारंभः । ( इति डल्हनः ) ॥ ( श्लो० १०३ ) रौद्रं भयानकम् । चंडं तीव्रकोपम् । असूयकं परगुणेषु मत्सरिणम् । एकाशिनं एकाकी एव चाश्नातीत्यर्थः । औदरिकं घस्मरं गयदासस्तु औदरिकमित्यत्र औपाधिकमिति पठति औपाधिकं छद्मपरमिति च व्याख्याति ॥

न्वितं तथा ॥ विहाराहारचपलं सर्पसत्त्वं विदुर्नरम् ॥ १०४ ॥ प्रवृद्धकामसेवी चाप्यजस्राहार एव च ॥ अमर्षणोऽनवस्थायी शाकुनं कायलक्षणम् ॥ १०५ ॥

जो ऐश्वर्यवाला हो, भयानक हो, शूरवीर हो, प्रचण्ड ( अतिकोपवान् ) हो, पराई निंदा करे, आप अकेलाही अकेला खावे और औदारिक ( पेटभरा अर्थात् बहुत खानेवाला ) हो उसे असुरसत्त्व मनुष्य कहतेहैं ॥ १०३ ॥ जो तीव्रस्वभाववाला हो, परिश्रमी हो तथा डरपोक ( या क्रोधरहित ) हो, चंड ( कोपयुक्त ) हो, मायावी हो, विहार और आचारमें चपल हो उस मनुष्यको सर्पसत्त्व जानो॥१०४॥ जो अतिकामी हो तथा सदा खाताही रहे, क्रोधी हो और एक जगह जिसका चित्त न लगे अर्थात् भ्रमणशील हो वह शाकुनसत्त्व होताहै ॥ १०५ ॥

एकांतग्राहिता रौद्रमसूया धर्मबाह्यता ॥ भृशमात्रं तमश्चापि राक्षसं कायलक्षणम् ॥ १०६ ॥ उच्छिष्टाहारता तैक्ष्ण्यं साहसप्रियता तथा ॥ स्त्रीलोलुपत्वं नैर्बल्यं पैशाचं कायलक्षणम् ॥१०७॥ असंविभागमलसं दुःखशीलमसूयकम् ॥ लोलुपं चाप्यदातारं प्रेतसत्त्वं विदुर्नरम् ॥ १०८ ॥ षडेते राजसाः कायास्तामसांस्तु निबोध मे ॥ १०९ ॥

जो प्रायः एकांत रहना ग्रहण करे, भयानक हो, परनिंदा करे और धर्मविरुद्ध हो, अति तमोगुणी हो तो यह राक्षससत्त्वकायके लक्षण हैं ॥ १०६ ॥ जो उच्छिष्ट भोजन करे, तीक्ष्ण हो, साहसके साथ काम करे, स्त्रीका लोलुप हो ( स्त्रीसंगकी अति इच्छा करे ) और निर्बल हो ये पिशाचसत्त्वके लक्षण हैं ॥१०७॥ जो ठीकर विभाग न करे ( या जिसके शरीरके अंगोंके ठीक भाग न हों ), आलसी हो, दुःखशील हो, निंदक हो, लोलुप हो, दानशील न हो उस मनुष्यको प्रेतसत्त्व कहतेहैं ॥ १०८ ॥ ये छःप्रकारके राजस ( रजोगुण प्रधान ) प्रकृतिके मनुष्य होतेहैं इसके अगाडी तामस ( तमोगुण प्रधान प्रकृति ) मनुष्योंके लक्षण सुनो ॥१०९॥

दुर्मेधस्त्वं मंदता च स्वप्ने मैथुननित्यता ॥ निराकारिष्णुता चैव विज्ञेयाः पाशवा गुणाः ॥ ११० ॥ अनवस्थितता मौर्ख्यं भीरुत्वं

( श्लो० १०४ ) "विहाराहारचपलम्" इत्यत्र विहाराचारचपलम् इति वा पाठः । भीरु चंडमिति परस्पर विरोधोस्ति तत्राह-अक्रोधे भीरु क्रोधे चंडमित्यर्थः ॥ ( श्लो० १०५ ) अजस्राहारः अनवरताहारः । ( इति नि० सं० ) अमर्षणः क्रोधने असहने च ( इति शब्दस्तोमः ) ॥

सलिलार्थिता ॥ परस्पराभिमर्षश्च मत्स्यसत्त्वस्य लक्षणम् ॥१११॥ एकस्थानेरतिर्नित्यमाहारे केवले रतः ॥ वानस्पत्यो नरः सत्त्वधर्मकामार्थवर्जितः ॥ ११२ ॥ इत्येते त्रिविधाः कायाः प्रोक्ता वै तामसास्तथा॥ कायानां प्रकृतीर्ज्ञात्वा त्वनुरूपां क्रियां चरेत्॥११३॥

दुष्टबुद्धिता और मंदता हो, नित्य स्वप्नमें मैथुन करे, किसी कार्यके करनेकी बुद्धि न हो ये पशुसत्त्व मनुष्योंके गुण हैं ॥ ११० ॥ किसी कार्यमें चित्त स्थिर न होना, मूर्खता, डरपोकपना, जलकी विशेष अभिलाषा रहना और आपसमें एक दूसरेसे द्वेष रखना ये मत्स्यसत्त्व मनुष्योंके लक्षण हैं ॥ १११ ॥ जो विशेष एकही जगह सदा पडा रहे और केवल भोजनही करनेम रुचि रक्खे वह सत्त्वगुण धर्म, अर्थ और कामसे वर्जित वानस्पत्य (वनस्पतिसत्त्व) मनुष्य होता है ॥११२॥ इस प्रकार ये तीन भांतिके तमोगुणप्रधान प्रकृतिके मनुष्यदेह वर्णन किये अब इसमें वैद्योंको चाहिये कि शरीरोंकी प्रकृतिको विचारकर उसके अनुसारही क्रिया करें ॥ ११३ ॥

महाप्रकृतयस्त्वेता रजःसत्त्वतमःकृताः ॥
प्रोक्ता लक्षणतः सम्यग् भिषक् तांश्च विभावयेत् ॥ ११४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण करके की हुई ये महाप्रकृति लक्षण पूर्वक वर्णन की हैं इनको (और वातादि प्रकृतियोंको) वैद्य लक्षणोंसे भले प्रकार विचारकर फिर चिकित्सादि विधान करें ॥ ११४ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० शारीरस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

## पंचमोऽध्यायः ५.

अथातः शरीरसंख्याव्याकरणं शारीरं व्याख्यास्यामः ॥

गर्भकी विवेचनाके पीछे अब शरीरके अंग, प्रत्यंगके विवरणविषयक शारीरकका व्याख्यान करते हैं ॥

शुक्रशोणितं गर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसंमूर्च्छितं गर्भ इत्युच्यते ॥ १ ॥ तं चेतनावस्थितं वायुर्विभजति । तेज एनं पचति । आपः क्लेदयन्ति । पृथिवी संहंति । आकाशं विवर्द्ध-

---

(वा० १) शरीरसंख्याव्याकरणमिति-गर्भव्याकरणानंतरमुत्पन्नस्य संजाताङ्गप्रत्यंगतया शरीरसंज्ञस्य शरीरावयवानां संख्यां कर्तुं युज्यते । पंचमहाभूतशरीरिसमवायः शरीरं तस्य संख्या अवयवसंख्या तस्या व्याकरण विवरणम् ॥

यति । एवं विवर्द्धितः स यदा हस्तपादजिह्वाघ्राणकर्णनितंबादिभिरंगैरुपेतस्तदा शरीरमिति संज्ञां लभते । तच्च षडंगं शाखाश्चतस्रो मध्यं पंचमं षष्ठं शिर इति ॥ २ ॥

माताके गर्भाशयमें क्षेत्रज्ञ ( जीव ) और प्रकृति ( प्रधानादि ) तथा विकार ( पंचमहाभूत और एकादश इंद्रिय ) इनसे मिश्रित शुक्र और शोणितका जो घनीभूत आकार हो वह गर्भ कहलाता है ॥ १ ॥ उस चेतनायुक्त गर्भको वायु विभाग करता है अर्थात् दोष, धातु, मल और अंग, प्रत्यंगोंको जुदा जुदा यथावस्थित करता है और तेज ( अग्नितत्त्व ) उसे पकाता है तथा जलतत्त्व क्लेदन ( आर्द्रता ) करता है और पृथिवीतत्त्व उसे कडा ( मूर्तिमान् ) कर देता है तथा आकाश उसे बढाता है । जब इस प्रकारसे बढा हुआ गर्भ हाथ, पांव, जिह्वा, नासिका, कर्ण और नितंब ( चूतड ) आदि अंगोंसे उपयुक्त होजाता है तब यह शरीरसंज्ञाको प्राप्त होता है वह शरीर छः अंगोंवाला होता है, जिनमें चार अंग तो चारों शाखा अर्थात् दो हाथ और दो पांव और पांचवां अंग मध्यभाग अर्थात् धड़ और छठा अंग शिर कहलाता है ( यूनानीवाले अंडकोश और लिंगको सातवां अंग मानते हैं इससे शरीरको "हफ्त अंदाम" अर्थात् सात अंगवाला शरीर कहते हैं ) ॥ २ ॥

अतः परं प्रत्यंगानि वक्ष्यंते ॥

इससे अगाडी प्रत्यंगोंको कहते हैं ॥

मस्तकोदरपृष्ठनाभिललाटनासाचिबुकबस्तिग्रीवा इत्येता एकैकाः कर्णनेत्रनासाभ्रूशंखांसगंडकक्षस्तनवृषणपार्श्वस्फिग्जानुबाहूरुप्रभृतयो द्वे द्वे विंशतिरंगुलयः स्रोतांसि च वक्ष्यमाणानि एष प्रत्यंगविभाग उक्तः ॥ ३ ॥

मस्तक, पेट, पीठ, नाभि, ललाट, नाक, ठोडी, वस्ति और ग्रीवा ( गरदन ) ये एक एक होते हैं और कान, आंख, नाकके नथने, भ्रुकुटी, शंख ( कनपटी ), अंस ( खौंदे ), गंड ( गाल ), काख, चूँची, वृषण ( अंड ), पँसवाडे, स्फिक् ( कूले ), घुटने, हाथ और साथल ( और प्रभृति शब्दसे होठ तथा सृक्किणी आदि ) ये दो दो होते हैं और बीस अंगुली तथा स्रोत ( मुख, लिंग, गुदादि ) जो अगाडी कहे जावेंगे यह सब प्रत्यंगविभाग कहा है ( अर्थात् ऊपर छः अंग कहे और ये प्रत्यंग कहे हैं ) ॥ ३ ॥

शरीरके अवयवोंका संक्षिप्त वर्णन ।

तस्य पुनः संख्यानम् । त्वचः कला धातवो मला दोषा यकृत्प्ली-

हानौ फुप्फुस उंडुको हृदयमाशया अंत्राणि वृक्कौ स्रोतांसि कंडरा जालानि कूर्चा रज्जवः सेवन्यः संघाताः सीमंता अस्थीनि संधयः स्नायवः पेश्यो मर्माणि सिरा धमन्यो योगवहानि स्रोतांसि च॥४॥

शरीरके अवयव संक्षिप्ततासे इसप्रकार हैं कि त्वचा ( चर्म ), कला (झिल्लिका), धातु ( रस, रक्त, मांस, मेद आदि ), मल ( विष्ठा, मूत्रादि ), दोष ( वात,पित्त, कफ ), यकृत् ( जिगर ), प्लीहा ( तिल्ली ), फुप्फुस ( फेफडा ), उंडुक (मलाधार मोटा अंतडा ), हृदय ( हृत्कमल या दिल ), आशय ( आमाशय अर्थात् भोजन जाकर ठहरने और पकनेकी जगह जिसे यूनानी हकीम मेदा कहतेहैं इत्यादि ) अंत्र (अंतडियां), वृक्क ( गुरदे ), स्रोत (द्वार), कंडरा ( मोटी नसें ),जाल ( मांसादिका जाल ),कूर्च(कुँचले), रज्जु (बंधनी मांसरज्जु), सेवनी ( सीवन ), संघात(अस्थिशृंगाटक), सीमंत(केश), अस्थि (हाड), संधि (जोड), स्नायु, (नसें ), पेशी(गिलटियां ), मर्म ( मर्मस्थान), सिरा ( बारिक रगें ),धमनी( नाडी ) और योगवाही स्रोतस् ( अन्न उदकादिको वहानेवाले स्रोत ) और चकारशब्दसे अन्यभी जानने ॥ ४ ॥

त्वचः सप्त। कलाः सप्त। आशयाः सप्त। धातवः सप्त। सप्त सिराशतानि। पंच पेशीशतानि। नव स्नायुशतानि। त्रीण्यस्थिशतानि। द्वे दशोत्तरे संधिशते। सप्तोत्तरं मर्मशतम्। चतुर्विंशतिर्धमन्यः। त्रयो दोषाः। त्रयो मलाः। नव स्रोतांसीति समासः ॥ ५ ॥

त्वचा सात हैं ( इनका वर्णन पहले कर चुके हैं), कलाभी सात हैं ( इन्हेंभी कह चुके हैं ) और आशय (वाताशय, आमाशयादि) येभी सात हैं और धातु(रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये ) भी सात हैं तथा सिरा ( रगें ) सातसौ ७०० हैं और पेशी ( गिलटियां ) पांचसौ५०० हैं और स्नायु नौसौ९०० हैं और हड्डियां तीनसौ ३०० हैं और दोसौ दश २१० संधि हैं और एकसौ सात १०७ मर्म हैं तथा चौबीस धमनी हैं और दोष तीन हैं और मल तीन हैं तथा नौ स्रोत ( द्वार ) हैं यह संक्षिप्त वर्णन है ॥ ५ ॥

विस्तारोऽत ऊर्ध्वम्। त्वचोऽभिहिताः कला धातवो मला दोषा यकृत्प्लीहानौ फुप्फुस उंडुको हृदयं वृक्कौ च ॥ ६ ॥

इससे अगाडी विस्तार कहते है। जिसमेंसे त्वचा, कला,धातु,मल, दोष, यकृत्, प्लीहा,फुप्फुस, उंडुक, हृदय और वृक्क इनको बता चुके हैं ( निदर्शनमात्र कहचुके हैं। इनका विस्तृत वर्णन हम ग्रंथांतर और मतांतरसे अन्यत्र करेंगे ) ॥ ६ ॥

## आशय ।

**आशयास्तु वाताशयः पित्ताशयः श्लेष्माशयो रक्ताशय आमाशयः पक्वाशयो मूत्राशयः स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टम इति ॥ ७ ॥**

आशय इस प्रकारसे हैं कि १ वाताशय ( नाभिसे दो अंगुल नीचे ), २ पित्ताशय ( यही आमाशय है यह नाभिसे कुछ ऊपर है इसेही पित्ता कहते हैं ), ३ कफाशय ( यह छातीके नीचे आमाशयके ऊपर है ), ४ रक्ताशय (छातीमें हृदयके पास है ), ५ आमाशय (यह नाभिसे स्तनपर्यंत है इसे मेदा कहते हैं), ६ पक्वाशय ( यह वाताशयके नीचे है इसीका अधोभाग मलाशय कहाता है ), ७ मूत्राशय ( यही वस्ति अर्थात् मसाना कहाता है यह नाभिसे नीचे लिंगके मूलतक है ) और स्त्रियोंके आठ८वां गर्भाशय होताहै (यह पक्वाशय और पित्ताशयके मध्यमें होताहै)७॥

## अंत्रप्रमाण ।

**सार्द्धत्रिव्यामान्यन्त्राणि पुंसां स्त्रीणामर्द्धव्यामहीनानि ॥८॥**

पुरुषोंकी अंत्र ( आंतें ) साढे तीन व्याम लंबी होतीहैं और स्त्रियोंकी आंतें उससे आधा व्याम कम अर्थात् तीन व्याम लंबी होती हैं (पसवाडोंके तरफ तिरछे दोनों हाथ फैलानेसे जो उनका अंतर होताहै वह व्याम कहलाताहै ) ॥ ८ ॥

## स्रोत ( द्वार )

**श्रवणनयनवदनघ्राणगुदमेढ्राणि नव स्रोतांसि नराणां बहिर्मुखान्येतान्येव स्त्रीणामपराणि च त्रीणि द्वे स्तनयोरधस्ताद्रक्तवहं च ॥ ९ ॥**

दो कर्ण, दो नेत्र, एक मुख, दो नासिकाके छिद्र, एक गुदा, एक लिंग इस प्रकार बाहरको मुखवाले ये नौ द्वार पुरुषोंके शरीरमें होते हैं और स्त्रियोंके इनसे अधिक तीन और द्वार होते हैं, दो स्तन ( चूंची ) और एक आर्तवका मार्ग गर्भाशय होताहै ॥ ९ ॥

---

( वा० ७ ) आशयक्रमो भावमिश्रेणैवमुक्तः "उरो रक्ताशयस्तस्मादधः श्लेष्माशयः स्मृतः । आमाशयस्तु तदधस्तल्लिंगं चरकोवदत् ॥ १ ॥ नाभिस्तनान्तरे जतोराहुरामाशयं बुधाः ॥ आमाशयादधः पक्वाशयादूर्ध्वं तु या कला ॥ ग्रहणीनामिका सैव कथितः पाचकाशयः॥ २ ॥ऊर्ध्वमग्न्याशयो नाभेर्मध्यभागे व्यवस्थितः ॥ तस्योपरि तिल ज्ञेय तदधः पवनाशयः ॥ ३ ॥ पक्वाशयस्तु तदधः स एव तु मलाशयः ॥ तदधः कथितो वस्तिः स हि मूत्राशयो मतः ॥४॥" इति आशयाः वाग्भटेनोक्ताः। रक्तस्याधः क्रमात्परे—"कफामपित्तवातानामाशया मलमूत्रयोः ॥ स्त्रीणा गर्भाशयः प्रोक्तः पित्तपक्वाशयान्तरे" इति ॥ १ ॥ रक्ताशयो यकृत्प्लीहानाविति केचित् ॥ ( वा० ८ ) व्यामः तिर्यक्पार्श्वतो विस्तृतयोर्बाह्वोरंतरालपरिमाणम् ( इति शब्दस्तोमः ) ॥ ( वा० ९) "दशमं मस्तके प्रोक्त रंध्राणीति नृणां विदुः ॥" ( इति भावमिश्रः ) ॥

कंडरा।

षोडश कंडराः। तासां चतस्रः पादयोस्तावत्यो हस्तग्रीवापृष्ठेषु तत्र हस्तपादगतानां कंडराणां नखाः प्ररोहाः ग्रीवाहृदयानिबंधिनीनामधोभागगतानां मेढ्रं श्रोणिपृष्ठनिबंधिनीनामधोभागगतानां बिंबः मूर्द्धोरुवक्षोक्षिपिंडादीनां च ॥ १० ॥

कंडरा ( मोटी नसें ) सोलह होती हैं उनमेंसे ४ दोनों पावोंमें तथा चारही दोनों हाथोंमें और ४ ग्रीवामें और चारही पीठमें होती हैं जिनमें हाथ और पावोंकी कंडरा नीचेको जाती हैं और उनके अग्रभाग ( अंगुलियोंके ) नख होते हैं (अर्थात नख पर्यंत जाकर हाथ, पावोंकी कंडरा समाप्त होती हैं )। ग्रीवा और हृदयको बाँधनेवाली जो चार कंडरा हैं नीचे जाकर उनका अग्रभाग मेढ् होता है ( अर्थात् ये मेढ्पर समाप्त होती हैं ) और पीठको कमरसे बांधनेवाली जो चार कंडरा हैं नीचे जाकर उनका अग्रभाग नितंबबिंब ( चूतड ) हैं ( अर्थात् ये चूतडों पर्यंत जाकर समाप्त होती हैं ) इसी प्रकार मूर्द्धा, उर, वक्षस्थल, नेत्र, पिंडादिके मंडल भी ( इन्हीं कंडराओंके उपरिगत अग्रभाग हैं ऐसा ) जानना ॥ १० ॥

जाल।

मांसशिरास्नाय्वस्थिजालानि प्रत्येकं चत्वारि चत्वारि तानि मणिबंधगुल्फसंश्रितानि परस्परनिबद्धानि परस्परसंश्लिष्टानि परस्परगवाक्षितानि चेति[1] यैर्गवाक्षितमिदं[2] शरीरम्[3] ॥ ११ ॥

मांस, शिरा ( रग ), स्नायु ( नस ) तथा हड्डियां इनमेंसे प्रत्येकके चार चार जाल हैं वे जाल दोनों मणिबंधों ( पहुचों ) में और दोनों गुल्फ ( पांवके टकनों ) में ऐसे इन चारों स्थानोंमें चारों प्रकारके जाल हैं वे परस्पर बँधे हुए और परस्पर मिले ( लिपटे ) हुए तथा परस्पर जालीके समान हैं इसीसे इस शरीरको गवाक्षित अर्थात् झरोखे युक्त कहते हैं ॥ ११ ॥

कूर्च।

षट् कूर्चास्ते हस्तपादग्रीवामेढ्रेषु। हस्तयोर्द्वौ। पादयोर्द्वौ। ग्रीवामेढ्रयोरेकैकः ॥ १२ ॥

---

( वा० १० ) कंडराप्रयोजनमाह भावमिश्रः-"महत्यः स्नायवः प्रोक्ताः कंडरास्तास्तु षोडश। प्रसारणाकुञ्चनयोर्दृष्टं ताभ्या प्रयोजनम् ॥" ( वा० ११ ) मणिबंधः मणिर्बध्यतेऽत्र इति मणिबंधः प्रकोष्ठपाण्योर्मध्यस्थे करग्रंथौ(इति शब्दस्तोमः)गुल्फः पादग्रंथौ ॥(वा०१२) कूर्चाः इति-कूर्चः भ्रुवोर्मध्यस्थिते लोमोच्चये श्मश्रूणि(इति शब्दस्तो०) भावमिश्रस्तु-"कूर्चा अपि शिरास्नायुमांसास्थिप्रभवाः स्मृताः"इति॥

कूर्च अर्थात् कूँचले जो कूँचीके तुल्य होते हैं छः हैं वे हाथों, पावों, ग्रीवा और लिंग इनके मूलमें हैं । हाथोंके मूलमें दो (दो जगह) इसी भांति पावोंके मूलमें भी दो तथा ग्रीवामें एक और मेढ्रके मूलमें भी एक है ( कूर्चके तुल्य छोटे और कडे केशोंको कूर्च कहते हैं और कई मांस, सिरा और स्नायु आदिके अंकुरित पदार्थको कूर्च बतलाते हैं ) ॥ १२ ॥

मांसरज्जु ।

**महत्यो मांसरज्जवश्चतस्रः । पृष्ठवंशमुभयतः पेशीनिबंधनार्थं द्वे बाह्ये आभ्यंतरे च द्वे ॥ १३ ॥**

बडी मोटी मांसकी रज्जु ( रस्से सदृश ) चार हैं वे पीठके बांसके दोनों तरफ पेशियोंके बांधनेके निमित्त हैं जिनमेंसे दो बाहरकी तरफ दोनों ओर हैं और दो भीतरकी दोनों तरफ हैं ॥ १३ ॥

सेवनी ।

**सप्त सेवन्यः । शिरसि विभक्ताः पंच जिह्वाशेफसोरेकैका ताः परिहर्तव्याः शस्त्रेण ॥ १४ ॥**

सेवनी ( सीवन ) शरीरमें सात हैं, पांच जगह तो शिरमें हैं और एक जिह्वामें और एक लिंगेंद्रियके नीचे ये सीवनें शस्त्रसे बचानी चाहिये ( यदि नश्तर लगानेका काम पडे तो इन्हें बचाकर लगाना चाहिये ) ॥ १४ ॥

अस्थिसंघात ।

**चतुर्दशास्थ्नां संघाताः । तेषां त्रयो गुल्फजानुवंक्षणेषु । एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ । त्रिकशिरसोरेकैकः ॥ १५ ॥**

अस्थिसंघात ( हड्डीके शृंगाटक ) चौदह इस शरीरमें हैं उनमेंसे तीन एक पांवमें ऐसे हैं कि एक तो टकनेमें, एक घुटनेमें और एक जंघाके मूलमें । इसीप्रकार तीन दूसरे पांवमें और तीन एक हाथमें । इसी भांतिके एक पहुँचेमें, एक कोहनीमें, एक खोदेमें । ऐसेही तीन दूसरे हाथमें ये बारह १२ हुए और एक त्रिकस्थानमें और एक शिरमें ऐसे सब १४ हुए ( किसी किसीके मतसे ये अस्थिसंघात १८ होते हैं जो १४ तो उपर्युक्त और १ छातीमें जिसे कौडी कहते हैं तथा १ दोनों नितंबोंके बीचमें जिसे ढूंढी कहते हैं और दो दोनों अंसकूटोंपर ऐसे १८ हुए ) ॥ १५ ॥

---

( वा० १३ ) गयी तु-महत्यो मांसरज्जवश्चतस्रः पृष्ठवंशमुभयत इत्यग्रे प्रतिपादयति ( इति निबंधसंग्रहः ) ॥ ( वा० १५) अत्र तु त्रिकपदेन बाहुग्रीवास्थिसंघात उच्यते ॥

सीमंत।

चतुर्दशैव सीमंतास्ते चास्थिसंघातवद्गणनीयाः यतस्तैर्युक्ता अस्थि-संघाताः। ये ह्युक्ताः संघातास्तु खल्वष्टादशैकेषाम् ॥ १६ ॥

सीमंत मनुष्यशरीरमें १४ हैं वे अस्थिसंघातके भांतिही गिनने चाहिये क्योंकि अस्थिसंघात सीमंतोंसे मिले हुए हैं ( सीमन्त अवयवकी सीमाके अन्तको कहतेहैं ) और जो पहले १४ अस्थिसंघात कहेहैं किसीके मतसे वे १८ होते हैं ( उनको १५ वें वाक्यकी टीकामें हम गिनाचुके हैं ) ॥१६॥

अस्थिसंख्या।

त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषंते। शल्यतंत्रे तु त्रीण्येव शतानि। तेषां सविंशमस्थिशतं शाखासु। सप्तदशोत्तरं शतं श्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरःसु। ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं त्रिषष्टिः। एवम-स्थ्नां त्रीणि शतानि पूर्यंते ॥ १७ ॥

इस मनुष्यशरीरमें वेदवादी विद्वान् तीनसौ साठ ३६० हड्डियां कहतेहैं परन्तु शल्य-तंत्र ( चीरफाड़की विद्या ) से केवल तीनसौ ३०० ही प्रतीत होतेहैं जिनमेंसे एक-सौ बीस १२० हड्डियां तो चारों हाथों, पैरोंमें हैं और एकसौ सत्रह ११७ कमर पँसवाडे, पीठ, उदर और छातीमें हैं तथा तिरसठ ६३ हड्डियां ग्रीवासे ऊपर चेह-रेमें हैं ऐसे सब मिलकर पूरी तीनसौ ३०० हुई ॥१७॥

पृथक् पृथक् अस्थिगणना।

एकैकस्यां तु पादांगुल्यां त्रीणि त्रीणि तानि पंचदश। तलकूर्च-गुल्फसंश्रितानि दश। पाष्णर्यामेकम्। जंघायां द्वे। जानुन्येकम्। एकमूराविति। त्रिंशदेवमेकस्मिन् सक्थ्नि भवंति। एतेनेतरस-क्थिबाहू च व्याख्यातौ। श्रोण्यां पंच तेषां गुदभगनितंबेषु चत्वा-रि। त्रिकसंश्रितमेकम्। पार्श्वे षट्त्रिंशदेवमेकस्मिन्। द्वितीयेप्ये-वम्। पृष्ठे त्रिंशत्। अष्टावुरसि। द्वे अक्षकसंज्ञे। ग्रीवायां नवकम्। कंठनाड्यां चत्वारि। द्वे हन्वोः। दंता द्वात्रिंशत्। नासायां त्रीणि। एकं तालुनि। गंडकर्णशंखेष्वेकैकम्। षट् शिरसि ॥ १८ ॥

---

(वा०१६) "चतुर्दशैव सीमंताः कथिता मुनिपुंगवैः। संघाताः सीविता यैस्तु सीमंतास्ते प्रकीर्तिताः॥" (भा० प्र० ) ॥

एक एक पांवकी अंगुलीमें तीन तीन हड्डियां हैं ऐसे पांच अंगुलियोंमें १५ हुईं और तलवे, पंजे और टकनेमें १० ( इस भांति कि अंगुलियोंकी सीधमें ५, इनके जोडमें १, कूर्चमें २ और टकनेमें दो ऐसे १० हुईं ), एडीमें १, जंघामें २, जानु ( घुटने ) में १ और साथलमें १ ऐसे सब एक पाँवमें तीस हड्डी हुईं इसी हिसाबसे दूसरे पांवमें ३० और दोनों हाथोंमें ६० बस चारों हाथ पावोंमें १२० होगई। और कमरमें ५ उनमें गुदापर एक, भग या लिंगके ऊपर १, दोनों चूतडोंमें २ और त्रिकसंधिमें १ ( ऐसे ५ हुईं ), एक पसवाडेमें ३६ और दूसरे पसवाड़ेमेंभी ३६ तथा पीठमें ३० और उर ( छाती ) में ८ और अक्षकसंज्ञ ( हंसली ) की २ ऐसे धड़में सब ११७ हुईं ग्रीवामें ९ और कंठनाडीमें ४ और ठोडीमें २ और दांत ३२, नासिकामें ३, तालुमें १, गलोथे, कान और कनपटीमें एक एक दोनों तरफ ६, हुईं, और शिरमें ६ हड्डियां हैं ऐसे चेहरेकी सब ६३ हुईं ( इन सबको मिलाया तो हाथ, पांवोंकी १२०, धड़की ११७ और चेहरेकी ६३ सब ३०० पूरी हुईं ) ॥ १८॥

**एतानि पंचविधानि भवंति । तद्यथा कपालरुचकतरुणवलयनलकसंज्ञानि। तेषां जानुनितंबांसगंडतालुशंखशिरःसु कपालानि। दशनास्तु रुचकानि। घ्राणकर्णग्रीवाक्षिकोषेषु तरुणानि। पाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरोरस्सु वलयानि। शेषाणि नलकसंज्ञानि॥ १९॥**

**भवन्ति चात्र-**

ये पूर्वोक्त सब अस्थि पांच प्रकारके हैं। यथा कपालसंज्ञक, रुचक सं०, तरुणसं०, वलय सं० और नलकसंज्ञक। इनमेंसे घुटने, चूतड़, खौंदे, गलोथे, तालु, कनपटी और शिरमें कपालसंज्ञक ( शरावाकृति ) अस्थि हैं। और दांत रुचक ( कीलसरीखे ) हैं। और नाक, कान, ग्रीवा, नेत्र, कोष इनमें तरुण ( कोमल ) अस्थि हैं। और हाथ, पांव, पँसवाडे, पीठ, पेट, वक्षस्थल ( छाती ) इनमें वलयसंज्ञक ( गुंफित और खमदारसे ) अस्थि हैं शेष अंगुलियों, बाहु, जंघा आदिमें नलकसंज्ञक ( नलिकाके आकार बीचसे खाली ) अस्थियां हैं ॥ १९ ॥ इस विषयमें श्लोक है-

**अभ्यंतरगतैः सारैर्यथा तिष्ठंति भूरुहाः ॥ अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियंते देहिनां ध्रुवम् ॥ २० ॥ तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् ॥ अस्थीनि न विनश्यंति साराण्येतानि देहिनाम् ॥२१॥ मांसान्यत्र निबद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा ॥ अस्थीन्यालंबनं कृत्वा न शीर्यन्ते पतंति वा ॥ २२ ॥**

जैसे भीतरके सार पदार्थसे वृक्षादि स्थित रहते हैं उसी प्रकार अस्थिके सारसे मनुष्योंके शरीर धारण किये हुए स्थित रहते हैं ॥ २० ॥ इसी कारणसे यदि कभी त्वचा, मांसादि चिरविनष्ट होजायँ ( अर्थात् घटजायँ, सूखजायँ, क्षय होजायँ) तो भी अस्थि नष्ट नहीं होते नहीं घटते इसीसे ये देहीके सार हैं ॥ २१ ॥ इन अस्थियोंमें शिरा और स्नायुवोंसे मांस बँधा हुआ है और अस्थियोंको आलंबन करके मज़बूत किये हुए हैं इस कारणसे ये अस्थि न तो बिखरतेहैं और न गिरतेहैं ॥ २२ ॥

## संधि ।

**संधयस्तु द्विविधाश्चेष्टावंतः स्थिराश्च ॥ २३ ॥ शाखासु हन्वोः कट्यां च चेष्टावंतस्तु संधयः ॥ शेषास्तु संधयः सर्वे विज्ञेया हि स्थिरा बुधैः ॥ २४ ॥**

मनुष्यशरीरमें संधि दो प्रकारकी होती हैं १ चेष्टावाली (जिनमें पसारने, सुकोड़ने या मुडनेकी शक्ति हो), दूसरे स्थिर जो पसारी, सकोडी न जावें ॥२३॥ जिनमें शाखा ( हाथ, पैरों ) और हनु (ठोडी) तथा कमर इन स्थानोंमें चेष्टावाली (चलायमान ) संधियां होती हैं और शेष सब स्थिर संधियां हैं ॥ २४ ॥

**संख्यातस्तु दशोत्तरे द्वे शते । तेषां शाखास्वष्टषष्टिरेकोनषष्टिः कोष्ठे । ग्रीवां प्रत्यूर्द्ध्वं त्र्यशीतिः ॥ २५ ॥ एकैकस्यां पादांगुल्यां त्रयस्त्रयो द्वावंगुष्ठे ते चतुर्दश । जानुगुल्फवंक्षणेष्वेकैकः । एवं सप्तदशैकस्मिन् सक्थ्नि भवंति । एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ २६ ॥ त्रयः कटीकपालेषु । चतुर्विंशतिः पृष्ठवंशे । तावंत एव पार्श्वयोः । उरस्यष्टौ । तावंत एव ग्रीवायाम् । त्रयः कंठे । नाडीषु हृदयक्लोमनिबद्धास्वष्टादश । दंतपरिमाणा दंतमूलेषु । एकः काकलके नासायां च । द्वौ वर्त्ममंडलजौ नेत्राश्रयौ गंडकर्णशंखेष्वेकैकः । द्वौ हनुसंधी । द्वावुपरिष्टाद्भ्रुवोः शंखयोश्च । पंच शिरःकपालेषु । एको मूर्ध्नि ॥ २७ ॥**

संख्यामें सब संधि दोसौ दश २१० हैं उनमेंसे हाथ, पाँवोंमें ६८ और धडमें ५९ और ग्रीवासे ऊपर ८३ संधियां हैं ॥ २५ ॥ एक एक पाँवकी अंगुलीमें तीन तीन और अँगुठेमें २ ये सब १४ हुईं और टकनेमें १, घुटनेमें १ और कूलेमें १ ऐसे एक पांवमें सब १७ संधियां हुईं फिर इसी हिसाबसे दूसरे पाँवमें १७ और

हाथमें १७ फिर दूसरे हाथमें १७ ऐसे चारों हाथ, पैरोंमें सब ६८ संधियां हुई॥२६॥ कमर और कपालिकास्थिके बीचमें ३ संधि हैं और पीठके बांसमें २४ और पँसवाड़ोंमेंभी २४ छातीमें ८ और ग्रीवामेंभी ८ और कंठमें ३ तथा हृदय और क्लोमसे बँधीहुई नाडी ( नलिका ) में १८ और दांतोंके मूलमें ३२ और घंटिकामें १, नासिकामेंभी १, नेत्रोंके वर्त्ममंडलमें २, गलोंथा, कर्ण और कनपटियोंमें एक एक ये ६, ठोडीमें २, भ्रुकुटीके ऊपर और शंखमें दो दो, शिर कपालमें ५ और मूर्द्धामें १ इस प्रकार सब संधि २१० हुई ॥ २७ ॥

त एते संधयोऽष्टविधाः । कोरोदूखलसामुद्गप्रतरतुन्नसेवनीवायसतुंडमंडलशंखावर्ताः । तेषामंगुलिमणिबंधजानुगुल्फकूर्परेषु कोराः संधयः । कक्षवंक्षणदशनेषूदूखलाः । अंसपीठगुदपादनितंबेषु सामुद्गाः । ग्रीवापृष्ठवंशयोः प्रतराः । शिरःकटिकपालेषु तुन्नसेवनी । हन्वोरुभयतस्तु वायसतुंडाः । कंठहृदयनेत्रक्लोमनाडीषु मंडलाः । श्रोत्रशृंगाटकेषु शंखावर्ताः ॥ २८ ॥

ये उक्त सब संधियां आठ प्रकारकी हैं १ कोर ( कलिकावत् ), २ उदूखल ( ऊखल जैसी ), ३ सामुद्ग ( संपुटवत् ), ४ प्रतर ( डोंगे सदृश ), ५ तुन्नसेवनी ( सीवनके सदृश ), ६ वायसतुंड ( काककी चोंचके सदृश ), ७ मंडल ( गोल ), ८ शंखावर्त ( शंखकी आँटीके सदृश ) इनमेंसे अँगुली, पहुँचा, घुटना, टकना और कोहनी इनमें कोरसंज्ञक संधि हैं। कांख, वंक्षण ( कूले ) और दाँतोंमें उदूखल सदृश संधियां हैं। अंस ( खोदे ), पीठ, गुदा, पैर और चूतड इनमें सामुद्गसंज्ञक संधि हैं। ग्रीवा और पीठके वांसमें प्रतरसंज्ञक संधि हैं। शिर, कमर और कपालमें तुन्नसेवनी संधि हैं। ठोडीके दोनों तरफ वायसतुंड संज्ञक संधि हैं। कंठ, हृदय, नेत्र और क्लोम नाडी ( नलिका ) इनमें मण्डलाकार संधि हैं। और कान, शृंगाटकोंमें शंखावर्तके तुल्य संधि हैं ॥ २८ ॥

अस्थ्नां तु संधयो ह्येते केवलाः परिकीर्तिताः ॥
पेशीस्नायुशिराणां तु संधिसंख्या न विद्यते ॥ २९ ॥

---

( वा० २८ ) कोरो नाम गर्भस्तदाकृतयः कोराः । कोरः कलिका तदाकृतय इत्यन्ये । उदूखलः तडुलखडनोपयोगी तदाकृतय उदूखलाः । समुद्गः संपुटस्तदाकृतयः सामुद्गाः प्रतरः प्रतरंत्यनेनेति प्रतरः मेलकस्तादाकृतयः प्रतराः । तुन्नसेवनी तुन्ना क्षिप्ता सेवनी यत्र वस्त्रसेवनीवदित्यर्थः । वायसतुंडाः काकतुंडाकृतयः । मंडलाकृतयो मडलाः । शखस्यावर्तवत् शंखावर्ता इति ॥

ये जो पूर्व वर्णन की गई हैं वे केवल हड्डियोंकी संधियां हैं और पेशी, स्नायु और शिरा इनकी संधियोंकी संख्या नहीं होसकती अर्थात् पेशी ( गिलटी पट्टे ) और नसों और शिरा ( रगों ) की संधियां अनंत हैं ॥ २९ ॥

स्नायु ।

नव स्नायुशतानि । तासां शाखासु षट्शतानि । द्वे शते त्रिंशच्च कोष्ठे । ग्रीवां प्रत्यूर्द्ध्वं सप्ततिः ॥ ३० ॥ एकैकस्यां तु पादांगुल्यां षट् निचितास्तास्त्रिंशत् । तावत्य एव तलकूर्चगुल्फेषु । तावत्य एव जंघायाम् । दश जानुनि । चत्वारिंशदूरौ । दश वंक्षणे । शतमध्यर्द्धमेवमेकस्मिन्सक्थ्नि भवंति । एते नेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ ३१ ॥ षष्टिः कट्याम् । अशीतिः पृष्ठे । पार्श्वयोः षष्टिः । उरसि त्रिंशत् । षट्त्रिंशद् ग्रीवायाम् । मूर्ध्नि चतुस्त्रिंशत् । एवं नव स्नायुशतानि व्याख्यातानि ॥ ३२॥ भवंति चात्र-

मनुष्यके शरीरमें नौसौ ९०० स्नायु अर्थात् नसें हैं जिनमेंसे ६०० तो शाखा अर्थात् चारों हाथ, पैरोंमें हैं और २३० धडमें हैं । और ग्रीवासे ऊपर चेहरेमें ७० नसें हैं ॥ ३० ॥ एक एक पांवकी अँगुलीमें छः छः नसें हैं पांचों अंगुलियोंकी मिलकर ३० हुई । और ३० ही तलवे, पंजे और टकनेमें हैं । और ३० ही जंघा अर्थात् पिडलीमें हैं । तथा दश घुटनेमें हैं । और ४० साथलमें हैं । और १० वंक्षण ( कूले ) में ऐसे एक पाँवमें सब १५० नसें हुई । इसी हिसाबसे दूसरे पांवमें १५० तथा एक हाथमें १५० और दूसरे हाथमें भी १५० इस भांति चारों हाथ, पैरोंमें सब ६०० नसें हैं॥ ३१ ॥ कमरमें ६० नसें हैं और पीठमें ८० पँसवाडोंमें ६० और वक्षस्थलमें ३० हैं ऐसे सब धडकी २३० नसें हुई । फिर ग्रीवामें ३६ और मूर्द्धा ( चेहरे ) में ३४ ऐसे ग्रीवासे ऊपर ७० नसें होगई और सब मिलकर ९०० होगई ॥ ३२ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं-

स्नायुश्चतुर्विधा विद्यात्तांस्तु सर्वा निबोध मे ॥ प्रतानवत्यो वृत्ताश्च पृथुलाः सुषिरास्तथा ॥ ३३ ॥ प्रतानवत्यः शाखासु सर्वसंधिषु चाप्यथ ॥ वृत्तास्तु कंडराः सर्वाः ज्ञेयास्ताः कुशलैरिह ॥ ३४ ॥ आमपक्वाशयांतेषु वस्तौ च सुषिराः खलु ॥ पार्श्वोरसि तथा पृष्ठे पृथुलाश्च शिरस्यथ ॥ ३५ ॥

स्नायु चार प्रकारकी होती हैं जिन्हें मुझसे सुनो १ प्रतानवती, २ वृत्त, ३ पृथुल, ४ सुषिर ॥ ३३ ॥ हाथ, पैरोंमें प्रतानवती ( वेलकी तरह फैली हुइ ) नसें

हैं और संधियोंमें भी प्रतानवतीही नसें हैं तथा जो नसें गोल हैं उन्हेंही कंडरा जानना, इन्हें पहले बता चुके हैं ( मोटे स्नायु जो गोल हों वे कंडरा कहाती हैं ) ॥ ३४ ॥ आमाशय और पक्वाशयमें तथा वस्तिमें सुषिर ( छिद्रयुक्त ) स्नायु हैं और पँसवाडे, छाती, पीठ तथा शिर इनमें पृथुला चौडी फैलवां नसें हैं ॥ ३५ ॥

**नौर्यथा फलकास्तीर्णा बंधनैर्बहुभिर्युता ॥ भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुसमाहिता ॥ ३६ ॥ एवमेव शरीरेस्मिन् यावंतः संधयः स्मृताः ॥ स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः ॥ ३७ ॥ न ह्यस्थीनि न वा पेश्यो न शिरा न च संधयः ॥ व्यापादितास्तथा हन्युर्यथा स्नायुः शरीरिणम् ॥३८॥ यः स्नायूः प्रविजानाति बाह्याश्चाभ्यंतरास्तथा ॥ स गूढं शल्यमाहर्तु देहाच्छक्नोति देहिनाम् ॥३९॥**

जैसे नौका अनेक काष्ठफलकोंसे व्याप्त, बहुत बंधनोंसे बँधी हुई बोझा सहनेको समर्थ होती है और मनुष्योंसमेत जलमें तरनेका साधन होती है उसी प्रकार इस शरीरमें जितनी संधियां हैं वे सब बहुतसी नसोंसे बँधी हुई हैं इसीसे मनुष्य बोझेको सहता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अस्थि अथवा पेशी अथवा शिरा अथवा संधि विदीर्ण होजावें तो इतना शरीरका नाश नहीं करें जितना स्नायुके विदीर्ण होने ( कटने ) से मनुष्यका नाश होता है ॥ ३८ ॥ इससे जो वैद्य बाहरकी तथा भीतरकी सम्पूर्ण स्नायुवोंको भले प्रकार जानता है वही शरीरके गूढ शल्यको ठीक ठीक निकाल सकता है अन्यथा नहीं ॥ ३९ ॥

## अथ परिशिष्टम् ।

श्लोक–स्नायवः सूत्रवत्सूक्ष्माः शुभ्रा निखिलदेहगाः ॥ कारणानि चेतनानां सदा चैतन्यसाधने ॥ १ ॥ सुखदुःखावबोधे च प्रवृत्तौ च निवर्तने ॥ रूपगंधरसस्पर्शशब्दज्ञाने च हेतवः ॥ २ ॥ निखिलास्ताश्च संजाता मस्तिष्कात्पृष्ठमज्जतः ॥ शिरोमंडलमेवाद्याः शेषाः शेषांगमाश्रिताः ॥ ३ ॥ तेषुतेषु च भावेषु देहमाप्तेषु वस्तसाः ॥ कंपमानाः कंपयंते मस्तुलुंगं च तत्क्षणात् ॥ ४ ॥ तस्य प्रकंपभेदेन ज्ञानभेदो भवेद्बहुः ॥ अतो मस्तिष्कमेवैको ज्ञानहेतुः प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥ स्नायुनाशो, भवेद्यस्मिन्नंगे तत्स्यान्मृतोपमम् ॥ पक्षाघातादिरोगेषु कारणं तद्विधं मतम् ॥ ६ ॥

अर्थ–स्नायु सूत्रके तुल्य बारीक और सुपेद सब देहमें व्याप्त हैं और सदैव चेतनप्राणियोंकी चैतन्यताके साधन हैं ( सर्वत्र रक्तकी गति इन्हींसे है ) ॥ १ ॥ सुख, दुःखके ज्ञानमें तथा सुख दुःखकी निवृत्ति और प्रवृत्तिमें येही कारण हैं और रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द इनके ग्रहणमें और ज्ञानमें यही हेतु हैं ॥ २ ॥

ये सब मस्तिष्क ( दिमाग ) से तथा पृष्ठवंशकी मज्जासे उपजती हैं जिनमेंसे जो मस्तिष्कसे उपजी हैं वे तो मस्तिष्कमेंही गमन करती हैं और शेष सब अंगमें व्याप्त होती हैं ॥ ३ ॥ जो भाव शरीरमें उत्पन्न होते हैं उनसे उनके संबंध रखनेवाली स्नायु कंपायमान होती हैं फिर उस कम्पसे मस्तिष्कको सूक्ष्म कंप पहुँचाती है उसी कम्पसे मस्तिष्कको सब ज्ञान होता है इससे मस्तिष्क ( दिमाग ) ही ज्ञानका हेतु है जैसे किसी वस्तुके प्रतिबिंबसे नेत्रगतरूप वहां स्नायु लम्बायमान होकर उस प्रभावको मस्तिष्कमें पहुंचावे जिससे रूपका ज्ञान हो ऐसेही रसादिकका ज्ञानभी जानो ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिस अंगकी स्नायु नाश होजाय या निकम्मी होजाय वह अंग मृतके तुल्य होजाता है इससे पक्षाघातादि रोगोंका भी यही कारण है ॥ ६ ॥ ( आ. वि. )

इति परिशिष्टम् ।

---

## पेशी ।

**पंच पेशीशतानि भवन्ति । तासां चत्वारि शतानि शाखासु । कोष्ठे षट्षष्टिः । ग्रीवां प्रत्यूर्द्ध्वं चतुस्त्रिंशत् ॥ ४० ॥**

मनुष्यके शरीरमें पांचसौ ५०० पेशी ( मांसकी गिलटियां ) हैं उनमेंसे शाखा ( चारों हाथ, पैरों ) में ४०० पेशी हैं और धडमें ६६ तथा ग्रीवासे ऊपर ३४ पेशियां हैं ॥ ४० ॥

### पेशियाकी पृथक् पृथक् गणना ।

**एकैकस्यां तु पादांगुल्यां तिस्रस्तिस्रस्ताः पंचदश । दश प्रपदे । पादोपरि कूर्चसन्निविष्टास्तावत्य एव । दश गुल्फतलयोः । गुल्फजान्वंतरे विंशतिः । पंच जानुनि । विंशतिरूरौ । दश वंक्षणे।शतमेवमेकास्मिन् सक्थ्नि भवन्ति । एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ४१॥**

एक एक पांवकी अंगुलियोंमें तीन तीन पेशी होतीहैं सब पांचों अंगुलियोंकी १५ हुई । दश पंजेमें और पंजेके ऊपर कूर्चसे मिली हुईभी १० । तथा टकने और तलवेमें दश । तथा टकने और घुटनेके बीचमें २० । तथा घुटनेमें ५ । और साथलमें २० । और वंक्षण (साथलके ऊपरले जोड़) में १० इस प्रकार एक पांवमें १०० पेशियां हैं । फिर इसी हिसाबसे दूसरे पांवमें भी १०० । और एक हाथमें १०० और दूसरे हाथमें भी १०० ऐसे चारों हाथ पैरोंकी सब ४०० पेशियां हुई ॥ ४१ ॥

**तिस्रः पायौ । एका मेढ्रे । सेवन्यां चापरा । द्वे वृषणयोः । स्फिचोः पंच पंच । द्वे वस्तिशिरसि । पंचोदरे । नाभ्यामेका । पृष्ठोर्द्ध्वसं-**

न्निविष्टाः पंच पंच दीर्घाः । षट् पार्श्वयोः । दश वक्षसि । अक्षकांसौ प्रति समंतात् सप्त । द्वे हृदयामाशययोः । षट् यकृत्प्लीहोंडुकेषु ॥ ४२ ॥ ग्रीवायां चतस्रः । अष्टौ हन्वोः । एकैका काकलकगलयोः । द्वे तालुनि । एका जिह्वायाम् । ओष्ठयोर्द्वे । नासायां द्वे । द्वे नेत्रयोः । गंडयोश्चतस्रः । कर्णयोर्द्वे । चतस्रो ललाटे । एका शिरसीत्येवमेतानि पंच पेशीशतानि ॥ ४३ ॥

गुदामें ३ पेशी हैं ( यही त्रिवली कहलातीहैं ), लिंगमें १ पेशी है, सीवनमें १, वृषणोंमें २, दोनों चूतडोंमें पांच पांच अर्थात् १० हैं, वस्तिके शिरपर २, और उदरमें ५, नाभिमें १, पीठके ऊपर संन्निविष्ट पांच पांच बडी पेशियां हैं, पँसवाडोंमें ६, छातीमें १०, खोदे और हँसलीके आसपास ७, हृदय और आमाशयमें २, यकृत्, प्लीहा और उंडुक इनमें ६ ये सब मिलाके मध्यभागकी ६६ पेशियां हुई ॥ ४२ ॥ ग्रीवामें ४, ठोडी ( जवडों ) में ८, काकलक, ( काक ) में १, और गलमें १, तालुमें २, जिह्वामें १, होठोंमें २, नासिकामें २, नेत्रोंमें २, गलोथेंमें ४, कानोंमें २, ललाटमें ४, शिरमें १ ऐसे ये ग्रीवासे ऊपरकी सब ३४ पेशियां हुई और तीनों जगहकी सब मिलकर ५०० पेशियां हुई ( परंतु गयदासाचार्य वाग्भटके मतसे मध्यभागमें ६० और ग्रीवासे ऊपर ४० पेशी मानतेहैं ) ॥ ४३ ॥

शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि संधयश्च शरीरिणाम् ॥
पेशीभिः संवृतान्यत्र बलवन्ति भवंत्यतः ॥ ४४ ॥

शिरा, स्नायु और अस्थियोंके जोड़ तथा, देहकी संधियां ये सब पेशियोंसे आच्छादित ( मढेहुए ) हैं इसीसे बलवान् ( मजबूत ) रहतेहैं ॥ ४४ ॥

### स्त्रियोंके अधिक पेशी ।

स्त्रीणां तु विंशतिरधिकाः । दश तासां स्तनयोरेकैकस्मिन् पंच पंच यौवने तासां परिवृद्धिः । अपत्यपथे चतस्रस्तासां प्रसृतेऽभ्यंतरतो-

( वा० ४३ ) वाग्भटस्तु पेशीसंख्यामित्याह यथा—पंच पेशीशतानि तासां चत्वारि शतानि शाखासु षष्टिरंतराधौ चत्वारिंशदूर्ध्वम् । तत्र शाखासु विरोधो नास्ति कोष्ठे षष्टिर्यथा—एकैका मेढ्रसेवन्योः । द्वे वृषणयोः । दश स्फिचोः । तिस्रो गुदे । तास्तु वलीसंज्ञाः । द्वे वस्तिशिरसि । चतस्र उदरे । नाभ्यामेका । द्वे हृदि आमाशये च । षट् यकृत्प्लीहोंडुकेषु । पृष्ठे पंचोर्ध्वसंनिविष्टाः । दश दीर्घाः पार्श्वयोः । दश वक्षसि । निग्रीवाऽक्षकोपरितः । एवं मध्यभागे ६० षष्टिः । ऊर्ध्वं चत्वारिंशत् यथा—दश ग्रीवायाम् । अष्टौ गंडयोः । अष्टौ हन्वोः । एकैका गलकाकलजिह्वामूर्द्धसु । द्वे द्वे तालुललाटयोः नासौष्ठकर्णेषु च ( इति वृ० वाग्भटः ) ॥

द्वे मुखाश्रिते बाह्ये च प्रवृत्ते द्वे । गर्भच्छिद्रसंश्रितास्तिस्रः । शुक्रार्तवप्रवेशिन्यस्तिस्र एव । पित्तपक्वाशयमध्ये गर्भाशयो यत्र गर्भस्तिष्ठति ॥ ४५ ॥

स्त्रियोंके देहमें २० पेशी अधिक होतीहैं जिनमें पांच पांच दोनों चूचियोंमें ऐसे १० तो ये हुई ये चूचियोंकी पेशी तरुण (युवा) अवस्थामें बढतीहैं । और योनिमें ४ पेशी हैं इनमेंसे २ पेशी तो योनिके अंतर्गत बलीमें और २ योनिके मुखपर बाहर होती हैं और गर्भछिद्रके आश्रयमें ३, और वीर्य तथा आर्तव ( शोणित ) के गर्भाशयमें प्रवेश करनेवालीभी ३ ही हैं ( ऐसे सब २० हुई ) पित्ताशय और पक्वाशयके मध्यमें गर्भाशय है यहां ही गर्भ स्थित होताहै ॥ ४५ ॥

पेशियोंके स्वरूप ।

तासां बहुलपेलवस्थूलाणुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशभावाः संध्यस्थिशिरास्नायुप्रच्छादका यथादेशं स्वभावत एव भवंति ॥ ४६ ॥

उन पेशियोंमंसे कोई बहुल ( जादा ), कोई पेलव ( थोडी ), कोई स्थूल ( मोटी ), कोई अणु ( पतली ), कोई पृथु (फैली हुई ), कोई वृत्त ( गोल ),कोई ह्रस्व(छोटी), कोई दीर्घ ( लंबी ), कोई स्थिर, कोई मृदु ( कोमल ), कोई श्लक्ष्ण (लजलजी),कोई कर्कश ( कठोर ) हैं ये पेशी संधि, अस्थि, शिरा और स्नायुको उस स्थानके अनुसार स्वभावहीसे आच्छादन किये रहतीहैं ॥ ४६ ॥

पुंसां पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्ता लक्षणमुष्कजाः ॥
स्त्रीणांमावृत्य तिष्ठंति फलमंतर्गतं हि ताः ॥ ४७ ॥

पुरुषोंके शरीरम जो पेशियां पहले वर्णन करचुकेहैं उनमेंसे तीन पेशी (१लिंगमें और २ वृषणोंमें ) स्त्रियोंकी योनिमें भीतर आच्छादित रहती हैं ( गयदासाचार्य इस श्लोकको क्षेपक मानकर प्रमाण नही करते वे कहतेहैं कि "पुंसां" अर्थात् पुरुषोंके ५०० पेशी हैं स्त्रियोंके नहीं किंतु स्त्रियोंके तीन न्यून पांचसौ तो ये और बीस अधिक सब ५१७ होती हैं ) ॥ ४७ ॥

मर्मशिराधमनीस्रोतसामन्यत्र प्रविभागः ॥ ४८ ॥

मर्म, शिरा, धमनी और स्रोतोंका वर्णन और जगहपर किया है ॥ ४८ ॥

गर्भशय्याका वर्णन ।

शंखनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा प्रकीर्त्तिता ॥ तस्यास्तृतीये त्वा-

**वर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ४९ ॥ यथा रोहितमत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः ॥ तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥ ॥ ५० ॥ आभुग्नोभिमुखः शेते गर्भो गर्भाशये स्त्रियाः॥स योनिं शिरसा याति स्वभावात्प्रसवं प्रति ॥ ५१ ॥**

स्त्रियोंकी योनि शंखकी नाभिके आकार तीन आँटेवाली होती है उसके तीसरे आँटेमें गर्भशय्या होतीहै ॥ ४९ ॥ जैसे रोहित मछलीके मुखका स्वरूप होताहै वैसाही स्थान और रूप गर्भशय्याकाभी होता है ऐसा वैद्य कहतेहं ॥५० ॥ आभुग्न (सुकड़ा हुवा) और सम्मुख गर्भशय्या(गर्भाशय)में गर्भ शयन करताहै अर्थात् बालक रहताहै वह प्रसवके समय स्वभावहीसे शिरके बल योनिद्वारपर प्राप्त होताहै ॥५१॥

### मृत शरीर चीरकर देखनेकी विधि ।

**त्वक्पर्यंतस्य देहस्य योऽयमंगविनिश्चयः ॥ शल्यज्ञानादृते नैव वर्ण्यतेंगेषु केषुचित् ॥ ५२ ॥ तस्मान्निःसंशयज्ञानं हर्त्रा शल्यस्य वांछता ॥ शोधयित्वा मृतं सम्यक् द्रष्टव्योंगविनिश्चयः ॥ ॥ ५३ ॥ प्रत्यक्षतो हि यद्दृष्टं शास्त्रदृष्टं च यद्भवेत् ॥ समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्द्धनम् ॥ ५४ ॥**

त्वचापर्यंत जो जो शरीरके अंगविभाग हैं उनका ठीक२निश्चय कहीं कहीं शल्यज्ञान ( चीर फाड कर देखने ) के विना नहीं कहा जासकता ॥ ५२ ॥ इसलिये निस्संदेह ज्ञानकी वांच्छा करनेवाले वैद्य ( सर्जन ) को चाहिये कि मृत ( मुरदे ) की लाशको अच्छे प्रकारसे शोधनकर ( चीर फाडकर) अंगोंको निश्चय देखे॥५३॥ क्योंकि जो जो प्रत्यक्ष देखा जाता है और शास्त्रमेंभी देखा जाता है फिर दोनों बार २ मिलानेसे ज्ञानकी वृद्धि होती है ॥ ५४ ॥

**तस्मात्समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घव्याधिपीडितमवर्षशतकं निःसृष्टांत्रपुरीषं पुरुषमावहंत्यामापगायां निबद्धं पंजरस्थं मुंजवल्कलकुशशणादीनामन्यतमेनावेष्टितांगमप्रकाशे देशे कोथयेत् । सम्यक् प्रकुथितं चोद्धृत्य ततो देहं सप्तरात्रादुशीरवालवेणुवल्कलकूर्चानामन्यतमेन शनैःशनैरवघर्षयंस्त्वगादीन् सर्वानेव बाह्याभ्यंतरांगप्रत्यंगविशेषान् यथोक्तान् लक्षयेच्चक्षुषा॥५५॥भवतश्चात्र-**

चीरकर देखनेके वास्ते ऐसे मुरदेको लेवे जिसके सब अंग पूरे हों और जो

विषसे ( जहरसे ) न मरा हो तथा जो लंबी व्याधिसे पीडित न रहा हो तथा जो सौ वर्षका अर्थात् बहुत वृद्ध न हो ऐसे ताजे मुरदेको लेकर उसके आंतडे और विष्ठा, मूत्रादि मल निकालकर उसके सब अंगोंको मूंज या वक्कल या कुशा या शण इनमेंसे किसीसे लपेटकर झरोखेदार संदूक या पिंजरेमें रखकर कम बहनेवाली नदीके गुप्त स्थानमें ( जलमें ) डालदे और फूलकर गलगला होने दे और जब ठीक २ गलकर फूलजावे तब उस मृत शरीरको जलसे निकालकर खस, बाल, बाँस या वक्कलकी कूची या फरचटसे धीरे धीरे त्वचादिको कुरेद २ ( हटा २ ) कर सब बाहर भीतरके अंग, प्रत्यंग, हड्डी, पँसली, स्नायु, शिरा आदि जैसेके तैसे अपने नेत्रोंसे देख लेवे ॥ ५५ ॥ इस विषयमें दो श्लोक हैं–

**न शक्यश्चक्षुषा द्रष्टुं देहे सूक्ष्मतमो विभुः ॥ दृश्यते ज्ञानचक्षुर्भिस्तपश्चक्षुर्भिरेव च ॥ ५६ ॥ शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद्विशारदः ॥ दृष्टश्रुताभ्यां संदेहमवापोह्याचरेत्क्रियाः ॥ ५७ ॥**

**इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥**

इस शरीरमें व्याप्त परम सूक्ष्म जो जीवात्मा है वह नेत्रोंसे नहीं दीख सकता किंतु वह ज्ञानके नेत्रोंसे तथा तपके नेत्रोंसे दीखताहै ॥ ५६ ॥ शरीरमें ( चीरकर) और शास्त्रमें लिखे हुएको देखनेसे मनुष्य विशारद हो जाता है इससे शरीरमें देखने और शास्त्रमें सुननेसे संदेह निवृत्त करके चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५७ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा०टी० शारीरस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

## षष्ठोऽध्यायः ६.

### अथातः प्रत्येकमर्मनिर्देशं शारीरं व्याख्यास्यामः ॥

यहांसे अगाडी प्रत्येक मर्मके निर्देशविषयक शारीरका व्याख्यान करते हैं ॥

**सप्तोत्तरं मर्मशतम् । तानि मर्माणि पंचात्मकानि । तद्यथा मांसमर्माणि । शिरामर्माणि । स्नायुमर्माणि । अस्थिमर्माणि । संधिमर्माणि चेति । न खलु मांसशिरास्नाय्वस्थिसंधिव्यतिरेकेणान्यानि मर्माणि भवंति यस्मान्नोपलभ्यंते ॥ १ ॥**

मनुष्यके शरीरमें १०७ मर्म हैं वे मर्म पांच भांतिके हैं यथा मांसमर्म, शिरामर्म, स्नायुमर्म, अस्थिमर्म और संधिमर्म तथा मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि इनके सिवाय अन्यत्र मर्म नहीं होते क्योंकि और जगह नहीं पाये जाते इससे उन पांचोंहीमें सब १०७ मर्म हैं ॥ १ ॥

---

( वा० १ ) मारयतीति मर्माणि मृधातोः मनिन् ॥

मर्मसंख्या ।

तत्रैकादश मांसमर्माणि । एकचत्वारिंशत् शिरामर्माणि । सप्तविंशतिः स्नायुमर्माणि । अष्टावस्थिमर्माणि । विंशतिः संधिमर्माणि । तदेतत् सप्तोत्तरं मर्मशतम् ॥ २ ॥

इन उक्त मर्मोंमें ११ मांसमर्म हैं, ४१ शिरामर्म, २७ स्नायुमर्म, ८ अस्थिमर्म और २० संधिमर्म हैं ऐसे सब एकसौ सात १०७ मर्म हुए ॥ २ ॥

मर्मोंके स्थानोंकी संख्या ।

तेषामेकादशैकस्मिन् सक्थ्नि भवंति । एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ । उदरोरसोर्द्वादश । चतुर्दश पृष्ठे । ग्रीवायां प्रत्यूर्ध्वं सप्तत्रिंशत् ॥ ३ ॥

इनमेंसे ११ मर्मस्थान एक पांवमें होते हैं फिर इसी प्रकार दूसरे पांवमें और हाथोंमें भी ग्यारह २ हुए इस प्रकार सब चारों हाथ, पांवोंके ४४ मर्मस्थान हुए पेट और छातीमें १२ मर्मस्थान हैं तथा १४ पीठमें मर्मस्थान हैं और ग्रीवासे ऊपर चेहरे और शिरमें ३७ मर्मस्थान हैं ॥ ३ ॥

मर्मस्थानोंके नाम ।

तत्र सक्थिमर्माणि क्षिप्रतलहृदयकूर्चकूर्चशिरोगुल्फेंद्रवस्तिजान्वाण्यूर्वी लोहिताक्षाणि विटपं चेति एतेनेतरं सक्थि व्याख्यातम् ॥ ४

इन १०७ मर्मोंमेंसे ११ एक पांवमें जो मर्म हैं उनके नाम इस प्रकारसे हैं-१ क्षिप्र, २ तलहृदय, ३ कूर्च, ४ कूर्चशिर, ५ गुलफ, ६ इंद्रवस्ति, ७ जानु, ८ आणि, ९ ऊर्वी, १० लोहिताक्ष, ११ विटप इनके स्थान और लक्षणादि अगाडीं स्वयं ग्रंथकार वर्णन करग इससे इनका यहां विशेष विवेचन नहीं किया ॥ ४ ॥

उदरोरसोस्तु गुदवस्तिनाभिहृदयस्तनरोहितापलापान्यपस्तम्भौ चेति ॥ ५॥ पृष्ठमर्माणि तु कटीकतरुणकुकुंदरनितम्बपार्श्वसंधिबृहत्यंसफलकान्यंसौ चेति ॥ ६ ॥ बाहुमर्माणि तु क्षिप्रतलहृदयकूर्चकूर्चशिरोमणिबंधेन्द्रवस्तिकूर्पराण्यूर्वीलोहिताक्षाणि कक्षधरं चेति एतेनेतरो बाहुर्व्याख्यातः ॥ ७ ॥

पेट और छातीके मर्म ( अर्थात् धडके मर्म ) ये हैं गुदा, वस्ति, नाभि, हृदय, स्तनमूल २, स्तनरोहित ५, अपलाप २ और अपस्तंभ भी २ ( ऐसे १२ हुए ) ॥ ॥ ५ ॥ पीठके मर्म-कटीक, तरुण, कुकुंदर, नितंब, पार्श्वसंधि, बृहती, अंसफलक,

और अंस ये सब दो दो हैं ऐसे ये पीठके मर्म १४ हुए ॥ ६ ॥ भुजाके मर्म-क्षिप्र, तलहृदय, कूर्च, कूर्चशिर, मणिबंध, इंद्रबस्ति, कूर्पर, आणि, उर्वी, लोहिताक्ष और कक्षधर ये ११ भुजा ( एक हाथ ) के मर्म हैं इसी प्रकार दूसरे हाथमें ११ समझे ॥ ७ ॥

**जत्रूर्द्ध्वं मर्माणि चतस्रो धमन्योऽष्टौ मातृका द्वे कृकाटिके द्वे विधुरे द्वौ फणौ द्वावपांगौ द्वावावर्त्तौ द्वावुत्क्षेपौ द्वौ शंखावेका स्थपनी पंच सीमंताश्चत्वारि शृंगाटकानि एकोऽधिपतिरिति ॥८॥**

ग्रीवासे ऊपरके मर्म-चार धमनी, आठ मात्रिका, दो कृकाटिका, दो विधुर, दो फणा, दो अपांग, दो आवर्त्त, दो उत्क्षेप, दो शंख, एक स्थपनी, पांच सीमन्त, चार शृंगाटक और एक अधिपति ऐसे ये ग्रीवासे ऊपर ३७ मर्म हुए ( इन सबका वर्णन अगाडी होगा ) ॥ ८ ॥

### मांसादिभेदसे मर्म ।

**तत्र तलहृदयेंद्रवस्तिगुदस्तनरोहितानि मांसमर्माणि ॥ ९ ॥ नीलधमनीमातृकाशृंगाटकापांगस्थपनीफणस्तनमूलापलापापस्तंभहृदयनाभिपार्श्वसंधिबृहतीलोहिताक्षोर्व्यः शिरामर्माणि ॥ १० ॥ आणिविटपकक्षधरकूर्चकूर्चशिरोवस्तिक्षिप्रांसविधुरोत्क्षेपाः स्नायुमर्माणि ॥ ११ ॥ कटीकतरुणनितंबांसफलकशंखास्त्वस्थिमर्माणि ॥ १२ ॥ जानुकूर्परसीमंताधिपतिगुल्फमणिबंधकुकुंदरावर्त्तकृकाटिकाश्चेति संधिमर्माणि ॥ १३ ॥**

इन १०७ मर्मोंमेंसे तल, हृदय, इंद्रबस्ति, गुदा, स्तनरोहित ये मांसमर्म हैं ( अर्थात् इतनी जगह मांसगत मर्म जानना ) ॥ ९ ॥ नीलधमनी, मातृका, शृंगाटक, अपांग, स्थपनी, फण, स्तनमूल, अपलाप, अपस्तंभ, हृदय, नाभि, पार्श्वसंधि, बृहती, लोहिताक्ष और ऊर्वी ये शिरामर्म हैं ॥ १० ॥ आणि, विटप, कक्षधर, कूर्च, कूर्चशिर, वस्ति, क्षिप्र, अंस, विधुर, उत्क्षेप ये स्नायुमर्म हैं ॥ ११ ॥ कटीक तरुण नितंब, अंसफलक और शंख ये अस्थिमर्म हैं ॥ १२ ॥ जानु, कूर्पर, सीमंत, अधिपति, गुल्फ, मणिबंध, कुकुंदर, आवर्त और कृकाटिका ये संधिमर्म हैं ॥ १३ ॥

### पांच प्रकारके मर्म ।

**तान्येतानि पंचविकल्पानि मर्माणि भवंति । तद्यथा सद्यःप्राणह-**

राणि कालांतरप्राणहराणि विशल्यघ्नानि वैकल्यकराणि रुजाकराणीति ॥ १४ ॥ तत्र सद्यःप्राणहराण्येकोनविंशतिः । कालांतरप्राणहराणि त्रयस्त्रिंशत्। त्रीणि विशल्यघ्नानि। चतुश्चत्वारिंशद्वैकल्यकराणि। अष्टौ रुजाकराणीति ॥ १५ ॥ भवंति चात्र-

ये समस्त १०७ मर्म फिर पांच प्रकारके होतेहैं जैसे कोई तत्काल प्राण हरनेवाले ( अर्थात् उनपर चोट लगनेसे तत्काल मृत्यु हो ), और कोई कालांतरमें प्राण हरनेवाले होतेहैं, कोई विशल्यघ्न अर्थात् शल्य निकालतेही प्राण हरनेवाले होतेहैं, कोई विकलता करनेवाले होतेहैं और कोई अतिपीडा करनेवाले होतेहैं ॥ १४ ॥ जिनमें १९ सद्यःप्राणहर हैं, तथा ३३ कालांतरमें प्राणनाशक हैं, तीन विशल्यघ्न हैं, ४४ विकलता करनेवालेहैं, और ८ अति क्लेशदायक हैं ॥ १५ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं-

सद्यःप्राणहर मर्म ।

शृंगाटकान्यधिपतिः शंखौ कंठशिरा गुदम् ॥
हृदयं वस्तिनाभी च घ्नंति सद्यो हतानि तु ॥ १६ ॥

शृंगाटक ४, अधिपति १, शंख २ कंठकी शिरा ८, गुदा १, हृदय १, वस्ति १ और नाभि १ ये १९ मर्म सद्यःप्राणनाशक हैं अर्थात् इनपर विशेष जखम आनेसे मनुष्य तत्काल मरजाताहै ॥ १६ ॥

कालांतरप्राणहर और विशल्यघ्न मर्म ।

वक्षोमर्माणि सीमंततलक्षिप्रेंद्रवस्तयः ॥ कटीकतरुणे संधी पार्श्वजौ बृहती च या ॥ १७ ॥ नितंबाविति चैतानि कालांतरहराणि तु ॥ उत्क्षेपौ स्थपनी चैव विशल्यघ्नानि निर्दिशेत् ॥ १८ ॥

वक्षस्थलके मर्म ८, सीमंत ५ तलहृदय ४, क्षिप्र ४, इंद्रवस्ति ४, कटीकतरुण २, पार्श्वसंधि २, बृहती २, नितंब २ ऐसे ये ३३ मर्म कालांतरसे प्राणनाशक हैं॥ १७॥ उत्क्षेप २ और स्थपनी १ ये ३ मर्म विशल्यघ्न हैं अर्थात् इनमें जबतक शल्य रहे तब तक तो मनुष्य जीवे और शल्य निकालतेही मरजावे ॥ १८ ॥

वैकल्यकर मर्म ।

लोहिताक्षाणि जान्वींकूर्चाविटपकूर्पराः ॥ कुकुन्दरे कक्षधरे

---

( वा० १४ ) विशल्यघ्नानि घात-त्वग शल्यत्वेन मारकाणीत्यर्थः ॥ ( श्लो० १६ ) कंठशिरा ८ मातृकाः॥( श्लो० १७ ) वक्षोमर्माणीति-स्तनमूल २ । स्तनरोहिते २ । अपलापौ २ । अपस्तम्भौ २ इत्यष्टौ वक्षोमर्माणीति ॥

विधुरे सकृकाटिके ॥ १९ ॥ अंसांसफलकापांगा नीले मन्ये फणौ तथा ॥ वैकल्यकरणान्याहुरावर्त्तौ द्वौ तथैव च ॥ २० ॥

वैकल्यकर ४४ मर्म इस प्रकार हैं कि लोहिताक्ष ४, आणि ४, जानु २, ऊर्वी ४, कूर्च ४, विटप २, कूर्पर २, कुकुंदर २, कक्षधर २, विधुर २, कृकाटिका २, अंस २, अंसफलक २, अपांग २, नीलधमनी २, मन्या २, फण २, तथा आवर्त २ ऐसे ये ४४ विकलताकारक मर्म हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

## रुजाकर मर्म ।

गुल्फौ द्वौ मणिबंधौ द्वौ द्वे द्वे कूर्चशिरांसि च ॥ रुजाकराणि जानीयादष्टावेतानि बुद्धिमान् ॥ २१ ॥ क्षिप्राणि विद्धमात्राणि घ्नंति कालांतरेण च ॥ २२ ॥

दो गुल्फ, दो मणिबंध, हाथ पांवोंके दो दो कूर्चशिर ऐसे ये ८ मर्म रुजाकर ( अतिकष्टदायक ) हैं इन्हें बुद्धिमान् जान लेवे ॥ २१ ॥ क्षिप्रनामक मर्म विद्धमात्रही कालांतरमें प्राणनाशक होते हैं इससे प्रयोजन यह है कि अन्य मर्म तो छेदन होनेसे प्राणहर होते हैं और ये क्षिप्र विंधजानेमात्रसे कालांतरमें प्राणहर हो जाते हैं अथवा ये मर्म जो सद्यःप्राणहर हैं वे थोड़ेसे विद्धमात्र हों तो कालांतरसे मृत्युकारक होते हैं ॥ २२ ॥

## मर्मस्थानोंमें प्राणोंकी स्थिति ।

मर्माणि नाम मांसशिरास्नाय्वस्थिसंनिपातास्तेषु स्वभावत एवविशेषेण प्राणास्तिष्ठंति तस्मान्मर्मस्वभिहतस्तांस्तान्भावानापद्यन्ते ॥२३॥

मर्मस्थानोंमें प्रायः मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि इनका सन्निपात (मेल) होता है तो उस जगह स्वभावहीसे विशेष करके प्राण रहते हैं इसी हेतुसे मर्ममें चोट लगनेसे उनही उपरोक्त ( सद्यःप्राणहरत्व आदि ) भावोंको मनुष्य प्राप्त होते हैं ( अथवा मोह प्रलापादिको प्राप्त होता है ) ॥ २३ ॥

तत्र सद्यःप्राणहराण्याग्नेयान्यग्निगुणेष्वाशु क्षीणेषु क्षपयंति ॥ ॥ २४ ॥ कालांतरप्राणहराणि सौम्याग्नेयान्यग्निगुणेष्वाशु क्षीणेषु क्रमेण च सोमगुणेषु कालांतरेण क्षपयंति ॥ २५ ॥ विश-

( व्या० २३ ) संनिपातः सश्लेषः अत्यतमिश्रीभाव इति । प्राणा. अग्न्यादयः । तांस्तानिति—"इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्मनोबुद्धिविपर्यय." इत्यादिकानत्रैवोक्तान् । अन्ये तु भ्रम. प्रलापः पतनं प्रमोह इत्यादिकान् सूत्रस्थानोक्तानाहुः ( इति डल्हनः ) केचित्तु तांस्तान् भावानिति—सद्यःप्राणहरत्वकालान्तरप्राणहरत्वविशल्यघ्नत्ववैकल्यकरत्वरुजाकरत्वान्भावानापद्यंते इति भाषंते ॥

ल्यप्राणहराणि वायव्यानि शल्यमुखनिरुद्धो यावदंतर्वायुस्तिष्ठति तावज्जीवत्युद्धृतमात्रे तु शल्ये मर्मस्थानाश्रितो वायुर्निष्क्रामति तस्मात्सशल्यो जीवत्युद्धृतशल्यो म्रियते ॥ २६ ॥ वैकल्यकराणि सौम्यानि सोमो हि स्थिरत्वाच्छैत्याच्च प्राणावलंबनं करोति॥२७॥ रुजाकराण्यग्निवायुगुणभूयिष्टानि विशेषतश्च तौ रुजाकरौ पांचभौतिकीं च रुजामाहुरेके ॥ २८ ॥

उनमेंसे 'सद्यःप्राणहर' मर्म अग्निगुण प्रधान होते हैं और अग्नि तीक्ष्ण है इससे शीघ्र नष्ट होता है उसके क्षीण होनेसे शीघ्र मृत्युकारक होते हैं ॥ २४ ॥ "कालांतरप्राणहर" मर्मोंमें सोम और अग्नि दोनों प्रधान होते हैं यहां अग्निगुण तो तत्काल नष्ट होही जाता है पर सोमगुण क्रमसे धीरे धीरे नष्ट होता है इससे सोमगुण नष्ट होनेपर कालांतरमें मृत्युकारक होते हैं ॥ २५ ॥ "विशल्यघ्न" मर्म वायुगुण प्रधान होते हैं उनमें शल्यके मुखसे जबतक भीतरका वायु रुका रहता है तबतक मनुष्य जीता है और शल्य निकलतेही उस मर्मस्थानका वायु निकल जाता है इस कारण शल्ययुक्त जबतक रहे तबतक जीता है और फिर शल्य निकलतेही मरजाता है ॥ २६ ॥ "वैकल्यकर" मर्म सोमगुण प्रधान होते हैं और सोम स्थिर और शीतल है इससे प्राणोंको अवलंबन करता है ( इसीसे मूर्च्छादिकारक तो होते हैं पर मृत्युकारक नही होते ) ॥ २७ ॥ " रुजाकर " मर्म अग्नि-वायु गुण प्रधान होते हैं और ये दोनों विशेष करके पीडाकारक होते हैं इसीसे इनमें अति पीडा होती है और पीड़ाको कई पंचभूतात्मक कहते हैं ॥२८॥

केचिदाहुर्मांसादीनां पंचानामपि समस्तानां विवृद्धानां च समवायात्सद्यःप्राणहराणि । एकहीनानामल्पानां वा कालांतरप्राणहराणि । द्विहीनानां विशल्यप्राणहराणि । त्रिहीनानां वैकल्यकराणि । एकस्मिन्नेव रुजाकराणीति । यतश्चैवमतोऽस्थिमर्मस्वप्यभिहतेषु शोणितागमनं भवति ॥ २९ ॥

कई आचार्य ऐसा कहते है कि मांसादिक पांचों ( मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि ओर संधि ) की वृद्धि होकर ( मुख्यतासे जहांपर समवाय संबंध हो वे मर्म तत्काल प्राणहर हैं । और जहांपर एक नहीं है या कम हैं वे कालांतरसे प्राणनाशक हैं । और जहां दोका अभाव है वे विशल्यघ्न हैं । तथा जहांपर तीनोंका अभाव है ( केवल दोही है ) वे विकलताकारक हैं । और जहां ( चारोंका अभाव है ) एकही

है वे रुजाकर हैं। इन पांचोंका कहींपर स्थूलरूपसे समवाय है और कहींपर
सूक्ष्मरूपसे क्योंकि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि अस्थिमर्ममें रुधिर नहीं दीख-
ताहै तो भी छेदन करनेसे रुधिरका आगमन होता है इससे सबका सबमें संयोग
मानना चाहिये ( और जहांपर सबकी उत्कृष्टता है वह सद्यःमारक तथा जहां एक
हीन अर्थात् एककी अनुत्कृष्टता और चारोंकी उत्कृष्टता हो वह कालांतरमारक
हैं इत्यादि। स्तनमूल, अपलाप, अपस्तंभ और सीमंत आदि मर्म मांसहीन हैं स्तन-
रोहित, तलहृदय, क्षिप्र आदि अस्थिहीन हैं, उत्क्षेप मांस और संधिहीन हैं स्थ-
पनी मांस, शिरा, स्नायुहीन हैं तथा गुल्फ और मणिबंध ये मांस, शिरा, स्नायु
और अस्थिहीन हैं इत्यादि और भी जानो ) ॥ २९ ॥

**चतुर्विधा यास्तु शिराः शरीरे प्रायेण ता मर्मसु संनिविष्टाः ॥**
**स्नाय्वस्थिमांसानि तथैव संधीन् संतर्प्य देहं प्रतिपालयंति ॥**
**॥ ३० ॥ ततः क्षते मर्मणि ताः प्रवृद्धः समंततो वायुरभिस्तृ-**
**णोति ॥ विवर्द्धमानस्तु स मातरिश्वा रुजः सुतीव्राः प्रतनोति**
**काये ॥ ३१ ॥ रुजाभिभूतं तु पुनः शरीरं प्रलीयते नश्यति चास्य**
**संज्ञा ॥ अतो हि शल्यं विनिर्हर्तुमिच्छन्मर्माणि यत्नेन परीक्ष्य**
**कर्षेत् ॥ ३२ ॥ एतेन शेषं व्याख्यातम् ॥ ३३ ॥**

चारों प्रकारकी ( वात, पित्त, कफ, रक्तकी ) शिरा प्रायः मर्मस्थानमें स्थित
होती हैं और स्नायु, अस्थि और संधियोंको तृप्तकर शरीरको पालती हैं ॥ ३० ॥ इसी
कारण मर्ममें चोट लगनेसे आसपासका वायु बढकर उन शिराओंमें व्याप्त होजाता-
है और फिर वह बढाहुआ वायु ( शिराओं द्वारा शरीरमें फैलकर ) देहमें तीव्र पीडा
करता है ॥ ३१ ॥ और फिर जब शरीरमें अत्यन्त पीडा होती है तो या तो संज्ञा-
नाश ( बेहोशी ) होजाती है या मृत्यु होजाती है इस हेतु शल्य निकालनेवाले
( चीर फाड करनेवाले ) वैद्यको चाहिये कि यत्नपूर्वक मर्मोंकी परीक्षा करके शल्य
निकाले ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार वायुको बहानेवाली शिराओंके छेदनसे पीडा
और मृत्यु वर्णन किया है इसी प्रकार पित्तको बहानेवाली शिरामें छेदन होनेसे
शरीरमें दाहादि बढकर और कफवहा शिराके छेदनसे स्रोतोंका निरोधादि होकर
विकलता और मृत्यु हो जाती है इसी प्रकार रक्तवहा शिरासे अतिरक्तागम हो-
कर संज्ञानाशादि हो जाता है ॥ ३३ ॥

### मर्मोंके निकट वेधनका प्रभाव।

**तत्र सद्यःप्राणहरमंते विद्धं कालांतरेण मारयति। कालांतरप्रा-**

णहरमंते विद्धं वैकल्यमापादयति । विशल्यप्राणहरमंते विद्धं कालांतरेण क्लेशयति रुजां च करोति । रुजाकरमतीव्रवेदनं भवति ॥ ३४ ॥

इनमेंसे सद्यःप्राणहर मर्मके अंतप्रदेश ( निकट ) क्षत होवे तो तत्काल मृत्यु न हो कालांतरमें हो । और कालांतरमारक मर्मके समीप विद्ध हो (चोट लगे) तो विकलताकारक हो । और विशल्यघ्न मर्मके निकट वेध हो तो कालांतरमें क्लेश करे अथवा उसी समय पीडा करे और रुजाकर मर्मके समीप विंधे तो अल्प पीड़ा होवे ॥ ३४ ॥

तत्र सद्यःप्राणहराणि सप्तरात्राभ्यंतरान्मारयंति । कालांतरप्राणहराणि पक्षान्मासाद्वा । तेष्वपि तु क्षिप्राणि कदाचिदाशु मारयंति । विशल्यप्राणहराणि वैकल्यकराणि च कदाचिदत्यभिहतानि मारयंति ॥ ३५ ॥

इनमें सद्यःप्राणहर सात दिनके भीतर मृत्युकारक होते हैं । और कालांतरमारक पक्षभरमें या महीनेमें ( या इससे भी अधिक समयमें ) मृत्युकारक होते हैं उनमें भी क्षिप्र मर्म कभी कभी तत्काल मृत्यु करते हैं । और विशल्यघ्न तथा वैकल्यकारक मर्मोंमें कभी २ अधिक चोट लगे तो मृत्युकारक हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रत्येकशो मर्मस्थानान्यनुव्याख्यास्यामः ॥ ३६ ॥

इससे अगाड़ी प्रत्येक मर्मका स्थान और उसके विवेचनका व्याख्यान करते है ॥ ३६ ॥

तत्र पादांगुष्ठांगुल्योर्मध्ये क्षिप्रं नाम मर्म तत्र विद्धस्याक्षेपकेण मरणम् ॥ ३७ ॥ मध्यमांगुलीमनुपूर्वेण मध्ये पादतलस्य तलहृदयं नाम तत्रापि रुजाभिमरणम् ॥ ३८ ॥ क्षिप्रस्योपरिष्टादुभयतः कूर्चो नाम तत्र पादस्य भ्रमणवेपने भवतः ॥३९ ॥ गुल्फसंधेरध उभयतः कूर्चशिरो नाम तत्र रुजाशोफौ ॥ ४० ॥

इनमें पांवके अँगूठे और अँगुलीके वीचमें "क्षिप्र"नामक मर्मका स्थान है वहां विंधनेसे आक्षेपक वातव्याधि होकर (कालांतरमें ) मृत्यु होतीहै ॥ ३७ ॥ मध्यमा

( वा०३४ ) अंते विद्धं समीपे विद्धम् । रुजाकरमतीव्रवेदन भवतीत्यत्रापि अंते विद्धमित्यस्याध्याहारः ॥
( वा० ३७ ) स्नायुमर्मेदमर्द्धांगुल कालांतरप्राणहरम् ॥ ( वा० ३८ ) मध्यमाङ्गुलिमनुलक्ष्यीकृत्य मांसमर्मेदमर्द्धांगुल कालांतरघ्नम् ॥ ( वा०३९) क्षिप्रस्योपरिष्टादिति-द्व्यङ्गुले स्नायुमर्मेदं चतुरंगुल वैकल्यकरम् ॥
( वा० ४० ) कूर्चशिरोपि स्नायुमर्म एकांगुल वैकल्यकरम् ॥

अँगुलीकी संधिमें पांवके तलवेके बीचमें "तलहृदय" नाम मर्म है यहां विंधनेसे पीड़ा होकर मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥ क्षिप्रसे ऊपर पंजेकी तरफ दोनों ओर "कूर्च" नाम मर्म है वहांके वेधसे पांवमें भ्रमण और कंपन होताहै ॥ ३९ ॥ गुल्फ(टकने)की संधिसे नीचे दोनों तरफ "कूर्चशिर" नाम मर्म है वहां विंधनेसे पीड़ा और साजन होता है ॥ ४० ॥

**पदजंघयोः संधाने गुल्फो नाम तत्र रुजः स्तब्धपादता खंजता वा ॥ ४१ ॥ पार्ष्णिं प्रति जंघामध्ये इंद्रवस्तिर्नाम तत्र शोणितक्षये मरणम् ॥ ४२ ॥ जंघोर्वोः संधाने जानु नाम तत्र खंजता ॥४३॥ जानुन ऊर्द्ध्वमुभयतस्त्र्यंगुलमाणिर्नाम तत्र शोफाभिवृद्धिः स्तब्धसक्थिता च ॥ ४४ ॥**

पांव और पिंडलियोंकी संधिमें "गुल्फ" नामक मर्म है वहां चोट लगनेसे पीडा, पांवका जकड़ जाना और लँगडापन होता है ॥ ४१ ॥ एडीकी संधिमें जंघाके मध्यमें "इंद्रवस्ति" नाम मर्म है वहां विंधनेसे रक्तक्षय होकर मृत्यु हो॥४२॥पिंडली और साथलकी संधिमें "जानु" (घुटना) नाम मर्म है वहां चोट लगे तो लंगडापन होताहै ॥ ४३ ॥ और घुटनेसे ऊपर दोनों तरफ तीन अंगुल "आणि" नाम मर्म है वहां विंधनेसे शोथकी वृद्धि और साथल अकड जातीहै ॥ ४४ ॥

**ऊरुमध्ये ऊर्वी नाम तत्र शोणितक्षयात् सक्थिशोषः ॥ ४५ ॥ ऊर्व्या ऊर्द्ध्वमधो वंक्षणसंधेरूरुमूले लोहिताक्षं नाम तत्र लोहितक्षयेण पक्षाघातः ॥ ४६ ॥ वंक्षणवृषणयोरंतरे विटप नाम तत्र षांढ्यमल्पशुक्रता वा भवति ॥ ४७ ॥ एवमेतान्येकादश सक्थिमर्माणि व्याख्यातानि एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥४८॥**

साथलमें "ऊर्वी" नाम मर्मस्थान है वहां क्षत होनेसे रुधिर क्षय होकर साथल सूख जाती है ॥ ४५ ॥ ऊर्वीसे ऊपर वंक्षणसंधिसे नीचे साथलके मूलमें "लोहिताक्ष" नाम मर्म है वहां क्षत होकर रुधिर निकलनेसे पक्षाघात होजाता है ॥४६॥

---

(वा० ४१) गुल्फः संधिमर्म द्व्यंगुल वैकल्यकरम् ॥ (वा० ४२) इन्द्रवस्तिः मांसमर्मेदमर्धांगुलं कालांतरप्राणहरं तत् पार्ष्णिं प्रति त्रयोदशांगुले स्थितं भोजस्तु द्व्यंगुलमाह गयदासोपि तन्मतेन द्व्यंगुलमेव व्याख्याति ॥ (वा० ४३) जानुसंधिमर्मेदं वैकल्यकरम् ॥ (वा० ४४) आणिश्च स्नायुमर्म वैकल्यकरमर्द्धांगुलम् ॥ (वा० ४५) ऊर्वी नाम शिरामर्म अर्द्धांगुलं वैकल्यकरम् ॥ (वा० ४६) लोहिताक्षमपि शिरामर्म वैकल्यकरमर्द्धांगुलम् ॥ (वा०४७) विटपं नाम स्नायुमर्म वैकल्यकरमेकांगुलप्रमाणम् ॥

और वंक्षण (नले) और वृषणोंके बीचमें "विटप" नाम मर्म है यहां चोट लगनेसे नपुंसकता अथवा शुक्रकी अल्पता होती है ॥ ४७ ॥ इसप्रकार एक पांवके ११ मर्म वर्णन किये हैं इसी भांति दूसरे पांव और दोनों हाथोंका व्याख्यान समझना चाहिये ॥ ४८ ॥

**विशेषतस्तु यानि सक्थ्नि गुल्फजानुविटपानि तानि बाहौ मणिबंधकूर्परकक्षधराणि । यथा वंक्षणवृषणयोरंतरे विटपमेवं वक्षःकक्षयोर्मध्ये कक्षधरं तस्मिन्विद्धे त एवोपद्रवाः। विशेषतस्तु मणिबंधे कुंठता। कूर्पराख्ये कुणिः । कक्षधरे पक्षाघातः ॥४९॥ एवमेतानि चतुश्चत्वारिंशच्छाखासु मर्माणि व्याख्यातानि ॥ ५० ॥**

हाथ, पांवोंके मर्मोंमें विशेष इतना है कि जैसे पांवमें गुल्फ (टकने), जानु (घुटने) और विटप (नलों और वृषणोंके मध्य) हैं वैसे हाथोंमें टकनोंकी जगह पहुँचे और घुटनोंकी जगह कूर्पर (कोहनी) और विटपकी जगह कक्षधर जानना जैसे नलों और अंडकोशके बीचमें विटप है इसी भांति वक्षस्थल और कांखके मध्यमें कक्षधर होते हैं और उनके विधनेसे वेही पांवोंकेसे उपद्रव होते हैं इतना विशेष है कि मणिबंध (पहुंचा) विधनेसे हाथ निकम्मा हो जावे और कोहनीपर चोट लगनेसे हाथका न मुडना तथा कक्षधरपर चोट लगे तो पक्षाघात हो जावे ॥ ४९ ॥ ऐसे ये शाखा अर्थात् हाथ, पांवोंमें सब ४४ मर्म वर्णन किये गये हैं ॥ ५० ॥

**अत ऊर्ध्वमुदरोरसोर्मर्मस्थानान्यनुव्याख्यास्यामः ॥ ५१ ॥**

इसके अगाड़ी अब पेट और छातीके मर्मस्थानका व्याख्यान करतेहैं ॥ ५१ ॥

**तत्र वातवर्चोनिरसनं स्थूलांत्रप्रतिबद्धं गुदं नाम मर्म तत्र सद्योमरणम् ॥ ५२ ॥ अल्पमांसशोणितोऽभ्यंतरतः कट्यां मूत्राशयो वस्तिर्नाम तत्रापि सद्योमरणमश्मरीव्रणादृते तत्राप्युभयतो भिन्ने न जीवत्येकतो भिन्ने मूत्रस्रावी व्रणो भवति स तु यत्नेनोपक्रांतो रोहति ॥ ५३ ॥**

तहां अधोवायु और विष्ठाके निकलनेका द्वार बडे आंतड़ेसे मिला हुवा "गुद" नाम मर्मस्थान है वहां क्षत होनेसे सद्यः मृत्यु होवे ॥ ५२ ॥ जिसमें मांस और रक्त अल्प है और कमरके भीतर मूत्रका स्थान ऐसा "वस्ति" नाम मर्म है वहां

(वा० ५२) गुद नाम चतुरंगुल मांसमर्मेदम् ॥ (वा० ५३) वस्तिर्नाम स्नायुमर्म चतुरंगुलं सद्यःप्राणहरम् ॥

विंधनेसे सद्यः मृत्यु होतीहै इसमें पथरीके एक घावसे मृत्यु नहीं होती यदि दो घाव होजावें तो मृत्यु हो और एक छिद्रसे मूत्र बहनेवाला घाव होजाताहै वह यत्नसे चिकित्सा किया हुवा भरभी जाताहै ॥ ५३ ॥

**पक्वामाशययोर्मध्ये शिराप्रभवा नाभिर्नाम तत्रापि सद्य एव मरणम् ॥ ५४ ॥ स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायोरस्यामाशयद्वारं सत्त्वरजस्तमसामधिष्ठानं हृदयं नाम तत्र सद्य एव मरणम् ॥ ५५ ॥ स्तनयोरधस्ताद्व्यंगुलमुभयतः स्तनमूले नाम मर्मणी तत्र कफपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां म्रियते ॥ ५६ ॥**

पक्वाशय और आमाशयके बीचमें शिराओंसे उत्पन्न ऐसा "नाभि" नाम मर्मस्थान है वहां छेदन हो तो सद्यःही मृत्यु होवे ॥ ५४ ॥ दोनों चूंचियोंके बीच छातीमें आमाशयके ऊपरके द्वारके समीप सत्त्व, रज और तमोगुण इनका मुख्य स्थान "हृदय" नाम मर्मस्थान है यहां क्षत होनेसे तत्काल मृत्यु होतीहै ॥ ५५ ॥ दोनों चूँचियोंके नीचे दो अंगुल दोनों तरफ दो "स्तनमूल" नाम मर्म हैं यहां क्षत हो तो कफसे कोष्ठ पूर्ण होकर खाँसी, श्वाससे मृत्यु होवे ॥ ५६ ॥

**स्तनचूचुकयोरूर्ध्वं द्व्यंगुलमुभयतः स्तनरोहितौ नाम तत्र शोणितपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां म्रियते ॥ ५७ ॥ अंसकूटयोरधस्तात्पार्श्वोपरिभागयोरपलापो नाम तत्र रक्तेन पूयभावं गतेन मरणम् ॥ ५८ ॥ उभयत्रोरसो नाड्यौ वातवहे अपस्तंभौ नाम तत्र वातपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च मरणम् ॥५९॥ एवमेतान्युदरोरसोर्द्वादश मर्माणि व्याख्यातानि ॥ ६० ॥**

स्तन ( चूँचियों ) के ऊपर दो दो अंगुल दोनों तरफ "स्तनरोहित" नाम दो मर्म हैं वहां विंध जानेसे रुधिरसे कोष्ठ परिपूर्ण होकर खाँसी, श्वाससे मृत्यु होवे ॥५७॥ अंसकूट ( कंधों ) से नीचे पँसवाडोंके ऊपर "अपलाप" नाम दोनों तरफ दो मर्मस्थान हैं यहां विंधनेसे रुधिरका पीव होकर मृत्यु होवे ॥ ५८ ॥ उर ( हृदय ) के दोनों तरफ वायुको वहानेवाली दो नाडियां " अपस्तंभ " नामक दो मर्म हैं

( वा० ५४ ) नाभिर्नाम शिरामर्म चतुरंगुलप्रमाणम् । हृदय चतुरंगुलं कमलमुकुलसदृश सिरामर्मेदम् ॥ ( वा० ५६ ) स्तनमूल द्व्यंगल शिरामर्मणी कालांतरप्राणहरे ॥ ( वा० ५७ ) स्तनरोहितौ नाम मासमर्मणी अर्द्धांगुलप्रमाणे कालांतरप्राणहरे ॥ ( वा० ५८ ) अपलापी नाम शिरामर्मणी चार्द्धांगुले कालानरप्राणहरे ॥ ( वा० ५९ ) अपस्तंभी शिरामर्मणी कालातरप्राणहरे अद्धांगुले ॥

हां विंधनेसे कोष्ठमें वायु भरजावे और खांसी, श्वाससे मृत्यु हो ॥ ५९ ॥ ऐसे ये उदर और छातीके १२ मर्म कहे ॥ ६० ॥

अत ऊर्द्ध्वं पृष्ठमर्माण्यनुव्याख्यास्यामः ॥ ६१ ॥

इससे अगाडी पीठके मर्मोंका वर्णन करते हैं ॥ ६१ ॥

तत्र पृष्ठवंशमुभयतः प्रतिश्रोणीकांडमस्थिनी कटीकतरुणे नाम मर्मणी तत्र शोणितक्षयात् पांडुर्विवर्णो हीनरूपश्च म्रियते ॥६२॥ पार्श्वजघनबहिर्भागे पृष्ठवंशमुभयतो नातिनिम्ने कुकुंदरे नाम मर्मणी तत्र स्पर्शाज्ञानमधःकाये चेष्टोपघातश्च ॥ ६३ ॥

जिनमें पीठके वांसके दोनों तरफ कमरके दोनों हाड "कटीक तरुण" नाम मर्म हैं यहांपर शस्त्र लगे तो रुधिरके क्षयसे पांडुरोगी तथा विवर्ण और कुरूप होकर मृत्यु हो ॥ ६२ ॥ पँसवाडों और साथलोंसे बाहर (अर्थात् पँसवाडोंके पीछे और साथलोंके ऊपर) पीठके वांससे दोनों तरफ बहुत नीचे नहीं (कुछ २ नीचे) "कुकुंदर" नाम दो मर्म हैं वहां चोट लगे तो शरीर सु॰ पड जावे और नीचेके अंगोंकी चेष्टा नाश होजाय ॥ ६३ ॥

श्रोणीकांडयोरुपर्याशयाच्छादनौ पार्श्वान्तरप्रतिबद्धौ नितंबौ नाम तत्राधःकायशोषो दौर्बल्याच्च मरणम् ॥ ६४ ॥ अधःपार्श्वांतरप्रतिबद्धौ जघनपार्श्वयोस्तिर्यगूर्ध्वं च जघनात्पार्श्वसंधी नाम तत्र लोहितपूर्णकोष्ठतया म्रियते ॥६५॥ स्तनमूलादुभयतः पृष्ठवंशस्य बृहती नाम तत्र शोणितातिप्रवृत्तिनिमित्तैरुपद्रवैर्म्रियते॥६६॥

श्रोणीकांड (पूर्वोक्त कटीकतरुण) स ऊपरके आशय (स्थान) के आच्छादन करनेवाले पँसवाडोंसे बँधे हुए ऐसे "नितंब" नामक दो मर्मस्थान हैं यहां चोट

---

वा० कटीकतरुणे अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुले कालांतरप्राणहरे । "प्रतिश्रोणीकांडम्" इत्यत्र प्रतिश्रोणीकर्णौ इति वा पठति तत्र श्रोणीकर्णौ लक्ष्यीकृत्य त्रिकसन्निधानौ श्रोण्या उपरि ( इति डल्हनः ) । ( वा० ६३ ) कुकुंदरे संधिमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे च । पार्श्वयोरित्यत्र वामदक्षिणसंज्ञकयोः । जघनबहिर्भागे इति-कट्याः पश्चाद्भागे । गयी तु " पार्श्वजघनभागे-" इति पठित्वा पार्श्वयोर्जघनभागे अधोभागे नितंबसंधौ कुकुंदरे मर्मणी भवत इति । नातिनिम्ने ईषन्निम्ने ॥ ( वा० ६४ ) नितंबौ अर्द्धांगुलप्रमाणास्थिमर्मणी । "काण्डयोः" इत्यत्र श्रोणीकर्णयोरिति वा पाठः । श्रोणीकर्णौ त्रिकसन्निधानौ नाम्यासुपरि । २ शयाच्छादनाविति-आमाशयाच्छादनौ (इति डल्हनः) तत्र नितंबयोरामाशयाच्छादनाभावात् ॥ वा० ६५ ) पार्श्वसंधी अर्द्धांगुलशिरामर्मणी कालांतरप्राणहरे । तिर्यगूर्ध्वमिति-उपरिउपरि पार्श्वकानां क्रमहृद्धे संधेरपि क्रमवृद्धत्वम् (नि०सं०) ॥(वा०६६) बृहती शिरामर्मणी अर्द्धांगुले कालांतरप्राणहरे च॥

लगनेसे नीचेके शरीर सूख जाते हैं फिर दुबलापन होनेसे मृत्यु होती है ॥ ६४ ॥ नीचेके भागमें पँसवाडेसे बँधे हुए साथल और पँसलियोंसे तिरछे ऊपरको साथलोंसे ऊपर " पार्श्वसंधि " नामक मर्म हैं यहां क्षत हो तो कोठा रुधिरसे भर मृत्यु हो ॥ ६५ ॥ स्तनमूलोंसे दोनों तरफ पीठके वांसके समीपतक " बृहती " नाम २ मर्म हैं यहां आघात हो तो रुधिरकी अतिप्रवृत्तिनिमित्तजन्य उपद्रवोंसे मृत्यु हो ॥ ६६ ॥

(वक्तव्य) निबंधसंग्रहमें डल्हनमिश्रने यहां आशय शब्दसे आमाशयका ग्रहण किया और इसीका आश्रय लेकर इस समयके अनुवादकोंने भी वैसाही लिख मारा। भला विचारिये तो आमाशयका आच्छादन कहां और नितंब कहां—देखो वाचस्पत्यकोश वहां भी नितंबका अर्थ कटिका अधोभागही है और आमाशय नाभि और स्तनोंके बीचमें है इससे हम यहां आशय शब्दसे आमाशय क्योंकर मान लें ॥

**पृष्ठोपरि पृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसंबद्धे अंसफलके नाम तत्र बाह्वोः स्वापः शोषो वा ॥ ६७ ॥ बाहुमूर्द्धग्रीवामध्येंसपीठस्कंधनिबंधनावंसौ नाम तत्र स्तब्धबाहुता ॥ ६८॥ एवमेतानि चतुर्दश पृष्ठमर्माणि व्याख्यातानि ॥ ६९ ॥**

पीठके ऊपरके भागमें पीठ वांसके दोनो तरफ त्रिकस्थानसे बँधे हुए " अंसफलक " नाम मर्म हैं वहां चोट लगनेसे हाथ सुन्न पड जाते हैं अथवा सूख जाते हैं ( यहां पृष्ठोपरि शब्द पृष्ठका ऊपरला ग्रीवाके त्रिकके समीपका भाग सूचनार्थ दिया है ) ॥ ६७ ॥ बाहुओंके ऊपर ग्रीवाके मध्य खवे और खौंदेके बधन करनेवाले ऐसे " अंस " नामक मर्म हैं यहां चोट लगनेसे हाथ स्तंभित रह जाते हैं ॥ ६८ ॥ ऐसे ये १४ मर्मस्थान पीठके वर्णन किये हैं ॥ ६९ ॥

**अत ऊर्ध्वं जत्रुगतानि व्याख्यास्यामः ॥ ७० ॥**

इससे अगाडी जत्रु ( कंठके जोतोंसे ऊपर ) के मर्मोंका व्याख्यान करते हैं॥७०॥

**तत्र कंठनाडीमुभयतश्चतस्रो धमन्यो द्वे नीले द्वे च मन्ये व्यत्यासेन तत्र मूकता स्वरवैकृतमरसग्राहिता च ॥ ७१ ॥ ग्रीवायामुभयतश्चतस्रः शिरा मातृकास्तत्र सद्योमरणम् ॥ ७२ ॥ शिरो-**

---

(वा० ६७) अंसफलके अस्थिमर्मणी चार्द्धांगुले वैकल्यकरे ॥ (वा० ६८) अंसौ स्नायुमर्माद्धांगुलौ वैकल्यकराविति ॥ (वा० ७१) व्यत्यासेन वैपरीत्येन । नीले मन्ये द्वे द्वे एवं चत्वारि मर्माणि चतुरंगुलप्रमाणानि वैकल्यकराणि शिरामर्माणि ॥ (वाक्य ७२) मातृकाः शिरामर्माणि चतुरंगुलानि सद्यःप्राणहराणि ॥

**ग्रीवयोः संधाने कृकाटिके नाम तत्र चलमूर्द्धता ॥ ७३ ॥ कर्ण-पृष्ठतोऽधःसंश्रिते विधुरे नाम तत्र बाधिर्यम् ॥ ७४ ॥**

इनमेंसे कंठनाडीके दोनों तरफ चार धमनी हैं उनमेंसे दो " नीला " और दो " मन्या " हैं ( कंठनाडीके पास नीला हैं और इससे पिछाडी मन्या हैं ) इनमें आघात होनेसे गूँगापना, स्वरविकार और रसका अज्ञान होता है ॥ ७१ ॥ ग्रीवाके दोनों तरफ चार चार शिरा " मातृका " नामक मर्म हैं उनमें शस्त्र लगनेसे तत्काल मृत्यु होवे ॥ ७२ ॥ शिर और ग्रीवाकी संधिमें " कृकाटिका " नामक २ मर्म-स्थान हैं उनमें चोट लगनेसे शिर कांपने लग जाता है ॥ ७३ ॥ कानके पीछे नीचेको " विधुर " नाम २ मर्म हैं उनमें चोट लगनेसे बहरापन होजाताहै ॥७४॥

**घ्राणमार्गमुभयतः स्रोतोमार्गप्रतिबद्धेऽभ्यंतरतः फणौ नाम तत्र गंधाज्ञानम् ॥ ७५ ॥ भ्रूपुच्छांतयोरधोऽक्ष्णोर्बाह्यतोऽपांगौ नाम तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातो वा ॥ ७६ ॥ भ्रुवोरुपरि निम्नयोरावर्त्तौ नाम तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातश्च ॥ ७७ ॥ भ्रुवोः पुच्छांतयोरुपरि कर्णललाटयोर्मध्ये शंखौ नाम तत्र सद्योमरणम् ॥ ७८ ॥**

नाकके मार्गमें दोनों तरफ छिद्रमार्गसे प्रतिबद्ध भीतरको " फण " नाम २ मर्म हैं उनपर आघात पहुँचने या विकार होनेसे गंधका ज्ञान नष्ट होजाता है॥७५॥ भ्रुकुटीकी पुच्छसे नीचेको नेत्रोंसे बाहरकी तरफ " अपांग " नामक दो मर्मस्थान हैं इनमें आघात होनेसे अंधापन अथवा दृष्टिका नाश होजाता है ॥ ७६ ॥ भ्रुकुटीसे ऊपर नीचे " आवर्त " नामक दो मर्म हैं यहां भी आघात होनेसे अँधा-पन और दृष्टिका नाश होजाता है ॥ ७७ ॥ भ्रुकुटीकी पुच्छके अंतमें ऊपरको कान और शिरके बीचमें " शंख " ( कनपटी ) नामक दो मर्मस्थान हैं यहां आघात होनेसे तत्काल मृत्यु होजाती है ॥ ७८ ॥

**शंखयोरुपरि केशांत उत्क्षेपौ नाम तत्र सशल्यो जीवति पाका-त्पतितशल्यो वा नोद्धृतशल्यः ॥ ७९ ॥ भ्रुवोर्मध्ये स्थपनी नाम तत्रोत्क्षेपवत् ॥ ८० ॥ पंच संधयः शिरसि विभक्ताः सीमंता**

---

( वाक्य ७३ ) कृकाटिके संधिमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे च ॥ ( वा०७४ ) विधुरे स्नायुमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे च ॥ ( वा० ७५ ) फणे नाम अर्द्धांगुलशिरामर्मणी वैकल्यकरे ॥ ( वा० ७६ ) अपांगौ अर्द्धांगुलशिरामर्मणी वैकल्यकरे ॥ ( वा० ७७ ) आवर्तौ अर्द्धांगुलसन्धिमर्मणी वैकल्यकरे ॥ (वा०७८ ) शंखौ चास्थिमर्मणी अर्द्धांगुले सद्यःप्राणहरे ॥ ( वा०७९ ) उत्क्षेपौ स्नायुमर्मणी अर्द्धांगुले विशल्यघ्ने ॥ ( वा० ८० ) स्थपनी नाम शिरामर्मेदमर्द्धांगुलं विशल्यघ्नम् ॥

नाम तत्रोन्मादभयचित्तनाशैर्मरणम् ॥ ८१ ॥ घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वासंतर्पणीनां शिराणां मध्ये शिरासन्निपातः शृंगाटकानि तानि चत्वारि मर्माणि तत्रापि सद्योमरणम् ॥ ८२ ॥ मस्तकाभ्यंतरोपरिष्टात् शिरासंधिसन्निपातो रोमावर्तोऽधिपतिस्तत्रापि सद्योमरणम् ॥ ८३ ॥ एवमेतानि सप्तत्रिंशदूर्ध्वजत्रुगतानि मर्माणि व्याख्यातानि ॥ ८४ ॥ भवन्ति चात्र–

'शंखों ( कनपटियों ) के ऊपर बालोंकी सीमामें "उत्क्षेपक" नाम दो मर्मस्थान हैं इनमें शल्य ( तीर आदि ) लगे तो जबतक उनमें वह शल्य घुसा रहे तबतक मनुष्य जीवे अथवा स्वयं पककर वह शल्य आपही गिरजावे तो भी जीवे परंतु वह शल्य खींचकर निकाला जावे तो उसी समय मृत्यु होवे ॥ ७९ ॥ दोनों भ्रुकुटियोंके मध्यमें "स्थपनी" नामक मर्मस्थान है इसे भी उत्क्षेपककी भांतिही जानना चाहिये ॥ ८० ॥ शिरमें जुदी जुदी पांचसंधि हैं वे "सीमंत" नामक मर्म हैं इनमें आघात होनेसे उन्मादभय और चित्तका नाश होकर मृत्यु होवे ॥ ८१ ॥ नासिका, कर्ण, नेत्र और जिह्वा इनको तृप्त करनेवाली शिराओंमें शिराओंका संनिपात ( मिलाहुआ गुच्छा ) है ये गुच्छे चारों "शृंगाटक" नामक मर्म हैं इनमें आघात होनेसे तत्काल मृत्यु होवे ॥ ८२ ॥ मस्तकके भीतर ऊपरको जहांपर बालोंका आवर्त ( भँवर ) होता है वहां शिरा और संधिका सन्निपात ( मिलाप है यह "अधिपति" नाम मर्मस्थान है यहांपर चोट लगनेसे तत्काल मृत्यु होती है ॥ ८३ ॥ इस प्रकारसे ग्रीवासे शिरतकके ये ३७ मर्म वर्णन किये गये ॥ ८४ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं–

## मर्मस्थानोंका प्रमाण ।

ऊर्व्यः शिरांसि विटपे च सकक्षपार्श्वे एकैकमंगुलमितं स्तनमूलपूर्वम् ॥ विद्ध्यंगुलद्वयमितं मणिबंधगुल्फं त्रीण्येव जानु सपरं सह कूर्पराभ्याम् ॥ ८५ ॥ हृद्बस्तिकूर्चगुदनाभि वदंति मूर्ध्नि चत्वारि पंच च गले दश यानि च द्वे ॥ तानि स्वपाणितलकुंचितसंमितानि शेषाण्यवेहि परिविस्तरतोऽगुलार्द्धम् ॥ ८६ ॥

( वा० ८१ ) सीमंताः संधिमर्माणि चतुरंगुलानि कालांतरघ्नानि ॥ ( वा० ८२ ) शृंगाटकानि शिरामर्माणि चतुरंगुलानि सद्यःप्राणहराणि तत्राह–वृद्धवाग्भटः–जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्रतर्पणीनां शिराणा तालुनि संनिपातः तासां मुखानि चत्वारि शृंगाटकसंज्ञानीति ॥ ( वा० ८३ ) अधिपतिः संधिमर्मेदमद्धांगुलप्रमाणं सद्योमारकमिति ॥ ( श्लो० ८५।८६ ) शिरासि कूर्चशिरांसि । कक्षपार्श्वे कक्षसमीपे । "स्तनमूलपूर्वम्"–

ऊर्वी, कूर्चशीर्ष, विटप और कक्षधर ये मर्म एक एक अंगुल प्रमाणके हैं और स्तनमूल, मणिबंध और गुल्फ इन्हें दो दो अंगुल प्रमाणके जानो । तथा जानु और कूर्पर तीन तीन अंगुल हैं ॥ ८५ ॥ हृदय, वस्ति, कूर्च, गुदा, नाभि और शिर (ताल) के चार मर्म तो शृंगाटक और कपालके पांच मर्म सीमंत तथा गलेके दश मर्म ८ मातृका और दो नीला और दो मन्या ये सब चार चार अंगुलके हैं और जो ५६ शेष रहे वे सब आधे आधे अंगुल जानों ॥ ८६ ॥

एतत्प्रमाणमभिवीक्ष्य वदंति तज्ज्ञाः शस्त्रेण कर्मकरणं परिहृत्य मर्म ॥ पार्श्वाभिघातितमपीह निहंति मर्म तस्माद्धि मर्मसदनं परिवर्जनीयम् ॥ ८७ ॥

यह प्रमाण मर्मोका जो पूर्व कहा इसे विचार कर मर्मको बचाकर सुज्ञ वैद्यको शस्त्रकर्म करना चाहिये क्योंकि मर्मस्थान आसपासमें कटजावे तो भी मृत्युकारक हो जाता है इस लिये निश्चय मर्मस्थानको तो छोड़करही चीरा लगाना चाहिये ॥ ८७ ॥

छिन्नेषु पाणिचरणेषु शिरा नराणां संकोचमीयुरसृगल्पमतो निरेति ॥ प्राप्यामितव्यसनमुग्रमतो मनुष्याः संछिन्नशाखतरुवन्निधनं न यांति ॥ ८८ ॥ क्षिप्रेषु तत्र सतलेषु हतेषु रक्तं गच्छत्यतीव पवनश्च रुजं करोति ॥ एवं विनाशमुपयांति हि तत्र विद्धा वृक्षा इवायुधविघातनिकृत्तमूलाः ॥ तस्मात्तयोरभिहतस्य तु पाणिपादं छेत्तव्यमाशु मणिबंधनगुल्फदेशे ॥८९॥

यदि किसी मनुष्यका हाथ या पांव कटभी जावे तो वहांकी रगें सुकड़ जावें और रुधिर कम बहता है यद्यपि बहुत उग्र पीडाको मनुष्य प्राप्त होता है तो भी शाखा कटे हुए जैसे वृक्ष नष्ट नहीं होते ऐसेही हाथ, पांव कट जानेपर मनुष्य नहीं मरता है ॥ ८८॥ परंतु हाथ, पावोंके क्षिप्रसंज्ञक और तलसंज्ञक मर्ममें शस्त्र लगे

---

–इत्यत्र स्तनपूर्वमूलमिति वा पाठः । सपरमिति द्वितीयजानुसहितम् । मूर्ध्नि चत्वारि पञ्च चेति चत्वारि शृंगाटकानि तथा तत्रैव पंच सीमंताः । गले दश यानि च द्वे इति–अष्टौ मातृका द्वे द्वे नीले मन्ये च । स्वपाणितलकुञ्चितसम्मितानि चतुरंगुलप्रमाणानीत्यर्थ. । शेषाणि षट्पंचाशन्मर्माणि विस्तरतः अर्द्धांगुलानीत्यादि (इति डल्हन.) ॥

---

(श्लोक ८९) " वृक्षा इवायुधविघातनिकृत्तमूलाः " इत्यत्र गयी तु किंशुकस्तम्भगतादिव पञ्जनीं इति पठति ॥

तो रुधिर बहुतही बहता है और वायुभी बहुत पीडा करता है इससे क्षिप्र, तल इनमें विंध जानेसे जैसे शस्त्रसे जड़कटा वृक्ष गिरजाता है वैसे मनुष्य मरजाता है इस कारण यदि इन क्षिप्र, तलमें शस्त्र लगे (घाव हो जावे) तो उस मनुष्यके उसी हाथ या पांवको मणिबंध या गुलफकी जगहसे शीघ्र काट देना चाहिये ॥ ८९ ॥

मर्माणि शल्यविषयार्द्धमुदाहरंति यस्माच्च मर्मसु हता न भवंति सद्यः ॥ जीवंति तत्र यदि वैद्यगुणेन किंचित्ते प्राप्नुवंति वि-कलत्वमसंशयं हि ॥ ९० ॥ संभिन्नजर्जरितकोष्ठशिरःकपाला जीवंति शस्त्रविहतैश्च शरीरदेशैः ॥ छिन्नैश्च सक्थिभुजपादकरै-रशेषैर्येषां न मर्मपतिता विविधाः प्रहाराः ॥ ९१ ॥

मर्मोंको शल्यविषयार्द्ध कहतेहैं इस हेतुसे कि कभी मर्मोंमें आघात होनेसे तत्काल मृत्यु होतीहै और कदाचित् कोई कोई वैद्यकी कुशलतासे जीते भी रहजाते हैं परंतु वे विकलताको तो अवश्यही प्राप्त होते हैं ॥ ९० ॥ कई मनुष्य जिनके धड़, शिर, चेहरे ( चोटोंसे ) जर्जरीभूत होगये हैं तथा शरीरके प्रदेश साथल, भुजा, पांव, हाथ, आदि शस्त्रोंसे कट गये हैं वेभी जीते रहजाते हैं जिनके मर्मोंमें विविध प्रकारके प्रहार नहीं हुए हों (अर्थात् मर्मोंमें आघात होनेसे बचना असंभव है और शिर, धड जर्जर हुए हाथ, पाँव कटे मनुष्य बच जातेहैं ) ॥ ९१ ॥

सोममारुततेजांसि रजःसत्त्वतमांसि च ॥ मर्मसु प्रायशः पुंसां भूतात्मा चावतिष्ठते॥मर्मस्वभिहतास्तस्मान्न जीवंति शरीरिणः ९२

सोम, वायु और तेज तथा रजोगुण,सत्त्वगुण,तमोगुण और प्रायः भूतात्मा(जीव) ये सब मर्मस्थानोंमें स्थित रहते हैं इसी हेतु मर्मोंमें अभिघात होने ( छेद भेदन होने, कुचले जाने, चोट लगने आदि ) से मनुष्य नहीं जीते हैं ॥ ९२ ॥

इंद्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्मनोबुद्धिविपर्ययः ॥ रुजश्च विविधास्तीव्रा भवंत्याशुहरे हते ॥ ९३ ॥ हते कालांतरघ्ने तु ध्रुवो धातुक्षयो नृणाम् ॥ ततो धातुक्षयाज्जंतुर्वेदनाभिश्च नश्यति ॥ ९४ ॥ हते वैकल्यजनने केवलं वैद्यनैपुणात् ॥ शरीरं क्रियया युक्तं विकल-त्वमवाप्नुयात् ॥९५॥ विशल्यघ्नेषु विज्ञेयं पूर्वोक्तं यच्च कारणम् ॥

---

( श्लोक ९० ) मर्माणि शल्यविषयार्द्धमिति—शल्यज्ञानविषयस्यार्द्धं मर्माणि एव, यस्मात् मर्मसु हताः सद्यो न भवति सद्यः एव मृत्युं प्राप्नुवंति इति भावः । डल्हनस्तु सद्यो न भवंतीति सद्यो न म्रियन्ते इति व्याख्याति तन्न“जीवति तत्र यदि वैद्यगुणेन किंचित्”इत्यादि कथनासंगतत्वात् मर्मणां शल्यविषयार्द्धत्वाच॥

॥ ९६ ॥ रुजाकराणि मर्माणि क्षतानि विविधा रुजः ॥ कुर्वंत्यंते च वैकल्यं कुवैद्यवशगो यदि ॥ ९७ ॥

सद्यःप्राणहर मर्मोंमें आघात होनेसे इंद्रियोंकी अर्थोंमें संप्राप्ति न होना ( इंद्रियोंका ज्ञान और कर्म नष्ट होना ), मन और बुद्धिका विपरीत होना और अनेक भांतिकी दारुण पीडा होना ये लक्षण होतेहैं ॥ ९३ ॥ कालांतरमारक मर्मोंमें आघात होनेसे मनुष्यका धातु क्षय ( नष्ट ) होजाता है फिर वेदनाओंसे मृत्यु होती है ॥ ९४ ॥ और वैकल्यकारक मर्मोंमें आघात हो तो केवल वैद्यकी निपुणतासे विकल शरीर क्रियायुक्त होसकता है ॥ ९५ ॥ और विशल्यघ्न मर्मोंमें पूर्वोक्त कारण ( शल्ययुक्त जीवे या स्वयं शल्य पककर गिरे तो जीवे, शल्य निकालनेसे मृत्यु हो इत्यादि ) जानने ॥ ९६ ॥ और रुजाकर मर्मोंमें आघात हो तो वे अनेक प्रकारकी पीड़ा करते हैं और यदि कुवैद्य चिकित्सा करे तो अंतमें विकलता होजाती है ॥ ९७ ॥

छेदभेदाभिघातेभ्यो दहनाद्दारणादपि ॥
उपघातं विजानीयान्मर्मणां तुल्यलक्षणम् ॥ ९८ ॥

मर्मोंमें छेद ( बिंधने ), भेद ( भेदन होने ), अभिघात ( चोट लगने, दब जाने पिस जाने ) से और जलजाने या दाग देने और चीरा लगाने इन सब कारणोंको उपघातही समझना चाहिये। और पूर्वके तुल्य पीडा आदि लक्षण जानने चाहिये ( डल्हनमिश्र उपघातका अर्थ समीपमें घात ऐसा करते हैं अर्थात् मर्मोंके समीपमें छेद, भेदादि होनेसे भी मर्मोंके तुल्यही प्रायः लक्षण समझने चाहिये ) ॥ ९८ ॥

मर्माभिघातस्तु न कश्चिदस्ति योऽल्पात्ययो वापि निरत्ययो वा ॥
प्रायेण मर्मस्वभिताडितास्तु वैकल्यमृच्छंत्यथवा म्रियंते ॥९९॥
मर्माण्यधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्च्छंति काये विविधा नराणाम् ॥
प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवंति नरस्य यत्नैरपि साध्यमानाः ॥१००॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मर्मकी चोट लगा हुआ ऐसा कोई भी नहीं होसकता कि जिसे थोडी भी पीडा न हो या पीडा होही नही किंतु प्रायः मर्मकी चोट लगेहुए मनुष्य तो विकलताको प्राप्त होते है या मर जाते हैं ॥ ९९ ॥ मर्मस्थानमें हुए विकार तो मनुष्योंके शरीरमें अनेक प्रकारसे फैल जाते है और स्थित होजाते हैं इससे यत्नपूर्वक साधन करनेपर भी प्रायः अति कठिन होहीजाते हैं ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० शारीरस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## सप्तमोऽध्यायः ७.

**अथातः शिरावर्णनविभक्तिनाम शारीरं व्याख्यास्यामः ।**

यहांसे अगाडी शिराओंके वर्णन और उनके विभाग विषयक शारीरकका व्याख्यान करते हैं ॥

**सप्त शिराशतानि भवन्ति याभिरिदं शरीरमाराम इव जलहारिणीभिः केदार इव कुल्याभिरुपस्निह्यतेऽनुगृह्यते चाकुंचनप्रसारणादिभिर्विशेषैः । द्रुमपत्रसेवनीनामिव च तासां प्रतानास्तासां नाभिर्मूलं ततश्च प्रसरन्त्यूर्ध्वमधस्तिर्य्यक् च ॥ १ ॥ भवतश्चात्र—**

इस मनुष्य शरीरमें सातसौ ७०० शिरा (प्रधान) हैं इन शिराओं (रगों) करके शरीर इस प्रकार सींचा (पालन पोषण किया) जाताहै जैसे बागीचा जलकी नालियों करके सींचा जाताहै तथा केदार (क्षेत्र) कुल्या (नहरों) करके सीचा जाता है और इन शिराओंसे ही आकुंचन (सकोड़), प्रसारण (फैलाव), (तथा जागना सोना इंद्रियोंका ज्ञान) इत्यादि द्वारा शरीरका अनुग्रह होता है शिराओंका फैलाव शरीरके अंग, प्रत्यंगोंमें इस प्रकारसे है जैसे वृक्षोंके पत्तोंमें तंतुजाल फैले रहतेहैं और इन सब शिराओंका मूल नाभि है इस नाभिस्थानसेही यें ऊपरको, नीचेको, टेढी तिरछी फैली हुई हैं ॥ १ ॥ इस विषयमें दो श्लोक हैं—

**यावत्यस्तु शिराः काये संभवन्ति शरीरिणाम् ॥ नाभ्यां सर्वा निबद्धास्ताः प्रतन्वंति समन्ततः ॥ २ ॥ नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिर्व्युपाश्रिता ॥ शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ॥ ३ ॥**

इस शरीरमें जितनी शिरा हैं सब नाभिसे संवर्द्धित हुई समस्त शरीरमें फैल रही हैं ॥ २ ॥ मनुष्योंके प्राण नाभिमें स्थित रहतेहैं और नाभि प्राणोके आश्रयमें यह नाभि शिराओंसे ऐसी घिरी हुई है जैसे चक्रनाभि (रथके पहियेका मध्य) आरक नामक काष्ठोंसे घिरा होताहै ॥ ३ ॥

**तासां मूलशिराश्चत्वारिंशत् । तासां वातवाहिन्यो दश । पित्तवाहिन्यो दश । कफवाहिन्यो दश। दश रक्तवाहिन्यः । तासां तु**

---

(वा० १) वर्णन विवेचन 'वर्ण'इति पाठे तु वर्णः श्वेतादिवर्णः। जलहारिणीभिः प्रणालीभि.।केदारः क्षेत्र-विशेषः।कुल्या कृत्रिमाल्पसरित्। एतद्दृष्टान्तद्वय सूक्ष्मस्थूलशिराप्रापणार्थम्। उपस्निह्यते स्निग्धीक्रियते पुष्टिं नीयते च॥ (श्लो० ३) प्राणाः नाभिस्थाः इत्यनेन नाभ्यावरकासु शिरासु अवस्थिताः (इति डल्हनः)॥

वातवाहिनीनां वातस्थानगतानां पंचसप्ततिशतं भवति। तावत्य एव पित्तवाहिन्यः पित्तस्थाने कफवाहिन्यश्च कफस्थाने। रक्तवाहिन्यश्च यकृत्प्लीह्नोरेवमेतानि सप्त शिराशतानि ॥ ४ ॥

इन ७०० शिराओंकी मूलशिरा ४० हैं जिनमें दश वात (वायु) को वहानेवाली और दश पित्तको वहानेवाली, दश कफको वहानेवाली और दशही रुधिरको वहानेवाली हैं। फिर वे वातवाहिनी वाताशयमें प्राप्त होनेवाली शिरायें १७५ होती हैं और इतनी १७५ ही पित्तवाहिनी पित्तस्थानमें प्राप्त होनेवाली हैं तथा १७५ कफवाहिनी कफस्थानमें प्राप्त होनेवाली हैं तथा १७५ रुधिरवाहिनी यकृत् और प्लीहामें प्राप्त होनेवाली हैं इस प्रकार ये सब ७०० शिरायें हुई ॥ ४ ॥

तत्र वातवाहिन्यः शिरा एकस्मिन्सक्थ्नि पंचविंशतिः। एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ ५ ॥ विशेषतस्तु कोष्ठे चतुस्त्रिंशत्। तासां गुदमेढ्राश्रिताः श्रोण्यामष्टौ। द्वे द्वे पार्श्वयोः। षट् पृष्ठे। तावत्य एव चोदरे। दश वक्षसि ॥ ६ ॥

तहां वायुवाहिनी शिरा एक पांवमें २५ हैं और इसी भांति दूसरे पांवमें २५ तथा दोनों हाथोंमें पच्चीस पच्चीस ऐसे ये सब सौ १०० हुई ॥ ५ ॥ और कोष्ठ (धड़) में विशेष करके ३४ हैं उनमें गुदा और लिंगके आश्रयभूत कटिमें ८ और दो दो दोनों पँसवाडोंमें ऐसे ४ ये और ६ पीठमें और ६ ही पेटमें और १० छातीमें हैं ॥ ६ ॥

एकचत्वारिंशज्जत्रुण ऊर्द्ध्वम्। तासां चतुर्दश ग्रीवायाम्। कर्णयोश्चतस्रः। नव जिह्वायाम्। षट् नासिकायाम्। अष्टौ नेत्रयोः ॥ ७ ॥ एवमेतत्पंचसप्तत्यधिकशतं वातवहानां शिराणां व्याख्यातमेष एव विभागः शेषाणामपि ॥ ८ ॥ विशेषतस्तु पित्तवाहिन्यो नेत्रयोर्दश। कर्णयोर्द्वे। एवं रक्तवहाः कफवहाश्च। एवमेतानि सप्त शिराशतानि सविभागानि व्याख्यातानि ॥ ९ ॥ भवंति चात्र-

इकतालीस ४१ शिरा वातवहा जोतोंसे ऊपर (ग्रीवा और शिरमें) हैं जिनमें १४ ग्रीवा (नाड) में, और ४ दोनों कानोंमें, ९ जिह्वामें, ६ नाकमें और ८ नेत्रोंमें हैं ॥ ७ ॥ ऐसे ये १७५-वातवहा शिराओंका व्याख्यान किया गया यही हिसाब शेष रहीं पित्तवहा, कफवहा और रक्तवहा शिराओंकाभी है ॥ ८ ॥ विशेष

इतनाही है कि पित्तवाहिनियोंमेंसे नेत्रोंमें १० और कानोंमें २ शिरा हैं इसीप्रकार कफवहा और रक्तवहा भी समझ लेनी चाहिये ऐसे ये सब७०० शिरायें विभागपूर्वक व्याख्यान कीगई ॥ ९ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं-

क्रियाणामप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्मणाम् ॥ करोत्यन्यान् गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन् ॥ १० ॥ यदा तु कुपितो वायुः स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥ तदाऽस्य विविधा रोगा जायंते वातसंभवाः ॥ ११ ॥ भ्राजिष्णुतामन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम् ॥ संसर्पत्स्वाः शिराः पित्तं कुर्य्याच्चान्यान् गुणानपि ॥१२॥ यदा प्रकुपितं पित्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदाऽस्य विविधा रोगा जायंते पित्तसंभवाः ॥ १३ ॥ स्नेहमंगेषु संधीनां स्थैर्य्यं बलमुदीर्णताम् ॥ करोत्यन्यान् गुणांश्चापि बलासः स्वाः शिराश्चरन् ॥ १४ ॥ यदा तु कुपितः श्लेष्मा स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥ तदास्य विविधा रोगा जायंते श्लेष्मसंभवाः ॥ १५ ॥ धातूनां पूरणं वर्णं स्पर्शज्ञानमसंशयम् ॥ स्वाः शिराः संचरद्रक्तं कुर्य्याच्चान्यान् गुणानपि ॥ १६ ॥ यदा तु कुपितं रक्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदास्य विविधा रोगा जायंते रक्तसंभवाः ॥ १७ ॥

शुद्ध वायु अपनी शिराओंमें ठीक संचार करे तो समस्त क्रिया ( प्रसारण, आकुंचनादि ) यथायोग्य होती हैं और बुद्धि तथा कर्मोंमें मोह नहीं होता अर्थात् बुद्धींद्रिय और कर्मेंद्रिय सब अपने कार्योंमें निपुण होती हैं तथा अन्य स्पर्शनादि गुणभी ठीक ठीक होते हैं ॥ १० ॥ और यदि कुपित वायु अपनी शिराओंमें संचार करे तो अनेक प्रकारके वायुरोग उससे उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ११ ॥ शुद्ध पित्त अपनी शिराओंमें संचार करे तो भ्राजिष्णुता ( कांति ), अन्नपर रुचि, जठराग्निकी दीप्ति और नैरोग्यता तथा अन्य गुण ( रागादिभी ) ठीक करता है ॥ १२ ॥ और यदि कुपित पित्त अपनी शिराओंमें गमन करे तो उससे अनेक प्रकारके पित्तरोग ( दाहादि ) उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १३ ॥ शुद्ध कफ अपनी शिराओंमें संचार करे तो अंगोंमें स्निग्धता और संधियोंमें स्थिरता ( योग्यता ) और बल तथा उदीर्णता ( महत्त्वता ) और अन्य दृढता आदि गुण करता है ॥ १४ ॥ और यदि कुपित कफ अपनी शिराओंमें गमन करे तो उससे अनेक प्रकारके कफके रोग ( ग्लानि,

गौरवादि ) हो जाते हैं ॥ १५ ॥ शुद्ध रुधिर अपनी शिराओंमें संचार ( गमन )
करे तो सब धातुवों ( मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और वीर्य इन ) की पूर्णता और
सुंदररूप तथा निःसंशय स्पर्शका ज्ञान तथा अन्य (प्रसन्नता आदि) गुणभी करता
है ॥ १६ ॥ और यदि कुपित रुधिर अपनी शिराओंमें गमन करे तो उससे अनेक
प्रकारके रुधिरविकार ( विस्फोटक, विसर्पादि ) हो जाते हैं ॥ १७ ॥

## शिराओंका सर्वदोषवहत्व ।

न हि वातं शिराः काश्चिन्न पित्तं केवलं तथा ॥ श्लेष्माणं वा वहन्त्येता अतः सर्ववहाः स्मृताः ॥१८॥ प्रदुष्टानां हि दोषाणामुच्छ्रितानां प्रधावताम् ॥ ध्रुवमुन्मार्गगमनमतः सर्ववहाः स्मृताः॥१९॥

कोईभी ऐसी शिरा नही हैं जिनमे केवल वायुही या केवल पित्तही या केवल कफही वहतेहों किंतु सबमें सबके अंशांश होतेहैं और एक मुख्य होताहै जैसे वातवहा शिराओंमें वायु तो मुख्य और पित्तादिके अंशांश होतेहैं इसी भांति पित्तवहा शिराओंमें पित्त मुख्य और वातकफादिके अंशांश, ऐसे औरभी जानो इसीसे ये शिरा सर्ववहा कहलाती हैं ॥१८॥ और जब दोष दुष्ट होतेहैं और उच्छ्रित( उफानयुक्त) होतेहैं और प्रधावतेहैं ( दौड़तेहैं ) तो अवश्य उन्मार्गगमन करतेहैं अर्थात् अपने प्राकृत मार्गसे अन्यमार्गमें गमन करतेहैं ( और गमन शिराओंद्वारा होताहै ) इससेभी शिरा सर्ववहा कही जाती हैं ॥ १९ ॥

## शिराओंके रंग आदि ।

तत्रारुणा वातवहाः पूर्यन्ते वायुना शिराः ॥ पित्तादुष्णाश्च नीलाश्च शीता गौर्यः स्थिराः कफात् ॥ असृग्वहास्तु रोहिण्यः शिरा नात्युष्णशीतलाः ॥ २० ॥

तिनमें वायुवहा शिरा कालापन लिये लाल रंगकी होती हैं और वायुसे फूली रहती हैं तथा पित्तवहा शिरा गरम और नीले रंगकी होती हैं तथा कफवहा शिरा शीतल सुपेद रंगकी और स्थिर होती हैं एवं रक्तवहा शिरा लाल और न बहुत गरम न शीतल होती हैं ॥ २० ॥

---

( श्लो० १८ । १९ ) प्राकृतवातादिवहानामपि शिराणां सर्वत्र सर्वकार्योपलंभात् सर्ववहत्वं दर्शयन्नाह—'न हि वात' इत्यादि । 'उच्छ्रितानाम्' इत्यत्र मूर्च्छितानामिति वा पाठः मूर्च्छितानां परस्पर मिश्रितानाम् ( इति डल्हनः ) ( श्लो० २० ) अरुणशब्देनात्र कृष्णमिश्रितरक्तवर्णो गृह्यते अव्यक्तरागवर्णो वा । अरुणः संध्यारागे अव्यक्तरागे कृष्णमिश्रितरक्तवर्णे च ( इति श० स्तो० ) रोहिणी रक्तवर्णवती । रोहितशब्दात् स्त्रियां ङीप् तस्य नत्वे णत्वम् ( इति वाचस्पतिः ) ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि न विध्येद्याः शिरा भिषक् ॥ वैकल्यं मरणं चापि व्यधात्तासां ध्रुवं भवेत् ॥ २१ ॥ शिराशतानि चत्वारि विद्याच्छाखासु बुद्धिमान् ॥ षट्त्रिंशच्च शतं कोष्ठे चतुःषष्टिं च मूर्द्धनि ॥ २२ ॥ शाखासु षोडश शिराः कोष्ठे द्वात्रिंशदेव तु ॥ पंचाशज्जत्रुणश्चोर्द्धमवेध्याः परिकीर्तिताः ॥ २३ ॥

इससे अगाडी उन शिराओंका वर्णन करते हैं जिन्हें वैद्य वेधन नहीं करे जिनके विंध जानेसे विकलता या मृत्यु अवश्य होती है ॥ २१ ॥ चारसौ ४०० शिरा तो चारों प्रकारकी चारों हाथ पैरोंमें हैं और १३६ धडमें है तथा १६४ ग्रीवासे ऊपर हैं ॥ २२ ॥ उनमेंसे हाथ, पैरोंमें १६ शिरा अवेध्य ( वेधनके योग्य नहीं ) हैं और धड़में ३२ वेधन योग्य नहीं तथा ५० गलेसे ऊपर अवेध्य हैं ॥ २३ ॥

तत्र शिराशतमेकस्मिन्सक्थ्नि भवति । तासां जालधरा त्वेका तिस्रश्चाभ्यंतरास्तत्रोर्वीसंज्ञे द्वे लोहिताक्षसंज्ञा चैका ; एतास्त्ववेध्या एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातावेवमशस्त्रकृत्याः षोडश शाखासु ॥ २४ ॥

ये जो एक पांवमें १०० शिरा हैं उनमेंसे एक तो जालधरा (जो जालको धारण करनेवाली कूर्चशीर्षके पास है ) और तीन भीतरको जिनमें दो ऊर्वी संज्ञक है ( ये ऊर्वी नाम मर्मके निकट हैं) और १ लोहिताक्षसंज्ञक (यह लोहिताक्ष मर्मस्थानपर है) ऐसे एक पैरमें ये ४ शिरा छेदन करनी वर्जित हैं इसी प्रकार दूसरे पांव और दोनों हाथोंमें १६ शिरा अवेध्य हैं ॥ २४ ॥

द्वात्रिंशच्छ्रोण्यां तासामष्टावशस्त्रकृत्या द्वे द्वे विटपयोः कटीकतरुणयोश्च ॥ २५ ॥ अष्टावष्टावेकैकस्मिन्पार्श्वे तासामेकैकामूर्द्धगां परिहरेत् पार्श्वसंधिगते च द्वे ॥ २६ ॥ चतस्रो विंशतिश्च पृष्ठवंशमुभयतस्तासामूर्द्धगामिन्यो द्वे द्वे परिहरेद्बृहतीशिरे॥२७॥ तावत्य एवोदरे तासां मेढ्रोपरि रोमराजीमुभयतो द्वे द्वे परिहरेत्॥२८॥

श्रोणी ( कमर ) में ३२ शिरा हैं उनमें आठ शिरा अवेध्य हैं दो दो विटपोंमें और दोही दो कटीकतरुणोंमें ॥ २५ ॥ और आठ आठ एक एक पँसवाडेमें शिरा हैं उनमें दोनों तरफ एक एक ऊपरको जानेवाली और दो दोनों पँसवाडोंके संधिकी अवेध्य हैं ॥ २६ ॥ पीठके वांसके दोनों तरफ २४ शिरा हैं उनमेंसे ऊपर

जानेवाली बृहतीनामक दो दो शिरा अवेध्य हैं ॥ २७ ॥ और चौवीसही शिरा पेटमें हैं उनमें लिंगके ऊपर रोमोंके दोनों तरफकी दो दो शिरा वेधन योग्य नहीं हैं ॥ २८ ॥

**चत्वारिंशद्वक्षसि तासां चतुर्दशाशस्त्रकृत्या हृदये द्वे द्वे द्वे स्तनमूले स्तनरोहितापलापापस्तम्भेषूभयतोऽष्टौ ॥ २९ ॥ एवं द्वात्रिंशदशस्त्रकृत्याः पृष्ठोदरोरःसु भवंति ॥ ३० ॥**

वक्षःस्थलमें ४० शिरा हैं जिनमें १४ शिरा शस्त्रसे बचाने योग्य हैं, हृदयमें २ और स्तनमूलमें दोनों ओर दो दो ( ऐसे ४ ) और स्तनरोहितमें दो दो(४) तथा अपलाप और अपस्तंभोंमें दो दो ( ४ ये सब १४ हुई ) ॥ २९ ॥ ऐसे सब ३२ शिरा, पीठ, पेट और छातीमें अवेध्य हैं ॥ ३० ॥

**चतुःषष्टिशिराशतं जत्रुण ऊर्द्ध्वं भवति । तत्र षट्पंचाशच्छिरोधरायां तासामष्टौ चतस्रश्च मर्मसंज्ञाः परिहरेद्वे कृकाटिकयोर्द्वे विधुरयोः । एवं ग्रीवायां षोडशावेध्याः ॥३१॥ हन्वोरुभयतोष्टावष्टौ तासां तु संधिधमन्यौ द्वे द्वे परिहरेत् ॥ ३२ ॥**

ग्रीवासे ऊपर १६४ शिरा हैं तिनमें ५६ शिरोधरा ( ग्रीवा ) में हैं उनमेंसे आठ मातृका, चार नीला और मन्यासंज्ञक मर्मशिरा और दो कृकाटिकाकी और दो विधुर ऐसे ग्रीवामें १६ शिरा अवेध्य हैं ॥ ३१ ॥ हनु ( ठोडी ) के दोनों तरफ आठ आठ शिरा हैं उनमेंसे संधिकी और धमनी संज्ञक दो दोको बचाना चाहिये ॥ ३२ ॥

**षट्त्रिंशज्जिह्वायां तासामधः षोडश शस्त्रकृत्या रसवहे द्वे वाग्वहे च द्वे ॥ ३३ ॥ द्विर्द्वादश नासायां तासामौपनासिक्यश्चतस्रः परिहरेत् तासामेव च तालुन्येकां मृदावुद्देशे ॥ ३४ ॥ अष्टात्रिंशदुभयोर्नेत्रयोस्तासामेकैकामपांगयोः परिहरेत् ॥ ३५ ॥**

---

( वा० २९ ) उभयतोष्टाविति-उभयत्रेत्यर्थः तेन स्तनरोहितयोः द्वे द्वे अपलापयोरेकैका अपस्तंभयोरप्येकैका एवमष्टावित्यर्थः । तथाच हृदये द्वे द्वे स्तनमूले च इति चतुर्दश ( इति डल्हनः ) ॥

( वा० ३१ ) शिरोधरा ग्रीवा । तत्राष्टौ मातृका द्वे नीले द्वे मन्ये ॥ ( वा० ३३ ) तासां जिह्वागतषट्त्रिंशच्छिराणां मध्ये अधो जिह्वायाः षोडश शिरा भवति विंशतिश्च जिह्वाया ऊर्द्ध्वं भवंतीत्यर्थः । तत्र अशस्त्रकृत्या द्वे रसवहे द्वे वाग्वहे चेत्यन्वयः ( वाक्य ३४ ) औपनासिक्यः नासासमीपवर्तिन्यः मृदावुद्देशे कोमलस्थाने इत्यर्थः. ( इति नि० सं० ) ॥

जिह्वामें ३६ शिरा हैं जिनमें १६ नीचेकी हैं (और २० ऊपरकी) उनमेंसे रसको वहानेवाली दो और वाणीको वहानेवाली दो अवेध्य हैं ॥ ३३ ॥ नासिकामें 'द्विर्द्वादश' अर्थात् चौवीस शिरा हैं जिनमेंसे नासिकाके समीपवाली ४ शिरा बचानी चाहियें और एक तालुमें 'मृदावुद्देशे' अर्थात् घोणाके समीप अवेध्य है ॥ ३४ ॥ दोनों नेत्रोंमें ३८ शिरा हैं उनमेंसे दोनों अपांगोंकी एकएक शिरा बचानी चाहिये ३५॥

कर्णयोर्दश तासां शब्दवाहिनीनामेकैकां परिहरेत् ॥ ३६ ॥ नासानेत्रगतास्तु ललाटे षष्टिस्तासां केशांतानुगताश्चतस्रः आवर्तयोरेकैका स्थपन्यां चैका परिहर्तव्या ॥ ३७ ॥ शंखयोर्दश तासां शंखसंधिगतामेकैकां परिहरेत् ॥ ३८ ॥ द्वादश मूर्ध्नि तासामुत्क्षेपयोः द्वे परिहरेत्सीमंतेष्वेकैकामेकामधिपताविति ॥ ३९ ॥ एवमशस्त्रकृत्याः पंचाशज्जत्रुण ऊर्द्धमिति॥ ४० ॥ भवति चात्र-

कानोंमें दश शिरा हैं उन शब्दवाहिनी शिराओंमेंसे एक एक दोनों तरफ (मुख्य शब्दवहा) को वचावे ॥ ३६ ॥ नाक और नेत्रोंमें गमन करनेवाली ऐसी ललाटमें ६०शिरा हैं (२४ नासिकाकी और ३६ नेत्रोंकी) इनमेंसे केशांतके समीपकी ४ और आवर्तकी एक एक करके २ और स्थपनीकी १ ऐसे ७ शिरा अवेध्य हैं ॥ ३७ ॥ शंखो (कनपटियों) में दश शिरा हैं उनमेंसे कनपटीकी संधिमें प्राप्त हुई एक एक दोनों तरफ बचाने योग्य है ॥ ३८ ॥ मूर्द्धा (दिमाग) में १२ शिरा हैं उनमेंसे उत्क्षेपनामक मर्मोंमें दो और पांच सीमंतोंकी एक एक ऐसे ५ ये और अधिपतिनामक मर्मस्थानकी १ ऐसे ये मूर्द्धामें ८ शिरा अवेध्य हैं ॥ ३९ ॥ इस हिसावसे ग्रीवासे ऊपर सब मिलकर ५० शिरा हैं जिन्हें शस्त्र (नश्तर) से छेदन या वेधन नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥ इस विषयमें श्लोक है-

व्याप्नुवंत्यभितो देहं नाभितः प्रसृताः शिराः ॥
प्रतानाः पद्मिनीकन्दाद्बिसादीनां यथा जलम् ॥ ४१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

नाभिसे उत्पन्न हुई शिरायें समस्त शरीरमें फैली हुई हैं जैसे कमलके मूलसे निकली हुई कमलकी नालियोंका जाल जलमें फैला रहता है (इससे यह भी प्रतीत होता है कि शिरायें अपने स्थानमें, कभी कभी कोई डिग भी जासकती हैं अर्थात् हटी हुई भी होसकती हैं और कुछ न्यूनाधिक होना भी संभव है) ॥४१॥

इति पं०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० शारीरस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## अष्टमोऽध्यायः ८.

**अथातः शिराव्यधविधिशारीरं व्याख्यास्यामः ।**

यहांसे अगाडी शिराव्यधविधि ( शिरावेधनविधि अर्थात् फस्त खोलनेकी विधि) नामक शारीरकका व्याख्यान करते हैं ॥

**बालस्थविररूक्षक्षतक्षीणभीरुपरिश्रांतस्त्रीमद्याध्वकर्षितमत्तवांतविरिक्तास्थापितानुवासितजागरितक्लीबकृशगर्भिणीनां कासश्वासशोषप्रवृद्धज्वराक्षेपकपक्षाघातोपवासपिपासामूर्च्छाप्रपीडितानां च शिरा न विध्येद्याश्चाव्यध्या व्यध्याश्चादृष्टा दृष्टाश्चायंत्रिता यंत्रिताश्चानुत्थिता इति ॥ १ ॥**

बालक, वृद्ध, रूक्ष, क्षीण, भीरु (डरपोक), परिश्रांत (थकाहुआ), तथा स्त्री, मदिरा, मार्ग इनसे जो दुबला होगया हो, मदोन्मत्त, जिसे वमन होचुका हो, जिसे विरेचन होचुका हो, तथा जिसको आस्थापन और अनुवासन वस्तिप्रगोग हुआ हो, और रात्रिको जिसे निद्रा न आती हो, तथा क्लीव ( नपुंसक ), दुर्बल और गर्भवती स्त्री इनकी शिरा वेध नहीं करनी चाहिये अर्थात् इतनोंकी फस्त खोलनी नहीं चाहिये तथा खांसी और श्वासके रोगी, और शोषरोगवाले, तथा बढे हुए ज्वर, आक्षेपक और पक्षाघात रोगवाले, तथा उपवास ( व्रत या लंघन ) किये हुए, तृषा युक्त, तथा मूर्च्छासे पीडित ऐसे मनुष्योंकी भी शिरा वेधन नहीं करनी चाहिये और जो शिरा अवेध्य है उनको न वेधे और जो वेध्य तो हैं परंतु अदृष्ट हैं उन्हें भी न वेधे और जो दीखती भी हैं पर यन्त्रसाध्य नही हैं उन्हें भी नहीं वेधे और जो यंत्रसाध्य भी हैं पर उठी हुई या ऊपरको उठती नही हैं उन्हें भी नहीं वेधे ( अर्थात् जो शिरा वेधन करने योग्य हैं और दीखती भी हैं और यंत्रसाध्य भी हैं और ऊपरको उठी भी हों उनका वेधन करे ) ॥ १ ॥

**शोणितावसेकसाध्याश्च विकाराः प्रागभिहितास्तेषु चापक्वेष्व-**

---

( वाक्य१ ) बालस्थविरयोरसपूर्णक्षीणधातुत्वात् । रूक्षक्षतक्षीणानामनिलव्याधिभयात् क्षतेन क्षीणस्य वा । भीरोश्च तमोबहुलत्वाल्लोहितदर्शनेन मूर्च्छाभयान्न विध्येत् । अन्यत्रापि कस्यचिद्दोषभयो बोद्धव्यः । यथा मद्यपस्यातिमूर्च्छाकरत्वात् । अध्वस्त्रीकर्षितस्य वातकोपभयात् । वातविरिक्तयोरपि वातप्रकोपभयादतिवैकल्यकरत्वाच्च । अनुवासितस्याग्निमान्द्यभयात् । क्लीबस्य प्रधानधातोरभावादल्पसत्त्वेन च मृत्योर्भयात् । कृशस्य गर्भिणीनां चोपक्षीणधातुत्वाद्देहसंदेहभयात् । कासश्वासशोषिणामपि अपचीयमानधातुत्वेन देहसंदेहभयात् । वृद्धज्वरस्य प्रलापादिभयात् शिरा न विध्येत् ( इति नि० स० )

**न्येषु चानुक्तेषु यथाभ्यासं यथान्यायं च शिरां विध्येत्प्रतिषिद्धानामपि च विषोपसर्ग आत्ययिकेषु शिराव्यधनमप्रतिषिद्धम् २॥**

रुधिर निकालनेसे साध्य होनेवाले रोग पहले ( सूत्रस्थानोक्त शोणितवर्णनीयाध्यायमें) कहे गये हैं ( जैसे त्वग्दोष, विद्रधि आदि ) उनमें जबतक पकाव न हुआ हो अर्थात् राध न पडगई हो और अन्य जो नहीं कहे गये हैं और रुधिर निकालनेसे साध्य हो सकते हों ऐसे विकारोंमें अभ्यासपूर्वक और निर्णयपूर्वक शिरावेधन करना चाहिये और जिनको शिरावेधन ( फस्त खोलना ) वर्जित भी कहा है उनमेंसे किसीको विषका संसर्ग हो या अत्यन्त आवश्यक हो अर्थात् शिरावेधन विना आराम नहीं होसके तो उनके भी शिरावेधन करना निषिद्ध नहीं है ॥ २ ॥

**तत्र स्निग्धस्विन्नमातुरं यथादोषप्रत्यनीकद्रवप्रायमन्नं भुक्तवंतं यवागूं पीतवंतं वा यथाकालमुपस्थाप्यासीनं स्थितं वा प्राणानबाधमानो वस्त्रपट्टचर्म्मांतर्वल्कललतानामन्यतमेन यंत्रयित्वा नातिगाढं नातिशिथिलं शरीरप्रदेशमासाद्य यथोक्तं शस्त्रं गृहीत्वा शिरां विध्येत् ॥ ३ ॥**

जब शिरावेधन करना ( फस्त खोलना ) हो तब रोगीको यथोचित स्नेहन, स्वेदन कराकर दोषोंके अनुसार शांतिकारक पतला पदार्थ अन्नका खिलाकर, यवागू पिलाकर समयके अनुसार खडा करके या बिठला कर प्रियवाक्योंस आश्वासन करके कपडेके या रेशमके फीतेसे अथवा चमडे या वृक्षकी छाल ( सणजेस ) या लता, ( वेल ) इनमेंसे किसी एकसे अंगको ( नस उठाने आदिके लिये ) न बहुत कडा और न बहुत ढीला बांधकर और हाथसे सूँतकर ( मर्म आदि तथा युक्त शिराको विचारकर ) यथायोग्य शस्त्र ( नश्तर )लेकर शिरावेधन करे अर्थात् फस्त खोलदे ॥ ३ ॥

**नैवातिशीते नात्युष्णे न प्रवाते न चाभ्रिते ॥**
**शिराणां व्यधनं कार्यमरोगे वा कदाचन ॥ ४ ॥**

---

( वाक्य २ ) प्रागभिहितेषु शोणितावसेकसाध्येषु अपक्वेतृ सिरा विध्येत् पक्वाना रक्ताभावाद्रक्तस्रुतिर्न क्रियते इति । अन्येषु चानुक्तेष्विति—विपाकाभिमुखेषु शोणितावसेकसाध्येषु अनभिहितेषु इत्यर्थः । ( इति नि० सं० ) यथाभ्यासम् अभ्यासपूर्वकं यथासमीपं वा । यथान्याय स्नेहस्वेदादिपूर्वकम् । प्रतिषिद्धानामपि चात्ययिकेषु सिराव्यधनमप्रतिषिद्धम् । अत्ययो विनाशो भवत्यस्मादिति आत्ययिकस्तेषु॥( वाक्य ३ ) तत्र इति वाक्योपक्रमे । आतुरमित्यत्र आतुरग्रहणेन स्वस्थस्य रक्त न स्रावयेदिति राद्धातः । द्रवप्राय रक्तोत्क्लेदनार्थम् ( इति डल्हनः ) ॥

अति शीत समयमें फस्त नहीं खोलनी और अति गरमीमें भी नहीं खोलनी, बहुत हवामें भी नहीं खोलनी और बादल हो तब भी नहीं खोलनी चाहिये और कोई रोग नहीं हो तब तो कदाचित् फस्त खोलनीही नहीं चाहिये ॥ ४ ॥

**तत्र व्यध्यशिरं पुरुषं प्रत्यादित्यमुखमरत्निमात्रोच्छ्रिते उपवेश्यासने सक्थ्नोराकुंचितयोर्निवेश्य कूर्परे संधिद्वयस्योपरि हस्तावंतर्गूढांगुष्ठकृतमुष्टी मन्ययोः स्थापयित्वा यंत्रणशाटकं ग्रीवामुष्ट्योरुपरि परिक्षिप्यान्येन पुरुषेण पश्चात् स्थितेन वामहस्तेनोत्तानेन शाटकांतद्वयं ग्राहयित्वा ततो वैद्यो ब्रूयाद्दक्षिणहस्तेन शिरोत्थापनार्थं नात्यायतशिथिलं यंत्रणमावेष्टयेत्यसृक्स्रावणार्थं यंत्रं पृष्ठमध्ये च पीडयेति कर्मपुरुषं च वायुपूर्णमुखं स्थापयेदेष उत्तमांगगतानामंतर्मुखवर्ज्यानां शिराणां व्यधने यंत्रणविधिः॥५॥**

जिस मनुष्यकी फस्त खोलनी हो उसे सूर्यके सम्मुख अरत्निमात्र ( चटली, अंगुली पर्यंत एक हाथ ) ऊँचे स्थान ( चौकी वगैरह ) पर बिठलादे ( दोनों पांव नीचे रखा दे ) और दोनों साथल संकुचित कराकर उनकी संधि ( गुटनों ) पर दोनों कोहनियां रखवादे और हाथोंके दोनों अँगूठे मुट्ठियोमें बंद कराकर मुट्ठियोंको मन्या स्थानके ( ग्रीवाके जोतोंके ) पास रखवादे फिर बंध बांधनेके फीतेको ग्रीवा और मुट्ठियोंके ऊपरसे ले जाकर एक अन्य मनुष्यको पिछाडीकी तरफ खडा करके जिसका बायां हाथ कुछ ऊँचा रहे उसे फीतेके दोनों शिरे पकड़वा देवे और वैद्य उससे कहे कि, नस उठानेके लिये दाहिने हाथसे न बहुत कड़ा न बहुत ढीला ऐसा रोगीके बंध लगा और रुधिर निकलनेके लिये ग्रीवामें जो फीता पड़ा है उसे दबा ( इससे ठीक नस उठती है और ठीक रुधिर निकलता है ) और जिसकी फस्त खोले उसे वायुसे मुह भरा बैठा रहने दे । यह विधि मुखके भीतरकी शिराओंको छोडकर उत्तमांग ( चेहरे )में प्राप्त अन्य शिराओंके वेधनमें ( अर्थात् सरेरू फस्तके लिये ) बहुत ठीक है अथवा मुखके भीतरकी शिराओंको छोडकर ग्रीवासे ऊपरकी शिराओंके वेधनमें यह यंत्रणविधि है ॥ ५ ॥

---

( वा० ५ ) अरत्निमात्रोच्छ्रिते इति–कनिष्ठांगुलिप्रमितहस्तमात्रोच्छ्रिते इत्यर्थः । सक्थ्नोराकुंचितयोः संधिद्वयस्योपरि कूर्परे निवेश्येत्यन्वयः। अन्तर्गूढांगुष्ठकृतमुष्टी हस्तौ मन्ययोः स्थापयित्वा चेत्यन्वयः । पश्चात् स्थितं गृहीतशाटकं पुरुषं वैद्य इति ब्रूयात्–"शिरोत्थापनार्थं यंत्र आवेष्टय तथा रक्तस्रावणार्थं च यंत्र पृष्ठमध्ये पीडय" इति । कर्मपुरुषमिति–यस्य शिराव्यधनं क्रियते स कर्मपुरुषः । अतर्मुखवर्ज्यानामिति–मुखान्तर्गतवर्जितानाम् ( इति डल्हनः ) ।

पांवकी शिरावेधनविधि ।

तत्र पादव्यध्यशिरस्य पादं समे स्थाने सुस्थिरं स्थापयित्वान्यं पादमीषत्संकुचितमुच्चैः कृत्वा व्यध्यपादं जानुसंधेरधः शाटकेनावेष्ट्य हस्ताभ्यां प्रपीड्य गुल्फं व्यध्यप्रदेशस्योपरि चतुरंगुलं प्लोतादीनामन्यतमेन बद्ध्वा पादशिरां विध्येत् ॥ ६ ॥

जिसके पांवकी शिराका वेधन करना हो उसके पांवको समान भूमिमें निश्चलतासे रखवाकर अन्य दूसरे ( जिसकी शिरा न वेधनी हो ) पांवको कुछ सिकोड़कर ऊंचा रखवादे फिर शिरविधनेवाले समान भूमिस्थित पांवके घुटनेसे नीचे पट्टीसे बांधकर टकनेको हाथोंसे मले ( सूंते ) फिर वेधनकी जगहसे चार अंगुल ऊपर सूत या रेशम आदिसे बांधी हुई पांवकी शिराको वेधन करे ॥ ६ ॥

हाथका शिरावेधन ।

अथोपरिष्टाद्धस्तौ गूढांगुष्ठकृतमुष्टी सम्यगासने स्थापयित्वा सुखोपविष्टस्य पूर्ववद्यंत्रं बद्ध्वा हस्तशिरां विध्येत् ॥ ७ ॥

यदि हाथकी फस्त खोलनी हो तो थोड़ा हाथोंको ऊंचा कराकर अंगुठेको मुट्ठीमें दबाकर ठीक ( समान ) आसनपर बिठाकर सुखसे बैठे हुए मनुष्यके पहले कहे अनुसार कोहनीके ऊपर पट्टी बांधकर हाथकी फस्त खोलनी चाहिये ॥ ७ ॥

अंगविशेषका शिरावेधन ।

गृध्रसीविश्वाच्योः संकुचितजानुकूर्परः स्यात् । श्रोणीपृष्ठस्कंधेषून्नामितपृष्ठस्यावाक्शिरस्कस्योपविष्टस्य विस्फूर्जितपृष्ठस्य विध्येत् ८

गृध्रसी और विश्वाची नामक वातव्याधियोंमें फस्त खोले तो गृध्रसीमें घुटने सिकोड़ कर और विश्वाचीमें कोहनी सिकोड़ कर शिरा वेधे । कमर, पीठ, कंधे इनका रक्त निकालना हो तो पीठ ऊपरको और शिर नीचेको करके बैठावे और पीठको नवाये रखकर सिरावेधन करे ॥ ८ ॥

उदरोरसोः प्रसारितोरस्कस्योन्नमितशिरस्कस्य विस्फूर्जितदेहस्य । बाहुभ्यामवलंब्यमानदेहस्य पार्श्वयोः । अवनामितमेढ्रस्य मेढ्रे । उन्नामितविदष्टजिह्वाग्रस्याधो जिह्वायाम् । अतिव्यात्ताननस्य तालुनि दंतमूलेषु च ॥ ९ ॥ एवं यंत्रोपायानन्यांश्च शिरोत्थापनहेतून्बुद्ध्यावेक्ष्य शरीरवशेन व्याधिवशेन च विदध्यात् ॥ १० ॥

पेट और छातीकी शिरा वेधन करनी हो तो हृदयको पसारकर शिरको ऊंचा करके और शरीरको फैलाकर वेधन करे । पँसवाड़ेकी शिरा वेधन करनी हो तो ऐसे बिठावे कि दोनों हाथ टेककर देह उनके सहारे होजावे । लिंगकी फस्त खोलनी हो तो स्तब्धीभूत होनेपर खोले । जिह्वाकी शिरा वेधनी हो तो बाहरको निकली हुई, ऊपरको उठी हुई, दांतोंसे अलग जिह्वाका अग्रभाग कराकर नीचेकी शिरा वेधन करे। तालु और दंतमूलमें फस्त खोलनी हो तो खूब मुँह फाड़ेहुएकी फस्त खोले ॥ ९ ॥ इसी प्रकार अन्यत्र सब जगह शरीरके अनुकूल और व्याधिके अनुकूल शिराओंके उठानेके लिये बुद्धिसे यंत्रणा ( पट्टी आदि बांधना या शरीरके अंग, प्रत्यंगको फैलाना, सिकोडना आदि ) कल्पना करलेना चाहिये ॥ १० ॥

## शिरावेधनमें शस्त्रका प्रमाण ।

**मांसलेष्ववकाशेषु यवमात्रं शस्त्रं निदध्यादतोऽन्येष्वर्द्धयवमात्रं व्रीहिमात्रं वा व्रीहिमुखेन अस्थ्नामुपरि कुठारिकया विध्येदर्द्धयवमात्रम् ॥ ११ ॥ भवन्ति चात्र—**

मांसयुक्त प्रदेशमें जौ मात्र शस्त्र ( नश्तर ) घुसाना चाहिये और अन्यत्र ( जहां मांस अधिक न हो वहां ) आधे जौकी बराबर तथा चावलके बराबरही घुसानेसे शिरावेधन हो जाता है । शिरावेधन कर्म व्रीहिमुख नामक शस्त्रसे करना चाहिये, परंतु अस्थि ( हड्डियों ) के ऊपर कुठारिका नामक शस्त्रसे आधे जौके बराबर वेधन करना चाहिये ॥ ११ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं—

## शिरावेधनका समय ।

**व्यभ्रे वर्षासु विध्येत ग्रीष्मकाले तु शीतले ॥
हेमंतकाले मध्याह्ने शस्त्रकालास्त्रयः स्मृताः ॥ १२ ॥**

वर्षा ऋतुमें जब बादल न हो तब और ग्रीष्म ( गरमी ) में ठंडके समय और हेमंतऋतु ( सरदी ) में मध्याह्नके समय शस्त्रकर्म करे ( शस्त्रकर्म करनेके इस भांति ये तीन समय हैं ॥ १२ ॥

## ठीक शिराविंधीके लक्षण ।

**सम्यक् शस्त्रनिपातेन धारया या स्रवेदसृक् ॥
मुहूर्तं रुद्ध्वा तिष्ठेच्च सुविद्धां तां विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥**

ठीक ठीक शस्त्र ( नश्तर ) लगनेसे मुहूर्तभरतक धारसे रुधिर निकले और जब बंद करना चाहे उसी समय बंद होजावे तो जानो कि ठीक शिरावेधन हुवा ॥ १३ ॥

दूषित रक्त पहले निकलताहै ।

यथा कुसुंभपुष्पेषु पूर्वं स्रवति पीतिका ॥
तथा शिरासु विद्धासु दुष्टमग्रे प्रवर्तते ॥ १४ ॥

जैसे कसूँभेके फूलोंमेंसे पहले पीला रंग ( डहल ) निकलताहै उसी प्रकार शिरा-वेधन होनेपर दूषित रुधिर पहले निकलताहै ॥ १४ ॥

मूर्च्छितस्यातिभीतस्य श्रांतस्य तृषितस्य च ॥
न वहंति शिरा विद्धास्तथानुत्थितयंत्रिताः ॥ १५ ॥

जिसे मूर्च्छा आजावे या जो अधिक डरजावे तथा थकेहुए, तृषायुक्त ऐसे मनुष्योंकी शिरा वेधन की जानेपर रुधिर नही निकलताहै तथा जिसकी रगें उठी न हों तथा पट्टीसे वांधा न गया हो तोभी रुधिर नही निकलताहै ॥ १५ ॥

क्षीणस्य बहुदोषस्य मूर्च्छयाभिद्रुतस्य च ॥
भूयोऽपराह्ने विस्राव्या सोऽपरेद्युस्त्र्यहेऽपि वा ॥ १६ ॥

जो मनुष्य क्षीण हो अथवा जिसके बहुत दोष बढा हो अथवा जिसे मूर्च्छा आगई हो ऐसे मनुष्यके फिर तीसरे पहर शिरा वेधन करनी चाहिये या दूसरे दिन या तीसरे दिन फिर वेधन करनी चाहिये ॥ १६ ॥

रक्तं सशेषदोषं तु कुर्यादपि विचक्षणः ॥ न चातिप्रस्रुतं कुर्याच्छेषं संशमनैर्जयेत् ॥ १७ ॥ बलिनो बहुदोषस्य वयस्थस्य शरीरिणः ॥ परं प्रमाणमिच्छंति प्रस्थं शोणितमोक्षणे ॥ १८ ॥

जब थोडासा दूषित रुधिर बाकी रहे तभी छोडदेना चाहिये अति रुधिर नहीं निकाले किंतु दूषित थोडे बचे हुएको औषधोंसे शमन करे ॥ १७ ॥ बलवान्, बहुत बढे दोषवाले, जवान, पूरे शरीरवालेके रुधिर निकालनेका परम ( जादेसे जादे ) प्रमाण १ प्रस्थ ( १६ पल ) है इससे अधिक कदाचित् नही निकाले ॥ १८ ॥

व्याधिविशेषपर शिरावेधन ।

तत्र पाददाहपादहर्षावबाहुकचिप्पविसर्पवातशोणितवातकण्टकविचर्चिकापाददारीप्रभृतिषु क्षिप्रमर्मण उपरिष्टाद्व्यंगुले व्रीहिमुखेन शिरां विध्येत् ॥ १९ ॥ श्लीपदे तच्चिकित्सिते यथा वक्ष्यते। क्रोष्टुकाशिरःखंजपंगुलवातवेदनासु जंघायां गुल्फस्योपरि चतुरं-

(वा० १९) अत्र प्रभृतिग्रहणादन्येपि पादरोगा रक्तानुबंधिदोषजाता गृह्यते ।

गुले ॥ २० ॥ अपच्यामिंद्रबस्तेरधस्ताद्द्व्यंगुले जानुसंधेरुपर्यधो वा चतुरंगुले गृध्रस्याम् । ऊरुमूलसंश्रितां तु गलगंडे । एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ २१ ॥

पाददाह, पादहर्ष ( पांवोंमें झनझनाट होना ), अपबाहुक, चिप्परोग, विसर्प, वातरक्त, वातकंटक, विचर्चिका और पाददारी ( विंबाई ) इत्यादि पैरों तथा हाथोंके अन्य रक्तविकारोंमेंभी क्षिप्रसंज्ञक मर्मसे ऊपर दो अंगुल व्रीहिमुख शस्त्रसे शिरा वेधे ॥१९॥ श्लीपद रोगमें जैसे उसकी चिकित्सामें अगाडी वर्णन करेंगे वैसे करे । क्रोष्टुकशीर्ष, खंज और पंगु वातरोगोंमें टकनेसे चार अंगुल ऊपर जंघा अर्थात् पिडलीमें शिरा वेधे ॥२०॥ अपची रोगमें इंद्रवस्ति नामक स्थानसे नीचे दो अंगुल पर और गृध्रसी रोगमें घुटनेकी संधिसे चार अंगुल ऊपर या नीचेको शिरा वेधे । तथा गलगंडरोगमें साथलकी संधिगत शिराको वेधन करना चाहिये । इसी हिसाबसे दूसरे पांव और दोनों हाथोंके शिरावेधनको समझना चाहिये अर्थात् जैसे पाददाह पांवोंमें होता है वैसेही हाथोंमें दाह हो तो हाथोंकी शिरा वेधे इसी भांति जो व्याधि उक्त व्याधियोंमेंसे जिस हाथ या पांवमें हो उसीमें शिरावेधन करे ॥ २१ ॥

विशेषतस्तु वामबाहौ कूर्परसंधेरभ्यंतरतो बाहुमध्ये प्लीह्नि कनिष्ठिकानामिकयोर्मध्ये वा । एवं दक्षिणबाहौ यकृद्दाल्ये कफोदरे चैतामेव च कासश्वासयोरप्यादिशंति ॥ २२ ॥

विशेष प्लीहरोगमें बायें हाथमें कोहनीकी संधिमें शिरा वेधनी चाहिये अथवा कनिष्ठिका और अनामिका अंगुलियोंके बीचमे वेधे । इसी भांति यकृद्दाली रोगमें तथा कफोदरमें, एवं खांसी और श्वासमें दाहिने हाथकी कोहनीकी संधिमें या इन्हीं दो अंगुलियोंके मध्यमें शिरा वेधे ॥ २२ ॥

गृध्रस्यामिव विश्वाच्याम् । श्रोणिप्रतिसमंताद्द्व्यंगुले प्रवाहिकायां शूलिन्याम् । परिकर्तिकोपदंशशूकदोषशुक्रव्यापत्सु मेढ्रमध्ये । वृषणयोः पार्श्वे मूत्रवृद्ध्याम् । नाभेरधश्चतुरंगुले सेवन्या वामपार्श्वे दकोदरे । वामपार्श्वे कक्षास्तनयोरंतरेऽन्तर्विद्रधौ पार्श्वशूले च । बाहुशोषापबाहुकयोरप्येके वदंत्यंसयोरंतरे ॥ २३ ॥

(वा० २१) यस्माद्धस्तयोरपि दाहादयो रोगा भवंत्यतो बाहुग्रहणं कृतम् ( इति डल्हनः ) ( वा०२२ ) कूर्परसंधेरित्यनेन कूर्परसंधिसमीपदेश उच्यते संधौ शस्त्रप्रणिधानस्य निषिद्धत्वात् । कासश्वासयोरिति अनयोर्मार्गविशुद्ध्यर्थं नतूद्रिक्तयोस्तत्र शिराव्यधप्रतिषेधत्वाच्च ( इति गय. ) ॥ ( वा० २३ ) यथा गृध्रस्या जानुसंधेरुपर्यधो वा चतुरंगुले एवं विश्वाच्यां कूर्परसंधेरुपर्यधो वा चतुरंगुले इत्यर्थः ॥

गृध्रसीके भांतिही विश्वाचीमें समझना ( अर्थात् जैसे गृध्रसीमें घुटनेकी संधिके नीचे या ऊपर चार अंगुल शिरा वेधे वैसेही विश्वाचीमें कोहनीसे चार चार अंगुल नीचे या ऊपर वेधे )। शूलयुक्त प्रवाहिकामें कमरके पास दो अंगुलपर शिरा वेधे परिकर्तिका, उपदंश, शूकरोग और वीर्यविकारमें लिंगके बीच शिरा वेधे। मूत्रवृद्धि हो तो वृषणोंके पास शिरा वेधे। दकोदर ( जलोदर ) रोगमें नाभिसे चार अंगुल नीचे सीवनसे बांई तरफ शिरा वेधन करनी चाहिये। अंतर्विद्रधिमें और पार्श्वशूलमें बांयें पँसवाडेमें कांख और चूँचीके बीचकी शिरा वेधन करे और कई आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि बाहुशोष और अपबाहुक रोगमें कांधोंके बीचमें फस्त खोले ॥ २३ ॥

त्रिकसंधिमध्यगतां तृतीयके। अधःस्कंधसंधिगतामन्यतरपार्श्वसंस्थितां च चतुर्थके। हनुसंधिमध्यगतामपस्मारे। शंखकेशांतसंधिगतामुरोपांगललाटेषु चोन्मादेऽपस्मारे च। जिह्वारोगेष्वधोजिह्वायां दंतव्याधिषु च। तालुनि तालव्येषु। कर्णयोरुपरि समंतात् कर्णशूले तद्रोगेषु च। गंधाग्रहणे नासारोगेषु च नासाग्रे। तिमिराक्षिपाकप्रभृतिष्वास्ययेषूपनासिके लालाटयामपांग्यां चैता एव शिरोरोगाधिमंथप्रभृतिषु रोगेष्विति ॥ २४ ॥

तृतीयक ज्वरमें त्रिकसंधिकी शिरा वेधे। चातुर्थिकमें कंधेके नीचे कोईसे पँसवाडेकी संधिगत शिरा वेधे। अपस्मार ( मृगी ) रोगमें ठोडीके बीचकी संधिमें शिरा वेधे। उन्माद तथा मृगीमें कनपटीकी केशांतसंधिगत तथा उर, अपांग और ललाटमें शिरा वेधन करे। जिह्वाके और दांतोंके रोगोंमें जिह्वाके नीचेकी शिरा वेधे। तालुके रोगोंमें तालुकी शिरा वेधना। कर्णशूल और कर्णरोगोंमें कानके पास ऊपरको शिरा वेधना। गंध न आवे या नासिकाके रोगोंमें नासिकाके अग्रभागमें शिरा वेधे। तिमिररोग और आंखपकने ( दूखने ) आदिमें नाकके समीप शिरा वेधे अथवा ललाट या अपांगकी शिरा वेधे। तथा शिरके रोग और अधिमंथ आदि ( अन्य क्षुद्र रोग अरूंषिकादि ) में भी इन्हें ही वेधे ॥ २४ ॥

अत ऊर्ध्वं दुष्टव्यधनमनुव्याख्यास्यामः।

इसके अगाडी अब हम दुष्टव्यधन अर्थात् शिराओंका जो अनुचित वेध होजाना है उसका वर्णन करते हैं।

---

( वा० २४ ) हनुसंधिगतामपस्मारे इत्यत्र हनुसंधौ समुद्भूतां शिरामित्यर्थः। उपनासिके नासासमीपस्थे। शिरोरोगाधिमंथप्रभृतिषु इत्यत्र प्रभृतिग्रहणात् क्षुद्ररोगे पठिता अरूंषिकादेर्ग्रहणम् (इति निबंधसंग्रहः)॥

तत्र दुर्विद्धातिविद्धा कुंचिता पिच्चिता कुट्टिताऽप्रस्नुता अत्युदीर्णा अन्तेऽभिहता परिशुष्का कूणिता वेपिता अनुत्थितविद्धा शस्त्रहता तिर्यग्विद्धा अपविद्धा अव्याध्या विद्रुता धेनुका पुनःपुनर्विद्धा शिरास्नाय्वस्थिसंधिमर्मसु चेति विंशतिर्दुष्टव्यधाः॥२५॥

इनमें १ दुर्विद्धा, २ अतिविद्धा, ३ कुंचिता, ४ पिच्चिता, ५ कुट्टिता, ६ अप्रस्नुता, ७ अत्युदीर्णा, ८ अंतेभिहता, ९ परिशुष्का, १० कूणिता, ११ वेपिता, १२ अनुत्थितविद्धा, १३ शस्त्रहता, १४ तिर्यग्विद्धा, १५ अपविद्धा, १६ अव्याध्या, १७ विद्रुता, १८ धेनुका, १९ पुनःपुनर्विद्धा. २० शिरा, स्नायु, अस्थि और संधियोंके मर्मस्थानोंमें विधना ऐसे ये शिरावेधनमें वीस २० प्रकारके दूषण होते हैं ( इनके लक्षण और अर्थ अभी अगाडी कहेंगे ) ॥ २५ ॥

दुर्विद्धादिके लक्षण ।

तत्र या सूक्ष्मशस्त्रविद्धा न व्यक्तमसृक् स्रवति रुजाशोफवती च सा दुर्विद्धा । प्रमाणातिरिक्तविद्धायामंतःप्रविशति शोणितं शोणितातिप्रवृत्तिर्वा साऽतिविद्धा । कुंचितायामप्येवम् । कुंठशस्त्रप्रमथिता स्थलीभावमापन्ना पिच्चिता । अनासादिता पुनःपुनरंतयोश्च वहुशः शस्त्राभिहता कुट्टिता । शीतभयमूर्च्छाभिरप्रवृत्तशोणिता अप्रस्नुता । तीक्ष्णमहामुखशस्त्रविद्धा अत्युदीर्णा । अल्परक्तस्राविण्यंतेविद्धा । क्षीणशोणितस्यानिलपूर्णा परिशुष्का । चतुर्भागावसादिता किंचित्प्रवृत्तशोणिता कूणिता । दुःस्थानवंधनाद्वेपमानायाः शोणितसंमोहो भवति सा वेपिता । अनुत्थितविद्धायामप्येवम् । छिन्नातिप्रवृत्तशोणिता क्रियासंगकरी शस्त्रहता । तिर्य्यक्प्रणिहितशस्त्रा किंचिच्छेषा तिर्यग्विद्धा । वहुशः क्षता हीनशस्त्रप्रणिधानेनापविद्धा । अशस्त्रकृत्या अव्याध्या । अनवस्थितविद्धा विद्रुता । प्रदेशस्य वहुशोऽवघट्टनादारोहव्यधा मुहुर्मुहुः शोणितस्रावा धेनुका । सूक्ष्मशस्त्रव्यधनाद्वहुशो विच्छिन्ना पुनःपुनर्विद्धा । स्नाय्वस्थिशिरासंधिमर्मसु विद्धा वा रुजां शोषं वैकल्यं मरणं वापादयति ॥ २६ ॥ भवन्ति चात्र—

जो शिरा छोटे पतले शस्त्रसे विंधे जिससे ठीक ठीक रुधिरस्राव न हो पीडा और सूजन होजावे वह १ दुर्विद्धा है। जो नस प्रमाणसे अधिक छेदन होजावे और खून भीतरको प्रवेश होजावे या बहुत अधिक खून निकले वह २ अतिविद्धा है। ३ कुंचित ( टेढी विंधी ) केभी येही लक्षण होतेहैं। मोटी धारवाले शस्त्रसे वेधनेपर मथितसी होकर मोटी पडजावे, फैलजावे, कुचलजावे वह ४ पिच्चिता है। जो एकवार ठीक न विंधे तव वार वार उसके आसपास शस्त्रसे छेदी जावे वह ५ कुट्टिता है। जो ठंढ या भय या मूर्च्छा आदिसे रक्त नहीं वहे तो ६ अप्रस्रुता है। बहुत तीक्ष्ण वडे मुँहके शस्त्रसे जो बहुत विस्तृत छेद होजावे तो वह ७ अतिउदीर्णा है। जिसके वेधनमें थोडासा रक्त निकले वह ८ अंतेऽभिहता या अंतेविद्धा है। क्षीणरुधिर होनेपर जो वायुसे भर ( सूख ) जावे वह ९ परिशुष्का है। जो चौथा-ईसी विंधे और किंचित् रक्त निकले वह १० कूणिता है। जिसमें ठीक स्थानमें बंध नहीं लगने आदिसे नस कंपायमान होतीरहे और रुधिर बंद बंद होकर कुछ२ निकले उसे ११ वेपिता कहतेहैं। जो नस विना उठी वींधी जावे वह १२ अनुत्थितविद्धा कहातीहै उसमेंभी वेपिताकी भांति रक्त कम निकलना आदि लक्षण जानो। जो छेदन होनेपर बहुत रक्त स्रवे और क्रियाको रोकदे ( नसका फरकाव और गति बंद हो जावे ) वह१३ शस्त्रहता है। जो तिरछे शस्त्रपात होनेसे तिरछी विंधे, कुछ शेष रहजावे वह १४ तिर्यग्विद्धा कहातीहै। जो हीनशस्त्रके कारण बहुत छेद कीगई है वह १५ अपविद्धा है। जो शिरा शस्त्रकर्म ( छेदन, वेधन )से वर्जित है ( उसका वेध होना ) १६ अव्याध्या कहातीहै। जो असावधानीसे वींधी जावे वह १७ विद्रुता है। स्थानको वारवार शस्त्रसे वेधे जानेपर वारवार रुधिर स्रवे वह १८ धेनुका कहातीहै। छोटे या बारीक नोकके शस्त्रसे कईवार छेदन करीजावे वह १९ पुनःपुनर्विद्धा कहातीहै। स्नायुमर्म, अस्थिमर्म, शिरामर्म और संधिमर्म इन स्थानोंमें विंधी हुई शिरा पीडा, शोष और विकलता तथा मृत्युकारक हो जाती है ( यह २० वीं मर्मविद्धा कहाती है ) ॥ २६ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं–

**शिरासु शिक्षितो नाऽस्ति चैला ह्येताः स्वभावतः ॥ मत्स्यवत्परिवर्तंते तस्माद्यत्नेन ताडयेत् ॥ २७ ॥ अजानता गृहीते तु शस्त्रे कायनिपातिते ॥ भवंति व्यापदश्चैता बहवश्चाप्युपद्रवाः ॥ २८ ॥**

शिराओंके पूर्ण ज्ञानमें कोई भी पूरा २ शिक्षित नहीं है (और नही हो सकता) क्योंकि ये स्वभावहीसे चलायमान होती हैं, मछलीकी भांति कभी ऊपरको उठती हैं और फिर कभी नीचेको हो जाती हैं और चलती रहती है इस कारणसे इनका ताडन ( बांधना और वेधन करना आदि ) यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ २७ ॥ यदि

अजान मनुष्य शस्त्र लेकर शिरावेधन करे ( पूर्ण अभ्यासविना फस्त खोले ) तो उससे अनेक व्याधियां और बहुतसे उपद्रव उत्पन्न होजातेहैं ॥ २८ ॥

शिरावेधनकी प्रधानता ।

स्नेहादिभिः क्रियायोगैर्न तथा लेपनैरपि ॥ यान्त्याशु व्याधयः शांतिं यथा सम्यक् शिराव्यधात् ॥ २९ ॥ शिराव्यधश्चिकित्सार्द्धं शल्यतंत्रे प्रकीर्तितः ॥ यथा प्रणिहितः सम्यग्बस्तिः कायचिकित्सिते ॥ ३० ॥

स्नेहन, स्वेदन आदि क्रियाओंसे तथा लेपोंसे इतनी शीघ्र व्याधि शांत नहीं होती है जितनी ठीक २ शिरावेधनसे शीघ्र शांत हो जाती है ॥ २९ ॥ शल्यतंत्रमें आधा कर्म शिरावेधन और आधी सब क्रिया हैं ऐसेही कायचिकित्सामें ठीक २ वस्तिकर्म आधी चिकित्सा है और अन्य सब आधी ( इससे शल्यक्रियामें शिरावेधनकी बहुत मुख्यता है और कायचिकित्सामें वस्तिकर्मकी प्रधानता है ) ॥ ३० ॥

तत्र स्निग्धस्विन्नवांतविरिक्तास्थापितानुवासितशिराविद्धैः परिहर्तव्यानि क्रोधायासमैथुनदिवास्वप्नवाग्व्यायामयानोत्थानासनचंक्रमणशीतवातातपविरुद्धासात्म्याजीर्णान्याबललाभान्मासमेके मन्यन्ते एतेषां विस्तरमुपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ ३१ ॥

जिसने स्नेहपान किया हो या स्वेदक्रिया की हो या वमन, विरेचन आस्थापनवस्ति, अनुवासन वस्तिकर्म किया हो या शिरावेधन कराया हो उन रोगियोंको क्रोध, परिश्रम, मैथुन, दिनमें सोना, बहुत बोलना, सवारी करना, उछलना, दूरतक फिरना, शीतवायु, धूप, विरुद्ध और प्रतिकूल भोजन करना, तथा अजीर्णकारक पदार्थ इनसे बचे रहना चाहिये जबतक पूरा बल ( ताकत ) न हो तबतक और कई एक मास पथ्य करना ऐसा मानते हैं इनका विस्तारसे वर्णन आगे करेंगे ॥ ३१ ॥

शिराविषाणतुंबैस्तु जलौकोभिः पदैस्तथा ॥ अवगाढं यथापूर्वं निर्हरेद्दुष्टशोणितम् ॥ ३२ ॥ अवगाढे जलौका स्यात्प्रच्छन्नं पिंडिते हितम् ॥ शिराङ्गव्यापके रक्ते शृंगालाबू त्वचि स्थिते॥३३॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

शिरावेधमें शृंग, तूंबी, जोंख और पछने इनसे जितना २ नीचा दुष्ट रक्त निकालना हो उसी भांति यथापूर्व(क्रमसे)दूषित रुधिरको निकाले(जैसे फस्तसे पतला सर्वदेहव्यापी रक्त निकाले, उससे भीतर गाढेको शृंगसे, उससेभी नीचे और गाढेको

तूंबेसे, तथा उससेभी नीचे और गाढेको जोखोंसे निकाले । अवगाढ शब्दका अर्थ कोई अभ्यंतर अर्थात् नीचा ऐसा करते हैं और कोई गाढा ऐसा करते हैं ) ॥ ३२ ॥ नीचा और गाढा रुधिर हो तो उसमें जलौका (जोखें) काममें लानी चाहिये और जो रुधिरके पिंडे (गाँठेसी) बँध जावें तो उसमें पछने लगाना श्रेष्ठ है तथा शरीरमें व्यापक रक्तमें शिरावेधन करना उचित है और त्वचामें दुष्ट रक्त हो तो उसमें शृंग और तूंबा लगाकर रक्त निकालना श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा०टी० शारीरस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

## नवमोऽध्यायः ९.

### अथातो धमनीव्याकरणं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम धमनियोंकी विवेचनाका शारीरक व्याख्यान करते हैं ॥

**चतुर्विंशतिर्धमन्यो नाभिप्रभवा अभिहिताः ॥ १ ॥ तत्र केचिदाहुः शिराधमनीस्रोतसामविभागं शिराविकारा एव धमन्यः स्रोतांसि चेति । तत्तु न सम्यक् । अन्या एव हि धमन्यः स्रोतांसि च शिराभ्यः ॥ २ ॥**

चौवीस धमनी नाभिसे उत्पन्न हुई हैं ऐसे पहले शोणितवर्णनीय अध्यायमें कह आये हैं ॥ १ ॥ यहांपर कई ऐसा कहते हैं कि शिरा, धमनी और स्रोत इनमें भेद नहीं है किंतु शिराहीका भेद धमनी हैं तथा स्रोतभी इसी भांति शिराहीका भेद हैं ( अर्थात् येभी एक प्रकारकी मोटी शिराही समझिये ) परंतु धन्वंतरि भगवान् कहते हैं कि यह कहना उनका ठीक नहीं हैं वास्तवमें धमनी और स्रोत शिराओंसे पृथक्ही हैं ॥ २ ॥

**कस्माद्व्यंजनान्यत्वान्मूलसन्नियमात् कर्मवैशेष्यादागमाच्च ॥ ३ ॥ केवलं तु परस्परसन्निकर्षात् सदृशागमकर्मत्वात् सौक्ष्म्याच्च विभक्तकर्मणामप्यविभाग इव कर्मसु भवति ॥ ४ ॥**

---

(वाक्य २से३ ) ध्मानात् अनिलपूर्णात् धमन्यः । शिराभ्यस्ता अन्याः । व्यंजनान्यत्वात् लक्षणान्यत्वात् । तत्र वातादिवहाना शिराणामरुणनीलशुक्ललोहितवर्णत्व लक्षणम् । शब्दादिवहानां धमनीनां वर्णानुक्ते स्वधातुसमवर्णत्व तदुक्त चरके—“स्वधातुसमवर्णानि वृत्तस्थूलान्यणूनि च । स्रोतांसि दीर्घाण्याकृत्या प्रतानसदृशानि च ॥” इति । मूलसनियमात् मूलनियमात् यथा—मूलशिराश्चतुश्चत्वारिंशत् चतुर्विंशतिर्धमन्यः। द्वाविंशतिः स्रोतांसि इति । कर्मवैशेष्यात् कर्मविशेषत्वात् “कर्मणामप्रतिघातम्” इत्यादि प्रोक्तं शिराणां कर्मवैशेष्य शब्दरूपरसगंधवहत्वादिक धमनीना प्राणान्नवारिरसशोणितमांसमेदोवाहित्वं स्रोतसां कर्मवैशेष्यम् । आगमोत्रायुर्वेदः तत्रापि पार्थक्य दर्शितं यथा—मर्मशिरास्नायुधमनीः परिहरन् इत्यादि(निबंधसंग्रहः)॥

इसमें प्रथम कारण " व्यंजनान्यत्वात् " है अर्थात् इनकी व्यंजना (व्यक्ति) भिन्न भिन्न है ( अर्थात् वातवहा शिरा अरुण । पित्तवहा नील । कफवहा शुक्ल । रक्तवहा लोहित ) सो धमनियों और स्रोतोंमें इस प्रकार वर्ण नहीं होते किंतु उनके वर्ण जिन २ धातुओंकोंव वहातीहैं उन२के समान होते हैं किंतु शब्दादिवाहिनी धमनियोंका कोई वर्णही नहीं। दूसरा कारण "मूलसन्नियमात्" है अर्थात् मूलके नियमसे भी ये जुदे जुदे हैं ( जैसे मूलशिरा ४८ जिनसे ७०० शिरा निकलीं और मूलभूत धमनी २४ हैं और स्रोत २२ । तीसरा कारण " कर्मवैशेष्यात्" है अर्थात् कर्मकी विशेषतासे भी ये जुदे २ ही हैं ) जैसे अप्रतिघात वातादिवहन शिराओंके कर्म और शब्द-रूप-रस-गंधादि वहन धमनियोंके कर्म, और प्राण-अन्न-जल-रस-रक्त-मांस-मेद आदि वहन स्रोतोंका कर्म है। चौथा कारण "आगमात्" है अर्थात् आयुर्वेद शास्त्रसे भी ये जुदे२ही हैं क्योंकि शास्त्रमें ये पृथक् २ही लिखे हैं ॥ ३ ॥ किंतु इनका परस्पर संन्निकर्ष होनेसे और इनका आगम और कर्म समान होनेसे तथा अतिसूक्ष्मताके कारणसे जुदे जुदे होनेपरभी ये मिले हुएसे ( एकसे ) सब कामोंमें प्रतीत होते हैं ॥ ४ ॥

तासां तु नाभिप्रभवाणां धमनीनामूर्द्ध्वगा दश दश चाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यग्गाः ॥ ५ ॥

उन नाभिसे उत्पन्न हुई २४ धमनियोंमेंसे दश ऊर्द्ध्वगामिनी अर्थात् ऊपरको गमन करनेवाली हैं और दश अधोगामिनी अर्थात् नीचेको गमन करनेवाली हैं तथा चार तिर्यग्गामिनी ( तिरछा गमन करनेवाली ) हैं ॥ ५ ॥

ऊर्द्ध्वगाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धप्रश्वासोच्छ्वासजृंभितक्षुद्धसितकथितरुदितादीन्विशेषानभिवहंत्यः शरीरं धारयंति ॥ ६ ॥ तास्तु हृदयमभिप्रपन्नास्त्रिधा जायंते तास्त्रिंशत्॥७॥ तासां तु वातपित्तकफशोणितरसान् द्वे द्वे वहतस्ता दश। शब्दरूपरसगंधानष्टाभिर्गृह्णीते। द्वाभ्यां भाषते च द्वाभ्यां घोषं करोति द्वाभ्यां स्वपिति द्वाभ्यां प्रतिबुध्यते । द्वे चाश्रुवाहिन्यौ । द्वे स्तन्यं स्त्रिया वहतः स्तनसंश्रिते । ते एव शुक्रं नरस्य स्तनाभ्यामभिवहतः ॥ ८ ॥ तास्त्वेतास्त्रिंशत्सविभागा व्याख्याताः । एताभिरूर्द्ध्वं नाभेरुदरपार्श्वपृष्ठोरस्कंधग्रीवाबाहवो धार्यंते याप्यंते च ॥ ९ ॥ भवति चात्र-

ऊपरको गमन करनेवाली धमनी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रश्वास, उच्छ्वास (श्वास लेना छोड़ना), जंभाई लेना, छीकना, हँसना, बोलना, रुदन करना आदि कार्योंको वहन करती हुई शरीरको धारण करती हैं ॥ ६ ॥ ये १० ऊर्द्ध्वगामिनी धमनी हृदयमें पहुँचकर तीनगुनी होकर तीस ३० होजाती हैं ॥ ७ ॥ उनमें २ वातवहा, २ पित्तवहा, २ कफवहा, २ रक्तवहा, २ रसवहा ऐसे ये १० हैं तथा शब्द, रूप, रस और गंधको प्राप्त करनेवाली दो दो ८ ये। दोसे मनुष्य बोलता है, २ से घोष करता है, २ से सोता है, २ से जागता है, दो धमनी अश्रुवाहिनी हैं, और स्त्रियोंके स्तनोंमें स्थित दो धमनी दूधको प्रवृत्त करतीहैं. और वेही २ धमनी पुरुषोंके शुक्रको प्रवृत्त करती हैं ॥ ८ ॥ इस भांति ये ३० धमनियां विभागसहित वर्णन कीगई इन्हींसे नाभिका ऊपर, पेट, पँसवाडे, पीठ, छाती, कंधे, ग्रीवा और भुजा धारण तथा पोषण किये जाते हैं ॥ ९ ॥ इसविषयमें श्लोक है-

ऊर्द्ध्वं गतास्तु कुर्वंति कर्माण्येतानि सर्वशः ॥
अधोगमास्तु वक्ष्यामि कर्म तासां यथायथम् ॥ १० ॥

ऊपर गमन करनेवाली सब धमनियां इस प्रकार (जैसे पूर्व कहाहै) कर्म करती-हैं अब अगाडी अधोगम (नीचे गमन करनेवाली) धमनियां और उनके जैसे २ कर्म हैं उन्हें वर्णन करते हैं ॥ १० ॥

अधोगमास्तु वातमूत्रपुरीषशुक्रार्तवादीन्यधो वहंति । तास्तु पित्ताशयमभिप्रतिपन्नास्तत्रस्थमेवान्नपानरसं विपक्कमौष्ण्याद्विवेचयन्त्योभिवहंत्यः शरीरं तर्पयंत्यर्पयंति चोर्द्ध्वगतानां तिर्य्यग्गतानां रसस्थानं चाभिपूरयंति मूत्रपुरीषस्वेदांश्च विवेचयंति॥११॥

नीचेको गमन करनेवाली धमनियां अधोवायु, मूत्र, पुरीष, वीर्य और स्त्रियोंका आर्तव इन्हें नीचेको प्रवृत्त करती हैं। ये अधोगामिनी धमनी पहले पित्ताशयमें प्राप्त होकर वहांके अन्नपानजनित रसको जो विपक्क है उसे उष्णतासे विवेचन (शुद्ध) करके शरीरमें पहुँचाती और शरीरको तृप्त करती हैं। ऊर्द्ध्वगामिनी और तिरछा गमन करनेवाली धमनियोंको (सर्वत्र पहुँचानेके वास्ते) समर्पण करती हैं और मुख्य रसके स्थानको पूरण करती हैं तथा मूत्र, विष्ठा और स्वेद इन्हें विवेचन (पृथक् पृथक्) करती हैं ॥ ११ ॥

आमपक्काशयांतरे च त्रिधा जायंते तास्त्रिंशत् ॥ १२ ॥ तासां तु वातपित्तकफशोणितरसान् द्वे द्वे वहतस्ता दश । द्वे अन्नवाहि-

न्यावंत्राश्रिते। तोयवहे द्वे। मूत्रवस्तिमभिप्रपन्ने मूत्रवहे द्वे। शुक्रवहे द्वे। शुक्रप्रादुर्भावाय द्वे विसर्गाय त एव रक्तमभिवहतो नारीणामार्तवसंज्ञम्। द्वे वर्चोनिरसन्यौ स्थूलांत्रप्रतिबद्धे। अष्टावन्यास्तिर्यग्गानां धमनीनां स्वेदमर्पयंति ॥ १३ ॥

ये धमनी आमाशय और पक्काशयके मध्य ( अग्न्याशय )में पहुँचकर तीन तीन भागमें विभक्त हो जाती हैं ऐसे यहांपर ये ३० हो जाती हैं ॥ १२ ॥ इनमेंसे वायु, पित्त, कफ, रक्त और रसको दो दो धमनी बहाती हैं ( यह ऐसे १० हुईं ), दो अंत्र ( आंतों ) में स्थित होकर अन्नको बहाती हैं, दो जलको बहाती हैं, तथा मूत्रवस्ति ( मसाने ) में प्राप्त हुई दो मूत्रको प्रवृत्त करती हैं, तथा वीर्यकोभी दो धमनी प्रवृत्त करती हैं, और दो शुक्रको उत्पन्न करती हैं और जो शुक्रको प्रवृत्त करती हैं वेही शुक्रको निकालतीहैं और स्त्रियोंके वेंही आर्तवसंज्ञक रक्तको प्रवृत्त करती हैं और मोटे आंतड़े ( उंडुक ) में प्राप्त हुई दो विष्ठाको बाहर निकालती हैं, तथा शेष आठ तिरछी गमन करनेवाली धमनियोंको पसीना समर्पण करती हैं ॥ १३ ॥

तास्त्वेतास्त्रिंशत् सविभागा व्याख्याता एताभिरधोनाभेः पक्काशयकटीमूत्रपुरीषगुदवस्तिमेढ्रसक्थीनि धार्यंते याप्यंते च ॥१४॥ भवति चात्र-

इस प्रकारसे ये ३० अधोगामिनी धमनी विभागपूर्वक वर्णन कीगई इन्हींसे नाभिके नीचे पक्काशय, कम्मर, मूत्र, पुरीष, गुदा, वस्ति, लिंग और दोनों पांव धारण किये जातेहे और पोषण किये जातेहैं ॥ १४ ॥ यहां एक श्लोक है-

अधोगमास्तु कुर्वंति कर्माण्येतानि सर्वशः ॥
तिर्यग्गाः संप्रवक्ष्यामि कर्म तासां यथायथम् ॥ १५ ॥

अधोगामिनी धमनी सब इस प्रकारसे कर्म करती हैं अब अगाडी तिर्यग्गामिनी तिरछी गमन करनेवाली ) धमनियोंका वर्णन करतेहें और जो जो उनके कर्म हैं उनको वर्णन करते हैं ॥ १५ ॥

तिर्य्यग्गानां तु चतसृणां धमनीनामेकैका शतधा सहस्रधा चोत्तरोत्तरं विभज्यंते तास्त्वसंख्येयास्ताभिरिदं शरीरं गवाक्षितं

( वा०१३ ) "शुक्रवहे द्वे शुक्रप्रादुर्भावाय द्वे" इत्यत्र, शुक्रप्रादुर्भावाय द्वे तद्विसर्गाय द्वे इति वा पाठः ॥

विबद्धमाततं च॥१६॥ तासां मुखानि रोमकूपप्रतिबद्धानि यैः स्वेदमभिवहंति रसं चापि संतर्पयंत्यंतर्बहिश्च तैरेव चाभ्यंगपरिषेकावगाहालेपनवीर्याण्यंतःशरीरमभिप्रतिपद्यंते त्वचि विपक्कानि तैरेव स्पर्शसुखमसुखं वा गृह्णाति ॥ १७ ॥ तास्त्वेताश्चतस्रो धमन्यः सर्वांगगताः सविभागा व्याख्याताः ॥ १८ ॥ भवतश्चात्र-

तिर्यग्गामिनी जो ४ धमनी हैं उनमेंसे एक एकमेंसे सौ सौ, हजार हजार और फिर उनमेंसे सैंकडों, हजारों विभाग होजातेहैं इससे ये असंख्यात हो जातीहैं और इनसे यह शरीर झरोखोंकी भांति होरहा है और इन्हींसे सब शरीर बँधा हुआहै तथा आच्छादन किया हुआहै ॥ १६ ॥ इनके सूक्ष्म मुख रोमोंके छिद्रसे मिले हुए हैं इन मुखोंहीसे ये पसीनेको प्रवृत्त करतीहैं और रसको बाहर भीतर सर्वत्र पहुँचातीहैं और शरीरको पोषण करतीहैं और इन्हींसे मर्दनकी वस्तु और तरडे देनेकी वस्तु तथा स्नान और लेपका प्रभाव शरीरमें पहुँचताहै और ऊपरसे शुष्क होजाताहै। तथा इन्हींसे स्पर्शका सुख, दुःख ( शीत, उष्ण, मृदु, कठिनादि) जीव ग्रहण करताहै ॥ १७ ॥ ऐसे ये चार तिर्यग्गामिनी समस्त शरीरमें गमन करनेवाली धमनी विभागपूर्वक वर्णन की गई ॥ १८॥ इस विषयमें दो श्लोक हैं-

यथा स्वभावतः खानि मृणालेषु बिसेषु च ॥
धमनीनां तथा खानि रसो यैरुपचीयते ॥ १९ ॥

जैसे कमलकी नालियो और जडोंमें स्वभावहीसे सूक्ष्म छिद्र होतेहैं वैसेही धमनियोंमेंभी सूक्ष्म २ छिद्र हैं इन्ही छिद्रोंसे रस संचय होता है ( और शरीरको पोषण करताहै ) ॥ १९ ॥

पंचाभिभूतास्त्वथ पंचकृत्वः पंचेन्द्रियं पंचसु भावयंति ॥
पंचेंद्रियं पंचसु भावयित्वा पंचत्वमायांति विनाशकाले ॥२०॥

---

( वाक्य १७ ) यै रोमकूपप्रतिबद्धं मुखै. स्वेदमभिवहति ॥

( श्लो० २० ) पचादिभूताः इति-पच पृथिव्यादय आदिभूता येषां ताः धमन्यः । "पंचादिभूताः" इत्यत्र पंचाभिभूताः इति पाठे तु पचभ्यः पृथिव्यादिभ्यो अभिभूताः धमन्यः पचकृत्व. पचधा भूत्व पचेंद्रिय कर्मपुरुषं पचसु पचेंद्रियेषु भावयति। विनाशकाले पचेंद्रिय पचसु पृथिव्यादिषु भावयित्वा लय कृत्वा ताः स्वयमपि पचत्वमायाति । अथवा पचाभिभूता धमन्य. पचकृत्वः पचेंद्रिय इंद्रियपचक पचसु तत्तद्विषयेषु भावयति प्रवर्तयति विनाशकाले पचेंद्रिय देह पचसु पृथिव्यादिषु भावयित्वा पचत्वमायांति । केचित् श्लोकममुमत्र क्षेपक मन्यते ॥

पांच पृथिव्यादि ( पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ) हैं आदिभूत जिनके ऐसी जो पांच ( गंधवाहिनी, रसवाहिनी, रूपवाहिनी, स्पर्शवाहिनी, शब्दवाहिनी ) धमनियां हैं वे पंचधा प्रवृत्त होकर पंचेन्द्रिय कर्मपुरुषको पांचों इंद्रियों ( घ्राण, रसना, नेत्र, त्वचा, श्रोत्र ) की तरफ प्रवृत्त करती हैं और विनाशकाल ( मृत्युके समय) में पांचों इंद्रियोंको पृथिव्यादि पांचों तत्त्वोंमें लय करके स्वयंभी पंचत्वको प्राप्त होजाती हैं ( अथवा "पंचादिभूताः" की जगह पंचाभिभूताः ऐसा पाठ है तो पांच तत्त्वोंसे अभिभूत अर्थात् उत्पन्न ऐसी जो धमनी ऐसा अर्थ करना )अथवा पंच तत्त्वोंसे अभिभूत जो गंधादिवाहिनी धमनी हैं वे पांच ठोर विभक्त होकर पांचों इंद्रियोंको उनके पांचों विषयोंमें प्रवृत्त करती हैं और फिर मृत्युके समय पंचेंद्रिय ( कर्मपुरुष ) को पांचों तत्त्वोंमें लय करके स्वयं पंचत्वको प्राप्त होजाती- हैं ( नष्ट होजाती हैं )। यह श्लोक क्लिष्ट समझकर कूटमुद्गरमें लिखा है इसके और भी कई भांति कई अर्थ करतेहैं और कई इसे इस जगह क्षेपक मानते हैं और कहते हैं कि धमनियोंके संबन्धमें इस श्लोकका ठीक वास्तविक प्रयोजन नहीं जाना जाताहै केवल खींचकर "पंचाभिभूताः" इस पदसे धमनियोंका अर्थ लेते हैं ॥२०॥

**अत ऊर्ध्वं स्रोतसां मूलविद्धलक्षणमुपदेक्ष्यामः ॥ २१ ॥**

इसके अगाडी ( धमनीव्याकरणके कथनांनतर ) अब हम स्रोतोंके मूलविद्ध लक्षणोंका उपदेश करते हैं ॥ २१ ॥

**तानि तु प्राणान्नोदकरसरक्तमांसमेदोमूत्रपुरीषशुक्रार्तववहानि येष्वधिकार एकेषां बहूनि । एतेषां विशेषा बहवः ॥ २२ ॥**

वे स्रोत प्राणवाही, अन्नवाही,जलवाही, रसवाही, रक्तवाही, मांसवाही, मेदोवाही, मूत्रवाही, तथा मलवाही, शुक्रवाही और स्त्रियोंके आर्तव रक्तवाही हैं स्रोतोंमें मुख्य अधिकार इन्हीका है अर्थात् ये ११ ही मुख्य स्रोत हैं किन्हीं २ आचार्योंके मतमें स्रोत बहुतसे हैं और उनमेंसे उनके भेद फिर बहुतसे हैं। जैसे स्वेदवाही, मज्ज- वाही, अस्थिवाही आदि परन्तु धन्वंतरिजीके मतसे इनका मूलविद्ध स्रोतोंमें अधिकार नहीं है क्योंकि, अस्थिवाहियोंका मूल मेदही है इसीप्रकार औरभी मुख्य नहीं है ॥ २२ ॥

**तत्र प्राणवहे द्वे तयोर्मूलं हृदयं रसवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य क्रोशनविनमनमोहनभ्रमणवेपनानि मरणं वा भवति ॥२३॥**

( वाक्य २२ ) एष्वधिकार इति–शल्यचिकित्सायामेषु एकादशसु एवाधिकारः।एकेषां मते स्रोतांसि बहूनि अस्थिमज्जस्वेदवहादीनि तेषां भेदाः बहवः परमत्र तेषामनधिकारः। किं च तेषां कायचिकित्सायाम- धिकारस्तत्रापि अतिसंख्यान् न च साध्यादिज्ञाननिश्चायकत्वात्तेषामनधिकार एव ॥

अन्नवहे द्वे तयोर्मूलमामाशयोऽन्नवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्याध्मानं शूलान्नद्वेषौ छर्दिः पिपासान्ध्यं मरणं वा ॥ २४ ॥ उदकवहे द्वे तयोर्मूलं तालु क्लोम च तत्र विद्धस्य पिपासा सद्योमरणं च ॥ २५ ॥ रसवहे द्वे तयोर्मूलं हृदयं रसवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य शोषः प्राणवहविद्धवच्च मरणं तल्लिंगानि च ॥ २६ ॥

उन स्रोतोंमेंसे प्राणोंको वहानेवाले दो स्रोत हैं इनका मूल हृदय है और रसवाहिनी धमनी भी (इनका मूल) हैं यहांपर विंध जानेसे (तीर, गोली, नश्तर आदि लगजानेसे) प्रलाप और शरीर नवजाना, मूर्च्छा, भ्रमण और कंप ये उपद्रव होते हैं अथवा मृत्यु होती है ॥ २३ ॥ अन्नवाही स्रोत दो हैं इनकी जड आमाशय और अन्नवाहिनी धमनी हैं यहां विंधनेसे अफरा, शूल, अन्नद्वेष, वमन, प्यास, अंधता अथवा मृत्यु होवे ॥ २४ ॥ जलवाही स्रोत भी दो हैं इनका मूल तालु तथा लोम हैं यहां विध जानेसे प्यास और तत्काल मृत्यु होती है ॥ २५ ॥ रसवाही स्रोत भी दो हें इनकी जड हृदय तथा रसवाहिनी धमनी हैं यहांपर विंध जानेसे शोष (शुष्कता) तथा प्राणवहाके विंधनेके समान लक्षण और मृत्यु होती है ॥ २६ ॥

रक्तवहे द्वे तयोर्मूलं यकृत्प्लीहानौ रक्तवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य श्यावांगता ज्वरो दाहः पांडुता शोणितातिगमनं रक्तनेत्रता चेति ॥ २७ ॥ मांसवहे द्वे तयोर्मूलं स्नायुत्वचा रक्तवहाश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य श्वयथुर्मांसशोषः शिराग्रंथयो मरणम् ॥ २८ ॥ मेदोवहे द्वे तयोर्मूलं कटी वृक्कौ च तत्र विद्धस्य स्वेदागमनं स्निग्धांगता तालुशोषः स्थूलशोफता पिपासा च ॥ २९ ॥

रक्तवाही स्रोत दो हैं इनका मूल यकृत् (जिगर), तिल्ली तथा रक्तवाहिनी धमनी हैं यहां विंध जानेसे शरीर काला पडना, ज्वर, दाह, शरीर पीला होना, अति रुधिर निकलना, नेत्र लाल होना ये लक्षण होते हैं ॥ २७ ॥ मांसवाही स्रोत भी दो हैं इनका मूल स्नायुवोंकी त्वचा तथा रक्तवाहिनी धमनी हैं यह विंधनेसे सोजा, मांस सूखना, शिराओंमें गांठें पडना और मृत्यु ये लक्षण होते हैं ॥ २८ ॥ मेदोवाही स्रोत दो हैं इनका मूल कमर और दोनों वृक्क (गुरदे) हैं यहां विंध जानेसे पसीना नहीं आता, स्निग्धता हो, तालु सूखे, मोटा शोथ हो, तथा प्यास अधिक हो ॥ २९ ॥

मूत्रवहे द्वे तयोर्मूलं वस्तिर्मेढ्रं च तत्र विद्धस्यानद्धवस्तिता मूत्रनिरोधः स्तब्धमेढ्रता च ॥ ३० ॥ पुरीषवहे द्वे तयोर्मूलं पक्वाशयो गुदं च तत्र विद्धस्यानाहो दुर्गन्धता ग्रथितांत्रता च ॥ ३१ ॥ शुक्रवहे द्वे तयोर्मूलं स्तनौ वृषणौ च तत्र विद्धस्य क्लीबता चिरात्प्रसेको रक्तशुक्रता च ॥ ३२ ॥ आर्तववहे द्वे तयोर्मूलं गर्भाशय आर्तववाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धाया वंध्यात्वं मैथुनाऽसहिष्णुत्वमार्तवनाशश्च ॥ ३३ ॥

मूत्रवाही दो स्रोत हैं इनका मूल वस्ति (मसाना) तथा लिंग है यहां विधनेसे वस्ति फूलना, मूत्र बंद होना, लिंग कडा होना ये लक्षण होते हैं ॥ ३० ॥ पुरीष (विष्ठा) वाही भी दो स्रोत हैं इनका मूल पक्वाशय तथा गुदा है यहां विंधनेसे पेट फूलना, दुर्गंध होना, आंतोंमें आंटे पडना ये लक्षण होते है ॥ ३१ ॥ वीर्यवाही स्रोत भी दो हैं इनका मूल दोनों चूंचियां और दोनों अंड हैं यहां विंधनेसे नपुंसकता, देरसे वीर्य गिरना, वीर्यपातमें रुधिर आना ये लक्षण होते हैं ॥ ३२॥ स्त्रियोंके आर्तववाही स्रोत भी दोही हैं इनका मूल गर्भाशय तथा आर्तववाहिनी धमनी हैं यहां विधनेसे स्त्रियोंको वंध्यापन, मैथुनका असहन तथा रजोधर्मका नाश ये लक्षण होते हैं ॥ ३३ ॥

सेवनीछेदाद्रुजाप्रादुर्भावः वस्तिगुदविद्धलक्षणं प्रागुक्तमिति ॥ ३४ ॥ स्रोतोविद्धं तु प्रत्याख्यायोपचरेदुद्धृतशल्यं तु क्षतविधानेनोपचरेत् ॥ ३५ ॥

सेवनीके छेदन होनेसे बहुत पीडाका प्रादुर्भाव होता है और वस्ति तथा गुदामें विद्धके लक्षण पहले कहेही गये हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य स्रोतस्थान (स्रोतोमूल) में विद्ध हुआ हो उसे (असाध्य है वा कष्टसाध्य है ऐसा) कहकर फिर चिकित्सा करनी चाहिये और जिसका शल्य निकल गया हो उसकी क्षतविधिसे (जखमके इलाजकी भांति) चिकित्सा करनी ॥ ३५ ॥

मूलात्खादंतरं देहे प्रसृतं त्वभिवाहि यत् ॥
स्रोतस्तदिति विज्ञेयं शिराधमनिवर्जितम् ॥ ३६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मूल ( हृदय ) छिद्रसे लेकर शरीरके भीतर जो वहनशील छिद्र हैं उनको स्रोत कहते हैं परंतु शिरा और धमनी स्रोत नहीं हैं इन्हें छोडकर शेष जो वहनशील छिद्र हैं वे स्रोत कहलाते हैं ॥ ३६ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस०भा० टी० शारीरस्थाने नवमोऽध्यायः ॥९॥

## दशमोऽध्यायः १०.

### अथातो गर्भिणीव्याकरणशारीरं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम गर्भवतीके वरतावकी विवेचना नामके शारीरकी व्याख्या करते हैं ॥

**गर्भिणी प्रथमदिवसात्प्रभृति नित्यं प्रहृष्टा शुच्यलंकृता शुक्लवसना शांतिमंगलदेवताब्राह्मणगुरुपरा च भवेत् ॥१॥ मलिनविकृतहीनगात्राणि न स्पृशेद्दुर्गंधदुर्दर्शनानि परिहरेदुद्वेजनीयाश्च कथाः ॥२॥ शुष्कं पर्युषितं कुथितं क्लिन्नं चान्नं नोपभुंजीत बहिर्निष्क्रमणं शून्यागारचैत्यश्मशानवृक्षाश्रयान् क्रोधभयसंकरांश्च भारानुच्चैर्भाष्यादिकं परिहरेत् यानि च गर्भं व्यापादयंति ॥३॥ न चाभीक्ष्णं तैलाभ्यंगोत्सादनादीनि निषेवेत न चायासयेच्छरीरं पूर्वोक्तानि च परिहरेत् ॥ ४ ॥ शयनासनं मृद्वास्तरणं नात्युच्चमपाश्रयोपेतमसंबाधं विदध्यात् । हृद्यं द्रवं मधुरप्रायं स्निग्धं दीपनीयसंस्कृतं च भोजनं भोजयेत् सामान्यमेतदाप्रसवात् ॥ ५ ॥**

( गर्भवतीके लक्षणादि दौहृदादि पहले वर्णन होचुके हैं अब उसके वरतावोंका वर्णन होताहै ) गर्भवतीको ऋतुस्नानके दिनहीसे नित्य प्रसन्न, पवित्र रहना, शृंगार करना, उज्ज्वल वस्त्र पहरना चाहिये और शांतिपाठ, मंगलाचार, तथा देवता, ब्राह्मण और गुरुवोंमें तत्पर रहना चाहिये ॥ १ ॥ मैले, विकारवाले, हीनांग मनुष्योंका स्पर्श न करे तथा दुर्गंध और जो खराब दीखें उन्होंसेभी दूर रहे और मनको बिगाडनेवाली कथाओंसे भी बचे ॥ २ ॥ सूखा, वासी, बुसा, सडा पदार्थ न खावे बाहर फिरना, सूने मकानमें रहना, छतरियों तथा श्मशानोंमें जाना, वृक्षोंके नीचे

---

( वा० १ ) प्रथमदिवसात् ऋतुस्नानदिवसादेव तदैव गर्भस्थितिशकासत्वात् ॥ ( वा० ५ ) पूर्वोक्तानि गर्भव्यापत्तिकराणि ॥ ( वा० ३ ) चितास्थानं चैत्यम् ॥ ( वा० ४ )

मृद्वास्तरणं मृत्तिका वास्तरणम् अपाश्रयोपेतं प्रतिवाहकछदितम् ॥

रहना इनसेभी परहेज करे । क्रोध, भय इनसेभी बचे तथा क्रियासंकर न करे, बोझा न उठावे, चिल्लाकर न बोले और इनके सिवाय जो गर्भको खंडित करनेवाले आहार विहार हों उन्हेंभी न करे ॥ ३ ॥ अधिक तैलाभ्यंग, उबटन न करे, शारीरक श्रम न करे, तथा पहले कहे हुए अनुचित बरताव न करे ॥ ४ ॥ अति सोना, बैठेरहना तथा विना बिछोने पृथ्वीमें बैठना या पडना इनका त्याग रक्खे । ऊपर उछलकर न बैठे, कष्टसे नहीं बैठे, मीठा, पतला, हृदयको आनंदकारी, चिकना, दीपन वस्तुवोंसे संस्कार किया हुआ भोजन करे इन आचरणोंको सामान्यतासे गर्भारंभसे लेकर प्रसव होनेतक करना चाहिये ॥ ५ ॥

विशेषतस्तु गर्भिणी प्रथमद्वितीयतृतीयमासेषु मधुरशीतद्रवप्रायमाहारमुपसेवेत ॥ ६ ॥ विशेषतस्तु तृतीये षष्टिकौदनं पयसा भोजयेत् । चतुर्थे दध्ना । पंचमे पयसा । षष्ठे सर्पिषा चेत्येके ॥७॥ चतुर्थे पयोनवनीतसंसृष्टमाहारयेज्जांगलमांससहितं हृद्यमन्नं भोजयेत् । पंचमे क्षीरसर्पिःसंसृष्टम् । षष्ठे श्वदंष्ट्रासिद्धस्य सर्पिषो मात्रां पाययेद्यवागूं वा । सप्तमे सर्पिः पृथक्पर्ण्यादिसिद्धमेवमाप्यायते गर्भः ॥ ८॥

विशेष करके गर्भिणीको पहले, दूसरे और तीसरे महीनेमें मीठा, शीतल, पतला आहार सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥ कईयोंका यह भी मत है कि विशेषकर तीसरे महीनेमें षष्टिक (साठी चावलों) का भात दूधके संग खिलाना, चौथे महीनेमें दहीके संग, पांचवेंमें फिर दूधके संग और छठेमें घृतके साथ भात खिलाना ॥ ७ ॥ परंतु धन्वंतरिजीका मत यह है कि चौथे महीनेमें दूध मक्खनसे मिला आहार तथा जांगल जीवोंके मांसके संग हृदयप्रिय अन्न खिलाना चाहिये । पांचवेंमें दूध घीसे मिला भोजन देवे और छठे महीनेमें गोखरूसे सिद्ध किए घृतको पानकी मात्रा दे अथवा यवागू पिलावे । सातवें महीनेमें पृथक्पर्णीसे सिद्ध किया हुआ घृत देवे इसप्रकार करनेसे गर्भ ठीक पूर्ण होताहै ॥ ८ ॥

अष्टमे बदरोदकेन बलातिबलाशतपुष्पपललपयोदधिमस्तुतैललवणमदनफलमधुघृतमिश्रेणास्थापयेत्पुराणपुरीषशुद्ध्यर्थमनुलोमनार्थं च वायोः ॥ ९ ॥ ततः पयोमधुरकषायसिद्धेन तैलेनानुवासयेदनुलोमे हि वायौ सुखं प्रसूयते निरुपद्रवा च भवति॥१०॥

अष्टम मासमें पुराने मलकी निवृत्ति ( शुद्धि ) और वायुको अनुलोमन ( सीधा) होनेके वास्ते बेरके जल, बला ( खरेटी, ) अतिबला ( कंघी नाम खरेटी भेद ), शतपुष्प ( सोंफ ), मांस, दूध, दहीका मस्तु ( दहीका जल, ) तिलका तैल, नमक, मैनफल शहत और घृत ये सब मिलाकर इनसे आस्थापन ( वस्ति ) प्रयोग करे ॥ ९ ॥ फिर मधुर और कषाय द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तैलसे अनुवासन ( वस्ति ) करे इससे वायु अनुलोमन होता है और वायु अनुलोमन होनेसे सुखपूर्वक प्रसव होताहै और कुछ उपद्रव नहीं होता ॥ १० ॥

**अत ऊर्द्ध्वं स्निग्धाभिर्यवागूभिर्जांगलैरसैश्चोपक्रमेदाप्रसवकालादेवमुपक्रांता स्निग्धा बलवती सुखमनुपद्रवा प्रसूयते ॥ ११ ॥**

इसके पीछे चिकने यवागुवों और जांगलजीवोंके मांसरसको यथाक्रम आरंभ करावे । इस प्रकार यत्न करनेसे गर्भिणी स्निग्ध बलवती होती है और सुखपूर्वक उपद्रवरहित बालक उत्पन्न करती है ॥ ११ ॥

## सूतिकागारविधि ।

**नवमे मासि सूतिकागारमेनां प्रवेशयेत् प्रशस्ततिथ्यादौ तत्रारिष्टं ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां श्वेतरक्तपीतकृष्णेषु भूमिप्रदेशेषु बिल्वन्यग्रोधतिंदुकभल्लातकनिर्मितं सर्वागारं यथासंख्यं तन्मयपर्यंकमुपलिप्तभित्तिं सुविभक्तपरिच्छदं प्राग्द्वारं दक्षिणद्वारं वाऽष्टहस्तायतं चतुर्हस्तविस्तृतं रक्षामंगलसंपन्नं विधेयम् ॥१२॥**

गर्भिणीको नवें महीनेमें सूतिकागारमें ( प्रसवके स्थानमें ) शुभ तिथि, वार, नक्षत्रादि देखकर प्रवेश करे । वह प्रसवस्थान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको यथाक्रम श्वेत, पीत, रक्त और काली पृथ्वीमें बिल्व, गूलर, तेंदू और भिलावेंकी लकडीसे बनावे और उसमें फिर उसी क्रमसे उन्हीं वर्णोंको उन्ही बिल्वादि वृक्षोंकी खट्वा बिछवावे तथा भीतोंको अच्छे प्रकार लिपवाकर, प्रसवोपयोगी सामग्रीसे उपयुक्त, पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिणाभिमुख, आठ हाथ लंबा और चार हाथ चौडा रक्षामंगल सपन्न ऐसा सूतिकागार बनाना चाहिये ॥ १२ ॥

**जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबंधने ॥ सशूले जघने नारी ज्ञेया सा तु प्रजायिनी ॥ १३ ॥ तत्रोपस्थितप्रसवायाः कटीपृष्ठं**

---

( वा० १२ ) वृद्धवाग्भटस्तु सूतिकागारविधिमाह यथा—नवमान्मासादपहृतास्थिशर्कराकपाले प्रशस्ते देशे वास्तुविद्याप्रशस्तं सर्वर्तुसुखमुपहृतसर्वोपकरणं सन्निहितज्वलनप्राग्द्वारमुदग्द्वारं वा सूतिकागारं कारयेत्। सुविभक्तपरिच्छदमिति—सुविभक्तानि परिच्छदानि उपकरणानि यस्मिन् ॥ ( श्लो० १३ ) सशूले जघने इति—शूलयुक्तायां कट्याम् । ( इति डल्हनः ) अन्ये तु शूलयुक्ते जघनप्रदेशे इति ॥

प्रति समंताद्वेदना भवत्यभीक्ष्णं पुरीषप्रवृत्तिर्मूत्रं प्रसिच्यते योनिमुखात् श्लेष्मा च ॥ १४ ॥

जब दोनों कूख ढीली पडजावें,हृदयका बंध छूटजावे और साथलोंमें पीडा होने लगे तब जानना कि, इसके शीघ्र बालक होनेवाला है ॥ १३ ॥ और जब तुरत बालक होनेवाला होता है तब कमर और पीठके आसपास चारों तरफ बहुत पीडा होने लगती है, वारवार मल और मूत्रकी प्रवृत्ति होती है तथा योनिके मुखमेंसे कुछ कफसा ( पानीसा ) भी आने लगता है ॥ १४ ॥

प्रजनयिष्यमाणां कृतमंगलस्वस्तिवाचनां कुमारपरिवृतां पुन्नामफलहस्तां स्वभ्यक्तामुष्णोदकपरिषिक्तामथैनां संभृतां यवागूमाकण्ठात् पाययेत् ॥१५॥ ततः कृतोपधाने मृदुविस्तीर्णे शयने स्थितामाभुग्नसक्थीमुत्तानामशंकनीयाश्चतस्रः स्त्रियः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः कर्तितनखाः परिचरेयुः ॥ १६ ॥

जिसके बालक होनेवाला हो उसे मंगलयुक्त स्वस्तिवाचन करावे और लडकोंसे आवृत करके ( अर्थात् उसके आसपास कुछ लडके बिठाकर उन्हें कुछ फलादि दिलादे ) फिर पुरुषनामवाले आम, अनार जैसे फल हाथमें दिलाकर और तैलमर्दन कराके गरम जलसे अभिषेक ( स्नान ) करावे इसके पीछे आसन्नप्रसवा स्त्रीको कंठतक पेट भरके यवागू पिला देवे ॥ १५ ॥ फिर ऊँची तकिया लगाकर मुलायम बिछौना बिछाकर उसपर लिटा दे और साथलोंको चौडी और ऊँची रहने दे और जिनसे शंका (लज्जा) न हो ऐसी चार बुड्ढी ( दाई ) स्त्रियां जो जनावनेके काममें चतुर हों और जिनके नखून कटे हों वे परिचर्यामें रहें ॥ १६ ॥

अथास्यां विशिखांतरमनुलोममनुसुखमभ्यज्याद् ब्रूयाच्चैनामेका सुभगे प्रवाहस्वेति न चाप्राप्तावी प्रवाहस्व। ततो विमुक्ते गर्भनाडीप्रबंधे सशूलेषु श्रोणिवंक्षणवस्तिशिरःसु प्रवाहेथाः शनैः शनैः। ततो गर्भनिर्गमे प्रगाढं ततो गर्भे योनिमुखं प्रपन्ने गाढतरमाविशल्यभावात् ॥ १७ ॥

---

( वाक्य १७ ) विशिखांतरम् अपत्यमार्गम् ( इति डल्हन. ) । आवी प्रसववेदना (इति तु डल्हनः) अन्ये तु उजला जरायुरिति । आविशल्यभावात् इत्यत्र शल्यशब्दग्रहणं वेदनासहितगर्भप्राप्त्यर्थमागमंजननादिन्यर्थं. ॥

उन दाइयोंको चाहिये कि आसन्नप्रसवा स्त्रीके अपत्यमार्गको रोमोंके अनुकूल और मुखकी तरफ चिकनाई लगावें फिर उनमेंसे एक दाई उस आसन्नप्रसवासे कहे कि हे सुभगे! प्रवाहण कर अर्थात् किनछ परंतु जबतक जेर-नाल (पानीसा) न आवे तबतक न किनछे फिर जब गर्भनाडीका बंध हृदयसे छूट जावे और कमर, नले, वस्ति, शिर इन स्थानोंमें ज्यादा पीडा हो तब धीरे धीरे ज्यादा किनछना चाहिये फिर जब गर्भ निकलने लगे तब और ज्यादा किनछे और जिस समय गर्भका बालक योनिके मुखपर आजावे तब तो बहुतही जोरसे प्रवाहण करे और फिर एकवार अति पीडासी होकर बालक जन्मेगा ॥ १७ ॥

### अकालप्रवाहणके दोष ।

**अकालप्रवाहणाद्बधिरं मूकं व्यस्तहनुं मूर्द्धाभिघातिनं श्वासका-सशोषोपद्रुतं कुब्जं विकटं वा जनयति तत्र प्रतिलोममनुलोमयेत्॥१८॥**

वे समय प्रवाहण (किनछने या जनावनेका उद्योग कराने) से बहरा, गूंगा, टेढी ठोडीवाला, दबे शिरका, श्वास, खांसी, क्षयी रोगवाला, कुबडा अथवा विकट शरीरवाला बालक उत्पन्न होता है तहां यदि वायु प्रतिलोम हो तो उसे अनुलोम करना चाहिये ॥ १८ ॥

### प्रसवमें विलंब हो तो उपचार ।

**गर्भसंगे तु योनिं धूपयेत् कृष्णसर्पनिर्मोकेण पिंडीतकेन वा बध्नीयाद्धिरण्यपुष्पीमूलं हस्तपादयोर्धारयेत् सुवर्चलां विशल्यां वा ॥ १९ ॥**

प्रसवमें अवरोध हो तो योनिमें काले सर्पकी कांचली तथा मदनफलकी धूनी देना चाहिये अथवा हिरण्यपुष्पी (कंटकारी) की जड़को हाथ और पैरोंमें बांधदे अथवा सुवर्चला (सूर्यभक्ता-अतसी) और विशल्या (पाटला) को धारण करे (इन यत्नोंसे शीघ्र प्रसव होता है)॥ १९ ॥

### जन्मोत्तरविधि ।

**अथ जातस्योल्वं मुखं च सैन्धवसर्पिषा विशोध्य घृताक्तं मूर्ध्नि पिचुं दद्यात्ततो नाभिनाडीमष्टांगुलमायम्य सूत्रेण बद्ध्वा छेदये-त्तत्सूत्रैकदेशं च कुमारस्य ग्रीवायां सम्यग्बध्नीयात् ॥ २० ॥**

---

(वा० १९) पिंडीतको मदनः । (ह्रा० स्तो०) हिरण्यपुष्पी कण्टकारिका तस्या मूलम् । सुवर्चला सूर्यभक्ता अतसी । विशल्या पाटला (इति डल्हनः) ॥ (वा० २०) अ(स्य आकृष्य विशोध्य । ग्रीवायां सम्यग्बध्नीयात् स्रावपरिहारार्थम् ॥

जन्मके पीछे जरायुको बालकके शरीरपरसे साफ करे तथा बालकके मुखको सेंधनमक और घृतसे शुद्ध करे फिर रुईका फोहा घृतमें भिगोकर तालूपर लगावे फिर नाभिनाडी ( नाल ) को आठ अंगुल नापकर सूत्रसे बांध देवे और अगाडीसे कतर डाले और नालमें जो डोर बंधी है उसे बालकके गलेमें ( ढीलीसी ) बांध देवे ॥ २० ॥

**अथ कुमारं शीताभिरद्भिराश्वास्य जातकर्मणि कृते मधुसर्पिरनन्ताब्राह्मीरसेन सुवर्णचूर्णमंगुल्याऽनामिकया लेहयेत् ॥ २१ ॥**

इसके अनंतर बालकको शीतल जलसे आश्वासन करके जातकर्म करे पीछे शहद, घृत, अनंतमूल, ब्राह्मीका रस इनमें ( एक रत्ती मात्र ) सुवर्णका चूर्ण ( मृगांक या सुवर्णके वरक ) मिलाकर अनामिका अंगुलीसे बालकको चटावे ॥ २१ ॥

**ततो बलातैलेनाभ्यज्य क्षीरवृक्षकषायेण सर्वगंधोदकेन वा रूप्यहेमप्रतप्तेन वा वारिणा स्नापयेदेनं कपित्थपत्रकषायेण वा कोष्णेन यथाकालं यथादोषं यथाविभवं च ॥ २२ ॥**

बला ( खरेंटी ) के तैलका बालकके शरीरपर मर्दन करके दूधवाले वृक्षोंके काथसे अथवा सर्वगंधोदक ( एलादिके जल ) से चांदी और सुवर्णके तपाये हुए ( जिसमें तप्त रूप्य वा हेम बुझा हो ) जलसे अथवा कपित्थपत्र ( कैथके पत्तों ) के कुछ कुछ गरम काथसे जैसा समय (ऋतु) हो, जैसा दोष हो, और जैसा विभव (समृद्धि) हो उसीके अनुसार स्नान कराना चाहिये ॥ २२ ॥

**धमनीनां हृदिस्थानां विवृतत्वादनंतरम् ॥ चतूरात्रात्त्रिरात्राद्वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते ॥ २३ ॥ तस्मात्प्रथमेऽह्नि मधुसर्पिरनंतामिश्रं मंत्रपूतं त्रिकालं पाययेत् । द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं सर्पिस्तृतीये च । ततः प्राङ्निवारितस्तन्यं मधुसर्पिः स्वपाणितलसम्मितं द्विकालं पाययेत् ॥ २४ ॥**

प्रसूता स्त्रीके हृदयकी धमनियोंके मुख खुल जातेहैं इससे जब चार रात्रि या तीन रात्रि व्यतीत होजातीहैं तब उस (सद्यःप्रसूता) स्त्रीके स्तनोंमें दुग्ध उतरता है ॥ २३ ॥ इस कारण प्रथम दिन शहत, घृतमें अनंतमूल मिलाकर मंत्रोंसे अभिमंत्रित

---

(वा० २१ ) सुवर्णचूर्णमिति—चूर्णप्रमाण तु गुंजामात्रमिति (नि० सं०) (वा० २२) क्षीरवृक्षा उदुंबरादयो ग्राह्याः ॥ ( वा० २४) अनता दूर्वा चेति केचित् । केचित्तु अनंतमूलमिति भाषते । स्वपाणितलसम्मिते मधुसर्पिषोरसमा मात्रा प्रयोक्तव्या पाणितलं टंकचतुष्टयप्रमाणं तत्र टंकत्रयं मधु टंकमेक सर्पिर्योज्यम् ॥

करके तीन समय बालकको पिलावे । दूसरे दिन लक्ष्मणासे सिद्ध किया हुआ घृत ( मधु युक्त ) पिलावे और तीसरे दिनभी यही करे । फिर( चौथे दिन ) स्तनोंमेंसे पहलेका कुछ दुग्ध निकाल डाले और दो समय थोडा थोडा दुग्ध प्रसूताके स्तनोंसे पिलावे तथा शहत और घृत पाणितलप्रमित ( चार टंक ) ( जिसमें ३ टंक मधु १ टंक घृत ) दोनों समय चटावे ॥ २४ ॥

प्रसूताके नियम ।

**अथ सूतिकां बलातैलाभ्यक्तां वातहरौषधनिःक्वाथेनोपचरेत्॥२५॥ सशेषदोषां तु तदहः पिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृंगवेरचूर्णगुडोदकेनोष्णेन पाययेत् । एवं द्विरात्रं त्रिरात्रं वा कुर्यादादुष्टशोणितात् ॥२६॥**

इसके अनंतर प्रसूताको बलातैलका मर्दन करना और वातघ्न ( भद्रदारु आदि ) औषधोंके क्राथसे उपचार करे ॥ २५ ॥ और जो रक्तका दोष शेष रहा हो तो उसी दिन पीपल, पीपलीमूल, गजपीपल, चित्रक और सोंठके चूर्णको गुडके उबालेहुए गरम गरम जलके संग पिलावे । इसी भांति जबतक दुष्ट रक्त रहे दो या तीन दिनतक करे ॥ २६ ॥

**विशुद्धे ततो विदारिगंधादिसिद्धां स्नेहयवागूं क्षीरयवागूं वा पाययेत्त्रिरात्रम् । ततो यवकोलकुलत्थसिद्धेन जांगलरसेन शाल्योदनं भोजयेत् बलमग्निबलं चावेक्ष्य । अनेन विधिनाऽध्यर्द्धमासमुपसंस्कृता विमुक्ताहाराचारा विगतसूतिकाभिधाना स्यात् पुनरार्तवदर्शनादित्येके ॥ २७ ॥**

जब रक्तदोष शुद्ध होजावे तब विदारिगंधादिगणसे सिद्ध की हुई स्नेहयुक्त यवागू अथवा दुग्धयुक्त यवागू तीन दिन तक पिलावे इसके पीछे जौ, कोल और कुलथीसे संस्कार किये हुए शालीके भातको जांगलजीवोंके मांसरसके संग बल और अग्निका बल विचारकर प्रसूताको खिलावे । इस विधिसे डेढ महीने तक उपचार करनेपर आहार तथा विहारका नियम नही रहना चाहिये क्योंकि डेढ महीने पीछे स्त्रीकी प्रसूता संज्ञा नही रहती है । और कई आचार्योंका यह मत है कि जबतक फिर रजस्वला न हो तबतक उसकी प्रसूता संज्ञा रहतीहै ( अर्थात् जबतक गोदमें बालक दूधपीता रहे तबतक प्रसूता संज्ञा रहती है ऐसा कई मानते है) ॥ २७ ॥

( पा० २५ ) वातहरौषधानि भद्रदार्वादीनि ॥

धन्वभूमिजातां सूतिकां घृततैलयोरन्यतरस्य मात्रां पाययेत् पिप्पल्यादिकषायानुपानं स्नेहनित्या च स्यात्त्रिरात्रं पंचरात्रं वा बलवतीमबलां यवागूं पाययेत्त्रिरात्रं पंचरात्रं वा ॥ २८ ॥ अत ऊर्ध्वं स्निग्धेनान्नसंसर्गेणोपचरेत् प्रायशश्चैनां प्रभूतेनोष्णोदकेन परिषिंचेत् क्रोधायासमैथुनादीन् परिहरेत् ॥ २९ ॥ भवतश्चात्र-

धन्वभूमि ( जांगल देश जैसे मारवाड ) की प्रसूताको घृत या तैलकी मात्रा पिलावे और पिप्पल्यादि काथका अनुपान देवे और नित्य तैलाभ्यंग करे ऐसे तीन या पांच दिनतक करे । बलवती प्रसूताको तीन दिन और बलहीनको पांचदिन तक यवागू पिलावे ॥ २८ ॥ इसके पीछे चिकने अन्नके संसर्गसे उपचार करे अर्थात् उसे चिकना अन्न ( हलवा आदि ) खिलाते रहे और कभी कभी उष्णजलसे शरीरको सींचे ( तरेडे दे तथा स्नान करावे ) और क्रोध, परिश्रम तथा मैथुन आदिको त्यागे रहे ॥ २९ ॥ इस विषयमें दो श्लोक हैं-

मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते ॥ स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेदप्यपतर्पणात् ॥ ३० ॥ तस्मात्तां देशकालौ च व्याधिसात्म्येन कर्मणा ॥ परीक्ष्योपचरेदेवं नेयमत्ययमाप्नुयात् ३१ ॥

मिथ्या आचार ( औषध, अन्न, विहार ) से प्रसूताको जो व्याधि होजावे तथा अपतर्पण ( तृप्तिकारक वस्तु न मिलने ) से जो सूतिकाको रोग होजावें तो वे कष्टसाध्य अथवा असाध्य होते हैं ॥ ३० ॥ इस कारण देश, काल और व्याधि तथा सात्म्य ( उसे कैसा मानुकूल है ) इन बातोंको विचारकर और परीक्षा करके प्रसूताका उपचार करना चाहिये ऐसा न हो कि उलटा रोग बढकर असाध्य होजावे ॥ ३१ ॥

अपरापातन ।

अथापरा पतन्त्यानाहाध्मानौ कुरुते तस्मात् कंठमस्याः केशवेष्टितयाङ्गुल्या प्रमृजेत् । कटुकालाबुकृतवेधनसर्षपसर्पनिर्मोकैर्वा कटुतैलमिश्रैर्योनिमुखं धूपयेत् । लांगलीमूलकल्केन वास्याः पाणिपादतलेष्वालिंपेत् ॥ ३२ ॥

बांधकर मलना चाहिये तथा कडुवी तोंबी, कडुवी तुरई, सरसों, सर्पकी कांचली इनमें कडुवा तैल मिलाकर योनिके मुखपर धूनी देना चाहिये। अथवा कलिहारीके जडको पीसकर उसके हाथ, पांवोंमें लेपकरे ॥ ३२ ॥

मूर्ध्नि वाऽस्या महावृक्षक्षीरमनुसेचयेत् । कुष्ठलांगलीमूलकल्कं वा मद्यमूत्रयोरन्यतरेण पाययेत्। शालिमूलकल्कं वा पिप्पल्यादि वा मद्येन । सिद्धार्थककुष्ठलांगलीमहावृक्षक्षीरमिश्रेण सुरामंडेन वास्थापयेत् । एतैरेव सिद्धेन सिद्धार्थकतैलेनेतरवस्तिं दद्यात् । स्निग्धेन वा कृत्तनखहस्तेनापहरेत् ॥ ३३ ॥

अथवा शिरपर थूहरके दूधका आसेचन करे अथवा कूट, कलिहारीकी जडको मद्य या गोमूत्रमेंसे किसीके साथ थोडी पिलावे । अथवा चावलोंकी जडको जलमें पीसके या पिप्पली आदिको मद्यके साथ दे । अथवा सरसों, कूट, कलिहारी, थूहरका दूध मिलाकर सुरामंडके संग आस्थापनवस्ति करना और इन्हीं औषधोंसे सिद्ध किये हुए सरसोंके तैलसे उत्तरवस्ति करे अथवा नखून कटे हाथोंमें तैल लगाकर ( हाथ योनिमें देकर ) नालको खींचके निकाले ॥ ३३ ॥

मक्कल्लरोगके लक्षण ।

प्रजातायाश्च नार्य्या रूक्षशरीरायास्तीक्ष्णैरविशोधितं रक्तं वायुना तद्देशगेनातिसंरुद्धं नाभेरधः पार्श्वयोर्वस्तौ वस्तिशिरसि वा ग्रंथिं करोति । ततश्च नाभिवस्त्युदरशूलानि भवंति । सूचीभिरिव निस्तुद्यते भिद्यते दीर्य्यते इव च पक्वाशयः । समंतादाध्मानमुदरे मूत्रसंगश्च भवतीति मक्कल्ललक्षणम् ॥ ३४ ॥

जब स्त्रीके बालक हो चुके तब यदि रूक्ष शरीरवाली प्रसूता हो उसके अशुद्ध रक्त शेष रहा हो उस अवस्थामें उसे तीक्ष्ण वस्तुवोंका उपयोग किया जावे तो वह अशुद्ध रक्त उस स्थानमें प्राप्त हुए वायुसे अवरुद्ध होकर ( रुक जावे तब ) नाभिसे नीचे पँसवाडोंमें वस्तिमें या वस्तिके शिरके स्थानमें गांठसी उत्पन्न कर देता है उससे नाभि, वस्ति, उदर इन स्थानोंमें शूल होजाता है इससे सूईकीसी भांति चुभन होती हैं, भेदनसा होता है, और पक्वाशय विदारणसा होता है, और सारे पेटमें अफरासा हो आता है तथा मूत्र रुक रुककर आता है ये लक्षण मक्कल्लरोगके हैं॥ ३४॥

( वा० ३४ ) प्रजातायाः प्रजननयोणितजनितशूलं मक्कल्लः । अवरुद्धरक्तगाढजनितो विद्रधिरपि मक्कल्लः ( इति डल्लनः ) ॥

मक्कलका यत्न ।

तत्र वीरतर्वादिसिद्धं जलमूषकादिप्रतीवापं पाययेत् । यवक्षार-चूर्णं वा सर्पिषा सुखोदकेन वा लवणचूर्णं वा पिप्पल्यादिक्काथेन पिप्पल्यादिचूर्णं वा सुरामंडेन वरुणादिक्काथं वा पंचकोलैला-प्रतीवापं पृथक्पर्ण्यादिक्काथं वा भद्रदारुमरिचसंसृष्टं पुराणगुडं वा त्रिकटुचतुर्जातककुस्तुंबुरुमिश्रं खादेदच्छं वा पिबेदरिष्टम् ॥ ३५ ॥

इस मक्कलरोगमें वीरतरु ( अर्जुनवृक्ष ) का क्काथ, क्षारमृत्तिका ( खारी मिट्टी रेहकी जाति ) डालकर पिलावे अथवा जौखारके चूर्णको घृतके संग दे अथवा गरम जलके संग लवणके चूर्णको दे अथवा पिप्पल्यादि क्काथके संग पिप्पल्यादि चूर्ण देवे अथवा मद्यके मंडके संग वरुणादिगणका क्काथ देवे अथवा पंचकोल ( पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सुंठी) और इलायची डालकर पृथक्पर्ण्या-दिका क्काथ देवे अथवा भद्रदारु और मिरचयुक्त पुराना गुड देवे अथवा त्रिकटु और चातुर्जात ( तज, पत्रज, इलायची, नागकेशर ) और धनियां मिलाकर खावे अथवा अभयादिका अरिष्ट निर्मल करके पीवे (इन योगोंमेंसे जो योग प्रकृति और दोष तथा ऋतुके अनुकूल हो वही उपयोग करना चाहिये ) ॥ ३५ ॥

अथ बालं क्षौमपरिवृतं क्षौमवस्त्रास्तृतायां शय्यायां शाययेत् । पीलुबदरीनिम्बपरूषकशाखाभिश्चैनं वीजयेत् । मूर्ध्नि चास्याहरहस्तैलपिचुमवचारयेत् । धूपयेच्चैनं रक्षोघ्नैर्धूपैः । रक्षोघ्नानि चास्य पाणिपादशिरोग्रीवास्ववसृजेत् । तिलातसीसर्षपकणांश्चात्र प्रकिरेत् । अधिष्ठाने चाग्निं प्रज्वालयेत् । व्रणितोपासनीयं चावेक्षेत ॥ ३६ ॥

इसके अनंतर बालकको क्षौम ( एकप्रकारके रेशमी कपड़े ) से आच्छादित करके खाटपर रेशमी कपडा बिछाकर लिटादे । और पीलूवृक्ष, बेरी, निंब तथा फालसेकी टहनीसे हवा करे और बालकके शिरपर प्रतिदिन तैलका फोहा लगावे और रक्षोघ्न धूप, वच आदिकी धूंनी देतरहे तथा रक्षोघ्नवस्तु ( जैसे सुपेद

( वा० ३५ ) ऊषका क्षारमृत्तिका । अच्छं केवलं स्वच्छं वा । अरिष्टं मभयारिष्टादिकम् (नि०सं०)
( व्या० ३६ ) अधिष्ठाने सूतिकागारे । व्रणितोपासनीयं चावेक्षेतेति-व्रणितोपासनीये यद्यदाचरणीयं तत्त-दत्रापि कार्यमिति भावार्थः ॥

सरसों, गोरोचन आदि ) बालकके हाथ, पैर, शिर, ग्रीवा आदिपर लगाया करे। तिल, अलसी, सरसों इनमेंसे कोई उसके आसपास बिखेरे और बालकके स्थानके पास अग्नि जलती रक्खे तथा व्रणितोपासनीयाध्यायोक्त बरतावोंको देखे ( और उसके अनुसार करे ) ॥ ३६ ॥

### नामकरण ।

**ततो दशमेऽहनि मातापितरौ कृतमंगलकौतुकौ स्वस्तिवाचनं कृत्वा नाम कुर्यातां यदभिप्रेतं नक्षत्रनाम वा ॥ ३७ ॥**

इसके पीछे दशवें दिन माता पिता मंगल कौतुकपूर्वक स्वस्तिवाचन करके यथायोग्य मनोज्ञ अथवा नक्षत्रके चरणाक्षरके अनुकूल ( जैसे 'चूचे-चोला'-अश्विनी इत्यादि ) नामाक्षर आदिमें रखकर नाम रक्खे ( ब्राह्मणोंको शर्मा, क्षत्रियोंको वर्मा, वैश्योंको गुप्त और शूद्रोंको दास पद अंतमें रखना चाहिये अथवा इस समयके अनुसार ब्राह्मणोंको दत्त, आनंद आदि । क्षत्रियोंको सिंह, लाल, पाल । वैश्योंको मल आदि शब्द अंतमें देने चाहिये इसका विशेषविधान धर्मशास्त्र और ज्योतिःशास्त्रमें देखना चाहिये ) ॥ ३७ ॥

### योग्य धात्री ( धाय ) के लक्षण ।

**ततो यथावर्णं धात्रीमुपेयान्मध्यप्रमाणां मध्यमवयसमरोगां शीलवतीमचपलामलोलुपामकृशामस्थूलां प्रसन्नक्षीरामलंबौष्ठीमलंबोर्द्ध्वस्तनीमव्यंगामव्यसनिनीं जीवद्वत्सां दोग्ध्रीं वत्सलामक्षुद्रकर्मिणीं कुले जातामतो भूयिष्ठैश्च गुणैरन्वितां श्यामामारोग्यबलवृद्धये बालस्य ॥ ३८ ॥ तत्रोर्द्ध्वस्तनी करालं कुर्यात् लंबस्तनी नासिकामुखं छादयित्वा मरणमापादयेत् ॥ ३९ ॥**

इसके अनंतर अपने वर्णके अनुसार ( जैसे ब्राह्मणको ब्राह्मणी, क्षत्रियको क्षत्रिया, वैश्यको वैश्या, शूद्रको शूद्रा ) धाय ( बालकको दूध पिलानेवाली ) नियत करनी चाहिये ( अथवा अपने२ वर्ण अर्थात् रंगके समान अर्थात् प्रसूता गौर हो तो गौर, और

---

( श्लो० ३७ ) अभिप्रेत मनोज्ञ नक्षत्रनाम वा नक्षत्रदेवताकृतम् ( इति डल्हनः ) अथवा नक्षत्रनाम ज्योतिःशास्त्रोक्तनक्षत्रचरणसंकेतजनिताक्षरमादौ कृत्वा नाम कुर्यातां ॥

( श्लो० ३८ ) यथावर्णमिति-ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीं क्षत्रियस्य क्षत्रियामित्यादि ( इति डल्हनः ) अन्ये तु यथावर्णा मातृवर्णसदृशा बालस्य वर्णसदृशा वा इत्याहुः । श्यामा श्यामा प्रचुरक्षीरा प्रायशो भवति ( इति डल्हन ) परत्वत्र श्यामाकथनेन शोभना रूपवतीत्यभिप्रायः न तु वर्णविशेषा श्यामत्वमिति "रूपलावण्यसंयुक्ता या श्यामेत्यभिधीयते" इति वाक्यात् ॥

श्याम हो तो श्याम धाय नियत करे ) वह धाय मध्यप्रमाण अर्थात् न बहुत लंबी हो, न बहुत गुट्टी हो, तथा मध्य अवस्थावली, रोगरहित, शील ( स्वभाव ) वाली हो, बहुत चपल न हो, लोलुप अर्थात् जिसका चित्त रुक न सके ऐसी न हो, बहुत दुबली न हो, न बहुत मोटी हो, शुद्ध दुग्धवाली हो, जिसके होठ लंबे न हों, जिसके स्तन ऊंचे और लंबे न हों, जिसका शरीर हीनाधिक न हो, जिसमें कोई व्यसन ( ऐब ) न हो, जिसके बालक जीते रहते हों ( अथवा सवत्सा हो ), दोग्ध्री ( दूधवाली ) हो, बालकपर प्रेम रखनेवाली हो, नीच कर्म करनेवाली न हो, अच्छे कुलकी जन्मी हो इत्यादि बहुतसे गुणोंसे युक्त हो और श्यामा अर्थात् सांवली हो अथवा सुंदर रूपवती हो ऐसी धाय बालकको निरोगता और बलकी वृद्धि करनेवाली होती है ॥ ३८ ॥ जो धाय ऊंचे स्तनोंवाली हो तो बालकको कराल ( कठोर ) करनेवाली होती है तथा लंबे स्तनोंवालीके स्तनोंसे बालकके नाक, मुखका आच्छादन होजाताहै इससे वह कभी मृत्युकी संभावना उपजातीहै ॥ ३९ ॥

### प्रथमस्तनपानविधि ।

**ततः प्रशस्तायां तिथौ शिरःस्नातामहतवाससमुदङ्मुखं शिशुमुपवेश्य धात्रीं प्राङ्मुखीमुपवेश्य दक्षिणं स्तनं धौतमीषत्परिस्रुतमभिमंत्र्य मंत्रेणानेन पाययेत् ॥ ४० ॥**

फिर श्रेष्ठ तिथि ( नक्षत्रादि ) में मा या धायको शिरसमेत स्नान कराके अच्छे वस्त्र पहनाके पूर्वाभिमुख बैठाकर उसकी गोदमें उत्तराभिमुख बालकको स्थापन करके धायके दहिने स्तनको जो थोड़ा धोया हुआहो और उसमेंसे थोडा दूध निकाल डाला हो उसे नीचे लिखे मंत्रसे अभिमंत्रित करके पिलावे ॥ ४० ॥

**चत्वारः सागरास्तुभ्यं स्तनयोः क्षीरवाहिणः ॥ भवंतु सुभगे नित्यं बालस्य बलवृद्धये ॥ पयोऽमृतरसं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ॥ दीर्घमायुरवाप्नोतु देवाः प्राश्यामृतं यथा ॥ ४१ ॥**

हे सुभगे ! बालकके बलकी वृद्धिके लिये चारों समुद्र तेरे स्तनोंमे नित्य क्षीरवाहि होकर रहें । हे शुभानने ! तेरे दूधरूपी अमृतरसको पान करके यह बालक दीर्घायुको प्राप्त हो जैसे देवता अमृत पीकर दीर्घायु होतेहैं ॥ ४१ ॥

**अतोऽन्यथा नानास्तन्योपयोगस्याऽसात्म्याद्व्याधिजन्म भवति । अपरिस्रुतेप्यतिस्तब्धस्तन्यपूर्णस्तनपानादुत्स्नुहितस्रोतसः शिशोः कासश्वासवमीप्रादुर्भावः तस्मादेवंविधानं स्तन्यं न पाययेत् ४२**

---

(वा०४२) उत्स्नुहितस्रोतस इति—ऊर्ध्वं स्नुहितं उदीर्णं स्रोतो यस्मिन् तस्मात् पानात् ॥

इसके विपरीत यदि नाना स्तन्य ( अनेक स्त्रियोके दूध ) का उपयोग हो अर्थात् कभी कोई पिला दे कभी कोई तो वह आत्माके अनुकूल न होनेसे व्याधि पैदा करताहै। और जो पहले दूध नहीं निकाला जावे तो अति कड़े दूधसे भरे स्तन पान करनेसे वह जमा जाडा जोरकी धारका दूध बालकको खांसी, श्वास, वमन पैदा कर देताहै इस हेतु ऐसे स्तन न पिलाने चाहिये ॥ ४२ ॥

**क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्च स्त्रिया स्तन्यनाशो भवति। अथास्याः क्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्य यवगोधूमशालिषष्टिकमांसरससुरासौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्यकशेरुकशृंगाटकबिसविदारीकंदमधुकशतावरीनलकालाबूकालशाकप्रभृतीनि विदध्यात् ॥ ४३ ॥**

क्रोध, शोक, प्रेम न रखना इत्यादि ( तामस व्यवहारों और अति तीक्ष्ण, उष्ण पदार्थ खाने आदि ) से स्त्रियोंका दूध नष्ट होजाताहै ( जिसका दूध नष्ट होगया हो या स्वल्प हो) उसे दूधकी वृद्धिके लिये सुमनसता ( शीलता सौम्यता ) उत्पन्न करानी चाहिये और जौ, गेहूं, शालि ( चावल ), षष्टिक ( साठी ) चावल, मांसका रस, सुरा ( मद्यभेद), सौवीर, तिलकुट, लशुन, मछली, कसेरू, सिंघाड़े, कमलकी जड़, विदारीकंद, मुलहटी, शतावरी, नलिका ( नालीका शाक, ) अलाबू (घीया), कालशाक इत्यादि खिलाते रहे ॥ ४३ ॥

**अथास्याः स्तन्यमप्सु परीक्षेत। तच्चेच्छीतलममलं तनु शंखावभासमप्सु न्यस्तमेकीभावं गच्छत्यफेनिलमतंतुमन्नोत्प्लवते न सीदति वा तच्छुद्धमिति विद्यात्तेन कुमारस्यारोग्यं शरीरोपचयो बलवृद्धिश्च भवति। न च क्षुधितशोकार्तश्रांतप्रदुष्टधातुगर्भिणीज्वरितातिक्षीणातिस्थूलविदग्धभक्ष्यभोज्यविरुद्धाहारतर्पितायाः स्तन्यं पाययेन्नाजीर्णौषधं च बालं दोषौषधमलानां तीव्रवेगोत्पत्तिभयात् ॥ ४४ ॥ भवन्ति चात्र-**

दूध पिलानेवाली (माता या धाय ) के दूधकी जलमें परीक्षा करे यदि यह शीतल, निर्मल, पतला, शंखसा सुपेद हो, जलमें डालनेसे एकत्र होजावे (फैले नहीं), झागदार न हो, और तारसे न छूटें, और न ऊपर तैरता रहे, न नीचे डूब जावे उसे शुद्ध दूध जाने उसके पीनेसे बालकको निरोगपन, शरीर मोटा होना और बल वृद्धि

(वा०४३)नलका इत्यत्र नलिका वा। नालिका शाकविशेषः। नालिकेर इति वा क्वचित्पाठः (इति डल्हनः

होती है। और क्षुधायुक्त, शोकयुक्त, थकी हुई, जिसकी धातु दूषित होगई हो, गर्भिणी हो, जिसे तप आता हो, अतिक्षीण या अतिस्थूल हो, जो विदग्ध (कच्चा पक्का) खाती हो, जिसने विरुद्ध भोजन पेटभर खाया हो ऐसी स्त्रीका दूध बालकको नहीं पिलाना चाहिये और यदि बालकको अजीर्ण भी हो तो (बहुत तेज) औषध न पिलावे क्योंकि दोष और औषध तथा मलका तीक्ष्ण वेग होनेका भय होनेसे। (यदि दे तो सूक्ष्म और मृदु औषध देनी चाहिये) ॥४४॥ इस विषयमें श्लोक हैं-

## भावमिश्रोक्त दुष्टदुग्धलक्षण (परिशिष्ट)

श्लोक-कषायसलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ॥ पित्तादम्लं च कटुकं राज्यो-म्भसि तु पीतिका ॥ १ ॥ कफदुष्टं तु यत्तोये निमज्जति च पिच्छलम् ॥ द्वंद्वजं तु द्विलिंगं स्यात्त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥ २ ॥

अर्थ-जो कषायरस हो, जलमें डालनेसे तिरे वह दुग्ध वायुसे दूषित होता है। और जो खट्टा या चरका हो तथा जलमें डालनेसे पीली धारीसी होजावे तो वह दुग्ध पित्तसे दूषित है ॥ १ ॥ तथा जो बहुत गाढा हो और जलमें डालनेसे डूब जावे वह कफसे दूषित दुग्ध है। इसी भांति जिसमें दो भांतिके लक्षण हों वह दो दोषोंसे दूषित और जिसमें तीनों लक्षण हों वह त्रिदोषदूषित समझना ॥२॥

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा ॥ दोषा देहे प्रकुप्यंति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ ४५ ॥ मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः ॥ दूषयंति पयस्तेन शरीरे व्याधयः शिशोः ॥ भवंति कुशलस्तांश्च भिषक् सम्यग्विभावयेत् ॥ ४६ ॥

दूध पिलानेवाली धायके भारी भोजन करनेसे, विषम भोजन करनेसे तथा दोषल आहार विहारसे शरीरमें दोष कुपित होकर दुग्धको दूषित कर देते हैं ॥ ४५ ॥ मिथ्या आहार, विहार करनेवाली स्त्रियोंके शरीरमें वातादि दोष दुष्ट होकर दुग्धको दूषित करते हैं जिस दूषित दूधके पीनेसे बालकके शरीरमें व्याधियां पैदा होजाती हैं इससे चतुर वैद्य बालकके रोगोंको ठीक विचार कर यत्न करे ॥ ४६ ॥

### बालकके रोग जाननेकी रीति।

अंगप्रत्यंगदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते ॥ मुहुर्मुहुः स्पृशति तं स्पृश्यमाने च रोदिति ॥ ४७॥ निमीलिताक्षो मूर्द्धस्थे शिरो रोगे न धारयेत् ॥ वस्तिस्थे मूत्रसंगार्तो रुजा तृष्यति मूर्च्छति ॥४८॥

**विण्मूत्रसंगवैवर्ण्यछर्द्याध्मानांत्रकूजनैः ॥ कोष्ठे दोषान् विजानीयात्सर्वत्रस्थांश्च रोदनैः ॥ ४९ ॥**

बालकके जिस जिस अंग प्रत्यंगमें पीडा होती है उसे वह बारबार छूता है और यदि कोई अन्य मनुष्य उस अंगको छूवे तो बालक रोता है ॥ ४७ ॥ यदि मूर्द्धामें शिरोरोग हो तो बालक आंखें बंदकिये रहता है और शिरको धूनता टकराता है तथा वस्तिस्थानमें रोग पीडा हो तो मूत्र रुकता है, तृषा अधिक लगती है, मूर्च्छा होजाती है ॥ ४८ ॥ और यदि मल मूत्र दोनों रुक जावें, वर्ण अच्छा न रहे, वमन हो, अफारा हो, तथा आँतें गुड़गुड करें तो कोष्ठगत पीडा जानना और समस्त शरीरमें ( अरति आदि ) पीडा हो तो उसे रुदनमात्रसे जानलेना चाहिये ( इसी भांति औरोंको भी जानना ) ॥ ४९ ॥

**तेषु च यथाभिहितं मृद्वच्छेदनीयमौषधं मात्रया क्षीरपस्य क्षीरसर्पिषा धात्र्याश्च विदध्यात् । क्षीरान्नादस्यात्मनि धात्र्याश्च । अन्नादस्य कषायादीनात्मन्येव न धात्र्याः ॥ ५० ॥**

बालकोंके रोगनाशक औषधोंमें जो यथायोग्य कोमल हो, और अच्छेदी अर्थात कफादिको छेदन करनेवाली ( तीक्ष्ण ) नहीं हो वह औषध दूध पीनेवाले बच्चेके रोग हो तो उसकी धायको दूध और घृतके संग देनी चाहिये । और, जो दूधभी पीता हो कुछ अन्नभी खाता हो तो उस बच्चेको भी और उसकी धायको भी औषध देना चाहिये । और अन्नमात्र खानेवाला हो तो उस बच्चेहीको क्काथादि पिलावे धायको नहीं ॥ ५० ॥

### बालकोंकी औषधोंकी मात्रा ।

**तत्र मासादूर्द्ध्वं क्षीरपायांगुलिपर्वद्वयग्रहणसम्मितामौषधमात्रां विदध्यात् । कोलास्थिसम्मितां कल्कमात्रां क्षीरान्नादाय कोलसम्मितामन्नादायेति ॥ ५१ ॥**

एक महीनेसे अधिककी अवस्थावाले दूध पीते बच्चेको यदि औषध ( हरीतकी, गुडूच्यादि ) देना आवश्यक हो तो अंगुलीके दो पोरोंसे जितनी औषध लीजावे इतनी औषध ( क्काथादि ) देना चाहिये । और जो दूधभी पीता हो, कुछ अन्नभी

---

( वा० ५१) बालस्य भेषजमात्राप्रमाणं तन्त्रान्तरात् यथा—"प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका ॥ अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसितावृतैः ॥ १ ॥ एकैका वर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत्॥ तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद्यावत्षोडशवार्षिकः ॥ २ ॥"

खाता हो उसे बेरकी गुठली जितनी पिसी दवा देना चाहिये । और अन्न खाते बच्चेको कोलप्रमाण औषध देना ॥ ५१ ॥

**येषां गदानां ये योगाः प्रवक्ष्यंतेऽगदंकराः ॥ तेषु तत्कल्कसंलिप्तौ पाययेत शिशुं स्तनौ ॥ ५२ ॥ एकं द्वे त्रीणि चाहानि वातपित्तकफज्वरे ॥ स्तन्यपायाहितं सर्पिरितराभ्यां यथार्थतः ॥ ५३ ॥**

अथवा जिन जिन रोगोंके लिये जो जो आराम करनेवाले औषधोंके योग कहे हैं यदि बालकोंके रोग होवें तो उन्हीं २ को पीसकर दूध पिलानेवालीके स्तनोंके ऊपर लेप करके दूध पिलाना चाहिये ॥५२॥ यदि दूध पीनेवाले बालकको वातज, पित्तज और कफज ज्वर हो तो एक दिन, दो दिन, तीन दिन इस क्रमसे घृत, अहित होता है ( अर्थात् दूध पीते बच्चेको वातज्वरमें १ दिन, पित्तज्वरमें २ दिन, कफज्वरमें ३ दिन घृत न देना ) और जो इतर ( दूध पीते और अन्नभी कुछ खाते तथा केवल अन्न खाते ) हों उन्हें यथायोग्य घृतका पथ्य उचित है ॥ ५३ ॥

**न च तृष्णाभयादत्र पाययेत शिशुं स्तनौ ॥**
**विरेकवस्तिवमनान्यृते कुर्य्याच्च नात्ययात् ॥ ५४ ॥**

ज्वरके वेगमें बालकको तृषाके भयसे स्तनपान कराना उचित नहीं तथा अत्यावश्यकताके सिवाय बालकको विरेचन, वस्तिकर्म तथा वमन करनाभी उचित्त नहीं ॥ ५४ ॥

### काकछटकनेका यत्न ।

**मस्तुलुंगक्षयाद्यस्य वायुस्तात्वस्थि नामयेत् ॥ तस्य तृड्दैन्ययुक्तस्य सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ॥ पानाभ्यंजनयोर्योज्यं शीतांबूद्वेजनं तथा ॥ ५५ ॥**

बालकके मस्तककी मज्जाका क्षय होनेसे वायु उसके तालुके अस्थिको नवा देता है ( काक छिटक जाता है ) इससे तृषा अधिक लगती है, बालक दीन ( विकल ) होजाता है इससे इसको मधुरगण ( काकोल्यादि ) से गरम किया हुआ घृत पान करावे और तालूपर मले तथा ठंढे जल और शीतल पंखेसे पवनका उपयोग करे ॥ ५५ ॥

---

(श्लो०५३) इतराभ्यां क्षीरान्नादान्नादाभ्या द्वाभ्या यथार्थतः यथायोग्यतः सर्पिः हितमहित वा बोद्धव्यम् ॥
(श्लो०५४) अत्र ज्वरे। अत्ययात् विनाशकारकविकाराद् ऋते विरेकवस्तिवमनानि न कुर्य्यादित्यभिप्रायः ॥

नाभिपाक और गुदपाक ।

**वातेनाध्मापितां नाभिं सरुजां तुडिसंज्ञिताम् ॥ मारुतघ्नैः प्रशमयेत्स्नेहस्वेदोपनाहनैः ॥ ५६ ॥ गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ रसांजनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ५७ ॥**

यदि वायुसे नाभि फूल जावे और उसमें पीडा हो, अगाडीको चोंचसी निकल आवे तो इस व्याधिमें वायुनाशक स्नेहकर्म करना ( वायुनाशक घृत लगाना ) तथा स्वेदन, उपनाहनादि करना ॥ ५६ ॥ यदि बालकोंकी गुदा पक जावे तो पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये, विशेष करके रसोत ( रसवंती ) का पान कराना और लेप करना हित है ॥ ५७ ॥

**क्षीराहाराय सर्पिः पाययेत् सिद्धार्थकवचामांसीपयस्यापामार्गशतावरीसारिवाब्राह्मीपिप्पलीहरिद्राकुष्ठसैंधवसिद्धं क्षीरान्नादाय मधुकवचापिप्पलीचित्रकत्रिफलासिद्धं अन्नादाय द्विपंचमूलीक्षीरतगरभद्रदारुमरिचमधुविडंगद्राक्षाद्विब्राह्मीसिद्धम् । तेनारोग्यबलमेधायूंषि शिशोर्भवंति ॥ ५८ ॥**

केवल दूध पीनेवाले बच्चेको सुपेद सरसों, वच, जटामांसी, क्षीरकाकोली (अथवा दुद्धी ), ओंगा, शतावरी, सारिवा, ब्राह्मी, पिप्पली, हलदी, कूट, सेंधानमक इनसे सिद्ध किया घृत नित्य पिलाना चाहिये । और दूधभी पीने तथा कुछ अन्नभी खानेवाले बालकको मुलहटी, वच, पिप्पली, चित्रक और त्रिफला इनसे सिद्ध किये घृतका पान कराना । तथा अन्न खानेवाले बालकको दोनों पञ्चमूल ( अर्थात् दशमूल ), क्षीर ( दुग्ध ) अथवा ' क्षीरि ' ऐसाभी पाठांतर है जिससे क्षीरवृक्ष, तगर, देवदारु, कालीमिर्च, मधु ( शहत ) अथवा 'मधुक' पाठांतर होनेसे मुलहटी, वायविडंग, द्राक्षा दोनों ब्राह्मी ( ब्राह्मी और ब्रह्ममांडूकी ) इनका सिद्ध किया घृत पान कराना चाहिये इससे बालक निरोगी, वलवान्, बुद्धिमान् और दीर्घायु होता है५८॥

बालकोंका बरताव ।

**बालं पुनर्गात्रसुखं गृह्णीयान्न चैनं तर्जयेत् । सहसा न प्रतिबोधयेदवित्रासभयात् । सहसा नापहरेदुत्क्षिपेद्वा वातादिविघातभयान्नोपवेशयेत् कौब्ज्यभयात् । नित्यं चैनमनुवर्तेत प्रियशतैरजिघांसुः ॥ ५९ ॥**

और बालकको जैसे उसका शरीर सुख पावे वैसे गोदमें रक्खे तथा बालकको त्रास नहीं देना यदि सोता हो तो उसे झटपट न जगावे क्योंकि इससे वह डर जाताहै और झट ऊपरको न उठावे, और झटसे न नीचेको करे इससे वायुके विघातका भय होताहै और अतिछोटे बच्चेको बिठावेभी नहीं क्योंकि बिठानेसे बच्चा कुबडा न होजावे यह भय होताहै तथा बालकके चिरजीवनकी वांच्छावाले माता पिता नित्य बालकके अनुकूल और प्रिय सैंकडों यत्न करें ॥ ५९ ॥

**एवमनभिहतमनास्त्वभिवर्द्धते । नित्यमुदग्रसत्त्वसंपन्नो नीरोगः सुप्रसन्नमनाश्च भवति ॥ ६० ॥ वातातपविद्युत्प्रभापादपलताशून्यागारनिम्नस्थानगृहच्छायादिभ्यो दुर्ग्रहोपसर्गतश्च बालं रक्षेत् ॥ ६१ ॥**

ऐसे पूर्वोक्त वरताव करनेसे बालक अरुद्धचित्त रहकर दिन प्रति दिन वृद्धिको प्राप्त होताहै तथा सत्त्वसंपन्न निरोगी और प्रसन्नचित्त रहताहै ॥ ६० ॥ तथा बालकको तीक्ष्ण पवन, धूप, बिजलीके चमके, वृक्ष, बेल, शून्ये स्थान, नीचे स्थान ( गढे आदि ) और गृहछाया ( दीवालोंकी पडछाँही ) इनसे रक्षा करे अर्थात् इनसे बचाये रक्खे तथा खोटे ग्रहोंके घात और उपसर्गों ( उपद्रवों ) से भी बचाये रक्खे ॥ ६१ ॥

**नाशुचौ विसृजेद्बालं नाकाशे विषमे न च ॥**
**नोष्ममारुतवर्षेषु रजोधूमोदकेषु च ॥ ६२ ॥**

बालकको अशुद्ध जगह ( पाखाने मोरी आदिके पास)में नहीं छोडे, तथा ऊपर खुली छतोंपरभी न छोडे, तथा जहां ऊंची नीची जगह हो वहांभी न छोडे, तथा गरम हवा ( लूह ) अथवा गरम हवा तथा वरसते मेहमें, धूल उडतेमें और तालाव, नदी आदिके पासभी नहीं जानेदेवे ॥ ६२ ॥

**क्षीरसात्म्यतया क्षीरमाजं गव्यमथापि वा ॥**
**दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्बालानां वीक्ष्य मात्रया ॥ ६३ ॥**

बालकोंको दूधही सानुकूल होता है इससे यदि दूध पिलानेवालीके स्तनोंमें तृप्तिके योग्य दूध न हो तो बकरी अथवा गौका दूध जो उचित हो मात्राके अनुसार बालकोंको पिलाना चाहिये ॥ ६३ ॥

( श्लो०६३ ) आस्तन्यपर्याप्तेरिति—यावत् स्तन्यस्य पर्याप्तिर्भवति । अथवा यावत् स्तन्यपानस्य योग्यता स्यात् ( टी० नि० सं० ) ॥

अन्नप्राशन।

**षण्मासं चैनमन्नं प्राशयेल्लघु हितं च। नित्यमवरोधरतश्च स्यात्कृत-रक्ष उपसर्गभयात्। प्रयत्नतश्च ग्रहोपसर्गेभ्यो रक्ष्या बाला भवंतिद४॥**

छठे महीनेमें बालकको अन्नप्राशन करावे जो अन्न बालकको दे वह हलका, पतला और हित होना चाहिये तथा सदैव बालकके पास कोई न कोई मनुष्य रहना चाहिये तथा उपसर्ग ( उपद्रवों ) के भयसे सदा रक्षित रखना चाहिये क्योंकि बालक यत्नपूर्वक ग्रह और उपद्रवोंसे रक्षा करने योग्य होते हैं ॥ ६४ ॥

बालग्रहपीडितके सामान्य लक्षण।

**अथ कुमार उद्विजते त्र्यस्यति रोदिति नष्टसंज्ञो भवति नखदश-नैर्धात्रीमात्मानं च परिणुदति दंतान् खादति कूजति जृंभते भ्रुवौ विक्षिपत्यूर्ध्वं निरीक्षते फेनमुद्वमति संदष्टौष्ठः क्रूरो भिन्नाम-वर्चा दीनार्तस्वरो निशि जागर्ति दुर्बलो म्लानांगो मत्स्यच्छुछुंदरि-मत्कुणगंधो यथा पुरा धात्र्याः स्तन्यमभिलषति तथा नाभिलषती-ति सामान्येन ग्रहोपसृष्टलक्षणमुक्तं विस्तरेणोत्तरे वक्ष्यामः ॥६५॥**

जब बालकको बालग्रहों ( पूतना आदि ) की छायाजनित पीडा होती है तो उसके सामान्यतासे ये लक्षण होते है जैसे-बालक उदास रहता हो, भयभीतसा रहता हो, अधिक रोया करता हो, कभी नष्टसंज्ञ ( गाफिल ) हो जाता हो, अपने देह अथवा दूध पिलानेवालीको नखों या दाँतोंसे नोचता हो, दांत चबाता हो, पीडासे दुःशब्द करता हो, जमाही जादा लेता हो, भ्रुकुटी टेढी रखता हो, ऊपरको देखता हो, मुँहसे झाग आता हो, होठ काटता हो, कठोर होजाता हो, मल और आमके फटे दस्त आते हों, दीन दुःखीकेसी वाणी हो, रातको जागता हो, दुबला और ढीला शरीर हो जाता हो, मछली, छछूंदर और खटमल जैसी गंध आती हो, पहलेके समान दूध न पीता हो ये सामान्यतासे बालग्रहोंसे पीडितके लक्षण कहे हैं, विस्तारसे उत्तरतंत्रमें ( पूतना, अंधपूतना, शकुनी आदि ) सबके लक्षण, यत्न आदि कहेंगे ( देशभाषामें ग्रहजनित पीडाको मसाणियां रोग कहते हैं ) ॥ ६९ ॥

**शक्तिमंतं चैनं ज्ञात्वा यथावर्णं विद्यां ग्राहयेत्। अथास्मै पंचविंशति-वर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत्पित्र्यधर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति ६६**

---

( वा० ६६ ) यथावर्णं ब्राह्मणास्त्रयीं राजन्यो दण्डनीतिं वैश्यो वार्ताम् ( इति डल्हनः ) शूद्रः शिल्पादि-कमित्यन्ये। द्वादशवर्षां पत्नीमित्यत्र मनुः-'त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्' इति ॥

जब बालककी अवस्था छः वर्षकी हो जाय तब इसे शक्तिमान् जानकर ( अर्थात् निर्बल रुग्ण तो नहीं है ऐसा विचार कर ) वर्णके अनुसार ब्राह्मण हो तो ब्रह्मविद्या, क्षत्रिय हो तो धनुर्विद्या, वैश्य हो तो व्यापारविद्या, शूद्र हो तो शिल्प अथवा समयानुकूल जैसी विद्या उनके कुलमें प्रवृत्त हो वैसी विद्या पढाना आरंभ करे। फिर जब पुरुषकी अवस्था २५ पच्चीस वर्षकी हो तब इसका १२ वर्षकी स्त्रीसे विवाह करना चाहिये ऐसा करनेसे पित्र्य ( पितरोंको जो हित हो श्राद्धादिकी योग्यता ) तथा धर्म ( श्रुतिस्मृतिविहित यज्ञादिका अनुष्ठान ) और अर्थ ( द्रव्य ), काम ( मनोरथादि इंद्रियानुकूल सुख ) और प्रजा ( संतान ) इन सबको प्राप्त होता है ॥ ६६॥

### छोटी अवस्थामें गर्भाधानका निषेध।

**ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम्॥ यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ ६७ ॥ जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेंद्रियः ॥ तस्मादत्यंतबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ६८ ॥**

सोलह वर्षकी अवस्थासे छोटी स्त्रीके पच्चीस वर्षकी अवस्थासे छोटा पुरुष गर्भाधान करे तो वह गर्भ कुक्षिहीमें विकारको प्राप्त होकर खंडित होजावे और यदि पूरा होकर बालक जन्मभी लेवे तो दीर्घायु नहीं होवे ( बहुत दिन न जीवे ) और जो जीवे भी तो दुर्बल इंद्रियोंवाला ( कमजोर ) ही रहता है इस कारण अत्यन्त छोटी अवस्थावाली स्त्रीमें गर्भाधान नहीं करना चाहिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

**अतिवृद्धायां दीर्घरोगिण्यामन्येन वा विकारेणोपसृष्टायां गर्भाधानं नैव कुर्वन्ति पुरुषस्याप्येवंविधस्य त एव दोषाः संभवंति ॥६९॥**

अतिवृद्धा ( बूढी ) और दीर्घरोग ( क्षयी, श्वासादि ) से पीडित तथा अन्य विकारसे युक्त स्त्रीमें भी गर्भाधान नहीं करना ( क्योंकि वृद्धाकी सन्तान सत्त्वहीन और रोगवतीकी रोगयुक्त होतीही हैं ) तथा ऐसे अतिवृद्ध और दीर्घरोगी आदि निंद्य पुरुषोंकोभी गर्भाधान करनेका निषेध है क्योंकि उनमेंभी वेही दोष होते हैं॥ ६९॥

### गर्भस्राव आदिकी चिकित्सा।

**तत्र पूर्वोक्तकारणैः पतिष्यति गर्भे गर्भाशयकटीवंक्षणवस्तिशूलानि रक्तदर्शनं च तत्र शीतैः परिषेकावगाहप्रदेहादिभिरुपचरेज्जीवनीयघृतक्षीरपानैश्च ॥ ७० ॥ गर्भस्फुरणे मुहुर्मुहुस्तत्संधारणार्थं क्षीरमुत्पलादिसिद्धं पाययेत् ॥ ७१ ॥**

पूर्वोक्त कारणोंसे यदि गर्भ गिरने लगे तो उसके पूर्व गर्भाशय, कमर, नले, वस्ति इन स्थानोंमें पीडा होने लगती है, और रुधिर आता दिखाई देता है, इस

अवस्थामें शीतल तरडे देना, स्नान करना और लेपका उपचार करे, और जीवनीयगणसे सिद्ध किया दुग्ध पान करावे ॥ ७० ॥ बारबार गर्भ चलायमान होवे तो उसकी स्थितिके लिये उत्पलादिगण ( यह पहले कह चुके हैं ) से सिद्ध किया हुआ दुग्ध पिलावे ॥ ७१ ॥

**प्रस्रंसमाने सदाहपार्श्वपृष्ठशूलासृग्दरानाहमूत्रसंगाः स्थानात्स्थानं चोपक्रामति गर्भे कोष्ठे संरंभस्तत्र स्निग्धशीताः क्रियाः ॥७२॥ वेदनायां महासहाक्षुद्रसहामधुकश्वदंष्ट्राकंटकारिकासिद्धं पयः शर्कराक्षौद्रमिश्रं पाययेत् । मूत्रसंगे दर्भादिसिद्धम् । आनाहे हिंगुसौवर्चललशुनवचासिद्धम् ॥ ७३ ॥**

जब गर्भ झिरने लगे तब दाहयुक्त पँसलियोंमें और पीठमें शूल होता है, और रुधिर बहने लगताहै, अफरा होजाता है और मूत्र बंद होजाता है। जब गर्भ एक स्थानसे छूटकर अन्य स्थानमें चलायमान होने लगता है तब उदरमें अति पीडा होती है इस अवस्थामें चिकनी और शीतल क्रिया करनी चाहिये ॥ ७२ ॥ गर्भाशयमें पीडा हो तो महासहा ( माषपर्णी ), क्षुद्रसहा ( मुद्गपर्णी ), मुलहटी, गोखरू, कटेली इनसे सिद्ध किया हुआ दुग्ध, खांड और शहत मिलाकर पिलावे। यदि मूत्र रुकजावे तो दर्भा आदिका सिद्ध किया दुग्ध ( या जलमें कल्क करके ) पिलावे। यदि अफरा हो तो हींग, सौंचरनमक, लहसन और वच इनका उपयोग करे ॥ ७३ ॥

**अत्यर्थं स्रवति रक्ते कोष्ठागारिकागारमृत्पिंडसमंगाधातकीकुसुमनवमालिकागैरिकसर्जरसरसाञ्जनचूर्णं मधुनावलिह्याद्यथालाभं न्यग्रोधादित्वक्प्रवालकल्कं वा पयसा पाययेदुत्पलादिकल्कं वा । कशेरुशृंगाटकशालूककल्कं वा शृतेन पयसोदुंबरफलौदककन्दकाथेन वा शर्करामधुमधुरेण शालिपिष्टम्। न्यग्रोधादिस्वरसपरिपीतं च वस्त्रावयवं योन्यां धारयेत् ॥ ७४ ॥**

जो रुधिर अत्यन्त बहता हो तो कोष्ठागारिका ( भृंगी नामक परंद कीडा जो मट्टीका घर बनाता है ) उसके घरकी मिट्टी, लज्जालू, धायके फूल, नवमालिका पुष्पवृक्ष, गेरू, राल और रसोत इनका चूर्ण शहतसे चटावे। अथवा न्यग्रोधादि-

( वा० ७२ ) तत्र उभयत्र ॥

( वाक्य ७३ ) महासहा माषपर्णी । क्षुद्रसहा मुद्गपर्णी ( इति श. स्तो. ) ॥ ( वा० ७४ ) कोष्ठागारिकागारमृत्पिंडमिति-कोष्ठागारी कृमिविशेषः तदागारमृत्तिकापिंडम् । औदककंदाः कशेरुशालूकादयः ।

गणमसे जो मिलसकें उनकी छाल और कोमल पत्तोंका कल्क दूधके संग पिलावे अथवा उत्पलादिगण (कमल आदि) का कल्क दूधके संग पिलावे। अथवा कसेरु, सिंघाडे और शालूक (कमलकी जड) इनका कल्क गरम दुग्धके संग पिलावे। अथवा गूलरके फल और जलके कंद इनके काथको खांड, शहतसे मीठा करके पिसे चावलोंके संग पिलावे। अथवा गूलर आदिका रस निचोडकर उसमें कपडेका टुकडा खूब तर करके योनिमें धारण करे ॥ ७४ ॥

अथादृष्टशोणितवेदनायां मधुकदेवदारुपयस्यासिद्धं पयः पाययेत्। तदेवाश्मंतकशतावरीपयस्यासिद्धं विदारिगंधादिसिद्धं वा बृहतीद्वयोत्पलशतावरीसारिवापयस्यामधुकासिद्धं चैवं क्षिप्रमुपक्रांतायां उपावर्तन्ते रुजो गर्भश्चाप्यायते ॥ ७५ ॥

जो रुधिर नहीं दीखे और वेदना होवे तो मुलहटी, देवदारु, पयस्या, अर्कपुष्पी इनसे सिद्ध किये हुए दुग्धको पिलावे। अथवा अश्मंतक, शतावरी और अर्कपुष्पीसे सिद्ध किया दूध पिलावे। अथवा विदारीगंधा आदिसे सिद्ध किया दूध पिलावे। अथवा दोनों कटेहली, कमल, शतावरी, सारिवा, अर्कपुष्पी और मुलहटी इनसे सिद्ध किया हुआ दूध पिलावे इस प्रकार जिसकी शीघ्र चिकित्सा कीजाय उसके रोग निवृत्त होजातेहैं और गर्भ परिपूर्ण होता है ॥ ७५ ॥

व्यवस्थिते च गर्भे गव्येनोदुंबरशलाटुसिद्धेन पयसा भोजयेत् ॥७६॥ अतीते लवणस्नेहवर्ज्याभिर्यवागूभिरुद्दालकादीनां पाचनीयोपसंस्कृताभिरुपक्रमेत यावंतो मासा गर्भस्य तावंत्यहानि॥७७॥

यदि गर्भ ठहर जावे तो गौके दूधमें कच्चे गूलरके फल सिद्ध करके खिलाते रहे ॥ ७६ ॥ और यदि नहीं ठहरे (गिरपड़े) तो लवण और चिकनाईसे वर्जित उद्दालक धान्यकी यवागूको पाचनीय द्रव्योंसे संस्कार करके जितने महीनेका गर्भ गिरे उतने दिनतक पिलावे ॥ ७७ ॥

वस्त्युदरशूलेषु पुराणगुडं दीपनीयसंयुक्तं पाययेदरिष्टं वा ॥ ७८ ॥ वातोपद्रवगृहीतत्वात्स्रोतसां लीयते गर्भः सोतिकालमवातिष्ठमानो

(वा० ७५) अश्मंतकः कोविदारः। पयस्या अर्कपुष्पी ॥ (वा० ७६) व्यवस्थिते स्रावादिविकारानंतरं स्थिते गर्भे। क्षीरपाकविधिं तत्रातरात् ज्ञेयं यथा-"द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्। क्षीरावशेषो कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः॥" (वा० ७७) अतीते पतिते। उद्दालकः अरण्यकोद्रवः (इति डल्हनः)। यवागूदानं लंघनपूर्वं कार्यम्॥ (वा० ७८) दीपनीयसंयुक्तं पंचकोलचूर्णसंयुक्तम्। अरिष्टम् अभयारिष्टादिकम् ॥ (वा० ७९) वातोपद्रवै. शुष्कत्वात्।-

त्थापद्यते तं मृदुना स्नेहादिक्रमेणोपचरेत् । उत्क्रोशरससंसिद्धामनल्पस्नेहां यवागूं पाययेत् माषतिलबिल्वशलाटुसिद्धान् वा कुल्माषान् भक्षयेन्मधुमाध्वीकं चानुपिबेत्सप्तरात्रम् ॥ ७९॥

वस्तिस्थान और पेटमें शूल हो तो पुराने गुडको दीपनीय द्रव्योंसे युक्त करके पिलावे। अथवा अभयादिकका अरिष्ट पिलावे (कोई २ अरिष्ट शब्दका अर्थ मद्यभी करतेहैं) ॥ ७८ ॥ जब गर्भमें स्राव आदि उपद्रव होतेहैं तो वायुके उपद्रवोंसे संगृहीत गर्भ सुकड़कर स्रोतोंमें लय होजाताहै (बढता नहीं दीखता) फिर बहुत समयतक कुक्षिमें पड़ा रहनेसे नष्टभी होजाताहै तब इसे कोमल २ स्नेहादिकसे उपचार करे और उत्क्रोश (कुरर) पक्षीके मांसके रसमें सिद्ध की हुई यवागू जिसमें कम चिकनाई न हो उसे पिलाया करे । तथा उड़द तिल और कच्चे बिल्व इनसे सिद्ध की हुई कुल्माष (वाकली) खिलावे और ऊपरसे सात दिनतक महुएका मद्य पिलावे ॥ ७९ ॥

कालातीतस्थायिनि गर्भे विशेषतः सधान्यमुदूखलं मुशलेनाभिहन्याद्विषमे वा यानासने सेवेत ॥ ८० ॥ वाताभिपन्नः एव शुष्यति गर्भः स मातुः कुक्षिं न पूरयति मंदं स्पंदते च तं बृंहणीयैः पयोभिर्मांसरसैश्चोपक्रमेत् ॥ ८१ ॥

जो प्रसवके दिनोंसे अधिक गर्भ कुक्षिमें रहे अर्थात् दशम मास पूर्ण होनेपरभी प्रसव न हो तो विशेष करके यह यत्न करावे कि ऊखलमें धान्य भरकर मूशलसे गर्भवतीसे कुटवावे । अथवा ऊंट या गाडीकी सवारीमें बिठाकर टहलावे (वृद्धवाग्भट इसको विरुद्ध कहते हैं-देखो टिप्पणी) ॥ ८० ॥ वायुसे व्यापन्न हुआ गर्भ सूख जाता है वह माताकी कुक्षिको पूर्ण नहीं करता है, मंद गतिसे फरकता है उसे बृंहणीय (पुष्टिकारक) दूध, मांसके रस इत्यादिसे उपचार करना चाहिये॥८१॥

शुक्रशोणितं वायुनाभिप्रपन्नमवक्रांतजीवमाध्मापयत्युदरं तत्कदाचित्स्थैर्यात्तर्ष्यीपशांतं नैगमेषापहृतमिति भाषंते तमेव कदाचिदप्रलीयमानं नागोदरमित्याहुस्तत्रापि लीनवत् प्रतीकारः ॥ ८२ ॥

---

—मृदुना अतीक्ष्णेन स्नेहेनोपचरेत् तीक्ष्णस्य गर्भोपघातकरत्वात् उत्क्रोशः कुररभेदः पक्षिविशेषः । अनल्पस्नेहां प्रचुरस्नेहाम् (नि. सं.) ॥

(वा० ८०) मुशलेनो दूखल धान्यचूर्णमाहननीयमिति तत्तु न सम्यक् दानगव्यायासवर्जनं हि गर्भिण्याः सततमुपदिश्यते विशेषतश्च प्रसवकाले प्रचलितसर्वधातुदोषाया. सौकुमार्यात्तासां मुशलव्यायामेनेरितो वायुरंतरं लब्ध्वा प्राणान् हिंस्यात् (अतः शंकाभयतो न कुर्यात्) (इति वृ. वा.) ॥

कभी ऐसाभी होता है कि शुक्र, शोणित वायुसे दूषित हो जाते हैं तो गर्भमें जीव नहीं पड़ता है वह पेटको फुला देता है, कभी यह आपही शांतभी हो जाताहै इसे नैगमेय ग्रह करके अपहृत है ऐसा कहतेहैं, कभी ऐसे प्रलीयमान गर्भको नागोदर भी कहते हैं यहांपरभी लीनके सदृश यत्न करना चाहिये ॥ ८२ ॥

अत ऊर्द्ध्वं मासानुमासिके वक्ष्यामः ।

इसके अगाड़ी प्रतिमासके गर्भविकार अर्थात् गर्भस्रावका यत्न लिखते हैं ॥

मधुकं शाकबीजं च पयस्यासुरदारु च ॥ अश्मंतकस्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ ८३ ॥ वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा ॥ अनंता सारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥ ८४ ॥ बृहत्यौ काश्मरी चापि क्षीरिशुंगास्त्वचो घृतम् ॥ पृश्निपर्णी बला शिग्रुः श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ ८५ ॥ शृंगाटकं बिसं द्राक्षा कशेरुर्मधुकं सिता ॥ ८६ ॥ वत्सैते सप्त योगाः स्युरर्द्धश्लोकसमापनाः ॥ यथासंख्यं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोयुताः ॥ ८७ ॥

प्रथम महीनेमेंही रक्तदर्शन हो तो मुलहटी, शाकवृक्षके बीज, पयस्या, क्षीरकाकोली अथवा अर्कपुष्पी और देवदारु, दूसरे महीनेमें गर्भस्रावकी शंका हो तो अश्मंतक ( अम्लोटक जिसके कोविदारकेसे अम्ल पत्ते होते हैं ), काले तिल, ताम्रवल्ली ( मँजीठ), शतावरी। तथा तीसरे महीनेमें बंदा, अर्कपुष्पी लता, कमल और सारिवा । तथा चौथे महीनेमें अनंता ( अनंतमूल या दूर्वा ), सारिवा, रास्ना, पद्मा ( पद्मचारिणी या भार्ङ्गी ) और मुलहटी। पांचवें महीनेमें दोनों कटेली, खंभारी, क्षीरशुंगा (दूधवाले वृक्ष वटादिकी कोंपल), तज और घृत । छठे महीनेमें पृश्निपर्णी, खरेंटी, सोहंजन, गोखरु और मधुपर्णी । सातवें महीनेमें सिंघाडे, कमलकी नाल, दाख, कसेरु, मुलहटी और मिश्री, इस प्रकार जो आधे आधे श्लोकमें कहे हुए योग हैं उन्हें हे शिष्य ! यथासंख्य मासमासके प्रति गर्भस्रावकी शंकामें दूधके संग पिलावे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

कपित्थबृहतीबिल्वपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः ॥ मूलानि क्षीरसिद्धानि पाययेद्भिषगष्टमे ॥ ८८ ॥ नवमे मधुकानंतापयस्यासारिवाः पिबेत् ॥ क्षीरं शुंठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्याद्दशमे हितम् ॥ ८९ ॥ सक्षीरा वा हिता शुंठी मधुकं सुरदारु च ॥ एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशाम्यति ॥ ९० ॥

आठवें महीनेमें गर्भकी नैरोग्यताके लिये कपित्थ ( कैथ ), बड़ी कटेली, बिल्व, पटोल, ईख और छोटी कटेली इनकी जडको दूधमें सिद्ध करके वैद्य पिलावे ॥ ८८ ॥ नवम मासमें गर्भकी नैरोग्यताके लिये मुलहटी, अनंतमूल, क्षीरकाकोली ( या अर्कपुष्पी ) और सारिवा इनसे सिद्ध दुग्ध पिलावे । तथा दशवें महीनेमें सोंठ और अर्कपुष्पीसे सिद्ध किया दुग्ध पिलावे ॥ ८९ ॥ अथवा सोंठ और मुलहटी तथा देवदारु ये दुग्धके संग पिलाना हित हैं इस प्रकार उपचार करनेसे गर्भ परिपूर्ण होता है और पीडाभी शांत हो जाती है ॥ ९० ॥

**निवृत्तप्रसवायास्तु पुनः षड्भ्यो वर्षेभ्य ऊर्ध्वं प्रसवमानाया नार्याः कुमारोऽल्पायुर्भवति ॥ ९१ ॥**

जिसके पहली संतान होनेसे छह ६ वर्ष उपरांत प्रसव होवे ऐसी स्त्रियोंकी संतान स्वल्पायु होती है ॥ ९१ ॥

**अथ गर्भिणीं व्याध्युत्पत्तावत्यये छर्दयेन्मधुराम्लेनान्नोपहितेनानुलोमयेच्च संशमनीयश्च मृदु विदध्यादन्नपानयोरश्नीयाच्च मृदुवीर्यं मधुरप्रायं गर्भाविरुद्धं च गर्भाविरुद्धाश्च क्रियाः यथायोगं विदधीत मृदुप्रायाः ॥ ९२ ॥ भवंति चात्र–**

यदि गर्भिणी स्त्रीको अत्यंत दारुण व्याधि होजावे और वमनकी अत्यंत आवश्यकता हो तो मधुर अम्ल अन्नके योगसे मृदु वमन करावे और इसी प्रकार अनुलोमन ( कुछ मृदु रेचनादि ) भी करे तो इसी भांति करे तथा संशमन क्रिया करनेकी आवश्यकता हो तो वहभी मृदुही करे और खाने पीनेमें मृदुवीर्य और थोडा मिष्ट तथा गर्भके अनुकूल खानपान रक्खे और यथायोग्य गर्भके अनुकूल और मृदुक्रिया करतेरहे ॥ ९२ ॥ इस विषयमें श्लोक हैं–

**सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा ॥ मत्स्याक्षकः शंखपुष्पी मधुसर्पिः सकांचनम् ॥ ९३ ॥ अर्कपुष्पी मधुघृतं चूर्णितं कनकं**

---

( वाक्य ९१ ) निवृत्तप्रसवा इति–एतेन षड्भ्यो वर्षेभ्य ऊर्ध्वं निवृत्तप्रसवेत्युच्यते तस्याः कुमारोऽल्पायुर्भवति गर्भाशययोन्यादिदोषेण हि निवर्तते प्रसवः ( इति डल्हनः ) ॥

( वा० ९२ ) अत्यये विनाशहेतौ । अत्ययकारिणि व्याधौ मृदुना द्रव्येण वमनादि कार्यमिति । अनुलोमयेच्च इति–मधुराम्लेनान्नोपहितेनेति संबंधः ॥ ( श्लो० ९३ ) सुवर्णचूर्णं सुकृतमित्यनेन सारितं प्रतीयते । मत्स्याक्षकः ब्राह्मी अन्ये तु रक्तपुष्पमानूपं मत्स्याक्षकमाहुः ॥

वचां ॥ हेमचूर्णानि कैटर्यः श्वेता दूर्वा घृतं मधु ॥९४॥ चत्वारोऽभिहिताः प्राशाः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि ॥ कुमाराणां वपुर्मेधाबलबुद्धिविवर्द्धनाः ॥ ९५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

पहिला योग सुवर्णका चूर्ण ( मृगांक ), कूट, शहत, घृत और वच है । दूसरा योग मत्स्याक्ष ( मछेछी ), शंखाहुली, शहत, घृत और सुवर्ण है ॥ ९३ ॥ तीसरा योग अर्कपुष्पी, शहत, घृत सुवर्णचूर्ण और वच है । चौथा योग सुवर्णचूर्ण, कैटर्य ( पूतिकरंज ), सुपेद दूब, घृत और शहत है ॥ ९४ ॥ ये आधे आधे श्लोकमें चार योग कहे हैं इनमेंसे किसी एकको प्राशन कराना ( चटाना ) बालकोंकी देह और धारणा शक्ति तथा बल और बुद्धिको बढाता है ॥ ९५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां राजवैद्य पं० मुरलीधरशर्मविरचितसान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्ट-भाषाटीकायां शारीरस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

शैलाननाधीशसमाश्रितेन वैद्येन नाम्ना मुरलीधरेण ॥
टीकाकृतौ सुश्रुतसंहितायाः शारीरकं पूर्तिमगाच्छुभाय ॥ १ ॥

त्रिपंचांकेन्दु १९५३ मिते संवत्सरे चैत्रस्यासितपक्षे त्रयोदश्यां समंगलायामिदं सुश्रुतसंहितायाः शारीरकं सान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्टभाषाटीकासहितं समाप्तिमगमत् ॥ शुभमस्तु ॥

॥ समाप्तमिदं शारीरकं स्थानम् ॥ ३ ॥

---

( श्लो०९४ ) कैटर्य. पर्वनिव'( इति डल्हनः ) अन्ये पूतिकरंजमाहुः। निवयसंग्रहे भेषजमात्राज्ञापनार्थं विश्वामित्रोक्त वाक्यमभिदधाति यथा–"विडंगफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम् ॥ एतेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्धितम् ॥ १ ॥ कोलास्थिमात्र क्षीराच्च दद्याद्भैषज्यकोविदः ॥ क्षीरान्नादे कोलमात्रमन्नाद्योदुंबरोपमम्" ॥

---

☞ सुश्रुतसंहिताका शारीरक स्थान समाप्त हुआ इसके अगाडी परिशिष्टरूपमें डाक्टरी और यूनानी मतसे जुदा शारीरक लिखा जाता है तथा शरीरसंबंधी अनेक उपयोगी चित्रभी दिये हैं जिनसे शरीरके भीतरी भागोंका ठीक २ बोध हो सकेगा जिससे आशा है कि इस समयके वैद्य विद्यारसिक सज्जनगण मेरे परिश्रमको सफल मान मुझे कृतार्थ करेंगे तथा इसके प्रकाशक विद्योद्धारक श्रीयुत सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीको भी अनेक धन्यवाद देंगे ॥

निवेदक–
मुरलीधरशर्मा,
टीकाकार.

॥ श्रीः ॥

# डाक्टरीमतसे शारीरक।

## परिशिष्ट भाग १.

प्रगट हो कि, हमारे शास्त्रकारोंने भी शारीरकका अच्छे प्रकार वर्णन किया है परंतु भारतवर्षमें इस समय यूनानी और डाक्टरीका अधिक प्रचार होनेसे बहुधा लोगोंकी तृप्ति उनके मतानुसार विवेचन किये विना नहीं होती यद्यपि हमारे शास्त्रोंमें शारीरककी उत्पत्ति और शल्यक्रियाके उपयोगी मर्मादिका विशेष व्योरा लिखा है तथापि आंतरिक अवयव यकृत्, प्लीहा, वृक्क, फुप्फुस आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन कि अमुक अवयव इस प्रकारका है, यह कार्य करता है इत्यादि बहुत नहीं लिखा किंतु सूचना मात्र थोडासा लिखा है परंतु समयके अनुसार हरेक वातमें संस्कार होताही रहता है अस्तु, यूनानी लोगोंने शारीरककी विवेचनामें बहुत कुछ उन्नति की है और अपने विज्ञानके अनुसार उसमें बहुत बारीकियां निकाली हैं जिनका परिज्ञान इस समयके चिकित्सकोंको अवश्य होना चाहिये यद्यपि इस समय डाक्टरीकी प्रधानता सबसे अधिक है परंतु उसका शारीरक युनानीके शारीरकसे बहुत मिलता जुलता है इसका कारण यही प्रतीत होता है कि ग्रीक अर्थात् यूनानी भाषाके चिकित्साग्रन्थोंका अनुवाद इधर तो अर्बोंने अपनी अरबी भाषामें कर लिया है और उधर इन्हींका अनुवाद लैटिनमें किया गया है पर मूल इस विद्याके दोही हैं या तो भारतके प्राचीन महर्षि वैद्य अत्रि, भरद्वाज, चरक, धन्वंतरि, सुश्रुत आदि या ग्रीक देश यूनानके विद्वान् हकीम, डाक्टर, सुकरात, बकरात, जालीनूस, अरस्तातालीस, लुकमान वगैरह।

कालांतर, मतांतर, देशांतर और प्रतिभांतरसे चाहे १ व्याधिकी औषधें सैकडों, हजारों भिन्न भिन्न रीतिपर हों पर शारीरक अर्थात् अवयवोंका सविस्तर सत्य विज्ञान निस्संदेह सर्वत्र एकसाही होना चाहिये खैर कुछभी हो, हम अपने पाठकोंको अन्यमतीय शारीरकके संक्षिप्त परिज्ञान होनेके लिये उनके मतका सारासार अवश्य लिखना उचित जानते हैं जिनका वैद्योंको विशेष काम पडता है मुख्य उन अवयवोंका संक्षिप्त वर्णन करते है॥

### डाक्टरीमतसे संक्षिप्त शारीरक।

#### शिर- (ब्रेन Brain)

खोपरी यह दो हिस्सोंमें बँटी हुई है १ का नाम " कोरेनियम हे " दूसरेका नाम " फेस "-" अक्सी फीटल बोन" (गुद्दीकी हड्डी) यह टेढी शकलकी हड्डी खोपरीके

नीचले और पीछले हिस्सेमें है इसके नीचले और अगले हिस्सेके छेदको "फोरामिन मैगनम" कहते हैं जो खोपरीको "इस पाईनल कनाल" से मिलाता है। "प्राइटल बोन" ये दाहिनी और बांई दो हड्डियां हैं इनसे खोपरीकी छतका मुकद्दम हिस्सा बनता है। "फ्रांटल बोन" यह खोपरीके सामनेकी दीवार बनाती हैं यह माथेकी हड्डी है। नेत्रगोलकके किनारेका नाम "आरबीटल आरच" है इसके भीतरी तिहाईके सूराखको "फोरमन" कहते हैं। "टिमपोरल बोन्स" अर्थात् कनपटीकी हड्डी इसीमें कानका छिद्र रहता है। "नोजल बोन्स" ( नाककी २ हड्डियां ) ये दोनों मिलकर नाक बनाती हैं। "इथमाइड बोन" यह चलनीकी सकलकी हड्डी है खोपरीके नेत्रमूलके भीतरी भौंके और नाकके गढोंके बनानेमें शामिल है। "सुपीरीयर मगजलरी बोन" ( चेहरेकी हड्डियां ) ये दो हड्डियां मिलकर चेहरेका बडा हिस्सा बनाती हैं और ऊपरके कुल दांतोंको सहारती हैं। और सखंततालू और नेत्रोंके सहन और नाकके सन्निकृष्टका भाग बनाती हैं। "इनफीरियर मेगलज बोन" ( ठोडीकी हड्डी ) यह चेहरेकी सब हड्डियोंसे मोटी है और मजबूत है इसकी दो शाखें हैं इनमें नीचेके दांत लगे हुए हैं 'सैन्स', या 'नेरास' की हड्डियोंके गार जो तंग सूराखोंके वसीलेसे नाकके जोफसे मिलते हैं "मगजिलरी सैन्स" के सूराख बचपनमें छोटे रहते हैं बडे होनेपर बढ जाते हैं बुढापेमें बहुतही चौडे होजाते हैं इसीसे बुढापेमें बलगम बहुत गिरता है।

भीतर दिमागके दो हिस्से हैं १ बडा दिमागका हिस्सा, दूसरा छोटा। दिमागका बडा हिस्सा अगली तरफ होता है और छोटा पिछली तरफ इनमें खाखी रंगकी और सुपेद रतूबत रहती है। "असपाइनल कार्ड" ( तुखा ) इसका आकार घोडेकी दुमकासा है, रंग सुपेद चांदीके तारोंकासा है इसमेंसे सब पट्ठोंकी जडें निकलकर नीचेको जाती हैं यह प्रायः १५ से १८ इंचतक लंबा होता है यह दिमागके पिछले हिस्सेसे मिला हुआ होता है शिरमें बहुतसे हड्डियोंके जोड, बहुतसे परत और बहुतसे पट्ठे, सिरायें, कई विभाग, और कई उभार, कई गढे, कई जगेकी कई प्रकारकी द्रव रतूबत हैं सबका समझना बहुत कठिन है इससे कुछ २ सार संक्षिप्ततासे लिखा गया है॥

## दिमागका अन्य शारीरक अवयवोंसे संबंध।

"सरिबरम" ( दिमागका अगला हिस्सा ) अकल और होश हवाससे संबंध रखता है और इनका मूल है क्योंकि जो अधिक बुद्धिमान् हैं उनका दिमागका यह हिस्सा बडा होता है और उनके दिमागके भीतरी गढे गहरे होते हैं, और उनकी "कान वालोशंस" ( दिमागके भीतरी उभारे ) बडी होती हैं॥

सरिवरमके जरब पहुँचनेसे, दब जानेसे या इसमें बीमारी होनेसे प्रथम होश हवासमें फरक आता है " सरिवरममें" चोट लगनेसे एक या जादा दिमागी कुवतें नष्ट होजाती हैं दिमागकी खाखी रंगकी वस्तुके रोगग्रस्त होनेसे किसी प्रकारका उन्माद होताहै ।

दिमागको एक दोहरा अवयव समझो जो भाग शरीरके छाती पेट आदिसे संबंध रखते हैं दिमागमेंभी पासही पास इकट्ठे रहते हैं और जो अलेहदा हिस्सोंसे संबंध रखते हैं जैसे हाथ पांव तो वे दिमागमेंभी हरतरफ जुदेही रहते हैं ।

बाईं तरफकी तीसरी " कानवालोशन " के पिछले भागमें बोलनेकी शक्ति रहतीहै इसमें बीमारी हो तो बोलनेमें तकलीफ हो और दाहिनी रुखका 'हमेप्लीजिया' ( पट्ठोंमें रोग ) होगा अगर उसमें दोनों तरफ खराबी होजावे तो बोलनेका फालिज होवे सरिवरममें एक हलका संचालन शक्तिका मूल है उसमें खराबी होनेसे फालिज होता है इस हलकेमें तीन "फ्रांटिल" कानवो लोशंसकी जड़ें हैं "ऐसिंडिंग फ्रांटिल" कानवालोशनका ऊपरी तिहाई हिस्सा बाजूसे संबंध रखता है और इसका ऊपरी पैराइटल कानवालोशन हाथ और कब्जेसे तथा " पोस्टीरो पैराइटल लाब्यूल " पिंडली और पाँवसे "ऐसिंडिंग फ्रांटिल" की बीचकी तिहाई और तीसरी "फ्रांटिल" की जड़ चेहरेके पट्ठोंसे "ऐसिंडिंग फ्रांटिल" की नीचली तिहाई मुँह और जुबानसे तथा ऊपरी " फ्रांटिल कानवालोशन " और दूसरे फ्रांटिल कानवालोशनकी पिछली तिहाई शिर और नेत्रोंसे संबंध रखती हैं इससे उक्त जगहोंमें खराबी होनेसे उनके संबंधी अवयवोंकी संचालनशक्ति नष्ट होजाती है, जानना चाहिये कि दिमागके भीतरी भागकी अगली दो तिहाई शरीरकी संचालनशक्तिसे संबंध रखतीहैं और दिमागके भीतरी हिस्सेकी पिछली एक तिहाई स्पर्शशक्तिसे संबंध रखतीहै और पिछले भागका प्रभाव हाथकी अपेक्षा टांगोंपर विशेष हुआ करता है । ऊपर जो संचालनशक्तिका मूल अगली दो तिहाई और स्पर्शशक्तिका मूल पिछली तिहाई कहा उनमें विकार होनेसे दूसरी तरफके अवयवोंकी संचालनशक्ति तथा स्पर्शशक्ति नष्ट होती हैं।

" मिडल्ला आंबलांगेटा" यह दिमागके अगले भाग और नुखाके बीचमें है इससे बडे २ काम मुतल्लिक हैं इससे इसमें विकार होना जादा हानिकारक है नुखाके ऊपरीभाग और मिड़ल्लासे श्वासका संबंध पाया जाता है यदि यह विकृत हो जावे या नष्ट हो जावे तो तत्काल श्वास बंद होकर मृत्यु हो जावे दिलका स्फायनाकुंचनसे संबंध रखनेवालेभी दो स्थान हैं एक दिलकी गतिको कम करता है दूसरा गतिको तेज करता है ।

सरिवरमका वजन अनुमान मर्दोंके ४४ औंस होता है और स्त्रियोंके ३९ औंस तथा सरिवलम ( क्षुद्र मस्तिष्क ) का वजन अनुमान मर्दोंमें ५ औंस ४ ड्राम और स्त्रियोंमें ४ औंस १२ ड्राम होता है तथा " पांस" और "मिडल्ला आवलांगेटा" भागका वजन अनुमान पुरुषोंमें १५ ड्राम और स्त्रियोंमें पौने सोलह ड्राम होता-है दिमागमें खाखी रंगकी जिसे १. ३४ और सुपेद रंगकी जिन्स १. ४० तथा मनुष्योंके दिमागकी तुलाका वजन अनुमान १ औंससे पौने दो औंसतक होता है हाथीके दिमागका वजन अनुमान ८ से १० पोंडतक पाया गया है और बैलके दिमागका वजन अनुमान ५ पोंडके होता है।

## एलीमिंटरी कनाल ( आहार नलका ) Alimentary Canal

यह एक लंबी नली है जो मुंहसे शुरू होकर "म्यूटीरज " में खतम होती है खाया हुआ भोजन इसीमें जाता है, इसीमें पकता है, इसीसे मल होकर निकल जाता-है, भोजनका परिपाक इसीपर मुनहसर है या उन गद्रूदोंपर जिसकी रतूबत इस नालीमें गिरती है मरी ( कंठनलका ) और मेदा ( आमाशय ) तथा अम्आ ( अंतडियां ) ये सब इसीके भाग हैं यह सब ३० फुटके अनुमान लंबी होती हैं।

## इसाफेगस ( मरी या कंठनलका ) Œsophagus.

कंठनलकाको अंग्रेजीमें " इसाफेगस " कहते हैं यह गरदनके पांचवें मोहरेके मुकाबिल नरम तालूके नीचेसे शुरू होती है और छातीके बीचकी हड्डी ( कौडी ) के पास मेदेके मुँहसे जा मिली है इसकी लंबाई ९। १० इंच है यह एलीमिंटरी कनालके भागोंमेंसे तंग भाग है यह ठीक सीधी नीचेको नहीं उतरती है किंतु इसमें थोडे २ तीन खम पाये जाते हैं इसके आसपास " न्यूमोगास्टिक " आसाब ( पट्ठे ) फैले रहते हैं और नीचे सिरेके पास " प्लूरा " है भोजन इसी; नलीमें होकर मेदेमें जाता है।

## इस्टमक ( मेदा या आमाशय ) Stomach

आमाशय अर्थात् मेदेको अंग्रेजीमें " इस्टमक" कहते हैं यह इसाफेगस अर्थात् कंठनलकासे नीचे "एलीमेंटरी कनाल"का चौडा भाग है भोजन इसमें कुछ ठहरता-है और इस जगेकी रतूबत " गैस्ट्रिकजूस " से मिलकर पतला द्रव पदार्थ बन जाता है यह मेदा "ट्रांसवर्स कोलन" अंतडीसे ऊपर पेटकी अगली दीवारके पीछे जिगरसे नीचे है आकारमें सुराहीके समान नीचे चौडा है इसका बायाँ शिरा बडा और नीचेको झुका हुआ है मेदेकी लंबाई अनुमान १०।१२इंच है और चौडाई साडे चार इंच है खाली मेदेका वजन अनुमान ४॥ औंसके होता है जिस झिल्लीसे यह मेदा है वह चार परतवाली है सबसे भीतरी परत म्यूकसकोट (एक नरम हमवार-

मोटी झिल्ली) है यह झिल्ली बुढापेमें पतली पड़जाती है जब मेदा खाली होता है इसमें शिकन (सलवटें) पडजाती हैं मेदेके दो मुँह होते हैं एक ऊपरको जिसमें कंठनलका खुलती है और भोजन मेदेमें आता है। दूसरा दाहिनी तरफ नीचेको जिसके राहसे भोजन अध पकासा अंतडियोंमें जाता है।

इसमालइंटीस्टाइंस (पतली अँतडियां) Small Intestines

ये पतली पेंचीदा अंतडियां हैं मेदेके नीचले मुँहसे शुरू होकर पेटके बीचले भागमें रहती हैं इनकी लंबाई अनुमान २० फुटकी है ये लच्छासा बनाये हुए हैं यह लच्छा एक बडी मोटी आंतसे घिरा है यह लच्छोंकी आंतें तीन भागमें बँटी हैं जिसमें सबसे ऊपरी भागको जो १०। १२ इंच है डिओडिमन कहते हैं बाकीका दो बटे पांच भाग $\frac{2}{5}$ जिज्यूनम कहलाता है और नीचेवाले तीन बटे पांच भाग $\frac{3}{5}$ को एलीअम कहते हैं।

लार्ज इंटिस्टाइंस (मोटी आंतें) Largs Intestines

ये एलीअमसे शुरू होती हैं इसके बडे तीन भाग हैं प्रथम "सीकम" दूसरा "कोलन" तीसरा "रिकटम" इसकी मुटाई २॥ इंचसे १॥ इंचतक पाई जाती-है इसमें लंबे देशोंके तीन बंधसे पाये जाते हैं तथा बहुतसे फुलाव और तंगियां हैं जिससे ऐसा मालूम होता है जैसे कई थैलियाँ जुड़ी हों।

"सीकम" यह एलीअमसे नीचे है और सबसे चौडा भाग है जिसकी चोडाई २॥ इंच है और पेटकी अगली दीवारके पीछे रहता है इसके नीचले पीछेके सिरेसे १ तंग गोल लंबी आंतडी निकली है जिसे "एपिडक्स सीसाई" कहते हैं यह छोटी अंगुलीसा गोल है और तीनसे छः इंचतक लंबा होता है खास सीकम और एसिडिंग कोलनके मिलापपर एक किवाडीसी है जो मलको फिर अंदरकी तरफ (एलीअमकी तरफ) नहीं जाने देती।

"एसिंडिंग कोलन" यह दाहिनी तरफ है खास सीकमसे शुरू होकर सीधी ऊपरको चढकर जिगरके सिरेतक पहुँचती है फिर सामने और बाई तरफ दाहिने गुरदेके पास झुक जाती है यह खास सीकमसे कुछ पतली है पर "ट्रांसवर्सकोलन" से चौडी है इसके सामने एलिअमके लच्छे हैं।

"ट्रांसवर्स कोलन" यह भाग दाहिने गुरदेके पाससे शुरू है पेटकी पिछली दीवारके पास आड़ा रहता है बायें गुरदेतक महराबसा बनकर आता है इसके ऊपर जिगरका नीचला शिरा गालब्लाडर मेदा और तिल्लीका नीचला हिस्सा रहता है इसके नीचे एलिआमके पेंचदार लच्छे हैं।

"डिसेंडिंग कोलन" यह ट्रांसवर्सकोलनसे शुरू होकर यकायक नीचेको झुक आती है यह बाई तरफ रहती है।

"रिकटम" रोदामुस्तकीम यह सबसे नीचेका भाग है यह पहले बाईं तरफसे जरा दाहिनी तरफ झुककर टेढा होकर फिर अनुमान सीधासा नीचे उतर आताहै और गुदातक पहुँचता है इसमेंभी थोडे२तीन खम पाये जातेहैं इसके बीचके खमके मुकाबिल मर्दोंके मसाना और स्त्रियोंके "यूट्रस" योनि गर्भाशयद्वार होता है इसमें मल भर जाता है तब दस्तकी हाजत होती है ॥

## श्वाससंबंधी अवयव लेरिंक्स ( हंजरा )

यह श्वासके रास्तोंका ऊपरी भाग है इसकी लंबाई १॥ इंच और चौडाई १ इंच है मुँह और नाकसे इसमें हवा पहुँचती है और आवाज (शब्द) पैदा करती है यह गरदनके ऊपरी भागके अगली तरफ है. यह नरम तालूके नीचेसे आहार नलकासे पृथक् होतीहै इसके नीचे एक और खम है जो इससे कुछ चौडा है इसके नीचे कई कुर्रियां सीधी खमदार हैं और कई गदुद हैं इसके नीचे ट्रेकिया है।

ट्रेकिया यह दोनों फेफडोंमें हवा जानेका रास्ता है और लेरिंक्स ( हन्जरे ) से शुरू होकर दो भागोंमें दाहिने और बाँयें वरांकसमें बटजाता है इसकी लंबाई साढे चार इंच और चौडाई पौन इंच है इसके पिछली तरफ इसाफेगस आहारनलका अर्थात् मरी अलेहदा है।

## लंग्स ( फेफडे Langs )

फेफडे दो हैं और दिल ( हृत्कमल) के और बडे अरूकके दाहिनी और बाईं तरफ सीनेके अंदर रहते हैं और ऊपरसे दोनों जुडे हुए हैं पर नीचे जुदे जुदे होगयेहैं ऊपरको जहां ये जुडे हैं वहां "प्लूरा" नामक दो बंधसीरस ( थैलियां ) सीनेके दाहिनी और बांईं पहलुओंके अंदर रहतीहैं हरेक फेफडा सूरतमें मक्खीके छतकी तरहका ऊपरसे चौडा नीचे तंग होता गयाहै इसका वजन अनुमान ३० से ४८ औंसतक पाया जाताहै दोनों फेफडोंमेंसे दाहिना कुछ बडा होताहै अगर दोनों ४२ औंस हों तो दाहिना २२ और बांयां २० औंस समझिये फेफडे स्पंज जैसे फोफलेहैं इनमें फैलाव सुकडाव बहुत है बचपनमें फेफडे हलके सुर्ख गुलाबी खूनके झागसे होतेहै पर ज्यों २ उमर बढतीहै इनमें स्याही आती जाती है श्वासकी हवा इनमें दाखिल होकर दिलको लताफत पहुंचातीहै और जब वह अंदरकी हवा गरम और गलीज होजातीहै तब बाहर निकलनेपर तगाजा करतीहै और उसकी जगह और ताजी हवाकी जरूरत पडतीहै इसी प्रकार वायुका आना और जाना लगातार बना रहताहै और यही जिंदगीका मूल है।

## ( हार्ट दिल ) Heart.

यह दोनों फेफडोंके बीच सीनेमें रहता है " प्रीकाडियम " नामक गशा ( झिल्ली ) से ढका हुआ है यह झिल्ली दिलसे २। २॥ इंचके फासले तक दिलके बंड अरूकको ढके हुए है दिल सीनेके बीच जरा बांई तरफ झुकाहुआ यूं रहता है कि बांई तरफ ३ [इंच और दाहिनी तरफ १॥ इंच । दिलके गिरद वहुतसी नालियां हैं जिनमें इसके परवरश करनेवाले आसाव ( पट्ठे ) आदि हैं । इनके सिवाय और वहुत शिरायें इसमें शामिल होती हैं दिलके " विंट्रीकल " में दो सुराख पाये जाते है और इनपर किवाडियांसी पाई जाती हैं ये किवाडियां दम वदम खुलती मिचती रहती हैं इनके राह दिलमें खून आता जाता है जिगरसे ताजा खून दिलमें पहुँचकर और अवयवोंमें यहांहीसे पहुँचता है दिल एक लंबी लकीरसे दो भागमें वटा है एक दाहिना भाग दूसरा बायां फिर एक आडी लकीरसे इसके दो हिस्से हुए हैं इनमेंसे ऊपरवालेको " आरीकल " और नीचेवाले खानेको " विंट्रीकल " कहते हैं । दिलका वेस खूनी अरूकसे जुडा हुआ है बाकी "प्रीका-डियम " में लटका हुआसा है ।

स्वस्थ मनुष्यका दिल ५ इंच लंबा और ३॥ साढे तीन इंच चौड़ा और ढाई इंच मोटा होता है । वजन अनुमान १० औंस और स्त्रीका ९ औंस होता है यह शरीरके १६० वें भागके समान होता है " रायट आरीक्युलो विंट्री क्यूलर आरी फस " यह सूराख " सटरनम " के पीछे उस लकीरपर है जोकि चौथी पस-लियोंकी कुरियों और सटरनमके जोडके नीचले किनारेपर खिचती है पलमोनरी शिरयानकी किवाडियां सटरनमके पास दूसरी और तीसरी बांई पसलियोंकी कुरि-योंके मध्यके पीछे हैं-" आयार्टा " की किवाडियां सबरनम और उसके बांयें किनारेके पीछे तीसरी पसलीकी कुरींको मिलायके मुकाबिल हैं । पलमोनरी सूराख दिलके कुल दरवाजोंसे ऊँचा और सामने है-" आयार्टिक " सूराख पलमोनरी शिरयानके सूराखके पीछे और जरा नीचे है ।

## लिवर ( जिगर ) Liver.

इसमें " वाइल " ( पित्त ) पैदा होता है और यह खनको, बनाता और साफ करता है जिगरकी लंबाई दाहिनेसे बांयें सिरेतक १० या १२ इंच और चौडाई पिछले किनारेसे अगलेतक ६ । ७ इंच और मुटाई अनुमान साढे तीन इंचके होती-है इसका घनात्मक अनुमान कुल १०० इंच घनके होता है वजन ५० से ६० औंस तक पाया जाता है यह वास्तवमें कुल देहके ३६ छत्तीसवें भागके बरावर होता है यह ठोस है इसका रंग भूरा सुरखी लिये होता है इसका ऊपरला भाग चिकना और लजलजासा होता है और " प्रोटोनियम " झिल्लीसे ढका हुआ है " फालसी

फारस " नामक झिल्लीसे इसके दो विभाग जुडे हुए होते हैं नीचेकी तरफ इसमें ५ " लीव " और फिशर ( अंकुर ) होते हैं जिगरका स्थान मेदेके ऊपर दाहिनी तरफ छठी सातवीं पँसलीके मुकाबिल है जब मनुष्य सीधा बैठता या खडा होता-है तो जिगरका कुछ भाग पँसलियोंसे नीचे भी आजाता है पर लेटनेके समय अनुमान एक इंच ऊपरही रहता है।

## गाल ब्लेडर ( पित्ता मरारा ) Gall bladder.

यह नासपाती नुमा थैली तीन चार इंच लंबी और डेढ इंच चौडी होती है इसमें आठसे १२ ड्रामतक सफरा जमा रहता है यह जिगरके दाहिने लोथडेके नीचेवाली जगहपर तिरछी रहती है इसके नीचेकी भूमिपर " प्रोटोनियम " टका हुआ है जिस जगह गालब्लेडर रहता है उस गढेको " फास्सा सिसटिक फिली " कहते हैं इसका स्थान दशवीं दाहिनी पँसलीकी नोकके मुकाबिलसे शुरू होता है और पेटकी भीतरी त्वचासे आ मिलता है इसके नीचे " ट्रांसवर्स कोलन " नामक आंत है इसकी गरदन दुहरा खम खाकर नीचेको झुककर " सिसटिक डैक्ट " में मिलती है यह " सिसटिक डैक्ट " अनुमान डेढ इंच लम्बी है नीचे बांई तरफ जाकर " हियाटिक डैक्ट " से मिलकर " कामन बाइल डैक्ट " बनाता है यह तीन लाइन चौडा और तीन इंच लंबा है यही सफरा ( पित्त ) को " डियोडा-नम " में पहुँचाता है और जब आंतोंमें सफराकी जरूरत नही होती तब सफरा " हियाटक डैक्ट " से " सिसटिक डैक्ट " में जाकर " गाल ब्लेडर " में पहुँच कर वहांही जमा रहता है और जब हाजमेके समय आंतोंमें सफरा ( पित्त ) की जरूरत होती है तो " सिसटिक डैक्ट " की राहसे निकलकर वहां दाखिल होताहै।

## स्पिलीन ( तिल्ली ) Spleen.

यह नरम लजलजा अवयव है इसका रंग नीला बैंगनी खाखीसा है यह खूनके दुरुस्त करने और " कारपसकिलस " के बनानेमें काम आती है इसका आकार अंडाकृति है यह पेटमें बाईं तरफ मेदेके पास खडीसी रहती है स्थान इसका नवीं, दशवीं, ग्यारहवी पँसलियोंके मुकाबिल है इसका प्रमाण सबके एकसा नही होता पर सामान्यतः पांच इंच लम्बी, चार इंच चौडी और डेढ इंच मोटी होती है वजन पांचसे सात औंसतक होता है पर किसी किसीके इतनी बढजाती है कि १८ । २० पौंडतक होजाती है।

## पॅन्क्रेआस ( लबलबा ) Pancreas

यह एक पतली लंबी चिरदी गदूद पेटमें मेदेके पीछे पहले लंबरके सोहरेके मुकाबिल आडी पडी रहती है इसका बायां तंग सिरा तिल्लीसे मिलाहुआ रहता है

इसकी लंबाई छहसे ८ इंचतक होती है और चौडाई डेढ इंच तथा मुटाई एक इंचके अनुमान होती है और वजन इसका ढाईसे साढे तीन औंसतक होता है इसमें जो रतूबत होती है उसे " पेनाकिरयाटक जूस " कहते हैं यह रतूबत साफ होती है और इसमें खारकी तजाबी कैफियत होतीहै यह हाजमेको ठीक और तेज करतीहै ॥

यूरेनरी आरगेंस ( मूत्रसंबंधी अवयव ) किडनी ( गुरदे ) Kidney.

गुरदोंमे पेशाब पैदा होताहै और "यूरेटर" की राह मसानेमें आकर जमा रहताहै और उसमें 'यूरथरा' के जरिये निकलताहै ॥

गुरदे दो हैं एक दाहिनी तरफ दूसरा बांई तरफ है हरएक " वर्टिवलकालम " के एक तरफ " प्रोटोनियम " के पीछे पेटमें गहरा रहताहै यद्यपि गुरदोंका प्रमाण सबके बराबर नही होता परंतु अनुमानसे हरेक गुरदा, चार इंच लंबा, ढाई इंच चौड़ा और सवा डेढ इंच मोटा होताहै। बांया गुरदा जरा लंबा और पतला होताहै और दाहिना जरा छोटा और चौडा होताहै। हरेक गुरदेका वजन मर्दोंके साढे चार औंसके अनुमान होताहै और स्त्रियोंके इससे कुछ कम। दाहिना गुरदा जिगरकी नजदीकीके सबब बाँयेसे कुछेक नीचे है गुरदोंका रंग गहरा सुरख होताहै और आकार जरा उभरा हुवासा चिपटाहै दाहिने तरफ गुरदेके सामने "डिओडियम" और " एसिंडिगकोलन " है और बाँई तरफके गुरदेके पास "डीसिंडिगकोलन" है और दाहिने गुरदेका ऊपरी अगला भाग जिगरके नीचले भागके निकट है और बाँयेका ऊपरी अगला हिस्सा तिल्लीके पास है ॥

यूरेटर हालवां ( मूत्रकी २ नालियां )

ये दो नालियां चौदहसे सोलह इंचतक लंबी और परकी कलमजैसी मोटी होतीहैं ये गुरदोंसे मूत्रको मसानेमें पहुँचातीहैं और तिरछे तौरसे मसानेकी दिवारोंमें थोडी दूर जाकर उसके पिछले और नीचले हिस्सेमें खुलतीहैं ॥

यूरेनरी ब्लैडर ( मसाना ) Bladder.

यह एक खोखली झिल्लीकी थैलीसी है इसके अंदर मूत्र जमा होताहै यह बचपनमें मालूम होताहै और पेटमें नाफके नीचे रहताहै। मसानेकी शकल खाली तथा भरे होने आदिमें एकसी नही होती यह खाली तिकोनासा होताहै और जब मूत्रसे भरताहै तो गोल होजाताहै और जब खूब जादा भर जाताहै तब अंडेकी सूरत होजाताहै और तन जाताहै और पेटमें ऊपरको चढताहै और इसका बडा सिरा स्त्रियोंके "वेजाइना" और मरदोंके " रेकटम " अंतडोपर ठहरताहै। सामान्यतासे मूत्रका अनुमान २४ घंटेमें ४० से ५० औंसतक होताहै पर गरमीकी ऋतुमें

पसीना अधिक आनेसे मूत्र कुछ कम होताहै। मूत्रके रासायनिक भाग यूं हैं कि एक हजारमें ९३३ भाग पानी और ६७ भाग सकील चीजें, और उन सकील चीजोंके सौ १०० भागोंमेंसे यूरिया ४९·६८ यूरकएसिड १·६१ एमो नायाकल साल्टस ( एक नमक ) और कलाएइड सोडियमसज्जी .२८·९५ एलके लायन सलफेट ११·५८ एलकेलायन पासफेट ५.९५ मासफेटलाइम ( चूना ) और मेगनेशिया १·५० भाग होतेहैं ।

## पैनिस ( लिंग ) और मूत्रनलका यूरेथरा Pncis.

सूत्रनाली ( यूरेथरा ) यह मसानेकी गरदनसे शुरू होकर लिंगके सिरेतक पहुँचतीहै इसकी लंबाई अनुमान साढे आठ इंचके होतीहै मोकेके अनुसार इसके तीन भाग हैं १ " प्रासटेटिक " यह हिस्सा इस नालीका सबसे चौडा भाग है यह सवा इंच लंबा और चार पांच लकीरके बराबर चौडा है इसमें एक थोडासा निचाव है जिसे " प्रासटेटिक साइस " कहतेहैं जिसमें " परासटेटिकडेकटस " के बहुतसे छेद खुलतेहैं । २ भाग "पोरशन" यह हिस्सा "प्रासटेटिक" से पीछे स्पंजी पोरशनके बीचमें है इसकी अगली दीवार पौन इंच और पिछली आध इंच लंबी है यह हिस्सा कुछ यूरेथरासे तंग है इसकी गोलाई सिरफ आध इंचके लगभग है । ३ भाग " स्पंजी पोरशन " यह भाग अनुमान ६ इंच लंबा है यूरेथराका मुँह एक खडा फटाव है, २॥ से तीन लकीर चौडा और स्पंजी हिस्सेका सबसे तंग मुकाम है॥

## टिसटीकिल्स ( अंडकोश खुसिया ) Testicles.

दोनों टिसटीकिल्स ( अंड ) " इस करोटम " थैलियोंमें तिरछेसे लटकते हैं बायाँ दाहिनेकी अपेक्षा कुछ २ नीचा होताहै इनकी सूरत अंडेकीसी है हरेक अनुमान डेढ इंच लंबा और चौडा सवा इंच और मोटा १इंच होताहै वजन अनुमान हरेकका पौन औंससे १ औंसतक होताहै खुसियेका गदूद नरम जरद सुरखी मायल है बहुतसे छोटे २ गावदुम लोथडोंसे बना है ये लोथडे संख्यामें ढाई सौसे चारसौ तक होतेहैं इनमें मनी पैदा होतीहै और याद रहे कि खुसिये स्त्रियोंके भी होतेहैं पर अंदरको होते हैं ॥

## यूटरस ( गर्भाशय रहम ) Uteurs.

यह एक खोखला नासपातीनुमा अवयव है यह सामनेसे पीछेको चपटा है इसके आगे मसाना और पीछे "रेकटम" अंतडी है हमल ( गर्भ ) के समय यह पेटके तरफ चढ जाताहै इसके दो हिस्से हैं जिसमें पिछले चौडेको " बोडी " अगले तंग हिस्सेको इसकी गरदन कहते हैं हमलके विना जवान औरतका यूटरस अनुमान ३ इंच लंबा २ इंच चौडा और १ इंच मोटा होताहै यह एक झिल्लीसे बनाहै जिसमें फैलने और सुकडनेकी शक्ति है ।

## अस्थियोंकी संख्या ।

यद्यपि डाक्टरी मतसे मनुष्योंकी भिन्नभिन्न अवस्थाओंमें अस्थियोंकी संख्या भिन्नभिन्न होतीहै आरंभमें कई हड्डियां भिन्न २ होतीहैं और पीछे जुडकर एक होजातीहै परंतु मध्यम अवस्थामें हड्डियोंकी संख्या इस प्रकार है "इस्पाइनेलकालिम" ( पृष्ठवंश ) में २४ हड्डियां मोहरेहैं एक "सेक्रम" ( वंशाधः ) और एक "काकसिक्स" ( उससेभी नीचे ) कुल २६ ये हुई और खोपरीमें ८ और चेहरेमें १४ हड्डियाँ हैं पँसलियां बारह जोडे अर्थात् २४ हैं और एक "सटरनम" ( छातीकी हड्डी ) एक "हाय आयडबोन" ये कुल २६ हुई और "सुपिरीयर एक्स ट्रीमिटीज", ( दोनों हाथों ) में ६४ हड्डिया हैं और "इनफीरियर एक्सट्रीमिटीज" ( नीचे दोनों पावों ) में ६२ हड्डियां हैं ये सब मिलकर २०० हड्डियां हुई इनके सिवाय ३२ दांत और तीन २ छोटी हड्डियां हरेक कानमेंसे ६ ये और ८ "सिस्माइड" ( अंगूठे आदिके मूल) में छोटी मटरसी हड्डियां हैं तो ४६ ये हुई इनको मिलानेसे मनुष्यके शरीरमें सब हड्डियां २४६ पाई जातीहैं ॥

( वक्तव्य ) इसमें यह है कि हड्डियोंकी संख्या जो ऊपर लिखी है वह पूर्ण नहीं क्योंकि जैसे ऊपरकी संख्यामें "सेक्रम" और "काकसक्स" और "सटरनम" में एक एक हड्डी कही परंतु सेक्रममें ५ काकसक्समें ४ और सटरनममें ६ हड्डियां जुडी हैं इससे शरीरमें हड्डियां अधिक मालूम देती हैं जैसे वैद्यकमें हड्डियां लिखीहैं वे अयोग्य नहीं सिद्ध होतीं ।

## शरीरकी त्वचा ।

डाक्टरी मतसे त्वचा ( चर्म ) के मुख्य दो भाग हैं उनमें नीचेवाले भागको "डरमिस" कहतेहैं और ऊपरवालेको 'एपीडरमिस' अथवा "क्यूटिकिल" कहतेहैं फिर इनमें प्रत्येकके दो दो भाग हैं क्यूटीकिलमें नीचेके भागमें छोटे २ मृदुकोष्ठोंकी परत है जो रुधिरसे बनताहै और ऊपरके भागमें वेही पुराने होकर ऊपर आजातेहैं और कडे होजातेहैं और झडजातेहैं और डरमिसके दो भागोंमेंसे ऊपरके परतमें नसें फैली हैं तथा नीचेके परतमेंभी नसोंका जाल है क्यूटीकिलकी मुटाई नरम स्थानमें एक इंचका २४० वां भाग और दृढस्थानोंमें २४ वां तथा १२ वां भाग है पसीनेके निकलनेके छेद सब देहपर अनुमान तीस लाखके हैं ॥

---

"सेकरम्" पृष्ठवंशसे नीचेके भागको कहतेहैं वास्तवमें इसमे ५ हड्डिया (मोहरे) जुडे हुए होते हैं इन्हें डाक्टर एक मानते हैं । "काकसिक्स" यह त्रिकके पास पृष्ठवंशका सबसे नीचला भाग है इसमें वास्तवमें ४ हड्डिया परस्पर जुडी हैं "सटरनम" यह छातीके बीचकी हड्डी है वास्तवमें इसमें ६ जोड हैं जो प्रथम अवस्थामें जुदे २ होते हैं और अवस्था वढनेपर जुडकर एक प्रतीत होता है ( देखो अनाटमी और फीजिलोजी ) "क्यूटीकिल" मुख्ये वाह्य चर्म हैं यह इपीथीलीयमके चपटे कोशोंके कई एक परतोंके बाहम मिलनेसे बनाहै ( देखो अनाटमी ) ॥

# डाक्टरीमतसे संक्षिप्त रोग गणना।

इंटरमेटिंट फीवर–बारीका शीतज्वर.
कोटी डेइन–नित्य चढनेवाला.
टरशन फीवर–तीसरे दिनका तप.
करटन फीवर– { चौथे दिनका तप. ( चातुर्थिक )
रीमीटेंट फीवर { संतत ज्वर जो बराबर चढाही रहे.
कंटीन्यूड फीवर–गरमीका तप.
टेंगोफीवर–एक भांतिका वातज्वर.
यालोफीवर { यह योरपका तप है. एक भांतिका सन्निपात.
टाइफस फीवर–संधिक.
टाइफाइड फीवर– { यह जांतविक दुर्गंधसे होताहै.
फीमन फीवर { यह कहतमें खराब अन्न खाने आदिसे होताहै.
हेकटिक फीवर–जीर्णज्वर तपेदिक.
इनफनटाइल फीवर–आमज्वर.
पाइएमिया–दुष्टरक्तज्वर.
प्योरपेलर फीवर–प्रसूतज्वर.
आसमालपाक्स–शीतला–चेचक.
चिकनपाक्स–खसरा.
रोव्योला–महीन खसरा.
स्कारलेटीना–मोतीज्वर.
इस्कराफ्यूला { कंठमाला, ग्रंथी, मघूटोंसे खून आना.
इस्करवी–मुँहमें वृरक्तदोष.
रोमाटेजम–गंठिया, ग्रंथिवात.
मारक्योलर रोमाटेजम. { एक भांतिकी गँठिया.

सेफेलिलजिया–शिरका दर्द.
कलडसहिस्टी–खूका मस्तकशूल.
हेमेक्रीमिया–आधाशीशी.
वरटीगो–शिरोरोग.
इनक्फलाइटिस { दिमागके परदोंमें सूजन, गरमीसे शिर दर्द.
न्यूरेलजिया–पट्ठोंका दर्द.
साईटीका–रांगन वायु.
पेरालसिस–शून्य वायु.
हेमेप्लेजिया–अर्द्धांगवायु.
पेरा प्लेजिया–ऊरुस्तंभ.
फेशियल पेरालिसिस–अर्दितवायु.
कोरिया–कंपवायु.
टिटनिस–धनुषवायु.
इनसानिटी–उन्माद.
एडयूसी–मंदबुद्धिता.
डेमेनशिया–कभी २ वेसुध होना.
मेलन कोलिया–वहन.
मेनिया–पूर्ण उन्माद.
डिलीरियमस्ट्रीमेस–सिड, प्रलाप.
पलपेटीशन–खफगान.
एपेलपसी–मृगी.
केटेलेपसी–मूर्च्छा.
लेरेंजा इटिस–वातपित्तज्वर.
केटार–वातकफज्वर.
इनफ्लो इंजा–कफज्वर, जुखाम.
आस्मा–तमकश्वास.
इनफाइलीशन–श्वास.
होपिंगकाफ–कूकर खांसी.

न्यूमोनिया-उरःक्षत.
थाइसिसपिल-
मेरा नेलस- } क्षयी-राजयक्ष्मा.
मापटेसिस-मुँहसे खून आना.
प्लोराइटिस (प्लूरिसी)-पांसुका दर्द
हाइड्रोथीरेक्स-छाती दूखे तप शोथ.
न्यूमो थोरिक्स- } छातीमें हवा भरनेसे श्वास हो और दर्द.
स्टोमेंटाइटिस-मुखपाक बालरोग.
पेरोटाइटिस-कनफेड.
टांसीलाइटिस-जिह्वक.
कंजशचन ऑफदी इस्टमक-रक्तपित्त
मेलेना-अधोगत रक्तपित्त.
हेमाटेमेसस-ऊर्ध्वगत रक्तपित्त.
गेसट्राइटस-पेटका दर्द मेदेमें हो.
इलसर ऑफदीस्टमक-परिणामशूल
वर्मस-कृमि पेटमें हो.
कालरा-विसूची ( हैजा ).
डिसेंटरी-मोडें निवाही.
डायारया-अतिसार.
कान्सटीपेशन-कबजीयत.
डिसपेपसिया-अजीर्ण.
कालक-कुलंजका दर्द.
पेरेटोनाइटिस-बंध पडजाना.
टबोवर क्योलर-
परीटोनाइटिस- } उदररोग.
आसाइटिस ( ड्राप्सी ) जलोदर.
हेमेटाईटिस-यकृत् रोग.
एकटेरिस-पांडु ( पीलिया ).
इनलार्जमेंट ऑफ
दीस्पिलीन } प्लीहवृद्धि ( तिल्ली )

किडनी-वृक्क रोग ( गुरदेकी ) व्याधि.
हेमाटोरिया-पित्तकृच्छ्र ( सोजाक ).
जायाबेटियर-बहुमूत्र.
इस्परमीटोरिया-प्रमेह.
डिसमेनोरिया-नष्टार्तव स्त्रीरोग.
एपेथीलेडोमा-प्रदर.
पेरोरिलजिया-रक्तप्रदर.
ल्यूकोरिया-श्वेतप्रदर.
इनपोटेंस-नपुंसकता.
हिमरोइड-बवासीर.
पेलथोरा-रक्तवृद्धिविकार.
एनेमिया-रक्तक्षयविकार.
इनफलामेशन-शोथ ( सूजन )
एरीसिफलिस-विसर्प.
सिफलिस-उपदंश आतशक.
प्रोराईगो-सूखी खाज.
स्केबेज-गीली खुजली.
वाइटीलेगो-श्वेतकुष्ठ.
हरपीज-दाद ( दद्रु )
लेपरा-कुष्ठ.
एलोपीसिया-गंज.
ऑटोलजिया-कानका दर्द.
ब्यूबो-बद.
कलवलशन-ऐंठन ( तशन्नुज ).

यहांपर संक्षेपसे रोगोंके कुछ नाम मात्र लिखे हैं विशेष वर्णन थोडा २ उन रोगोंके प्रकरणमें देखिये। अथवा इन रोगोका निदान, लक्षण, उपाय आदि विशेष वर्णन हमारे डाक्टरी चिकित्सासार नामक पुस्तकमें देखिये जिसमें डाक्टरी और देशी दोनो भांतिसे रोगोंके नामादि हैं

॥ इति परिशिष्ट शारीरक भाग ॥ १ ॥

॥ श्रीः ॥

# यूनानीमतसे संक्षिप्त शारीरक।

## परिशिष्ट भाग २.

### शिर।

यह त्वचा, अस्थि, मांस और तिल्ली तथा मस्तिष्क मज्जा और उसके ऊपरका वेष्टन और शिराओं और पेशियां पट्ठोंसे बनाहुआ है इसमें सात हड्डियां हैं इसमें मुख्य मस्तिष्क मज्जा जो नरम सुपेद लजलजा है यह सब पट्ठों और स्हनफसानीका ( इंद्रियज्ञानका ) मूल है इससे रगें और पट्ठे निकलकर शाखाओंकी तरह फैले हैं इसके तीन भाग हैं उनमें नीचेका भाग चौड़ा और बीचका उससे कम और ऊपरका छोटा है इनमें नीचेका भाग नरम है इस हेतुसे कि यह ज्ञानेंद्रियोंकी स्नायुवोंका मूल है और ऊपरका भाग कठिन इस हेतुसे है कि वह आकुंचन, प्रसारण आदि क्रियाजनक पट्ठोंका मूल है॥

इसके भाग इस भांति समझिये कि, भ्रुकुटी तालूके ऊपरका भाग प्रथम और शिखाके स्थानके नीचे तृतीय भाग और बीचमें मध्यभाग, मध्यभागके नीचे अरनासा है जिसे "मासरा" कहते हैं मूद्धांका मल वहांसे एकत्र होकर तालूमें आताहै॥

"नुखा" अर्थात् मस्तिष्क मज्जाका मूल है जिसे मगजहराम कहते हैं इससे ईश्वरने दो मुहरे तो इस प्रकारके निकाले हैं कि उनसे दो पट्ठे निकले हैं जिनमें एक दाहिने मुहरेसे और एक बांयें मुहरेसे परंतु "अस अस" नामी मुहरेसे जो नीचे है उससे १ अकेला पट्ठा निकला है और इन पट्ठोंमेंसे शाखायें होकर हरेक अंग, प्रत्यंगमें जा मिले हैं "असब" (पट्ठे) दो प्रकारके हैं प्रथम वे जो दिमाग ( मस्तिष्क ) से उगे हैं वे सात जोड हैं चेहरेसे ऊपरकी ज्ञानेंद्रियोंकी प्रवृत्ति और धारणाशक्ति प्रतिभा आदिक इन्हींसे प्राप्त होती हैं। दूसरे प्रकारके पट्ठे वे जो "नुखा" से उगे हैं जो २१ जोड हैं और १ अकेला है ग्रीवासे नीचेके शरीरमें आकुंचन, प्रसारणादि और स्पर्शशक्ति इन्हींसे प्राप्त होती है॥

"गशा" ( झिल्ली ) एक नरम वेष्टन ( त्वचा ) सी होती है इसका प्रयोजन यह है कि आंतर्य अवयवकी रक्षा करे और जिन अवयवोंमें स्पर्शशक्ति नहीं होती उनमें स्पर्शशक्ति पहुँचावे। सिरमें ५ गशा हैं जिनमें १ कहफ ( दिमागकी छत्त ) के बाहर है और दूसरी उसके अंदर है तीसरी जोहरदिमाग मस्तिष्क मज्जाके गिरद है यह सलवटदार है और दो गशा दिमागके नीचे पीछेको है॥

यूनानी मतसे शिरसे पैदा होनेवाले रोग इस प्रकार हैं–१ शिरका दर्द, २ सरसाम ( जिसमें दिमागके परदोंमें शोथ होता है और प्रलाप, भ्रमादि अनेक उपद्रव होते हैं ), ३ माशरा ( बाहर मस्तककी तरफ शोथ होना ), ४ चक्कर और आंखों अगाडी अँधेरी आना, ५ अतिनिद्रा, ६ निद्रानाश, ७ निद्रा उछट उछटकर आना, ८ जमूद ( मूर्च्छाका भेद ), ९ भूल, १० वहम, सिड, ११ अत्युन्माद, १२ प्रलाप, १३ मूर्खता, १४ धत ( किसी बातकी धत लग जाना ) या जिद, १५ सोतेमें चमकना दबजाना, १६ अपस्मार–मृगी, १७ मूर्च्छा, १८ फालज ( स्पर्शशक्तिका नाश होना ) सुन्न पडजाना अंगका, १९ तशंनुज (ऐंठाव ), २० तमद्दुद ( हनुग्रह ), २१ राशा ( कंप ), २२ सुस्ती, २३ लकवा ( मुँहकाए या आधा शरीर सुन्न पड़जाना टेढ़ा हो जाना ), २४ स्फुरण, २५ आंखें लाल रहना जादा अंगडाइयां आना, २६ नजला ( जुकाम ), २७ भौंका दर्द, २८ सर खुजलाना ॥

( देखो तिब्ब अकबर )

## नेत्र ( चशम )

यह आजाय शरीफामेंसे है नेत्रोंमें ७ परदे अर्थात् ७ पटल हैं और तीन रतूबत हैं आंखकी प्रकृति गरम तर है इसमें पट्ठे और फरकनेवाली तथा स्थिर शिरायें हैं पहले तबकेका नाम "मुलतष्मा" है यह सबसे बाहरकी तरफ है। दूसरा "करनिया" है इसमें वास्तविक कोई रंग नहीं है वही रंग नजर आता है जो इसके नीचेके तबकोंमें है। तीसरा तबका "अंबिया" है और यह किसीकी आंखमें स्याह रंगका है किसीकी आंखमें जरदी मायल है और इसीके बाद रतूबत बैजिया है जो तीन रतूबतोंमेंसे १ है और यह अंडेके तुल्य सुपेद है। चौथा तबका "अंकबुतिया" है यह मकडीके जालेसा है और इसके पीछे दूसरी रतूबत जलीदषा है जो साफ बरफ जैसी है और इसके बाद रतूबत जजाजी है जो आबगीनेसी है। पांचवां तबका "शबकिया" है इसमें जालसा पुरा है। छठा तबका "मशीमिया" है यह चने दानसा है और सारी आंखपर छाया रहता है। सातवां तबका "सलबिया" है जो सख्त झिल्लीसा है ॥

## नेत्ररोग।

१ सातों तबकोंकी व्याधियां, २ आंखोंसे पानी टपकना ( ढलका ), ३ कभी आंसू बहना कभी बन्द होना, ४ धूँधलासा दीखना, ५ आंखोंमें तुनकासा गिरना, ६ आंखमें चोट लगना, ७ आंखमें कुरा पडना, ८ बयाज काली पुतलीपर ( सुपेदी आजाना ), ९ आंखोंमें दराड़सी हो जाना, १० हिवल ( भैंगापन ), ११ रतौंधा, १२ दिनको न सूझना, १३ आंखें छोटी पडजाना, १४ आंखोंमें पानी उतर आना

( नजूलुलमा ), १५ भूरी आंखें होना, १६ जाफवसर ( निगाहकी कमजोरी ), १७ आंखें दुबली पड़जाना, १८ आंखें मोटी और निकलीसी होना, १९ रोशनी बुरी लगना ॥

## पलकोंके रोग ।

१ पलकें भारीसी होना, २ पलकोंमें गांठेंसी पडजाना, ३ पडवाल, ४ पलकोंके बाल गिरजाना, ५ पलकें सुपेद होजाना, ६ पलकें मोटी और गलीज होना, ७ पलकोंमें खाज आना ॥

## कान ( गोश )

यह एक अवयव मांस त्वचा और रगोंसे बना हुआ है इसमें एक छेद होता है उसके राहसे हवामें जो शब्द लहराता है वह उस छेदकी राहसे भीतरकी त्वचामें टकराकर रगोंके जरियेसे मूर्द्धाके शब्दावबोधक स्थानमें पहुँचता है जिससे जीवको शब्दोंका ज्ञान होता है ॥

## कानके रोग ।

१ कानका दर्द, २ कम सुनाई देना, ३ कानमें आवाजसी होना, ४ कानसे रुधिर निकलना, ५ कानकी जड उखडना, ६ कानकी जडमें वरम होना, ७ जडमें जखम होना, ८ कानमें खारश होना, ९ कानमें जखम होना ॥

## नाक ( बीनी )

यह दो छेदवाला अवयव मुँहके ऊपर है इसका मार्ग तालूके पास नीचेको खुला है जिसमेंसे श्वास आता जाता है और आमाशय मेदेकी रतूबत भी ऊपर चढकर इसीसे निकलती है और दिमागकी तरफ इसमें एक नालीसी है सुगंध दुर्गंध उसी राहसे दिमागमें पहुँचती है और दिमागका मल भी कुछ इसी राहसे टपकता है दो छेद जो अगाडी हैं पीछे ये मिलकर एक होजाते हैं ।

## नाकके रोग ।

१ गंध नही आना, २ ठीक गंधका ज्ञान न होना, ३ नाकमें जखम होना, ४ नक्सीर, ५ नाकसे दुर्गंध आना, ६ छींकें बहुत आना, ७ नाकमें खाज आना, ८ नाकमें क्रिमि पडजाना आदि कई व्याधियां होती हैं ॥

## मुँह, जबान और दाँत ।

कई चीजें मिलनेसे इसका नाम मुँह होता है पर यहां विशेषकर दोनों होठोंहीसे मुँह समझना चाहिये ये होठ केवल त्वचा, मांस, शिराओं और खूनसे बने हैं जबानभी मांस और शिराओंहीसे बनी हुई है। दांत हड्डीके छोटे २ टुकड़े हैं दांत भोजनको चबाते हैं जबान उसका स्वाद लेकर भीतरको धकेलती है इनके आकार और काम प्रत्यक्षही दीखते हैं ॥

### मुँह आदिके रोग ।

१ जवानका वरम, २ स्वाद न आना (रसाज्ञान), ३ जवान भारी होना, ४ जवान बढजाना, ५ जवान सुस्त होना, ६ जवानके नीचे और जवान होना ( अधिजिह्व), ७ जवान फट जाना, ८ जवान सूखना, ९ जवानमें जलन होना, १० जवानमें खारश होना, ११ जवानसे छिलकेसे उतरना, १२ मुँह आजाना, १३ मुँह और जवानमें कुरा पडना, १४ मुँहसे दुर्गंध आना, १५ मुँहमें बहुत लुआव आना ( लालास्राव ), १६ तालूका वरम ॥

### होठोंके रोग ।

१ होठ सुपेद होना, २ होठ फटना, ३ होठ फरकना, ४ दोनों होठ खिंचना, ५ होठोंमें मसा होना, ६ होठ सूजना, ७ होठोंका जखम ॥

### दंतरोग ।

१ दांतोंका दर्द, २ दांत अँवलना, ३ दांतोंकी आव जाती रहना, ४ दांत भुर-भुर होना, ५ दांतोंका रंग बदलना, ६ दांत हिलना और गिरजाना, ७ अधिक दांत निकलना, ८ नींदमें दांत चवाना ॥

### मसूढोंके रोग ।

१ मसूढोंका वरम, २ इनमें खून आना, ३ मसूढोंमें कुरा पड़ना, ४ मसूढे कटने लगजाना, ५ मसूढोंमें मांस बढजाना, ६ मसूढे पकना ॥

### हलकका बयान ।

मुँहके भीतर कव्वेके पाससे हलक शुरू होता है इसमें दो रास्ते हैं पहला रास्ता
वह है जिस राहसे भोजन मेदेमें पहुँचता है इसको "मरी" कहतेहैं और दूसरा रास्ता
वह है जिस राहसे श्वासका वायु भीतर फेफडोंमें पहुँचताहै और मनुष्य बोलता है
इसे "हँजरा" कहते हैं यह हँजरेकी नली अगाडीको है और मरी इसके पिछाडी-
को। मरी तालूके पाससे शुरू होकर मेदेके मुँहतक है जिसे "फम मेदा" कहते हैं
और जो कौडीके मुकाबिल है वहांतक गई है और मेदेमें जाकर मिली है इसी
तरह हँजरेकी नली "कसवे रीया" तक जो फेफड़ोंका शिरा है वहांतक जाकर
फेफडोंमें जा मिली है ॥

हँजरेकी नली बहुत कोमल है उसमें शुद्ध हवाके सिवाय यदि जरासा गरद
गुवारभी चला जावे तो उसी वखत खांसी आकर उसे बाहर निकाल देगी इसी
भांति जरासा तुनका, जरासा भोजन या पानका भाग चला जावे तो उसे कभी
कबूल न करे किन्तु धांससे बाहर निकाल दे परंतु मरीकी नाली सख्त कड़ी है,
कड़ेसे कड़ी वस्तु इसमें होकर मेदेमें जाती है ॥

## हलकके रोग ।

१ कव्वेका वरम, २ कव्वा ढीला पडजाना ( काग छिटकना ), ३ हलकमें खरखराहट होना, कोई चीज निगलनेमें दिक्कत होना, ४हलकमें गरम फुन्सियां होना, ५ मरीका वरम, ६ हंजरेमें सुस्ती आना, ७ आवाजमें फरक आना ॥

## सीना और फेफडे ।

फेफड़ेंको अरबीमें " रीया " या "शुश " कहते हैं यह नरम पोपला अवयव है और मांस शिराओंसे तथा झिल्लीसे बनाहुआ है गशा ( झिल्ली ) तमामपर है इस फेफड़ेमें स्पर्शज्ञान नहीं है पर उसपर जो गशा है उसमें कुछ स्पर्शज्ञान है फेफड़ा ऊपर हसलीके पाससे शुरू होकर नीचेको लटकता हुआ है और इसके दो भाग हैं एक दाहिना दूसरा बायाँ। दाहिनेमें तीन शाव (लोथड़े) हैं और बांयेंमें २ और ऊपरसे ये दोनों भाग जुडे हुए हैं और यह दिलके गिरद आरहा है और इसमेंवे शिरायें हैं जो दिलसे उगी हैं यह बाहरकी हवाको दिलके लायक बनाकर दिलमें पहुँचाती हैं इसका जिसम मक्खीके छत्ते जैसा पोला है रंग हलका सुरख है यह सीनेके अंदर बीचमें कुछ ऊँचा और दोनों तरफ नीचा लटका हुआसा है ऊपरको हंजरेकी नलीसे मिला हुआ है मरीकी नाली इसके पीछे होकर मेदेमें गई है। सीनामें सात हड्डियां हैं और२४ पँसलियां हैं१२ बाई तरफ और१२ दाहिनी तरफकी उनके बीचमें उजले हैं और वह गशा है जो पँसलियांको ढके हुए है। छः छः पँसलियां कौड़ीसे नीचे और छः छः ऊपर सीनेमें दोनों तरफ हैं ॥

## सीना फेफडे और पँसलियोंके रोग ।

१ सांसका ठीक न चलना,२ दमा, ३ खाँसी, ४ मुँहसे खून आना ( यह मेदेसे भी आ सकता है और फेफड़ेसेभी),५मुँहसे पीव आना,६ फेफडोंपर नजूल गिरना ( जातुलरिया), ७ सिल फेफडोंमें जखम पडजाना, ८ सीनेमें पीव पड़कर बंध हो जाना, ९ पँसलियोंमें वरम व दर्द, १० जातुलजंब ( पँसलियोंमें वरम होकर दर्द होना ), ११जातुल जंब गैर खालिस पँसलियोंके बीच जो उजले और झिल्ली हैं उनमें वरम और दर्द होना, १२ जातुल सदर और जातुल अर्ज ( सीनेके अगले हिजाबमें वरम दर्द हो तो जातुल सदर है, पिछलेमें जातुल अर्ज ), १३ पँसलियोंके हिजाबमें वरम हो, १४ सीनेमें वरम और दर्द ( वरसाम ), १५ जहमूदउलसदर ( सीनेमें शरदीसे दर्द होना ) ॥

## कलब-दिल ।

यह मांस और असब ( पट्ठों ) और झिल्लीसे बना हुआ सीनेके बीचमें जरा बाई तरफ झुका हुआ रहता है और बहुतसी शिरायें इसमेंसे निकली हैं इसक

मांस कडा है और जो झिल्ली इसपर है वहभी कडी है और इसकी गशा (गिलाफ) इससे चिपकी हुई नहीं है यह गाजरकी सूरतका बना है इसका मोटा रुख ऊपर-को तिरछा है शिरायें यहांहीसे पैदा हुई है और गजरूफ ( नरम हड्डियां )भी इसी तरफ हैं दिलके दो वतन ( हिस्से ) हैं एक दाहिनी तरफ और दूसरा उसका बायां रुख जिसमें दाहिना रुख बहुतसे खून और थोडीसी रुहसे भरा है यह बायें रुखसे चौडा है और बायें रुखमें रुह बहुत है और खून कम है इस रुखका खून बहुत पतला है इस लिये कि रुहमें मिला हुआ है दोनों रुखोंके बीचमें तजवीफ ( हद्द ) है दिलमें रास्तेभी हैं जिनमेंसे खून फेफड़ेकी तरफ पहुँचे और फेफड़ेसे हवा दिलमें पहुँचे और ये मोटे शिरेकी तरफ हैं और इधरही मांसके दो टुकड़ेसे जमकर खिड़-कीकी सूरत हो गये हैं इन्हें " अजनी उलकलब " कहते हैं जिस समय दिल सुकड़ता है तो ये इकट्ठेसे हो जाते हैं और जब फैलता है तब ये खुल जाते हैं और दमबदम मिंचते खुलते रहते हैं जोकि दिल " अजु रईस " ( उत्तमांग ) है और हरारत गरीजी (मुख्य शारीरक अग्नि ) का स्थान है और रूह हैवानी ( जीव-नीय शक्ति ) का उत्पत्तिस्थान है इस लिये इसको छातीमें ईश्वरने स्थित किया है इसका रंग सुरख है जिन जीवोंका दिल बडा और मजबूत जादा होताहै वे दिलेर और बहादुर होते हैं ॥

## दिलके रोग ।

१ सूयमिजा ( दिलपर गरमी खुशकी तथा सरदी या तरी हिसाबसे जादा हो), २ दिल धड़कना खफ़गान ) एक प्रकारका उन्माद, ३ दिलमें धुवांसा उठना, ४ दिलकी किवाड़ियोंका वरम ( दिलभारीसा हो ), ५ दिलमिचासा रहे कभी बेहो-शीभी हो जावे, ६ जैसे कोई दिलको छीलता हो और गश आजावे ( तकश्शुर उलकलब ), ७ जैसे दिल सीनेसे बाहरसा निकलता हो, ८ दिलपर रतूबत छाजावे ९ जैसे दिल नीचेको खिंचतासा हो ॥

## जिगर-यकृत ।

जिगर " अजूरईस " ( उत्तमांग ) है इसमें रूहतबई पैदा होतीहै और जो कूदनेवाली रगें हैं जिन्हें "आउरदा "कहतेहैं वे इसमेंसे निकलतीहैं और "कैलूस" ( जो मेदेमें द्रवरूप परिपाक बनाहै उस ) का खून जिगरमें बनताहै परंतु कैलूसमें पलटा रगें मासारीकामेंभी आती हैं ( रगें मासारीका जिगरके पास हैं ) कैलूसका खून बनकर तो जिगरकी रगोंसे सारे शरीरमे पहुँचताहै और उसका द्रवरूप मल अर्थात् पेशाब यहांसे गुरदोंकी तरफ चलाजाताहै जिगरका रंग सुरख है जैसे जमाहुआ खून, और यह खून मांस और रगोंसे बना है इसमें स्पर्शज्ञान ( हस )

नहीं है पर जो गशा ( झिल्ली ) इसपर छाई हुई है उसमें हस जादा है जिगरमें अंगुलियोंकी तरहके अंकुरसे हैं कइयोंमें ये अंकुर ५ होतेहैं कइयोंमें ४ कइयोंमें ३ ही इन्हीसे मेदेके गिरद लगा हुआहै जैसे कोई अंगुलियोंसे किसी चीजको पकड़े हुए रहताहै ऐसे यह मेदेसे लगाहै। जिगर सीनेके हिजाबके मुकाबिल दाहिनी तरफ रहताहै और पिछली तरफ पँसलियोंसे बँधाहै और नीचेका शिरा मेदेके केरके पास है। जिगरकी तलीसे १ रग निकली है उसे " बाब " कहतेहैं उसमेंसे कई रगें निकली हैं जिनमेंसे कुछ तो जिगरमें फैलगई हैं और कुछ बाहर आकर मेदे और अंतड़ियोंमें मिलगई हैं और इन्हीको " मासारीका " कहते हैं जिगर केलूसको इसतरह खींचताहै जैसे स्पंज पानीको खींचताहै जिगरके मोहदबसे. १ और रग निकलतीहै जिसे " अजूफ " कहतेहै उसकी बाजी शाखें तो जिगरहीमें फैलगई हैं और बाकी बाहर निकलकर दो शाखा होकर उनमेंसे १ ऊपरको जाकर फैलगई है और दूसरी नीचे उतरकर नीचेके बदनमें फैलगई है। खून इन्हीसे तमाम बदनमें पहुँचताहै और ये " अजूफ " ही " आइरदे " बदनमें रगोंकी असल जड़ हैं और इन्हींसे दो और शाखें गरदनकी तरफ पानीके निकलनेको निकली हैं इन्हें " तालईन " कहतेहैं और कैर ( तली ) की तरफ बाबके ऊपर एक रास्ता है जो पित्तेकी तरफ आताहै जिससे सफरा अर्थात् खूनका झाग पित्तेमें आवे " मरारा " ( पित्ते ) की थैली १ बड़े अंकुरके ऊपर है और तलीकी तरफ जिगरमें १ और भी रास्ता है जो तिल्लीकी तरफ जाताहै इस राहसे " सौदा " अर्थात् खूनका तलछल तिल्लीकी तरफ चलाजावे इसीभांति जिगरसे एक रग दिलमें आतीहै जिससे जिगर और दिलमें परस्पर संबंध हो और एक दूसरेका उपकार करे ॥

## जिगरमें होनेवाले रोग।

१ सूयमिजाज जिगर ( जिगरमें गरमी सरदी खुश्की तरी अंदाजसे जादा हो, २ जोफ जिगर ( इसमें दस्त मांसधोवनसा थोड़ा २ हो भूख कम लगे जिगरमें धीमा दरद हो ), ३ सुद्देकबद ( जिगरमें सुद्दा पड़जावें जिससे जिगर भारीसा हो दस्त और उबकाई हो कभी तपभी आवे ), ४ सुद्दे मासारीका ( मासारीकामें सुद्दे पड़जावें और भारीपन हो हाजमा बिगड़े दुबलापन हो ), ५ नफख तुलकबद ( जिगरमें अफरा हो दाहिनी पहलूमें दरदभी हो ), ६ वजेउलकबद ( जिगरका दर्द या यकृत् शूल ), ७ निहार या श्रमके बाद जादे ठंढे पानीसे जिगरमें दर्द हो, ८ वरम कबद ( वरम जिगर जिगरपर वरम होना ), इसमें तप प्यास और दर्द और जलन हो थूक बंद होवे खुश्क खांसी और बढे तब हिचकी भी, ९ वरम उजलात शिकम ( पेटके उजलोंमें वरम होना ) यह जिगरके वरमके मानिन्दही होता है इससे यहां लिखा है, १० दबीले कबद (जिगरमें कहीं पकजावे और पीव

पड़ जावे ) इसमें तप हो दर्द हो प्यास हो सीधा न लेटसके, ११ जिगरमें छोटी२ अलाइयांसी होजावें ( इसमें जलन और कभी कंपभी होवे ), १२ हिसातुल कबद ( जिगरमें रेता छोटी २ पथरीसी पैदा हों ) इसके खूनमें रेता जम जाता है, १३ इसहाल जिगरी ( खूनके या पीबके दस्त आवें ), १४ फ़िसादमिजाज व जोफ़ जिगर इसमें पेटमें कुरकुराहट रहे कभी अफ़रा हो कभी मसूड़ों और होठोंमें सुरखी और फुन्सियां हों, १५ इसतिसका ( जलोदर ) ।

### तिहाल ( तिल्ली )

यह अवयव मांस और शिराओंसे बना है यह पोपला है इसका रंग कुछ स्याही लिये है यह मेदके बाई तरफको रहता है इसमें स्वयं हस नहीहै इसपर जो गशा है उसमें हस जादा है इसके शिरेसे १ रास्ता निकलकर जिगरकी तलीमें खुलरहा है इसे तिहालकी गरदन कहतेहैं इसी राहसे जिगरसे सौदा खिंचकर तिल्लीमें आताहै तिल्ली कच्चे सौदाके रहनेकी जगह है तिल्लीमेंसे १ राह मेदेमेंभी खुला है इस लिये कि थोड़ा सौदा मेदेमें आवे और मेदेके मुँहपर खुजलावे और तुरशी पैदा करे जिससे भूख लगे ।

### तिल्लीके रोग ।

१ यरकान ( पांडु पीला प्रायः जिगर और मरारेसे होता है और स्याह तिल्लीसे जिसे हलीमक कहते हैं), २ सूय मिजाज तिहाल ( तिल्लीमें गरमी सरदी वगैरह जादा पहुँचना), ३ वरमातिहाल तिल्लीका वरम, ४ जोफ़ तिहाल ( तिल्लीका जौफ़ ), ५ तिल्लीका अफ़रा, ६ तिल्ली बढ़जाना, ७ तिल्लीमें सुद्दा पडजावे ॥

### मेदा ( आमाशय )

यह एक गोल अवयव थैलीकी सूरतका मांस और पट्ठों और शिराओं और झिल्लीसे बनाहै इसके तीन भाग हैं १ "मरी" ( आहार नलका ), २ "फ़म मेदा" ( मेदेका मुँह ), ३ "कैरमेदा" ( मेदकी तली ) "मरी" जो मुँहके भीतरसे शुरू होकर छातीकी कौड़ीतक है इसका वर्णन पहले होचुका है "फ़म मेदा" यह मरीके नीचे है और "कैरमेदा" यह भाग नाभिसे ऊपर है "मेदे" में हस ( स्पर्शज्ञान ) बहुत है इससे जो इसे बुरी लगे उसे झट वमनके राह निकाल देता है मेदेमें दो तबकें हैं भीतरका तबका असबानी है जिससे स्पर्शशक्ति उत्पन्न हो और बाहरका परत लहमानी ( मांसल ) है ताकि हाजमेमें सहायता करे और औदर्य अग्नि यथोचित पैदा हो भीतरी परतमें लैफ़ बाजी तो तिरछी है और बाजी लंबी इस वास्ते कि आहारको रोकसके और बाहरके परतमें लैफ़ें चौड़ी हैं ताकि पके आहारको यहांसे निकालदे और मरीमें कोई लैफ़ तिरछी नहीं है क्योंकि यहां पर आहारके ठहरनेका कामही नहीं है और "कैलूस" भोजनका द्रवपाक ( आम )

यहांही बनता है फिर यहांहीसे उसका सार भाग द्रव बारीक रगोंके वसीलेसे जो मेदेसे जिगरकी तलीमें मिलरही है जिगरकी तरफ खिंच जाता है और फोकस "असना अशरी" आंतकी तरफ जो मेदकी तलीमें है चलाजाता है भोजनकी इच्छा और प्रथम परिपाक मेदेहीसे पूर्ण संबंध रखता है और सब अवयवोंको इसकी तरफही वांछा रहती है और मेदेमें विकार होनेसे सब अवयवोंमें विकार हो जाता है इस वास्ते हरेक व्याधिके इलाजमें मेदकी रियायत जरूर रखनी चाहिये ॥

## मेदेके रोग ।

१ सूयमिजाज मेदा ( मेदेमें गरमी खुश्की सरदी तरी अंदाजेसे जादा हो ), २ वजे उलमेदा ( मेदेका दर्द ), ३ जोफ हज्म ( जोफमेदा ) ( क ) मेदेकी कुव्वत जाजिबीमें जोफ, ( ख ) मेदेके कुव्वत मासकेमें जोफ, ( ग ) मेदेकी कुव्वत हाजमेमें जोफ, ( घ ) मेदेकी कुव्वत दाफेमें जोफ, ४ हैजा ( विसूची ), ५ नुकसान शहवततुआम ( क्षुधानाश होना ), ६ बहुत ज्यादे भूख लगना, ७ जूउल-बकर भूँख तो हो पर मेदा न चाहे ( अरुचि ), ८ जुउलगसी ( भूंखकी बरदाश्त न होना ), ९ प्यास जियादा लगना ( तृषा ), १० बरममेदा ( मेदेमें बरम और दर्द व जलन व हरवक्त तप रहना ), ११ मेदेमें किसी जगे पीब पड़जाना और जखम होना इसमें तप जोरका दर्द, १२ मेदेमें फुन्सियां और जखम हो, १३ नफख ( अफरा), १४ डकारें जादा आवें (अत्युद्गार), १५ जमाही जादा आना (अतिजृंभा), १६ कै ( उलटी करना वमन), १७ जी मिचलाना ( उत्क्लेद), १८ तहूअ (उबकाई हल्लास), १९ तकल्लुब (जी मिचलाया रहना), २० कै उलदम (खूनका वमन होना), २१ मेदेमें खून या दूध जमजाना, २२ हिचकी जादा आना २३ इन कलाव मेदा ( कुछ ही जमा होतेही कै होजाना ), २४ कलक ( बेचैनी ), २५ इखतिलात मेदा बेचैनी और जी मिचलानेके साथ कफगानसा हो, २६ वजे उलफवाद ( मेदेके मुहपर जोरका दर्द हो ), दिलके नजदीक होनेसे इसे दर्द दिल कहते हैं, २७ मेदेमें सोजिश और जलन हो, २८ मेदेमें खारिश होना और भीतर छोटी फुन्सियां होना तेज चीज खानेसे या नजूल मेदेमें गिरनेसे होती है, २९ इस्तर खाप मेदा ( मेदा ढीला पडजाना ), ३० तशन्नुज मेदा ( मेदेमें किसी जगह ऐंठनसी होना और अकड़ावासा होना जिससे विना हजम हुई चीज दस्तमें आवे),

---

( क ) कुव्वत जाजिया वह है जिससे भोजनको अपनी तरफ जजब करे ( खींचे ) ( ख ) कुव्वत मासका वह है जिससे भोजन टहरा रहे ( ग ) कुव्वत हाजमा वह है जिससे हजम हो ( घ ) कुव्वत दाफे वह है जिससे पचा हुआ दस्त हो निकल जावे ।

३१ हिसारत मेदा ( मेदा कड़ा पड़जाना ), ३२ इस हालमेदा ( मेदेकी गिजा कभी पची कभी विना पची दस्तके राह निकला करे या खातेही गिजा अंतड़ियोंमें उतर आवे और दस्त होवे ) ॥

## अमआ (अंतड़ियाँ)

यह अवयव मुलायम थोथा दो तहका झिल्ली और चरबी और शिराओंसे बना हुआ होता है । आंतोंमें हस ( स्पर्शशक्ति ) होती है ये आंतें पेटमें छः हैं अर्थात् आंत तो वास्तवमें एकही है उसीके छः भाग हैं प्रथमका नाम "असना अशरी" है दूसरी "सायम" तीसरी "दकीक" ये तीन आंतें ऊपरको रहती हैं और बारीक हैं चौथी "अञ्जूर" पांचवीं "कौलून" छठी "मुस्तकीम" ये पिछली तीनों नीचेको रहती हैं और गलीज रहती हैं पहली आंत "असना अशरी" मेदेकी तलीसे शुरू होती है यह १२ अंगुल लम्बी है इसका मुह तब खुलता है कि जब मेदासे निकली गिजा तगाजा करे । इसके पीछे दूसरी आंत "सायम" है यह प्रायः खाली रहती है क्योंकि यह जिगरके पास है और पित्तेका रास्ता इसमें खुला है जो पित्ता ( सफरा ) मरेह आतोंके धोनेको आता है वह पहले सायमपरही आता है और जल्द इसे साफ करदेता है इसके पीछे तीसरी आंत "दकीक" है यह सबसे बारीक और लम्बी और पेंचदार है जिससे गिजा इसमें देरतक ठहरे और उसमें जो कुल सत्त्व हो उसे "मासारीका" खीचले । इसके पीछे चौथी आंत "अञ्जूर" है इसमें एकही रास्ता है यह थैलीसी है इसमें गिजा पकी हुई भरी रहे और हरघडी दस्तकी हाजत न हो और जो कुछ मेदेमें हाजमा न हुआ हो वह इसमें हाजमा होजाय इसमें एक हरारत इसी लिये रहती है और "फितक" ( अंडवृद्धि ) में इसीका भाग फोतोंमें उतर आता है इसमें एक और छोटीसी आंत लगी है यही फोतोंमें उतरती है । इसके पीछे पांचवी "कौलून" है यह अञ्जूरसे पीछे है यह दाहिनी तरफसे ऊपरको होकर बाई तरफ आई है यह हलकेकी तरहपर है इसमें मल रहता है और दर्द कुलंज इसीमें होता है । इसके पीछे छठी आंत "मुस्तकीम है" यह कुलंजके हलकेके बाद सीधी चलीगई है और गुदाकी त्रिवलीतक पहुंची है यह लगभग मेदेके बराबर चौडी है और "कुव्वतजाजवा" इसमें है इस लिये कि मलको और आंतोंसे अपनी तरफ खीचले और चौडाई इस लिये है कि, यह मलका खजाना है जब यह मलसे प्रायः भरजाती है तब दस्तकी हाजत होती है और जब गिजा अञ्जूर और मुस्तकीममें पहुंचता है तब विष्ठाकी सूरत बनजाती है ॥

## अंतडियोंके रोग।

१ जलकुल अमआ ( गिजा आंतोंमें न ठहरे कच्चे पक्के दस्त लगना ), २ इस हाल खून ( खूनके दस्त आना ), ३ पीब और पीला पानीसा दस्त लगना, ४ जहीर राध लहूका थोडा थोडा दस्त लगना, ५ मरोड़ आँतोंका दर्द, ६ नफख व कराकुर ( आँतोंमें अफारा और कुरकुरी होना ), ७ कुलंज ऐंठनका दर्द रहना, ८ हसर कब्जीयत होना, ९ किरम आतोंमें कृमि पडजानाँ ॥

## मिकअद ( गुदा )

यह फुजला ( मल ) निकलनेका रास्ता है इसमें कुव्वत इनकबाज संकोचन शक्ति है जिससे हर समय मल नहीं टपकता बल्कि जब मुस्तकीस अंतडी मलको बाहर निकालना चाहती है तब इसका मुह खुलता है ।

## गुदाके रोग।

१ बवासीर ( अर्श ) मस्से, २ नासूरे मिकअद ( भगंदर ), ३ औराममिकअद ( गुदाका वरम ), ४ शकाक मिकअद ( गुदा तडक जाना दराड होजाना ), ५ इस तरखाय मिकअद ( गुदा सुस्त होजाना ), ६ खरूजमिकअद ( कांच निकलना या गुदभ्रंश ), ७ कुरुहामिकअद ( गुदामें जखम होजाना ), ८ खारिशमिकअद ( गुदामें खाज होना ) ॥

## वृक्क ( गुरदे )

गुरदे दो हैं एक दाहिना दूसरा बांया और ये दोनों अपनी जगह पुश्तके नीचे पहलुओंके पास जमे हुए हैं ये मांस, चरबी और रगोंसे बने हैं स्वयं इनमें हस ( स्पर्शशक्ति ) नही है पर जो गशा इनपर है उसमें हस ज्यादा है और हरेक गुरदा जिगरसे उन रगोंके वसीलेसे संबंध रखता है जो जिगरसे गुरदोंमें आई हैं। उन दोनों रगोंको कई " तालईन " कहते हैं और जो गिजाके द्रवभागमें खून और पानी मिला हुआ जिगरमें रहता है उसमेंसे पानी ( मूत्र ) का भाग इन रगोंहीके जरियेसे गुरदोंमें आता है और खून और पानीको येही रगें जुदा करती हैं अर्थात् पानीको खीच लेती हैं और खूनको जिगरसे नहीं खींचती और गुरदोंसे दो रगें नीचेको और निकली हैं जो मसानेमें गई हैं इस लिये कि गुरदोंमें ज्योंही मूत्रका भाग आवे त्योंही उसे मसानेमें पहुँचा दें गुरदोंका आकार ऐसा है जैसे आधा खोपरा मूँधा रक्खा हो रंग हलका सुरख है इनको अरबीमें कुलया कहते हैं ॥

## गुरदोंके रोग।

१ सूयामिजाज कुलया ( गुरदोंमें सरदी गरमी तरी खुशकी जादा हो ) २ गुरदेमें " दबीला " ( फोडा होना ), ३ जोफ गुरदा ( दोनों गुरदोंमें जोफ हो पेशाबमें

तलछट हो कभी दरदभी हो ), ४ रीहुलकुलया ( गुरदोंमें रीह अर्थात् गलीज हवा हो जिससे गुरदों और कमरमें दर्द हो), ५ बजेउलकुलया ( दर्द गुरदा ), ६ वरम गुरदा ( गुरदोंमें वरम होना जिससे तप, प्यास, दर्द सर, निद्रानाश और गुरदोंमें दर्द और जलन, केमें सफरा आवे, दस्त पेशाब कम हो ), ७ गुरदोंमें वरम हो फुन्सियां होजायं, कुरा पडजाय इसमें पेशाबमें खून और कुरंडसे आवें, ८ गुरदोंमें अलाइयांसी हो जावें, ९ जयावेतश पेशाब बारबार या जादा आवे प्रायः पानी पीतेही पेशाब आवे, १० गुरदोंमें रेत शरकरा पडजावे या छोटी पथरीसी पडजावे ॥

## मसाना ( वस्ति )

मसाना एक थैली है जिसके दो तबके हैं तबका भीतरी तो असवी है ताकि मूत्रकी तेजी मालूम हो और बाहरी तबका ( परत ) कडी झिल्लीका है कि भीतरलेकी रक्षा करे मूत्रसे भरनेपर फट न जाय और मसानेमें एक नाली है अगली तरफ यही मूत्र बाहर निकलनेका मार्ग है जो मसानेसे लिंगेंद्रियमें होकर गुजरी है यह मूत्रनाली पुरुषोंके तीन खम रखती है और स्त्रियोंके एक खम । मसानेमें दोनों गुरदोंसे दो रगे आइ हैं जिनसे गुरदोंमेंसे मूत्र मसानेमें आवे और मूत्र मसानेमें गुरदोंसे कतरे २ टपक कर आता है और मसानेमें जमा होता है ॥

## मसानेके रोग ।

१ औराममसाना ( मसानेका वरम जिसमें मूत्र रुक २ आवे तप हो ), २ कुरुह मसाना (मसानेमें कुरा पडजावे दर्द हो पीब आवे), ३ मसानेसे पेशाबमें खून मिला आवे और खुरँडसे आवें, ४ मसानेमे खून जमना यह खूनी पेशाबके बाद प्रायः होताहै इसमें शरीर कांपे ठंढा पसीना होवे, ५ दर्दमसाना ( यह कई सबबसे होताहै वरमसे कुरेसे पथरीसे ), ६ मसानेका अफरा, ७ हिस्सात मसान, मसानेकी पथरी या रेत या शर्करा ), ८ पेशाबमें जलन होना, ९ एहतबासुलबोल ( पेशाब बंद होना ) ( चाहे वरमसे चाहे गुरदोंके वरमसे चाहे पथरीसे ), १० तकतीरुलबोस ( पेशाब करते २ टपकके आना ), ११ फराशुलबोल ( नीदमें पेशाब निकल जाना और मालूम न होना, १२ बोलुद्दम ( खूनका पेशाब आना ) ॥

## कुजेबा ( लिंग )

यह अवयव थोडेसे मांस और बहुतसी शिराओं और पट्ठों और नसोंसे बनाहै जब मैथुनादि करनेकी वांछा चित्तमें होतीहै तब मनीके प्रवृत्त होनेके साथ रीहगलीज नसोंमें भरजातीहै और लिंगको लंबाव और मुटाईमें फुला देतीहै और जब मनी निकलजातीहै तब वह रीह गलीजभी खारिज होजातीहै हस(स्पर्शशक्ति) इसमें बहुतहै ।

## लिंगके रोग।

१ आतशक, २ सूजाक, ३ नुकसानवाह ( क्लैब्य ), ४ जिरयान ( प्रमेह ), ५ कसरत एहतलाम ( स्वप्नमें वीर्य गिरना या शीघ्र वीर्य गिरना ) ॥

## खुसिये ( वृषण )

दोनों खुसियोंमेंसे हरेक मांस और मेदा तथा शिराओंसे बनाहै और जब मनी शरीरसे टपककर इनमें आती है तो यहांकी हरारतमे गाढी और सुपेद हो जाती है॥

## खुसियोंके रोग।

१ खुसियोंका वरम, २ खुसिये बढजाना ( अंडवृद्धि ), ३ खुसियोंका दरद, ४ खुसियोंमें खाज होना ॥

## रहम ( स्त्रियोंका गर्भाशय )

यह एक असवानी ( झिल्लीका ) अवयव है इसका स्थान मसाने और अमआय मुस्तकीम और नाभिके दरम्यान है और इसकी गरदन भगतक गई है और इसकी जडमें भीतरको दोनों खुसियेभी होते हैं " रहम " के दो तबके होते हें अंदरके तबकेमें रगें और नशेब बहुत हैं। गोया यह चुनवटदार थैली है और बाहरका तबका अंदरके तबकेका गिलाफ़सा है रहमकी लंबाई नाभिसे योनिके भीतरी द्वार तक है ( यह रहमकी गरदन है ) यह योनि अनुमान छः अंगुल होती है जादासे जादा ११ अंगुल होती है। रहमका मुँह अंदरूनी हरवखत खुला नहीं रहता है सिरफ हैजके कुछ दिन बादतक खुला रहता है फिर " नुतफा " कबूल करनेपर या हैजसे जादा दिन होनेपर बंद हो जाता है ॥

## रहमके रोग।

१ बच्चा न होना ( वंध्यापन ),२ कसरतसे हैज आना, ३ रहमसे रतूबत बहना ( प्रदर ), ४ एहतबासतमस ( हैज बंद होजाना ), ५ रहम निकल आना, ६ औराम रहम ( रहममें वरम होना जिसमें नाभिमें दरद, तप, जबान स्याह होना और पुस्तमें दर्द होना), ७ सरतान रहम (रहममें खोलरी पड़ना),८ इखतनाकरहम ( रहममें खुशकी होना जिससे गशी बेहोशी होना और तशन्नुज होना ) ॥

यहां स्थानसंबंधसे कुछ रोग दिखाये हैं बहुतसे रोगोंकी संख्या और भेद और जगह उत्तरतंत्रमें वा चिकित्सितस्थानमें उन उन रोगोंकी चिकित्साके मौकेपर यथा-संभव यूनानी तथा डाक्टरी मतसेभी कहेंगे वहां देखना ॥

## यूनानी प्रकीर्ण रोगोंका संक्षेप ( पृष्ठ और शाखाओंके रोग )

१ वजे उल जुहर ( पीठका दर्द ), २ वजे मुफासिल ( जोड़ोंका दर्द गठिया), ३ पिंडलियोंमें मोटी नसें होना और गाँठें पड़ना, ४ पीलपाव ( श्लीपद), ५ वजे उल अकब (एडीका दर्द), ६ नुकरस (टाकनेसे अँगूठेतक पीडा), ७ वजे ठलवरक ( चूतड़का दर्द ), ८ अरकुन्निसा पाँवमें झनझनाहटका दर्द अर्थात् रॉंगन बाय ॥

## रक्तसंबंधी रोग।

१ गलीज खूनसे सुर्ख वर्म, २ सुर्खवादा ( विसर्प ), ३ आतशक, ४ दवीला ( एक भांतिका फोड़ा ), ५ सलआ ( रसोली ), ६ उक्द ( गाँठन ग्रंथी), ७ सरतान ( कछवे जैसा शोथ और पाक ), ८ रिश्ता नारू ( स्नायुक ), ९ गंज, १० अलाइयाँ, ११ खुश्क खारश ( सूखी खाज ), १२ गीली खारश ( तर खुजली, पामा ), १३ कोवा ( दाद ), १४ मुहासे ( मुखपिडिका ), १५ तोतह झांई, १६ विसकटा, १७ आवले फिरंग ( फिरंग रोग एक भांतिका आतशक ), १८ चेचक व खसरा, १९ वरस ( श्वेतकुष्ठ ), २० वरस असवद (स्याह दाग), २१ खाल ( तिल ), २२सालील ( मसा ), २३ फसाद लौन ( रंग बिगड़ जाना ), २४ हाथ पाँव फटना, २५ तकशीर जिल्द ( त्वचापरसे छिलकेसे उतरना ), २६ जुजाम ( कुष्ठ अंगुलियें गलना ), २७ नाखून फटला ॥

## बालोंके रोग।

१ तसाकुत शेर ( वाल उड़ना वालोंकी जड गलना ),२तशकीक शेर ( वालोंकी नोक फटना ), ३ शेव ( वे समय बाल सुपेद होना ( पलित )

## अन्यरोग।

१ अरकुदम ( पसीनेमें सुरखी, खून आना ), २ वदनसे दुर्गंध आना, ३फरवही ( बहुत मोटा होजाना-स्थौल्य ), ४ लागरी ( बहुत दुबला होना कार्श्य ), ५ जूं तथा लीखें जादा पडना ॥

## तपके भेद।

१ तप हमीयूम ( एक दिनमें एकवार उतरनेवाला और जरा फुरफुरी देकर चढे, २ तप खिलतिया बलगमी फिसाद जादा हो तो रोज तप रहे जो सफराके फिसादसे हो तो एकदिन छोडकर हो और जो सौदाके फिसादसे हो तो दो रोज बीचमें छोडकर चौथे दिन होवे और तप खूनी फिसादसे हो तो रोज जोरसे चढे पर बना हरसमय रहे ॥

और ये खिलती तप यदि उस खिलतका मादा कम हो तो ऊपर लिखे मूजिब दौरेके तरीकपर आतेहैं और यदि मादा अधिक हो तो जल्दी२ दौरा करे या स्थिर होजावे॥

( क ) बलगमी तपमें शरीर भारी हो आलस्य हो अर्थात् कफज्वरके लक्षण हों ( ख ) सफरावी तपमें बेचैनी, गरमी, प्यास, उवकाई ( पित्तज्वरके लक्षण हों ), (ग) सौदावी तपमें शरीरमें दर्द,हडफूटन,जमाही जादा हों,बढनेपर कंप और ऐंठन हो तथा उठउठकर भगना, वाय भडकना ( वातज्वरके लक्षण हों ), ( घ ) तप, चेहरा लाल, सिरमें दर्द, हलकमें फुन्सी वगैरह इसमें बढनेसे सरसाम हो प्रलाप तथा बेचैनी विशेष हो ( रक्तज्वरके लक्षण हों ), ३ हमीयात मुरक्कव दो या जादा

खिलत जिसमें बिगडें और उन्ही खिलतोंकी अलामत (लक्षण ) मिलें ( द्वंद्वज तथा त्रिदोषज या सन्निपातज ), ४ वे तप जो आमाससे होवें ॥

५ हमीगशिया (वे तप जो बेहोशी और जौफ पैदा करें ये कच्चे बलगमसे प्रायः होतेहैं ),६ हमींदिक तपेदिक( बारीक तप जिसमें मीठी जुरी सदा बनी रहे अर्थात् जीर्णज्वर ठहर जाना ) ॥

## यूनानीकी प्रकीर्ण बातें ।

शारीरकका सारांश संक्षेप लिखनेसे पीछे कुछ २ प्रकीर्ण बातें जो बहुत आवश्यक हैं और जिनका जानना वैद्योंको बहुत जरूरी है वे लिखते हैं १ "खिलत " खिलत उस द्रवपदार्थको कहते हैं जो बहुत शीघ्र शरीरमें फैलकर सब अंगोंमें पहुँच सके या यूँ कहो कि जो गिजा हम खाते हैं उससे पहले जो वस्तुद्रव हमारे शरीरके पोषणके लिये बनता है उसे खिलत कहते हैं । ये खिलत चार हैं १ खून यह गरम तर है, २ सफरा ( पित्त ) गरम खुश्क, ३ बलगम ( कफ ) सरद तर है, ४ सौदा सरद खुश्क । फिर इन हरेकके दो २ भेद होते हैं १ तबई स्वच्छ, २ गैरतबई विकारयुक्त ॥

(आजाय रईसा ) आजाय रईसा तीन हैं (प्रथम दिल, दूसरे दिमाग, तीसरे जिगर) दिल कूवत हयातका मवदा है अर्थात् जीवनी शक्तिका मूल है दिमाग हस ( स्पर्श ज्ञान और ज्ञानेंद्रियों ) तथा हरकत-चलनशक्ति कर्मेंद्रियोंका मूल है जिगर गिजादही तमाम बदन ( पोषणशक्ति ) का मूल है जिगरमें कुव्वत तबई रहती है और दिलमें कुव्वत हैवानी रहती है तथा दिमागमें कुव्वत नफसानी रहती है ॥

जैसे चार खिलत हैं वैसेही मनुष्योंकी प्रकृति ) खासियत भी चारही हैं १ खूनी, २ सफरावी, ३ बलगमी, ४ सौदावी ॥

( बदनका रंग ) बलगमकी प्रधानतासे शरीरका रंग सुपेद होता है और रक्त ( खून )की प्रधानतासे रंगमें सुरखी विशेष होती है तथा सफराकी प्रधानतासे पीला रंग होता है और सौदाकी प्रधानतासे स्याह ॥

खून रुधिरको कहते हैं यह जिगरमें बनता है सफरा खूनके पकावके ऊपरके फेनसे बनता है और यह बनता तो जिगरहीमें है पर रहता है मुख्यतासे मरारे अर्थात् पित्तकी थैलीमें सौदा यह खूनके पकावका तलछट है इसका नियत स्थान तिल्ली है । बलगम यह वह कच्चा मादा ( रस ) है जिससे खून बनता है यह मेदेमें रहता है ॥

यूनानी हिसाबसे कुल शरीरमें २४२ हड्डियाँ होती हैं इन बातोंका विशेष वर्णन देखना हो तो देखो कानूनचा बुकराती या तिब्ब अकबर या अकसीर आजम वगैरह ॥

॥ इति परिशिष्ट शारीरक भाग ॥ २ ॥

॥ श्रीः ॥

# सबका सारांश और ऐक्य।

## परिशिष्ट भाग ३.

### शरीरके मुख्य २ अवयवोंके नामोंका भाषांतर।

| संस्कृतनाम- | अंग्रेजी (डाक्टरी) नाम- | यूनानी या फारसी अरबी नाम- | देशभाषा |
|---|---|---|---|
| मूर्द्धा | ब्रेन | दिमाग | दिमाग |
| बृहत्मास्तिष्क | सरेबरम | | दिमागका अगला बड़ा हिस्सा- |
| क्षुद्रमस्तिष्क | सरेबलम | | दिमागका पिछला छोटा हिस्सा |
| नेत्र | आई | एन ( चश्म ) | आँख |
| कर्ण | ईर | अजन ( गोश ) | कान |
| नासिका | नोज | अनफ ( बीनी ) | नाक |
| मुख | मौथ | दहन | मुह |
| दंत | टूथ | दंदान | दांत |
| आहारनलकाका उपरिभाग | ईसा फेगस | मरी | नाली |
| श्वासनलका | लेरिंक्स | हंजरा | |
| श्वासनलीका अधोभाग | ट्राकिया | " | |
| फुप्फुस | लंग्स | शुश्र ( रिया ) | फेफड़े |
| आमाशय | स्टमक | मेदा | |
| तन्वंत्र | स्मालइंटस्टाइंस | अमआये दकीक | बारीक अंतड़ियाँ |
| | डिओडिमन ( १ ) | असना अशरी | |
| | जिज्यूनम ( २ ) | साइम | |
| | एलीअम ( ३ ) | दकीक | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| स्थूलांत्र | लार्जइटस्टाइंस | अमआये गलीज २ | मोटीअंतडियां |
| | ( १ ) सीकम[1] | अन्नूर | |
| | ( २ ) कोलन | कोलन | |
| | ( क ) एसिंडिंग कोलन | ,, | |
| | ( ख ) ट्रांसवर्सकोलन | ,, | |
| | ( ग ) डिसडिंग कोलन | ,, | |
| मलाशय | रेक्टम | मुस्तकीम | |
| यकृत् | लिवर | कबद जिगर | लोयार |
| पित्ताशय | गालब्लाडर | मरारा | पित्ता |
| हृत्कमल | हार्ट | कलब दिल | दिल |
| प्लीहा | स्पिलीन | तिहाल | तिल्ली |
| वृक्क | किडनी | कुलयां गुर्दे | गुरदे |
| मूत्राशय | ब्लाडर | मसाना | पेडू |
| अंडकोश | टैस्टीकिल्स | खुसिये | फोते |
| लिंग | पैनिस | कुजैब | मरदी |
| गर्भाशय | यूटरस | रहम | बच्चेदानी |
| नाभि | नैविल | नाफ | सूंडी |
| पृष्ठवंश | स्पाइन | जुहर | पीठ |
| हस्तद्वय | सुपीरियरएक्सट्रमीटीज | | |
| पादद्वय | इनफीरियर एक्सट्रमीटीज | | |
| यकृत्नाडी | | मासारीका | |
| रुधिर | ब्लड | दम खून | खून |
| पित्त | बाइल | सफरा | पित्त |
| कफ | म्यूकस | बलगम | कफ |
| कापालिक शिरामूल | स्पाइनलकार्ड | नुखा | |

---

१ सीकम अर्थात् अन्नूरके मूलमेंसे एक छोटी अंतडी निकली है उसे अंग्रेजीमें एपिडक्सवीसाई करेंहैं और यह अंडकोशमें उतर आया करती है ।

## सबके मतका सारांश और ऐक्य।

यदि वैद्यक यूनानी और डाक्टरी मतके शारीरकको विचारकर देखें तो ऐसा मालूम होता है कि, यूनानी और डाक्टरीका शारीरक तो मिलताही है परंतु वैद्यकके शारीरकमें कुछ न्यूनाधिक पाया जाता है इसका कारण यह जान पडता है कि, वैद्योंने गर्भके समय जैसे शरीर बनता है उसके ही अनुसार उत्पत्ति लिखी है और बीजमात्र वर्णन कियाहै फिर यूनानीवालोंने उसका अधिक विवेचन किया जैसे बीजसे वृक्ष बनता है उसके पीछे डाक्टरोंने और भी खोजकरके उसमें बढाया है॥

देखो वैद्योंने ३०० हड्डियां लिखीं वह कुछ अयोग्य नहीं क्योंकि बहुतसी हड्डियां छोटी अवस्थामें जुदी होती हैं पर अवस्था बढनेपर मिलकर एक होजाती हैं (जैसे सेकरम पृष्ठवंशके नीचेकी हड्डी जिसमें आद्य अवस्थामें पांच जोड होते हैं पर जवानीमें एकही प्रतीत होती है) इत्यादिको वैद्योंने भिन्न लिखा और डाक्टरों आदिने एक लिखा बल्कि खुद डाक्टर लोगही लिखते हैं कि, पहले ये ५ भिन्न भिन्न होते हैं बस डाक्टर २४६ हड्डियां मानते हैं और यूनानी २४२ तो हड्डियोंमें इसी प्रकार कुछ अंतर है सो हो पर वास्तवमें अंतर नहीं॥

आमाशय (मेदे) में प्रथम आहार जाना सब मानते हैं सो प्रत्यक्षही है तथा यकृत् (जिगर) रसको लेकर रुधिर बनानेमें प्रवृत्त होता है इसे भी सब एकस्वर होकर मानतेही हैं प्लीहाको वैद्य और डाक्टर रक्तशोधन करनेवाला कहते हैं यूनानी इसे सौदा (रुधिरकी तलछट जलन) का स्थान बताते हैं सो भी कुछ अंतर नहीं क्योंकि जब यह रक्तकी तलछटको छांटता है तो रक्तशोधनेवाला हुआही॥

हृत्कमल (दिल) सबके मतमें जीवका आधार और सर्वत्र जीवनी शक्ति पहुंचानेवाला रक्तकोश है सो ठीकही है॥

अंतडियां किसीके मतमें ६ हैं, किसीके मतमें २, किसीके मतमें ७, किसीके मतमें कितनी यह बात यूं है कि, वास्तवमें परिपाककी अंतडी मेदेसे गुदातक एकही कई पेंच खाये हुए है कहींसे मोटी कहीं पतली कहीं लंबी कहीं गुच्छेदार इसे किसीने (यूनानीवालोंने) ६ भाग मान लिये, वैद्योंने दोही भाग माने (तन्वंत्र और स्थूलांत्र) इसीप्रकार डाक्टरोंने भी पहले दो भाग (पतली अंतडियां और मोटी अंतडियां) माने हैं फिर इन्हींके कई भेद यूं माने हैं कि, पतलीके तीन भाग जुदे और मोटी (कोलन) के भाग जुदे॥

फुप्फुस (फेफडा) वैद्योंने उत्पत्तिके समय हृदयसे बाईं तरफ उत्पन्न होता है ऐसा माना है फिर हृत्कमलके दाहिनी और बाईं तरफ फैल जाता है) और प्राणवायु श्वासका मुख्यस्थान हृदय अर्थात् छातीही माना है सो यह भी विशेष विरुद्ध

नहीं है यूनानीवाले और डाक्टर श्वासका स्थान मुख्य फेफड़ा कहते हैं सो उर अर्थात् छातीका भीतरी भागही तो फेफड़ोंका स्थान है ॥

पित्ता जिसे यूनानीवाले मरारा और डाक्टर गाल ब्लाडर कहते हैं यह जिगरसे लगा हुआ ऊपरको है सो वैद्योंके मतसे भी पित्ताशय दाहिनी तरफ यकृत्के समीपही माना है कई क़ौम इसेही मानते हैं ॥

वृक्क ( गुरदे ) डाक्टर इसे मूत्रका बनानेवाला मानते हैं और यूनानी कहते हैं कि, ये गुरदे जिगरसे मूत्रका भाग लेते हैं अर्थात् जिगर जब रसका रुधिर बनाता है तो सारभाग रुधिरको तो शिराओं द्वारा शरीरमें पहुँचाता है और उसका जलरूप मल अर्थात् मूत्र गुरदोंकी तरफ दाखिल करता है वहांसे मसानेमें जाता है पर वैद्यकमें कहीं ऐसा नहीं पायागया वैद्यकमें ऐसाही लिखा है कि, वस्ति अर्थात् मसाना कोरे कलशके समान उदरके अधोभागमें है जब यकृत् रसका रुधिर बनाता है तथा आमाशयके मलका भाग आंतोंमें आता है तब उक्त स्थानोंमेंसे सहस्रों सूक्ष्म नालियोंद्वारा झिर झिरकर मूत्र स्वयं मसानेमें इकट्ठा होजाता है देखो निदानस्थानका तृतीय अध्याय जहाँ वस्तिका विवेचन है ॥

वस्ति ( मसाना ) मूत्रका स्थान है इसे सब मानतेही हैं परंतु यूनानीवाले और डाक्टर ऐसा मानते हैं कि, इसमें दोनों गुरदोंसे दो नालियोंद्वारा मूत्र आता है और वैद्योंके मतसे अनेक नालियोंद्वारा आमाशय यकृत् वृक्क और अंत्रादिसे इसमें मूत्र झिर झिरकर आता है अस्तु यह भी कुछ विरुद्ध नहीं क्योंकि और अन्य सूक्ष्म नालियां ठीक २ दिखाई नहीं देती और उन्हींमेंसे ये दो नाली स्थूल होंगी जो दिखाई देती हैं ॥

मूर्द्धा ( दिमाग ) वैज्ञानिक शक्ति और शिराओं तथा पट्ठोंका मूल है इसे सब मानतेही हैं परंतु वैद्य हृत्कमलको बुद्धिका स्थान सर्वोत्कृष्ट मानते हैं और यूनानीवाले और डाक्टर दिमागको सर्वोत्कृष्ट बुद्धिका स्थान मानते हैं यह भी कुछ विशेष विरुद्धता नहीं क्योंकि सबके मतमें दोनोंही बुद्धि और विज्ञानके मुख्य स्थान हैं कि बहुना विज्ञेषु इति ॥ इति परिशिष्ट शारीरक भाग ॥ ३ ॥

॥ इति शारीरस्थान परिशिष्ट समाप्त ॥

---

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस—बम्बई.